ॐ

सर्वज्ञ वीतरागाय नमः

गुरु कहान : दृष्टि महान

(भाग-2)

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

: गुजराती संकलन :

जीतुभाई नागरदास मोदी

प्रशम जीतुभाई मोदी

सोनगढ़

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान मोक्षार्थी परिवार

सोनगढ़, जिला-भावनगर (गुजरात)

मोबा. 09722833143

प्रथम आवृत्ति : प्रति 1000
(विक्रम संवत् 2072, वीर संवत् 2542, ईस्वी सन् 2015)

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
2. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
3. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
4. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
5. **चिन्तन जीतुभाई मोदी,** क्रमबद्ध निवास, 45 कहान नगर सोसाइटी, सोनगढ़ - 364250 (सौराष्ट्र)
   मोबा : 09662524460
6. **पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन**
   द्वारा मुकेश आयरन स्टोर, गुरु कहान मार्केट, बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)
   मोबा : 09461768086
7. **श्री प्रदीप मानोरिया,** मिल रोड, अशोकनगर, (म.प्र.), मोबा : 09425132060
8. **श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द परमागम ट्रस्ट,**
   पंच बालयति जिनालय, एरोड्रम रोड, साधनानगर, इन्दौर (म.प्र.)
9. **श्री अश्विनभाई ए. शाह,**
   बी-21, रुस्तमजी आदर्श हेरीटेज ऑफ मार्वे रोड,
   आदर्श काम्पलेक्स विहार, मलाड (वेस्ट) मुम्बई-64 , मोबा : 09820124378

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

अर्पण

जो वर्तमान युग में क्रमबद्धपर्याय का शंखनाद करनेवाले के रूप में जैन जगत् में प्रसिद्ध हैं; जो जैन जगत् में समयसार के प्रखर प्रचारक के रूप में मशहूर हैं; जो द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जनहार हैं; जिन्होंने शास्त्रों के शब्दों में छिपे हुए आचार्यों के गूढ़ भावों को खोलने की अद्‌भुत शक्ति द्वारा भव्य जीवों पर वचनातीत परम उपकार किया है; जिनकी शीतल छत्रछाया में जीवन व्यतीत करने का परम सौभाग्य हमारे पिताश्री को प्राप्त हुआ था, उन असीम करुणासागर, पुरुषार्थप्रेरणामूर्ति धर्मपिता पूज्य गुरुदेवश्री को, उनके ही द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचनों के अमूल्य खजाने में से चुने हुए 38 प्रवचनों के संकलनरूप यह **'गुरु कहान : दृष्टि महान'** भाग–2 अर्पण करते हुए हम जीवन की धन्यता अनुभव कर रहे हैं।

– संकलनकार

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृतने पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

प्रकाशकीय

तीर्थंकरदेव का जन्म जगत के कल्याण के लिये होता है, इसी प्रकार अनन्त-अनन्त उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का जन्म, इस निकृष्ट काल में यहाँ जन्मे हुए और भविष्य में भी यहाँ जन्म लेनेवाले अल्प संसारी जीवों को भाग्यशाली बनाने के लिये तथा उन्हें संसार-समुद्र से पार उतारने के लिये हुआ था। अन्तिम सैंकड़ों वर्षों का जैन इतिहास कहता है कि भव्य जीवों के तारणहार ऐसे महान सन्त यदि कोई हुए हों तो उनमें कृपासिन्धु पूज्य गुरुदेवश्री ही प्रधान पुरुष हैं। उन्होंने इस भौतिक युग को अध्यात्मयुग में परिवर्तित करके पंचम काल के अन्त तक टिका रहे - ऐसा अध्यात्मयुग सृजित किया है।

ऐसे अध्यात्मयुगसृष्टा, अध्यात्म क्रान्तिवीर पूज्य गुरुदेवश्री की 45-45 वर्ष प्रवाहित अध्यात्म गंगा का अमृतपान करनेवाले महान भाग्यशाली भव्य मुमुक्षुओं को तो उनके द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान के अभ्यास द्वारा आज भी पूज्य गुरुदेवश्री साक्षात्रूप से अनुभव में आ रहे हैं, परन्तु उनके दर्शन-श्रवण और सत्संग का जिन्हें साक्षात् लाभ प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे भव्य जीवों को, इन महापुरुष ने जो द्रव्यदृष्टि प्रधान दिव्यदेशना का प्रपात बहाया, उसका साक्षात्वत् लाभ मिले, वह इस **गुरु कहान : दृष्टि महान** के प्रकाशन का हेतु है।

यह जीव अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक तक जा आया, अनन्त बार नग्न दिगम्बर द्रव्यलिंग धारण किया, अनन्त बार समवसरण में जा आया, तथापि कोरा रह गया, उसका मुख्य कारण यदि कोई हो तो वह एक ही है कि द्रव्यदृष्टि प्रधान देशना को इस जीव ने कभी ग्रहण नहीं किया—ऐसा पूज्य गुरुदेवश्री करुणा से बारम्बार कहते थे और इसीलिए उस द्रव्यदृष्टि प्रधान देशना का उन्होंने जीवनपर्यन्त प्रपात बहाया है। पूज्य बहिनश्री भी कहती थीं कि 'मानो कोई बड़े आचार्य उपदेश देते हों, वैसे दृष्टि के विषय का अपूर्व स्पष्टीकरण होता था' ....'दृष्टि का विषय आवे, तब उछल जाते थे।' यद्यपि उनकी सर्वांगी उपदेश गंगा में न्यूनाधिक योग्यतावाले सर्व जीवों को आत्म-लाभ हो, ऐसा निश्चय-व्यवहार का सम्पूर्ण उपदेश बोध बहा है। मुमुक्षु की पात्रता कैसी हो, अशुभ से बचने को शुभ में जुड़ान कैसा हो, इत्यादि उपदेश देने पर भी कहीं किसी को मुख्यता न हो जाये तथा उसमें जोर दिये बिना उस व्यवहारमार्ग प्रकाशन के साथ मुख्यरूप से तो द्रव्यदृष्टि मार्ग प्रकाशक निश्चय की ही मूसलाधार वर्षा की है। जिससे भद्र जीव अनादि के संस्कारवश मन्दकषाय आदि व्यवहारमार्ग में न अटककर, निश्चयमोक्षमार्ग को यथार्थ समझकर उसका ही ग्रहण करके यह भव सफल करने के लिये स्वानुभूति का सत्पुरुषार्थ अपनायें।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अध्यात्मयुग का सृजन किया ही है परन्तु बहुत स्पष्ट कहें तो वस्तुतः वे

द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जक हैं क्योंकि जिस द्रव्यदृष्टि प्रधान निश्चय के बोध से जीव निश्चयाभास के डर से भयभीत होते थे, उसके बदले आपश्री के प्रताप से भव्यजीव दिन-रात उस निश्चय का घोलन, चिन्तन श्रवण करने में ही जीवन की धन्यता अनुभव करते हैं।

द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जक पूज्य गुरुदेवश्री की उपदेश अमृत वाणी को श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट के तत्कालीन प्रमुख श्री नवनीतभाई झवेरी की दीर्घदृष्टि से टेप में संगृहित करके चिरकालपर्यन्त सुरक्षित बनायी तथा लगभग 9000 घण्टे की इस गुरुवाणी को स्वर्गीय श्री शान्तिलाल रतिलाल शाह परिवार ने अद्यतन टेक्नोलॉजी द्वारा मात्र 16 डीवीडी में तथा तीन वीडी (Blueray Disk) में (जनवरी 2010 तक में) प्रसिद्ध करके मुमुक्षु जगत पर परम उपकार किया है, जिस कारण भावी के भव्य जीव भी आत्महित के मार्ग में सरलरूप से प्रयाण कर सकेंगे। ऐसे होने पर भी, पंचम काल के प्रभाववश कितने ही तत्त्व के अभ्यासियों द्वारा द्रव्यदृष्टि प्रधान तत्त्वज्ञान के पुरुषार्थ में भय प्रकाशन करते देखकर पूज्य गुरुदेवश्री के 9000 टेप प्रवचनों में से द्रव्यदृष्टि प्रधान विशेष पुरुषार्थ प्रेरणादायक प्रवचन चुन-चुनकर **गुरु कहान : दृष्टि महान** रूप से सीडी प्रवचन मुमुक्षु समाज को उपलब्ध कराने की हमें भावना जागृत होने से हमने भाग 1 से 9 तक प्रसिद्ध किया, जिसका श्रवणपान करते हुए गुरु-भक्तों का ध्यान गया कि सीडी प्रवचन का श्रवण करते समय हाथ में अक्षरश: गुरुवाणी की पुस्तक हो तो प्रवचन का भाव विशेषरूप से समझना सरल बने। इसलिए गुरु भक्तों की भावना को साकार करने का निर्णय किया और हिन्दी भाषी समाज भी इन प्रवचनों का लाभ ले इस भावना से एक मुमुक्षु परिवार द्वारा इस प्रकल्प की दूसरी पुस्तक प्रकाशित हो रही है। मुमुक्षु परिवार की अनिच्छा के कारण उनका नाम प्रसिद्ध नहीं किया जा रहा है। विदित हो कि हिन्दी में प्रकाशित इस प्रकल्प के भाग 1 और 2 में गुजराती 'गुरु कहान : दृष्टि महान' भाग 1 से 3 तक समाहित कर लिये गये हैं।

इस पुस्तक प्रकाशन के दो मुख्य प्रयोजन हैं - (1) जिन्हें करुणासागर गुरुदेवश्री के प्रत्यक्ष दर्शन-श्रवण का लाभ नहीं मिला, ऐसे भव्य जीवों को गुरुदेवश्री के द्रव्यदृष्टि प्रधान अन्त:करण समझने का सौभाग्य प्राप्त हो तथा (2) पंचम काल के प्रभाव में आकर प्रमाण के लोभ में अटककर द्रव्यदृष्टि के मार्ग में नि:शंकरूप से प्रयाण करने में हिचकिचाहट न हो, इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्री की भव्य जीवों को संसार-समुद्र से उभर लेने की करुणा सफलता को प्राप्त हो।

अन्त में, पूज्य गुरुदेवश्री 91 वर्ष की उम्र में भी जिस द्रव्यदृष्टि की प्ररूपणा करते हुए अन्दर से उछल पड़ते थे उस द्रव्यदृष्टि प्रधान उपदेश को **गुरु कहान : दृष्टि महान** के माध्यम से शीघ्र ग्रहण करके भावी अनन्त काल गुरु के सान्निध्य को प्राप्त करे - ऐसी भावना के साथ....

संकलनकार / अनुवादक

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

२६	श्री समयसार	६८	१८-११-१९७९	१३९	३३९
२७	श्री नियमसार	५८, ४१	१२-०९-१९६६	१७६	३५३
२८	श्री नियमसार	३८	०२-०९-१९६६	१६७	३७०
२९	श्री नियमसार	५४, ३९	०७-०९-१९६६	१६८	३८५
३०	श्री वचनामृत	११२-११३	१७-०७-१९७८	४०	४०१
३१	श्री वचनामृत	२०१	२९-०८-१९७८	७९	४१४
३२	श्री समयसार	१	०३-१२-१९७५	५	४२८
३३	श्री परमात्मप्रकाश,	१२३-१२४	२६-०६-१९६५	१५६	४४२
३४	श्री छहढाला	२-१३	२७-०१-१९६६	१०	४५९
३५	श्री समयसार कलश टीका	२५७	२०-१२-१९६५	२७५	४७५
३६	श्री परमात्मप्रकाश	६४-६५	२७-०७-१९७६	४२	४९०
३७	श्री परमात्मप्रकाश	९२	२२-०८-१९७६	६९	५०२
३८	श्री नियमसार	२७७, १६२	१८-०९-१९६६	१८१	५१७

प्रवचन शुरु करने से पहले पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा किया जानेवाला

मांगलिक

॥ णमो लोए सव्व अरिहंताणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व सिद्धाणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व आयरियाणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व उवज्झायाणम् ॥

॥ णमो लोए सव्व त्रिकाळवर्ती साहूणम् ॥

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावायभावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी ।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥

त्रिकाळ दिव्यध्वनि दातार.....

२६ श्री परमात्मप्रकाश, गाथा—६८-६९, प्रवचन नं. ४७, दि. २८-०७-१९७६

यह श्री परमात्मप्रकाश चल रहा है। गाथा ६८ आखिरी भाव है, देखो ! 'उसी तरह' वहाँ है ? आखिरीसे छठवीं लाईन है। पहेले क्या कहा ? दृष्टांत दिया। कोई जीव सांकलसे बंधा हो उसे छूटा ऐसा कहना योग्य है, लेकिन जो बंधा ही न हो उसे छूटा कहना योग्य नहीं है। समझमें आया ? सांकलका दृष्टांत है, 'सांकल' समझमें आता है ? सांकल। कोई जीव सांकलसे बंधा हुआ हो उसे छूटा ऐसा कहना वह यथार्थ है, लेकिन जो सांकलसे बंधा ही न हो उसे छूटा ऐसा कहना यथार्थ नहीं है। यह तो दृष्टांत हुआ।

'उसी तरह यह जीव शुद्धनिश्चयनयसे बंधा ही नहीं'....आहाहा....! भगवान आत्मा वस्तु जो स्वभाव चिदानंद है, त्रिकाली द्रव्यभाव स्वभावभाव है वह कभी बंधा ही नहीं है। वस्तुको क्या बंधन ? समझमें आया ? सूक्ष्म अधिकार है। एक समयमें चिदानंद भगवान द्रव्यस्वभाव पूर्णानंदका नाथ है उस वस्तुको बंध क्या और मुक्ति क्या ? समझमें आया ? आहाहा....! वस्तुस्वभाव जो द्रव्यस्वभाव पर्याय बिनाका, पर्याय बिनाका जो द्रव्यस्वभाव है वह बंधा नहीं, वह तो त्रिकाल मुक्त स्वरूप है। शक्तिस्वरूप मुक्तस्वरूप है, सूक्ष्म बात है। भगवन् ! वह वस्तु जो दृष्टिका विषय है वह तो कभी बंधा भी नहीं और कभी मुक्त होता नहीं।

'उस वजहसे कहना ठीक नहीं' आहाहा....! द्रव्यस्वभाव जो पूर्ण अखंडानंद प्रभु, जो (श्री समयसार) १४-१५ गाथामें कहा न ?–अबद्धस्पृष्ट, वह अबद्धरूप है। वह बंधी हुई वस्तु नहीं है। वस्तु बंधे किस तरह ? पर्यायमें बंध और मुक्ति है। समझमें आया ? आहाहा....! पर्याय–वर्तमान दशा कि जो व्यवहारनयका विषय है उस पर्यायमें बंध और पर्यायमें मुक्ति है। समझमें आया ? सूक्ष्म बात है।

श्रोता :— हमें पर्यायसे क्या काम है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— करना पर्यायमें है न ! ध्रुवमें करना कहाँ है ? मोक्षमार्ग तो पर्याय है, वह शुद्धनयका विषय है, ध्यान रखना ? पर्याय है न ? मोक्षमार्ग वह पर्याय है क्योंकि बंधमार्ग-भाव वह भी पर्याय है। वह दोनों अशुद्धनयसे है। अशुद्धका मतलब

पर्यायसे (बंध) है, पर्यायका मतलब व्यवहारसे है, सूक्ष्म है भगवान् !

वस्तु जो है वह तो परिणमित बिनाकी चीज है। सूक्ष्म अधिकार है। आहाहा....! भगवान आत्मा जो उत्पाद-व्ययकी पर्यायसे रहित ध्रुव है वह तो बंधनमें भी नहीं और मोक्षमें भी नहीं है। आहाहा....! समझमें आया ? वह कहते हैं देखो ! **'शुद्ध निश्चयनयसे बंधा नहीं...'** वस्तु बंधे तो वस्तुका अभाव हो जाय। समझमें आया ? सूक्ष्म विषय है, भई ! सम्यग्दर्शनका विषय बंध और मोक्षकी पर्यायसे रहित है। समझमें आया ? 'परमात्मप्रकाश है न ! पंडितजी ! 'परमात्मप्रकाश' है ? पंडितजीसे कहता हूँ। पुस्तक है न ? समझमें आया ?

६८ गाथा ऐसी है कि जीवको जन्म नहीं, मृत्यु नहीं, बंध नहीं, मोक्ष नहीं–उसे जिनवर जीव कहते हैं। ६८ गाथा। **'ण वि उप्पज्जई ण वि मरइ'** जिसमें न तो उत्पाद होता है और न व्यय होता है। आहाहा....! **'बंधु ण मोखु करेइ'** बंधको करता नहीं, मोक्षको करता नहीं। हे योगी ! हे संत ! गुरु कहते हैं कि हे शिष्य ! **'जोइआ'** जोगी ! आहाहा....! **'जिणवरू एऊँ भणेइ'** मूल गाथा है। उसे जिनवर कहते हैं। कौन जीव ? निश्चय आत्मा–त्रिकाली आत्मा वह जीव, पर्याय नहीं।

श्रोता :— जीव कितने प्रकारके हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— एक व्यवहार और एक निश्चय जीव—इस तरह दो प्रकारके जीव है। जीवके दो प्रकार है। (त्रिकालीको निश्चय जीव कहते हैं) और उत्पाद-व्यय पर्यायवालेको व्यवहार जीव कहते हैं।

श्रोता :— एक जीवमें दो जीव कहाँसे आये ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— जीव एक है, पर्याय और द्रव्यके दो भेद है। पर्याय द्रव्यमें आती नहीं और द्रव्य पर्यायमें आता नहीं। सूक्ष्म है, भगवन् ! सर्वज्ञ वीतराग जिनवर ऐसे कहते हैं कि उसको हम जीव कहते हैं, निश्चय जीव–वास्तविक जीव यानि यथार्थ आत्मा उसको हम कहते हैं कि जिसको उत्पाद-व्यय नहीं, जन्म-मृत्यु नहीं, बंध-मोक्ष नहीं। आहाहा....! समझमें आया ?

बंध और मोक्ष, उत्पाद-व्यय तो पर्यायदृष्टिमें है, वह पर्यायके विषयमें है, द्रव्यके विषयमें वह नहीं। आहाहा....! समझमें आया ? **'जिणवरू एऊँ भणेइ'** आहाहा....! अनंत जिनवर ऐसा कहते हैं कि परमार्थ जीव उसको कहिये कि जो सम्यग्दर्शनका विषय है,

सम्यग्दर्शन पर्याय है लेकिन उसका विषय ध्रुव द्रव्य है। आहाहा....! वह द्रव्य जो त्रिकाली ध्रुव है, जिसमें उत्पाद-व्यय नहीं, जिसमें बंध-मोक्ष नहीं उसे जिनवर देव परमार्थ भगवान आत्मा कहते हैं। समझमें आया ? भाई ! भाई ! आहाहा....! पर्यायवंत जो पर्याय है वह तो पर्यायनयका विषय है। चाहे वह मोक्ष या मोक्षका मार्ग हो, वह व्यवहारनयका विषय है।

श्रोता :— मोक्ष वह व्यवहार और व्यवहार वह झूठा। अतः मोक्ष झूठा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— व्यवहार झूठा किस अपेक्षासे ? वह तो त्रिकालीकी अपेक्षासे अभूतार्थ है, लेकिन स्वयंकी अपेक्षासे तो भूतार्थ है। आहाहा....! सूक्ष्म विषय है। यह गाथा ही बहुत सूक्ष्म है। आहाहा....!

आहाहा....! बहुत लक्ष करके सुननेलायक यह वस्तु है। अनंतकालमें यह वस्तु क्या है वह उसने लक्षमें ही नहीं ली है। भगवान आत्मा एक समयमें जो ध्रुव है, उस ध्रुवमें ओ उत्पाद-व्यय भी नहीं, उत्पाद-व्यय तो पर्यायमें है और बंध-मोक्ष भी पर्यायमें है। आहाहा....! गजबकी बात है ! अभी तो लोग बहारमें दया-दानसे मुक्ति मानते है, वह तो कहीं दूर रह गया, प्रभु !

यहाँ तो भगवान आत्मा, एक समयमें जो उत्पाद-व्यय है उससे रहित है। **'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'** यह तो **'तत्त्वार्थसूत्र'**में आता है। दशलक्षण पर्वमें आता है, 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' भगवान आत्मा उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीनों मिलकर प्रमाणका विषय है, प्रमाणका विषय है उसके दो भेद करके (कहते हैं)। त्रिकाली द्रव्य जो है वह बंध-मोक्षसे रहित है, वह सम्यग्दर्शनका विषय है और बंध-मोक्षकी पर्याय है वह व्यवहारनयका विषय है। आहाहा....! समझमें आया ? वीतरागका मार्ग बहुत सूक्ष्म है। अलौकिक बातें हैं। ऐसी बात कहीं भी नहीं। वीतराग सर्वज्ञके अलावा ऐसी बात कही नहीं है। श्वेताम्बरमें भी नहीं है तो फिर दूसरोंमें तो होगा ही कैसे ! आहाहा...! यह तो सनातन जैन दर्शनमें यह कथन है। समझमें आया ? ऐसा कहकर क्या कहना है ?

जो वस्तु बंध-मोक्ष रहित ध्रुव है उसका आश्रय करने योग्य है, पर्यायका भी आश्रय करने योग्य नहीं है। मोक्ष और मोक्षका मार्ग भी आश्रय करने योग्य नहीं है। पंडितजी ! सूक्ष्म विषय है, भाई ! आहाहा...! बात एकदम पलटी खाती है। वस्तु भगवान आत्मा एक समयमें ध्रुवका जो पिंड है, ध्रुव स्वरूप है, जिसमें उत्पाद-व्यय, बंध-मोक्ष नहीं है। आहाहा...! उस वस्तुको भगवान परमार्थ आत्मा कहते है। बंध-मोक्षकी पर्याय वह परमार्थ

आत्मा नहीं है। आहाहा...! बंध-मोक्ष तो पर्यायमें है। पर्यायमें रागकी एकताका बंध और रागके अभावरूप मोक्षकी पर्याय वह पर्यायमें है। आहाहा...! समझमें आया ?

पर्यायमें द्रव्य नहीं और द्रव्यमें पर्याय नहीं, इतना है। है तो (दोनों) साथमें ही। सुनो भाई ! यह भगवानकी बात सूक्ष्म है। पर्यायमें द्रव्य आता नहीं। ज्ञानकी पर्यायमें और श्रद्धाकी पर्यायमें पूरे द्रव्यका ज्ञान और द्रव्यकी श्रद्धा होती है। समझमें आया ? द्रव्य कैसा है उसकी श्रद्धा पर्यायमें होती है, (फिर भी) द्रव्य (पर्यायमें) आता नहीं है। आहाहा...! समझमें आया ? आहाहा...!

प्रभु ! तू एक बार सुन तो सही ! तेरे द्रव्यकी प्रभुता इतनी है कि जिसमें बंध-मोक्षकी पर्याय भी नहीं है। समझमें आया ? और जो बंध-मोक्षकी पर्याय है वह पर्याय है तो व्यवहारनयका विषय अर्थात् अशुद्धनयका विषय है। बंध, मोक्ष और मोक्षका मार्ग है, द्रव्यके आश्रयसे जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निश्चय-वास्तविक मोक्षमार्ग है, विकल्प है वह मोक्षमार्ग है ही नहीं। वह जो वास्तविक निश्चय मोक्षमार्ग है वास्तवमें वह भी पर्यायका विषय है, व्यवहारनयका विषय है। दूसरी भाषामें कहे तो वह अशुद्धनयका विषय है। आहाहा...! ऐसी बात है भाई !

तीनलोकके नाथ जिनवरदेव सभामें इन्द्र और गणधरके सामने ऐसा कहते थे, यह वह बात है। आहाहा...! भगवन् ! तू इतना बड़ा है, तेरा कितना माहात्म्य है और तेरी कितनी ध्रुवता-त्रिकालीपना है। आहाहा...! उसको पर्याय छूती नहीं। वह द्रव्य है वह निश्चय मोक्षमार्गकी पर्यायको स्पर्शता नहीं और मोक्षमार्गकी पर्याय जो है वह द्रव्यको स्पर्शती नहीं। ऐसी बात है, भगवन् ! आहाहा...! अरे ! अभी तो सब गड़बड़ हो गई है। व्यवहारसे होता है और उससे होता है और दया, दान और व्रत करो और उससे धर्म होगा....अरे ! भगवन् ! वह तो बंधमार्ग है न ! उससे मोक्षमार्ग होता है ? बंधमार्ग द्रव्यका आश्रय लेता है ? आहाहा...! रागादि भाव है वह तो (बंधमार्ग है)। (उसमें) लक्ष परका है, दिशा परकी है, वह दशाकी दिशा परकी ओर है। आहाहा...! और जो सच्चा मोक्षमार्ग है उसकी दशाकी दिशा द्रव्य सन्मुख है। समझमें आया ? अरेरे ....! प्रभुकी ऐसी बातमें लोगोंने सब गड़बड़ करदी है।

शास्त्रमें आता है न कि व्यवहार रत्नत्रय परंपरा मोक्षका कारण है, ऐसा आता है। किसको ?-कि जिसको त्रिकाली भगवान बंध-मोक्षकी पर्यायसे रहित है उसकी, उसको अनुभवमें दृष्टि हुई हो, जिसको आनंदका स्वाद आया हो। आहाहा...! जो आनंद स्वरूप

ध्रुव प्रभु है उसका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ तो वह आनंदकी दशा हुई। त्रिकाली आनंद है उसकी आनंद दशा हुई। समझमें आया ? आहाहा...! और जितना शुद्धोपयोग है उतना रागका भाव है। भगवानने व्यवहारनयसे जो कथन करके व्रत और नियम और तपस्या और क्रियाकांड कहे हैं, वह सब अशुद्धनयका विषय है और बंधका कारण है। आहाहा...! और जो मोक्षका मार्ग है वह निर्मल पर्याय है, उसका आश्रयदाता भगवान है। दाताका अर्थ वह पर्यायको देता नहीं। आहाहा...!

वह द्रव्य पर्यायका दाता नहीं है। वह अपने 'आत्मधर्म'में आ गया न ? 'योगसार'में 'योगसार'का कथन 'आत्मधर्म'में बहुत आ गया। अब आत्मधर्म काफी अच्छा और स्पष्ट आ रहा है। लोग बहुत खुश हुये हैं। इस कार्तिक माहसे 'आत्मधर्म' पढ़कर लोग बहुत खुश हुये हैं। 'आत्मधर्म' तो अब 'आत्मधर्म' आया। आहाहा...! क्या कहा ?

जो 'आत्मा' और 'आत्मधर्म' दो शब्द है, तो आत्मा है वह तो त्रिकाली है, उसमें बंध और मोक्ष भी नहीं है, मोक्षका मार्ग भी उसमें नहीं है। आहाहा...! जो बंध और मोक्ष है.....कहा न ? ६८ गाथा....'**बंध भी व्यवहारनयसे है और मोक्ष भी व्यवहारनयसे है**' भाई ! क्या कहा ? सुनो भाई ! यह तो अलौकिक मार्ग है। बंध भी व्यवहार है। पर्यायमें जो रागसे एकता है वह व्यवहारनय है। पर्याय है न ! और मोक्षका सच्चा निश्चय है वह व्यवहार है। पर्याय है न ! और सच्चा निश्चयमार्ग है वह भी व्यवहार है। पर्याय है न ! आहाहा...!

श्रोता :— वह तो रागसे अलग हुई दशा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— अलग हुई है लेकिन है तो वह पर्याय न ? पर्याय है वह व्यवहार है। आहाहा...! सूक्ष्म बात है, भगवन् ! यहाँ 'प्रवचनसार'में ४७ नयमें यहाँ तक कहा, ४७-४७ नय है न ? 'प्रवचनसार'में पीछे हैं। वहाँ तो ऐसा कहा है कि मिट्टीको उसकी बर्तन आदि पर्याय आदिसे देखना अशुद्धनय है, मिट्टीको सिर्फ मिट्टीरूपसे देखना वह शुद्धनय है; वैसे ही भगवान आत्माको निर्मल पर्यायसे सहित देखना वह अशुद्धनय है, यह सिद्धांत है उसमें ? 'प्रवचनसार'में ४७-४७ नय-आखिरीके दो नय है न ! आहाहा...! मिट्टीको उसकी पर्याय कि जो बर्तन आदि है, बर्तन है न ? मिट्टीके बर्तन है न ? बर्तन मिट्टीको देखना वह अशुद्धनय है। एक मिट्टीको देखना वह शुद्धनय है। वैसे ही भगवान आत्माको-निर्मल पर्यायसे सहित द्रव्यको देखना वह अशुद्धनय है। आहाहा...! गजब बात है ! सिर्फ त्रिकाली द्रव्यको देखना वह शुद्धनय है। समझमें आया ? मार्ग बहुत सूक्ष्म है

भाई ! वीतराग जिनेश्वरदर्शन वह दिगम्बरदर्शन है, दिगम्बरदर्शन है वह जिनेश्वरदर्शन है, आहाहा...! उसके अलावा ऐसी सत्त्वकी बात और कहीं है ही नहीं। आहाहा...! क्या कहा ?

'बंध भी व्यवहारनयसे है और मुक्ति भी व्यवहारनयसे है'। आहाहा...! क्योंकि बंध और मुक्ति तो पर्याय है, वस्तुमें बंध-मुक्ति नहीं। वह तो त्रिकाली चीज है। आहाहा...! और वही सम्यग्दर्शनका विषय है। **'भूदत्थोमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो'** (समयसार) गाथा ११ वीं है। **'व्यवहारोऽभूदत्थो'** पर्यायबुद्धि अभूतार्थ है। मोक्ष और मोक्षका मार्ग भी अभूतार्थ है। किस अपेक्षासे ?–त्रिकालकी अपेक्षासे। अपनी (पर्यायकी) अपेक्षासे (पर्याय) है लेकिन वह पर्यायनयका विषय है। आहाहा...! मोक्ष और मोक्षका मार्ग, सच्चा हाँ ! व्यवहार मोक्षमार्ग वह तो मोक्षमार्ग है ही नहीं, वह तो आरोपित कथन–निरूपण है। मोक्षमार्गकी प्ररूपणा दो प्रकारसे है। मोक्षमार्ग दो प्रकारका नहीं है। आहाहा...! कथनमें एसे आता है। जब अपना निश्चय मोक्षमार्ग अपनेसे प्रगट होता है उस समय राग—देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धाका राग, पंच महाव्रतका राग–व्यवहार साथमें देखकर–सहचर देखकर निमित्तका उपचार करके व्यवहार कहा है, वह मोक्षमार्ग नहीं है, सिर्फ साथमें निमित्त देखकर उपचार किया है। आहाहा...! ऐसी चीज है भगवन् !

'मुक्ति भी व्यवहारनयसे है' आहाहा...! रागको व्यवहारनयसे मोक्षका मार्ग कहा है उसकी तो बात ही कहाँ है ! वह तो बंधमार्ग है। समझमें आया ? क्योंकि पर्यायमें निर्मलता प्रगट हुई है। मुक्तिकी पर्याय अनंत आनंद, अनंत ज्ञान, दर्शन, केवलज्ञानकी पर्याय भी व्यवहारनयका विषय है। आहाहा...! पर्याय है न ! त्रिकालीमें भेद किया है। आहाहा...! भगवान त्रिलोकीनाथ जिनवरदेव ऐसा कहते हैं। पाठमें आ गया **'जिणवरू एऊँ भणेइ'** आहाहा...!

प्रभु ! तू कौन है ? कायम रहनेवाला कौन है ? तू कौन है ? कायम रहनेवाली वस्तु तो द्रव्य स्वरूप, ध्रुवस्वरूप है। जिनवर ऐसा कहते हैं कि ध्रुव स्वरूपमें बंध-मोक्षकी पर्यायका अभाव है। आहाहा...! अरे ! मोक्षमार्गकी पर्याय, सम्यग्दर्शन-ज्ञानकी पर्यायमें द्रव्य आता नहीं। आहाहा...! समझमें आया ? भाई ! सूक्ष्म है। आहाहा...! जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा गणधर और इन्द्रोंकी सभामें दिव्यध्वनिमें ऐसा कहते थे। आहाहा...! प्रभु ! तुझे मुक्ति और बंध व्यवहारनयसे है, क्योंकि द्रव्य निश्चय है और पर्याय व्यवहारनय है। मोक्ष और मोक्षका मार्ग पर्याय है। अतः व्यवहारनय है, अशुद्धनय है। समझमें आया ?

वह अशुद्धता है ऐसा नहीं। मोक्षमार्ग अशुद्ध है ऐसा नहीं, लेकिन मोक्षमार्गकी पर्यायको देखना वह भेद है। अतः अशुद्धनय है। पर्याय है न ! और त्रिकाली भगवान शुद्ध चिदानंद प्रभु शुद्धनयका विषय है। वह सम्यग्दर्शनका विषय कहो या शुद्धनयका विषय कहो। ११वीं गाथामें भूतार्थ आश्रित सम्यग्दर्शन कहा है। वह त्रिकाली द्रव्यके आश्रयसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा...! समझमें आया ? पकड़में आये उतना समझो। प्रभु ! मार्ग तो यह है, भाई ! अभी तो बहुत बदल गया है। आहाहा...! कहाँसे कहाँ....आहाहा...! पद्मावती देवी और फलाणा यक्ष और कहाँसे कहाँ बेचारे भटक रहे हैं !

यहाँ तो कहते हैं कि सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा भी विकल्प है और राग है। आहाहा...! बंधमार्ग है। परद्रव्य आश्रित भाव होते हैं तो राग ही होता है, वह तो बंधमार्ग है। लेकिन यहाँ तो भगवान त्रिकाली आनंदका नाथ है उसमें सर्वस्व शक्ति भरी है। अनंत आनंद, अनंत शांति, अनंत स्वच्छता, अनंत ईश्वरता, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य जिसके स्वभावकी मर्यादा नहीं है ! एक एक शक्तिकी मर्यादा नहीं ऐसी शक्ति और उस शक्तिमें अनंत अनंत सामर्थ्य ! ऐसी अनंत शक्तिरूप ध्रुव भगवान द्रव्य जो है वह पर्यायको स्पर्शता नहीं है। आहाहा...! (समयसारकी) ४९वीं गाथामें आया है। व्यक्त अव्यक्तको। व्यक्त नाम पर्याय और अव्यक्त नाम द्रव्य। दोनोंका एक साथ ज्ञान होने पर भी, व्यक्तको अव्यक्त स्पर्शता नहीं है। आहाहा...! व्यक्त-पर्याय है और अव्यक्त-द्रव्य दोनोंका एक साथ ज्ञान होने पर भी, आहाहा...! व्यक्तको अव्यक्त-द्रव्य स्पर्शता नहीं है। वह पाँचवा बोल है। बोल है न ! छह बोल ४९ गाथा। अव्यक्तके छह बोल है। समझमें आया ? आहाहा...!

अलिंगग्रहणमें है। प्रवचनसार १७२वीं गाथामें बीस बोल है। उसमें १८वाँ बोल है। अर्थावबोधरूप गुणविशेषको नहीं स्पर्शनेवाला वह भगवान आत्मा द्रव्य है, वह विशेषमें आता नहीं। आहाहा...! द्रव्य वह विशेषको स्पर्शता नहीं। पंडितजी ! ऐसा मार्ग है। प्रभु ! आहाहा...! आज तो हिन्दीमें चल रहा है। आहाहा...! उस व्यक्तको द्रव्य स्पर्शता नहीं, छूता नहीं। पर्याय पर्यायमें रहती है, द्रव्य द्रव्यमें रहता है और पर्याय द्रव्यको स्पर्शती नहीं। बीसवाँ बोल है और यह उन्नीसवाँ बोल है। अर्थावबोधरूप विशेष पर्याय द्रव्यको आलिंगन-स्पर्श करती नहीं। आहाहा...! देखो ! वीतरागका तत्त्व दर्शन, देखो ! आहाहा...! मोक्षमार्गकी पर्याय व्यक्त है वह अव्यक्त नाम द्रव्यको स्पर्शती नहीं। आहाहा...!

श्रोता :— आश्रय लेती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— आश्रय लेती ही नहीं। आश्रयका मतलब कि वह पर्याय द्रव्य

सन्मुख हुई उसे आश्रय लिया ऐसा कहनेमें आता है। पर्याय द्रव्यको स्पर्शती ही नहीं तो आश्रय कैसा ? आहाहा...! देखो ! यह तत्त्वज्ञानकी लहर....!

मोक्षमार्गकी आनंदकी अनुभव दशा, क्षायिक समकित, क्षायिक यथाख्यात पर्याय द्रव्यको स्पर्शती नहीं और वह पर्यायमें आता नहीं। द्रव्य उसे छूता नहीं, द्रव्य उसमें आता नहीं। पर्याय छूती नहीं, पर्याय द्रव्यमें जाती नहीं। आहाहा...! जाती नहीं कहा न ? समझमें आया ? यहाँ वह व्याख्या है। **'व्यवहारनयकर और मुक्ति भी व्यवहारनयकर है।''** बंध और मुक्ति व्यवहारनयकर है। पर्याय है न ? पर्याय वह व्यवहार है। आहाहा...!

'शुद्ध निश्चयनयकर न बंध है, न मोक्ष है...' है ? आहाहा...! शुद्धनिश्चय तो त्रिकाली वस्तु, द्रव्य वस्तु है। उसमें न तो बंध है और न ही मोक्ष है। आहाहा...! **'अशुद्धनयकर बंध है,' 'इसलिए बंधके नाशका यत्न भी अवश्य करना चाहिये।'** बंधके नाशका प्रयत्न व्यवहारनयके विषयमें आता है, होता है। शिष्यने ऐसा प्रश्न किया था कि निश्चयनयसे बंध और मोक्ष आत्मामें नहीं है, तो मोक्षका प्रयत्न करना व्यर्थ है, तो कहते हैं कि सुन तो सही, प्रभु ! बंध भी पर्यायमें है और मोक्ष भी पर्यायमें है। व्यवहारनयका विषय है। बंधका नाश करनेमें व्यवहारनयका विषय निश्चय मोक्षमार्ग आता है। समझमें आया ?

'परमार्थ वचनिका'में कहा है, नहीं ? 'बनारसीदास' 'परमार्थ वचनिका' है न ! मोक्षमार्ग प्रकाशकमें पीछे लिया है, अपनने लिया है। हिन्दीमें आया है ? हिन्दीमें ? 'मोक्षमार्गप्रकाशक'के पीछे तीन विषय लिये हैं–'रहस्यपूर्ण चिट्ठी', 'परमार्थ वचनिका' और 'उपादान-निमित्त' पीछे तीन विषय लिये हैं। उसमें भी ऐसा लिया है, द्रव्य है वह निष्क्रिय निश्चय है। मोक्षमार्ग-निश्चय साधना वह व्यवहार है। आहाहा...! समझमें आया ? क्षायिक समकित व्यवहारनयका विषय है, केवलज्ञान व्यवहारनयका विषय है। पर्याय है न ? यथाख्यात चारित्र व्यवहारनयका विषय है, मोक्ष व्यवहारनयका विषय है। पर्याय अरे ! मूल तत्त्वकी खबर नहीं बाहरसे ऐसा करो और वैसा करो।

यहाँ तो द्रव्य पर्यायको करता नहीं, पर्याय रागको करती नहीं, राग परद्रव्यकी पर्यायको करता नहीं। विकल्प है वह परकी पर्यायको, जड़की कोई पर्याय करता नहीं और निर्मल पर्यायको करता नहीं। आहाहा...! समझमें आये ऐसी बात है। लोजीकसे–न्यायसे तो कहनेमें आता है। यह वीतरागका मार्ग तो न्यायसे है। समझमें आया ?

'अशुद्धनयकर बंध है, इसलिए बंधके नाशका यत्न भी अवश्य करना चाहिये।'

बंधके नाशका मतलब मोक्षमार्ग। मोक्षमार्ग व्यवहार है। बंध भी असद्भुत व्यवहार है, यह (मोक्षमार्ग) सद्भूत व्यवहार है। आहाहा...! आहाहा...! लेकिन वो दोनों है तो अशुद्धनयका विषय।

श्रोता :— कभी तो आप शुद्धनयका विषय कहते हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह किस अपेक्षासे ? वह तो शुद्धताकी अपेक्षासे, लेकिन है तो अशुद्धनयका विषय। व्यवहारनयका कहो, पर्यायनयका कहो या अशुद्धका कहो। त्रिकाल है वह शुद्धनयका विषय है। आहाहा...! समझमें आया ? 'प्रवचनसार'में ऐसा लिया है। ४७ नय है न ! आखिरीमें ४७ नय है न ! आत्मद्रव्य अशुद्धनयसे घर और रामपात्रकी विशेष मिट्टी पात्रके जैसे सोपाधिक स्वभाववाला है। आहाहा...! आत्मद्रव्य शुद्धनयकर केवल मिट्टीमात्रके निरुपाधिक स्वभाववाला है। आहाहा...! आत्मद्रव्य सिर्फ त्रिकाली शुद्धनयकर मिट्टीपात्रके जैसे.... मिट्टीके पात्र सहित मिट्टीको देखना वह तो व्यवहारनय हो गया, अशुद्धनय हो गया। वैसे ही भगवान आत्माको निर्मल पर्याय सहित लक्षमें लेना वह तो व्यवहारनयका– अशुद्धनयका विषय है। आहाहा...! 'प्रवचनसार'में है, भाई ! ऐसी बात है।

यहाँ तो आत्मद्रव्य त्रिकाली और मोक्ष और मोक्षकी पर्याय ! वह त्रिकाली वह तो शुद्धनय या सम्यग्दर्शनका विषय है और मोक्ष तथा मोक्षका मार्ग वह व्यवहारनयका विषय जाननेलायक है। आहाहा...! वह मोक्षका मार्ग और मोक्ष वह आदर करने लायक नहीं।

श्रोता :— प्रगट करने योग्य है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— प्रगट करने योग्य है वह दूसरी बात है। वह तो पुरुषार्थसे अशुद्धनयकर-व्यवहारनयकर प्रगट होता है। मोक्ष प्रगट करनेयोग्य है ऐसा तो यहाँ 'मोक्षमार्गप्रकाशक'में कहा न ! मोक्ष है वह परम हितकर है, संवर है वह उपादेय है, निर्जरा है वह हितकर है, आश्रव हे वह अहितकर है। आहाहा...! वह तो ज्ञान कराया है।

यहाँ तो कहते हैं कि संवरको उपादेय कहा वह भी प्रगट करनेकी अपेक्षासे कहा है, नहीं तो त्रिकाली ध्रुव है वह उपादेय है। पंडितजी ! ऐसी बात है। आहाहा...! समझमें आया ? आत्मद्रव्य अशुद्धनय घट और रामपात्रकी मिट्टीके पात्र जैसे....घट और रामपात्रकी पर्यायकी विशेषता सहित मिट्टी वह अशुद्धनयका विषय है, वैसे भगवान आत्मा, उसकी निर्मल पर्याय सहित उसको देखना वह व्यवहारनयका विषय है, अशुद्धनयका विषय है। आहाहा...! भगवान आत्मा त्रिकाली जो पर्यायसे रहित वस्तु द्रव्य है वह उपादेय है, वह यहाँ कहेंगे। देखो ! आहाहा...!

'इसलिए बंधके नाशका यत्न भी अवश्य करना चाहिये। यहाँ यह अभिप्राय है...' देखो ! **'यहाँ यह अभिप्राय है कि सिद्ध समान यह अपना....'** सिद्ध समान मतलब पर्याय नहीं, त्रिकाली। समझमें आया ? **'सिद्ध समान यह शुद्धात्मा वीतराग निर्विकल्प समाधिमें लीन पुरुषोंको उपादेय है...'** आहाहा...! कहते हैं कि ऐसा भगवान पूर्णानंद स्वरूप ध्रुव किसको उपादेय है ?–कि जिसने शुद्धात्मानुभूतिमें द्रव्यको लक्षमें लिया है उसको उपादेय है। क्या कहा ? समझमें आया ?

शुद्ध अनुभूतिवालेको यह आत्मा उपादेय है। ऐसे ही उपादेय मानना वह तो धारणाका विषय हो गया। आहाहा...! समझमें आया ? त्रिकाली भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु जो कि शुद्धनयका विषय है, उसको उपादेय कब कहा जायेगा ? आहाहा...! उसके सन्मुखकी शुद्धात्मानुभूति होवे उस कालमें वह आत्मा उपादेय है। समझमें आया ? सम्यग्दृष्टिको ही वह उपादेय है। ऐसे ही उपादेय....उपादेय कहनेसे क्या होता है ! यह त्रिकाली उपादेय है ऐसा परिणमन हुआ उसे उपादेय है। आहाहा...! समझमें आया ? जिसको सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका अंश निर्मल अनुभूति हुई उस अनुभूतिके कालमें उपादेय है। उसका आश्रय लिया और वह निर्मल अनुभूति हुई तब उस अनुभूतिमें वह उपादेय है। ऐसी बात है, भगवन् ! आहाहा...! अरेरे...! ऐसी बातको लोग निश्चय कहकर उडा देते हैं। अरे प्रभु ! मार्ग तो यह है ! तेरे हितका पंथ तो यह है, भाई ! दूसरी रीतसे करने जायेगा, प्रभु ! तो हाथमें नहीं आयेगा। आहाहा...! संसारमें भटकना पड़ेगा, भाई ! जन्म-मरण करते करते बेहाल हो गया है। नरक-निगोदके भव करके....आहाहा...! एक श्वासमें निगोदके अठारह भव.... बापू ! कितना दुःख होगा, भाई ! आहाहा...! तेरे आनंदके नाथके विरहमें ऐसे दुःख तूने सहे हैं। आहाहा...! झगड़ा करे कि इस नयसे ऐसा कहा है और इस नयसे ऐसा कहा है। सब है, सुन न ! आहाहा...!

यहाँ तात्पर्य-अभिप्राय यह है कि **'सिद्ध समान यह अपना शुद्धात्मा'** त्रिकाली, हाँ ! **'वीतराग निर्विकल्प समाधिमें लीन...'** आहाहा...! रागरहित होकरके स्वभाव सन्मुखकी वीतराग निर्विकल्प शांति, समाधि यानि शांति। वीतराग निर्विकल्प आनंदकी शांतिके कालमें वह उपादेय है। आहाहा...! उसने आत्माका आदर किया। आहाहा...! शुद्धात्मानुभूतिके कालमें उसने आत्माको उपादेय माना। आहाहा...! **'लीन पुरुषोंको उपादेय है, अन्य सब हेय है।'** आहाहा...! पर्याय आदि सब हेय है। यह ६८ गाथा पूरी हुई, लो ! तीन दिनसे अपने चल रही है, यह नये महेमान आये है न ! आखिरी लाईनमें इतना भरा है, माल भरा

है। पार न आवे ऐसी बात है, भाई ! वह गणधर पूरा कर सके, संतो पूरा कर सके ऐसी बात है।

वस्तु-वस्तु है न ! तत्त्व है न ! अस्ति पदार्थ है न, भगवन् ! त्रिकाली, हाँ ! अस्ति पदार्थका स्वभाव अस्तिरूप अनंत है। आहाहा...! ऐसा अनंत स्वभाव संपन्न भगवान सिद्ध समान द्रव्य, हाँ ! उसके सन्मुख होकरके शुद्धात्माकी अनुभूतिके कालमें यह आत्मा उपादेय हुआ। आहाहा...! ऐसे शास्त्रसे ख्यालमें लिया कि यह उपादेय है, लेकिन वह उपादेय हुआ तो नहीं।

श्रोता :— शास्त्र सुनकरके भी 'यह उपादेय है' ऐसा नहीं हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— ज्ञानकी पर्यायमें ऐसा हुआ लेकिन श्रद्धाकी पर्यायमें, अनुभूतिकी पर्यायमें यह उपादेय है ऐसा कहाँ आया ? अनंत पुरुषार्थ है। आहाहा...! करना तो यही करना है, बाकी सब हेय है। आहाहा...! समझमें आया ?

'**समाधिरतो मुक्तजीवसदृशः**' देखो, ऐसा लिया है न ? '**मुक्तजीवसदृशः**' ऐसा लिया है। इसलिए सिद्ध समान लिया। '**स्वशुद्धात्मोपादेय इति भावार्थः**' लो यह सिद्ध समान लिया न ! वह '**मुक्तजीवसदृशः**'की व्याख्याकी। यह ६८ गाथा हुई, अब ६९।

'**आगे निश्चयनयकर जीवके जन्म, जरा, मरण, रोग, लिंग, वर्ण और संज्ञा नहीं है...**' आहाहा...! '**आत्मा इन सब विकारोंसे रहित है....**' आहाहा...! वह तो निर्मलानंद प्रभु त्रिकाल विज्ञानघन प्रभु वह इन सब विकारोंसे रहित है। '**ऐसा कहते हैं**' विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❀ उत्पाद-व्ययसे रहित ध्रुव आत्मा ही वास्तविक आत्मा है। एक समयका ध्रुव ही सच्चा आत्मा है, वास्तविक आत्मा है। एक समयकी शुद्ध पर्याय वह वास्तविक आत्मा नहीं है इसलिये अवास्तविक हुआ। अवास्तविक ही परद्रव्य हुआ; इससे परभाव कहा, हेय कहा। ७०. —द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर पर्यायदृष्टि विनश्वर

२७ श्री कलशटीका, श्लोक—६१-६२, प्रवचन नं. ७८, दि. २७-०८-१९७७

'कलशटीका' 'कर्ता-कर्म अधिकार'। ६१ कलश चल रहा है न ! भावार्थ है न ! **'जीवद्रव्य अशुद्ध चैतनारूप परिणमता है, शुद्ध चेतनारूप परिणमता है'** क्या कहते हैं ? चाहे तो जीव-आत्मा शुद्ध सिद्धरूप ऐसे मोक्षमार्गरूप परिणमे या चाहे अशुद्धरूपसे परिणमे, लेकिन परका कर्ता तो वह है ही नहीं। समझमें आया ? 'कर्ता-कर्म अधिकार' है न ! अपने परिणाम शुद्ध चैतन्य सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपसे हो... यहाँ सिद्धरूपसे हो ऐसा लिया है। अपनी पर्याय सिद्धपर्यायरूपसे परिणमित हो वह (द्रव्य) सिद्धपर्यायका कर्ता और सिद्धपर्याय कर्म है। यह कर्ता-कर्म हैं, यह भी उपचारसे है। आहाहा...! वैसे आत्मा कर्ता और शुद्ध परिणति कार्य यह उपचार-व्यवहार है। आहाहा...! परमार्थसे तो शुद्ध परिणति ही कर्ता और वही कर्म है। समझमें आया ?

अपना आत्मा अपने स्वभावके आश्रयसे शुद्ध चेतनारूप परिणमित होता है। क्रमबद्धकी बड़ी तकरार है न ! 'प्रियंकरजी' लाये हैं कि हम क्रमबद्ध कबूल करते हैं। बात तो उनकी सत्य है इतना तो कहा। बादमें हमें प्रियंकरजीको बुलाना है न ! प्रवचनके बाद। मुझे उस व्यक्तिका कोई काम नहीं। क्रमबद्धका यदि निर्णय हो जाय तो चारों अनुयोगका सार वीतरागता है। समझमें आया ? चारों अनुयोगका सार, पंचास्तिकायकी १७२वीं गाथा, चारों अनुयोगका सार वीतरागता है। वह वीतरागताकी प्राप्ति होना उसका अर्थ यह हुआ कि स्वद्रव्यका आश्रय करे तो वीतरागता प्राप्त हो जाये। क्रमबद्धके निर्णयमें भी स्वद्रव्यका आश्रय करना यह उसका निर्णय है। आहाहा...!

तीस साल पहले यहाँ प्रवचन होलमें विद्वत परिषद हुई थी तब 'लालबहादुर'ने कबूल किया था कि क्रमबद्ध है। उस समय तक 'जगनमोहनलालजी' मना करते थे। उनको व्यवहारकी बात थी न ! उनको 'लालबहादुर'ने कहा, क्रमबद्ध बराबर है और वो भी कहते हैं कि क्रमबद्धका निर्णय यदि हम करें तो सोनगढ़की बात सच हो जायगी और अपनी बात झूठी होगी। अरे भगवन् ! यहाँ तो सत्य क्या है वह बात है। किसीकी बात रहे और किसी की बात न रहे उसका क्या काम है, प्रभु !

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा जो शुद्ध परिणमन करता है... आहाहा...! उसका कर्ता

आत्मा है और शुद्ध परिणमन कार्य है। कर्मका अभाव हुआ वह शुद्ध परिणतिका कार्य है ऐसा नहीं है। कर्मका अभाव हुआ, कर्मका नाश हुआ तो यहाँ शुद्ध परिणति प्रगट हुई ऐसा नहीं है। शुद्ध परिणतिका कर्ता आत्मा और जो शुद्ध परिणमन-धर्मकी परिणति होती है वह उसका कार्य है, वह भी उपचारसे है। क्योंकि द्रव्य और पर्यायके बीचमें कर्ता-कर्म (सम्बन्ध) कहना वह उपचारसे है। आहाहा...!

शरीर, वाणी, परज्ञेयका कर्ता तो है ही नहीं। समझमें आया? वह तो अपने परिणम्यपरिणामकत्व शक्तिमें दोपहरको आ गया। परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति। उसका अर्थ यह है कि आत्मा परज्ञेयको जाननेके स्वभाववाला ग्रहण करनेवाला है। परद्रव्यमें चाहे तो अरिहंत हो और पंच परमेष्ठि हो या अनंत नीगोदके जीव हो, उसे अपने प्रमाणज्ञानमें ग्रहण करना स्वभाव है, जाननेका स्वभाव है। परद्रव्यके कर्ताका स्वभाव नहीं, परद्रव्यसे अपनेमें ज्ञान होता है उसका कर्ता परद्रव्य है ऐसा भी नहीं है। आहाहा...! अपना स्वभाव परज्ञेयको जाननेका है, वह प्रमाण है। परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति दोपहरको चल रही है न! तो परिणम्यका अर्थ प्रमाण और परिणामकत्व याने प्रमेय। अपना स्वभाव परज्ञेयको जाननेका-ग्रहण करनेका है और अपना स्वभाव परज्ञानमें (अपनेको) ग्रहण करानेका है। आहाहा...! समझमें आया?

ज्ञानी परमात्मा या श्रुतज्ञानी या मतिज्ञानीमें अपना आत्मा प्रमेय होकर उसके प्रमाणज्ञानमें जानने लायक है, परको प्रमेयरूपसे ग्रहण कराने योग्य है और परको ग्रहण करने योग्य है। आहाहा...! समझमें आया? उसमें तो शुद्ध परिणति भी अपना कार्य है और अपना आत्मा कर्ता है वह भी उसका व्यवहार हुआ। परका कर्ता तो नहीं, परसे अपनेमें केवलज्ञान हो या शुद्ध परिणति हो ऐसा भी नहीं है। आहाहा...!

क्रमबद्धके निर्णयका सार वीतरागता है। क्रमबद्ध कहनेमें वीतरागता कहना है। वह वीतरागता कब होती है? स्वद्रव्यके आश्रयसे होती है। जिनकी आज्ञा तो यह है, भूतार्थ आश्रित सम्यग्दर्शन होता है। (समयसार) ११वीं गाथा। '**भूदत्थ मस्सिदो खलु**' जो सत्यार्थ भगवान पूर्णानंद प्रभु है उसका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन होता है, उसका यह अर्थ हुआ। भगवानकी आज्ञा क्रमबद्धका निर्णय करानेकी है, उसमें वीतरागता दिखानी है और वह वीतरागता स्वद्रव्यके आश्रयसे प्रगट होती है। परद्रव्यके आश्रयसे प्रगट होती नहीं। परद्रव्य तो व्यवहार पराश्रित है। पराश्रितमें तो राग उत्पन्न होता है। आहाहा...!

निश्चय स्व आश्रित है, व्यवहार पराश्रित है। व्यवहार तो पंच परमेष्ठी हो या निगोदके

अनंत जीव हो, वह जो बताया है वह निगोदके जीवकी दया पालने योग्य है ऐसा कहनेके लिए नहीं बताया। आहाहा...! वह अनंत निगोदके जीव है उनको तेरे ज्ञानमें ग्रहण करनेका तेरा स्वभाव है यह बताना है। समझमें आया ? परकी दया पालनेके लिये बताया है ऐसा नहीं है। समझमें आया ? सिर्फ अपने ज्ञानमें–प्रमाण ज्ञानमें पर अनंत ज्ञेय परमेष्ठी आदि पदार्थका ज्ञान करनेका स्वभाव है। ग्रहण नाम ज्ञान करनेका स्वभाव है और अपना स्वभाव परके ज्ञानमें ग्रहण करानेका है अर्थात् प्रमाणरूप भी आत्मा है और प्रमेयरूप भी आत्मा है। यह एक शक्ति अपनी चल गई है।

यहाँ तो यह कहा कि शुद्ध परिणतिका कर्ता आत्मा नहीं है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा...! समझमें आया ? यहाँ तो सिद्ध किया है कि शुद्ध परिणतिरूपसे आत्मा परिणमे या अशुद्धरूपसे परिणमे लेकिन अपनी परिणतिका कर्ता है, परका कर्ता है ही नहीं, इतना सिद्ध करना है। आहाहा...! और अशुद्ध परिणतिरूपसे परिणमित होता है तो उतने प्रमाणमें सामने कर्मका बंध होता है। उतने ही प्रमाणमें जितना राग-द्वेष या अज्ञान हुआ है उतने ही प्रमाणसे सामने (कर्मबंध होता है)। फिर भी उस बंधकी पर्यायका कर्ता आत्मा नहीं है। आहाहा...! फिर शरीर या वाणी या देश या परकी क्रिया आत्मा कर सके ऐसा नहीं है। हाँ, परको ग्रहण करनेका–जाननेका स्वभाव है। परके कर्तापनेका या परसे अपनेमें कुछ हो ऐसा कोई स्वभाव नहीं है। आहाहा...! समझमें आया ?

यहाँपर भावार्थमें ऐसा कहा, **'जीव द्रव्य अशुद्ध चेतनारूपसे परिणमित होता है...'** विकाररूपसे परिणमित हो तो भी विकारका कर्ता और विकार उसका कर्म, वह भी पर्यायमें हैं। द्रव्य अशुद्धताका कर्ता और अशुद्धता द्रव्यका कार्य है ऐसा भी नहीं है। क्या कहा ? जो अशुद्ध परिणति है उसका कर्ता द्रव्य है और वह द्रव्यका कार्य है ऐसा नहीं है। क्यों ? द्रव्यमें कोई ऐसी शक्ति नहीं कि विकाररूपसे परिणमित होवे। अनंत शक्तियाँ हैं वह शद्ध हैं और शुद्धरूपसे परिणमित होना वह शक्तिका कार्य है। आहाहा...! समझमें आया ? सूक्ष्म बात है, भाई !

'अशुद्ध' परिणमन हो वह पर्यायमें षट्कारक रूप परिणमन है। यह बात तो वहाँ बीस साल पहले 'वर्णीजी'के साथ हुई थी। 'पंचास्तिकाय'की ६२वीं गाथा। अशुद्ध परिणमन, एक समयमें षट्कारकका परिणमन पर्यायमें पर्यायसे है, द्रव्य-गुणसे नहीं है, परसे तो है ही नहीं। समझमें आया ? यह कहते है। चाहे तो अशुद्ध परिणमन परिणमो या चाहे तो शुद्ध चेतनारूप परिणमो। आहाहा...! बहुत गम्भीर बात है। इतनी बात यहाँ करी है।

आत्मा परिणमित होता है यह भी व्यवहारसे है। द्रव्य परिणमता नहीं, पर्याय परिणमित होती है। समझमें आया ? 'नंदकिशोरजी' ! सूक्ष्म बात है, भगवन् ! आहाहा...!

अशुद्ध परिणति–पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, पर्याय करण–साधन भी वह, पर्याय संप्रदान, पर्याय अपादान, पर्याय अधिकरण। एक समयकी पर्यायमें षट्कारकका परिणमन होता है, जिसको (अपने) द्रव्य-गुणकी अपेक्षा तो नहीं, परकी भी अपेक्षा है नहीं। यह बड़ा झगड़ा है न ! भाई गये न ! 'सहारनपुर' वह कहते हैं कि कर्मसे विकार होता है, कर्मसे विकार होता है। आहाहा...! यहाँ मना करते है। अशुद्ध परिणति अपनेसे स्वयं होती है। समझमें आया ? परसे नहीं। अपने द्रव्यसे होती है वह भी व्यवहार है। अशुद्ध परिणति पर्यायमें षट्कारकसे परिणमित होती है यह वस्तुका स्वतंत्र स्वभाव है। समझमें आया ?

'शुद्ध चेतनारूपसे परिणमित होती है...' मोक्षमार्ग रूपसे परिणमित होती है वह ज्ञानचेतना है। यह अशुद्ध चेतना अशुद्धरूपसे परिणमित होना वह कर्म और कर्मफल चेतना है। समझमें आया ? और यह शुद्ध चेतनारूप परिणमित होना वह ज्ञान चेतना है। अर्थात् ज्ञान कहनेसे भगवान आत्मा शुद्ध शक्ति और शुद्ध द्रव्यका शुद्ध परिणमन होवे वह तो शक्ति शुद्ध है तो परिणमन भी शुद्ध है, ऐसा मानना भी अभी व्यवहार है। आहाहा...! शुद्ध परिणतिका पर्यायमें षट्कारकके कारणसे शुद्ध परिणति कर्ता, शुद्ध परिणति कार्य, शुद्ध परिणति करण, शुद्ध परिणति अपादान, शुद्ध परिणति संप्रदान, शुद्ध परिणति आधार। आहाहा...! एक पर्यायमें षट्कारकके शुद्ध परिणमनमें आत्मा कर्ता है। आत्मा भिन्न है। आहाहा...!

श्रोता :—

पूज्य गुरुदेवश्री :— यहाँ कहा लेकिन यहाँ व्यवहारसे कहा है, सिर्फ परसे भिन्न करनेके लिये कहा।

श्रोता :—

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह दोनों यथार्थ है। यह माननेका फल क्या ? अशुद्ध परिणति अपनेसे होती है, परसे नहीं उसका फल क्या ? तात्पर्य क्या ? अशुद्ध परिणति तेरेसे होती है ऐसा कथन आया तो वीतरागता तो ऐसा कहती है कि हमारे अनुयोगद्वारका सार तो वीतरागत है। फिर अशुद्ध परिणति तेरेसे हुई इसका क्या तात्पर्य ?– कि अशुद्ध परिणतिकी दृष्टि छोड़ दे। आहाहा...! और शुद्ध चैतन्य स्वरूपकी दृष्टि कर। वह अशुद्ध परिणतिका परिणमन तेरेसे है उसका तात्पर्य यह है। समझमें आया ? क्यों कि वह तो १७२वीं गाथामें

आ गया कि सर्व शास्त्रका तात्पर्य वीतरागता है। याहे तो करणानुयोग हो, चरणानुयोग हो, कथानुयोग हो या द्रव्यानुयोग हो उसका सार–तात्पर्य–रहस्य वीतरागता है। वह वीतरागता कैसे होवे ? क्या परलक्षसे होती है ? व्यवहार पराश्रितसे राग होता है। आहाहा...! वीतरागता स्वाश्रयसे होती है। फिर भी आश्रय लेती है ऐसा यहाँ नहीं लिना, सिर्फ स्वके उपर लक्ष्य जाता है। समझमें आया ? इस कारणसे उसे आश्रय कहा।

यह प्रश्न बहुत चला था। 'निहालचंदभाई सोगानी' 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' फिर वह प्रश्न बहुत चला था कि पर्यायको द्रव्यका आश्रय लेना यह तो पराधिनता हो गई। समझमें आया ? 'लालचंदभाई' ! मालूम है न ? वह प्रश्न चला था। उन्होंने यह छपवाया हैं न ! 'लालचंदभाई' और 'शशीभाई'ने उसमें यह चर्चा हुई थी। द्रव्यका आश्रय। पर्याय स्वतंत्र है वह आश्रय लेती है ? उसका अर्थ इतना है कि लक्ष पर तरफ है वह अंतरंगमें जाता है। समझमें आया ? पर्यायका लक्ष परके उपर है वह पर्याय तो वहाँ रही, वह पर्याय अंदरमें लक्ष नहीं कर सकेगी। जो पर्याय परलक्षी है वह अशुद्धता है वह वहीं रही। अब उसका तात्पर्य–अशुद्ध परिणमन करनेमें तू स्वतंत्र है–उसका तात्पर्य क्या ? कि बादकी पर्यायमें द्रव्यका आश्रय लेना और वीतरागता उत्पन्न करना यह उसका तात्पर्य है। आहाहा...!

श्रोता :— कल तो आपने समझाया था कि द्रव्य पर्यायको छूता ही नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह तो कहा था, अभी भी कहते हैं न ! कल अव्यक्तके छह बोल चले थे। ४९ गाथा। उसमें पाँचवें बोलमें तो ऐसा कहा कि व्यक्त-अव्यक्त, व्यक्त नाम पर्याय और अव्यक्त नाम द्रव्य, दोनोंका एक समयमें एक साथ मिश्रित ज्ञान होने पर भी व्यक्तको अव्यक्त स्पर्श नहीं करता। समझमें आया ? अब आपका रात्रिका प्रश्न था कि अलिंगग्रहणमेंसे कुछ कहना, तो उसके लिये यह है कि पर्याय द्रव्यको स्पर्श नहीं करती। वहाँ आया कि द्रव्य पर्यायको स्पर्श नहीं करता। छह बोलमेंसे पाँचवां बोल। भगवन् ! सूक्ष्म बात सरल भाषामें आ रही है। भाव भले ही गंभीर हो लेकिन भाषा संस्कृत या ऐसी कोई कठिन नहीं है। आहाहा...!

कहते हैं कि एक समयमें व्यक्त नाम पर्याय और अव्यक्त नाम द्रव्य, दोनों एक समयमें जाननेमें आते होने पर भी व्यक्तको अव्यक्त स्पर्श नहीं करता। द्रव्य पर्यायको स्पर्श नहीं करता। वह आया। वीतरागता स्वतंत्र हुई। अब अलिंगग्रहणका १८वाँ बोल। १८-१९-२०। अलिंगग्रहणके बीस बोलमेंसे १८वें बोलमें ऐसा आया कि गुण विशेषको ग्रहण नहीं करनेवाला अर्थावबोधरूप गुण, अर्थावबोधरूप गुण विशेषका आश्रय नहीं करनेवाला

ऐसा द्रव्य स्वभाव है, ऐसा द्रव्य है। समझमें आया ? क्या कहा ? गुणविशेषको–भेदको स्पर्श नहीं करनेवाला ऐसा द्रव्य है। आहाहा...! कल रातको शेठने पूछा था कि इसमेंसे थोड़ा कहना। समझमें आया ?

अर्थावबोधरूप गुणविशेष। सुनो, अर्थावबोध शब्द पडा है न, अवबोध, अर्थावबोध। अर्थ–पदार्थका, अवबोध–ज्ञान। अवबोध कहा तो वहाँ सिर्फ ज्ञान नहीं लेना, अर्थावबोध गुणविशेष ऐसा लेना, अर्थावबोध गुणविशेष। यहाँ पाठ तो इतना लिया है–अवबोध, लेकिन द्रव्यमें जितने गुण है वह गुणविशेष। अर्थावबोधरूप गुणविशेषको नहीं स्पर्शनेवाला ऐसा द्रव्य है। अरे ! वह द्रव्य ही ऐसा है कि गुणभेदको स्पर्श करता ही नहीं। समझमें आया ? उसे अलिंगग्रहण कहनेमें आता है। बीस बोलमेंसे १८वाँ बोल। आहाहा...! समझमें आया ? धीरे धीरे कहते हैं ताकि उसे विचार करनेका अवसर रहे।

अर्थावबोधरूप गुणविशेष जिसको स्पर्श नहीं करता ऐसा द्रव्य स्वभाव–द्रव्य है उसका अर्थ यह हुआ कि गुणी और गुणका भेद भी नहीं है। आहाहा...! गुणी द्रव्य और गुण शक्ति, ऐसी भेदकी दृष्टि भी नहीं है। आहाहा...! वह गुण गुणीको, गुणी गुणको ग्रहण करता है ऐसा नहीं है। गुणी तो द्रव्य स्वभाव है। भेदको—अर्थावबोधको ग्रहण नहीं करता। आहाहा...! समझमें आया ?

१९वाँ बोल : पर्यायविशेष, अर्थावबोधरूप पर्यायविशेषको नहीं स्पशनेवाला द्रव्य है। क्या कहा ? सूक्ष्म बात है। भाई ! 'प्रवचनसार' भगवानकी दिव्य वाणी। प्र–दिव्य वचन, दिव्यध्वनि। दिव्यध्वनि कहो, प्रवचन कहो। आहाहा...! उसका सार, दिव्यध्वनिका सार, प्रवचनसार, त्रिलोकनाथ परमात्माकी ॐ ध्वनिसार, आहाहा...! और वह ज्ञेय अधिकार है न ! १७२ गाथा ज्ञेय अधिकार है। ३०८ तक ज्ञेय अधिकार है। उस ज्ञेयका ऐसा स्वभाव यहाँ कहा है, वास्तविक आत्मज्ञेयका यह स्वभाव है। ज्ञेय अधिकार समकितका अधिकार है। पहला ज्ञान अधिकार ज्ञानका है, दूसरा ज्ञेय अधिकार समकितका है, तीसरा चरणानुयोग चारित्रकी क्रियाका अधिकार है। ज्ञेय अधिकारमें ज्ञेय ऐसा है। आहाहा...! समझमें आया ?

वह तो पहले ही कहा था कि 'ज्ञेय अधिकार'की १०२वीं गाथामें ऐसा लिया है कि ज्ञेय ऐसा है कि अपनी जन्मक्षण है। जो पर्यायका अपना काल है उस समयको उत्पन्न होती है, ऐसा ज्ञेयका स्वभाव है। क्या कहा ? ज्ञेय जो छह द्रव्य है... ज्ञेय जो छह द्रव्य उस ज्ञेयका ऐसा स्वभाव है कि जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है वह उसका

जन्मक्षण है, वह पर्यायका उत्पन्न होनेका काल है। समझमें आया ? एक बात हुई। वह ज्ञेयका स्वरूप है।

दूसरी बात, ९९वीं गाथा। अपने अपने अवसर पर पर्याय है, वह ज्ञेयका अधिकार–ज्ञेयका स्वभाव है। आहाहा...! 'भाई' ! सूक्ष्म बात आई है। कलसेठने प्रश्न किया था। कल अव्यक्तके छह बोल चले थे, आज थोड़ा अलिंगग्रहणका लिया था। आहाहा...! क्या कहा ? कि ज्ञेय छह द्रव्यका स्वभाव, अपनी पर्यायके स्वकालमें ही पर्याय होती है वह ज्ञेयका स्वभाव है।

दूसरा, ज्ञेयका स्वभाव, अपने अपने अवसर पर पर्याय होती है, आगे पीछे नहीं होती वह ज्ञेयका स्वभाव है। तीसरा, ज्ञेयका स्वभाव, उत्पाद उत्पादसे है, व्ययसे नहीं; उत्पाद ध्रुवसे नहीं, ध्रुव उत्पादसे नहीं ऐसा ज्ञेयका स्वभाव है। समझमें आया ? उसको समकित अधिकार कहा है। 'जयसेन आचार्य'ने 'प्रवचनसार'के दूसरे अधिकार–'ज्ञेय अधिकार'को समकितका अधिकार कहा है। पंडितजी ! आहाहा...! उसमें क्रमबद्ध आ गया। अपने अपने अवसर पर होता है, उसकी उत्पत्तिका जन्मक्षण है और उस समयका उत्पाद उत्पादसे है। जैसे त्रिकाली वस्तु त्रिकालरूप है वैसे वर्तमान पर्यायका काल एक समयका जिस समयका काल है उस समय वह उत्पन्न होता है। आहाहा...! सूक्ष्म है लेकिन वस्तु ऐसी ही गम्भीर है। 'अलिंगग्रहण'मेंसे द्रव्य और गुणकी बातकी।

यहाँ समकितके अधिकारमें यह लिया, अपने अपने अवसर पर होता है, जन्मक्षण है, उत्पाद उत्पादसे है, एक बात हुई। 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में काललब्धिमें ऐसा लिया है कि छहों द्रव्यकी काललब्धि हैं। अपनी अपनी पर्यायके कालमें वह पर्याय उत्पन्न होती है वह काललब्धि है। आहाहा...! समझमें आया ? यहाँ भी क्रमबद्ध हुआ, लेकिन उसका तात्पर्य क्या ? समझमें आया ? वह अलिंगग्रहणमें कहा कि अर्थावबोधरूप पर्यायविशेषको नहीं ग्रहण करनेवाला ऐसा द्रव्य है। पर्यायको स्पर्श नहीं करता, द्रव्य पर्यायको छूता नहीं। आहाहा...!

अब तीसरा बोल गंभीर है, पर्याय द्रव्यको छूती नहीं। यह बीसवाँ बोल है। समझमें आया ? क्या कहा ? प्रत्यभिज्ञान, प्रत्यभिज्ञानका कारण ऐसा जो ध्रुवद्रव्य उसको पर्याय स्पर्शती नहीं। यह सामान्य जो है वह पर्यायको स्पर्शता नहीं। आहाहा...! और पर्याय द्रव्यको स्पर्शती नहीं। आहाहा...! ऐसा सत् अहेतुक है। तीनों सत् हैं न ! उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों सत् है और 'ज्ञेय अधिकार'में उन तीनोंको स्वतंत्र सिद्ध किया है, तीनोंको स्वतंत्र सिद्ध किया

है और वह श्रद्धा-समकितका अधिकार है ऐसा कहा है। पंडितजी ! समकितका अधिकार कहा है।

वैसे तो समकितमें तो द्रव्यस्वभावका आश्रय हुआ वह समकित है, लेकिन यहाँ ज्ञान प्रधान अधिकार है न ! सर्वविशुद्धमें... पीछे ऐसा लिया कि ज्ञेय और ज्ञायककी श्रद्धा वह समकित दर्शन है, ऐसा लिया है। अकेले ज्ञायककी श्रद्धा ले वह तो दृष्टिकी अपेक्षासे कहा है, लेकिन जहाँ ज्ञानप्रधान सम्यग्दर्शनकी व्याख्या है (वहाँ ज्ञेय तथा ज्ञायककी श्रद्धा वह सम्यग्दर्शन है ऐसा कहते है)। आहाहा...! वहाँ सर्वविशुद्ध अधिकारमें लिया है। २४२वीं गाथा है, है यहाँ ?

'प्रवचनसार' २४२ गाथा है। ज्ञेयतत्त्व और ज्ञानतत्त्व यथाप्रकारे जैसी है वैसी यथार्थ प्रतीति जिसका लक्षण है वह सम्यग्दर्शन पर्याय है। ११वीं गाथामें ऐसा कहा है कि भूतार्थका आश्रय, सिर्फ स्व द्रव्य-भूतार्थके आश्रयसे सम्यग्दर्शन है यह दृष्टिप्रधान कथन है और ज्ञान प्रधान सम्यग्दर्शनके कथनमें... आहाहा...! ज्ञेय तत्त्व-जितना ज्ञेय है वह ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व अपना आत्मा, दोनोंकी यथाप्रकारे प्रतीति वह सम्यग्दर्शन पर्याय है, ऐसा लिया है। समझमें आया ? आहाहा...! ऐसा मार्ग देखो तो सही ! यह 'प्रवचनसार'में ज्ञान प्रधान कथन है और 'समयसार'में दृष्टिप्रधान कथन है। समझमें आया ? अतः 'समयसार'में ४७ शक्तियाँ लि हैं क्यों कि दृष्टिप्रधान कथनमें शक्ति और शक्तिवान आता है, पर्याय नहीं आती। समझमें आया ? और ज्ञान प्रधान कथनमें ज्ञेय और ज्ञायक दोनोंकी प्रतीति वह सम्यग्दर्शन पर्याय है। समझमें आया ? और तत्त्वार्थ श्रद्धानमें सम्यग्दर्शन कहा वह भी ज्ञानप्रधान सम्यग्दर्शन है, दो आये न ! संवर, निर्जरा सब उसमें आ गया; और यह दर्शनप्रधानमें सिर्फ '**भूदत्थम्**' सिर्फ भूतार्थ भगवान आत्मा त्रिकाल ! आहाहा...! उसका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा...!

यहाँ कहते हैं कि जो शुद्ध परिणमन हो या अशुद्ध परिणमन हो, यहाँ इतना सिद्ध करना है कि, वह अपना कार्य है, परका कार्य आत्मा कर सकता नहीं। कर्मबंधन होता है, जितने प्रमाणमें अज्ञान और राग-द्वेष करता है उतने प्रमाणमें वहाँ ज्ञानावरणीय, मोहनीय आदि कर्म बंधते हैं; फिर भी उस कर्मकी पर्यायका कर्ता द्रव्यकी पर्याय नहीं है। अशुद्ध परिणमन-द्रव्यकी पर्याय कर्मबंधकी पर्यायका कर्ता नहीं। आहाहा...! और शुद्ध परिणतिका कर्ता आत्मा और वह उसका कर्म इतना सिद्ध करके शुद्ध परिणतिमें कर्मका अभाव होता है उसकी अपेक्षा उसको नहीं ऐसा कहते हैं। समझमें आया ? जैसे विकारका परिणमन

अपने षट्कारकसे स्वतंत्र है ऐसे ही मोक्षमार्गकी पर्यायका भी स्वतंत्र षट्कारकसे परिणमन है। आहाहा...! कर्मने मार्ग दिया, दर्शनमोहका अभाव हुआ तो यहाँ सम्यग्दर्शन होता है ऐसी अपेक्षा वहाँ नहीं।

श्रोता :— 'तत्त्वार्थसूत्र'में है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— 'तत्त्वार्थसूत्र'में कहा कि वह तो ज्ञानप्रधान कथन है, वहाँ ऐसा कहा ही नहीं है। 'तत्त्वार्थसूत्र'में कहा कि चार घातिकर्मके नाशसे केवलज्ञान होता है, ऐसा है।

श्रोता :—

पूज्य गुरुदेवश्री :— उसका जन्म हो गया है, वह किस अपेक्षासे कहा है ? चार कर्म जो कर्मरूप अवस्था है उसका नाश होकरके यह अकर्मरूप अवस्था होती है। उसका नाश होकरके केवलज्ञान उत्पन्न होता है ?

यहाँ तो मिथ्यात्वका नाश होकर सम्यक्त्व उत्पन्न होता है इतनी अपेक्षा लो तो भी अभी तो व्यवहार है। कर्मका नाश होकर समकित हुआ ऐसा नहीं लेकिन मिथ्यात्वका नाश होकर सम्यग्दर्शन हुआ यह भी पर अपेक्षित कथन है। आहाहा...! सम्यग्दर्शनकी पर्याय मिथ्यात्वका नाश हुआ इसलिए हुई ऐसा नहीं है। जिसके व्ययकी उत्पादको अपेक्षा नहीं है। आहाहा...! समझमें आया ? किस नयसे कहाँ कौन सा तत्त्व है ऐसी नय लगानी चाहिये न ! एक ही पकड़ लेना ऐसा नहीं, लेकिन किस नयका कथन है (यह देखना चाहिये)।

यहाँ कहते हैं कि **'जीव द्रव्य अशुद्ध चेतनारूप परिणमन करता है...'** आहाहा...! **'शुद्ध चेतनारूप परिणमन करता है, इसलिए जिस काल जो चेतनारूप परिणमता है उसकाल वही चेतनाके साथ व्याप्य-व्यापकरूप है....'** इतनी भाषा है। शुद्धरूपसे परिणमे तो वह व्याप्य और आत्मा व्यापक है, परसे भिन्न इतना सिद्ध करना है। शुद्ध चैतन्यरूपसे परिणमे–सम्यग्दर्शनरूपसे परिणमे वह पर्याय व्याप्य और आत्मा व्यापक। व्याप्य-व्यापक होकर अशुद्धरूपसे परिणमन हो तो आत्मा व्यापक, आत्मा शब्दसे वहाँ पर्याय लेना, द्रव्य व्यापक होकर अशुद्धरूपसे परिणमता है ऐसा व्यवहारसे कथन है।

श्रोता :— द्रव्य व्यापक बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— द्रव्य व्यापक नहीं ऐसा कहते हैं, द्रव्य तो शुद्ध है, शक्ति शुद्ध है, वह शक्ति व्यापक होती है ? समझमें आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! मार्ग तो सूक्ष्म

है। आहाहा...! वह शुद्ध परिणमनका कर्ता (पर्याय स्वयं है)। षट्कारक जो है वह कारक पर्यायके हैं, कारक द्रव्यके नहीं; द्रव्यके कारक, गुणके कारक तो ध्रुव हैं। कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान शक्तियाँ तो द्रव्यकी है वह तो ध्रुव है, उसका परिणमन नहीं और यहाँ तो परिणमनकी बात लेनी है। ध्रुव सदृश है, वह परिणमनमें आता नहीं। आहाहा...! परिणमनमें तो पर्याय परिणमति है तो पर्यायका कर्ता पर्यायके षकारक आदि... विकारका हो या अविकारका परिणमन हो, वह पर्याय अपने षट्कारकसे स्वतंत्र परिणमती है। आहाहा...! भाई ! कभी दरकारकी ही नहीं, ऐसे ही ऐसे चलता रहा। भगवान तो संपत्ति बहुत दे कर गये है। आहाहा...! यह तो मोक्षका मार्ग, वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर (द्वारा निरूपित हुआ है)। आहाहा...!

श्रोता :— हमारा सौभाग्य है कि आप मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री :— ऐसी बात कहाँ है, प्रभु ! अरे ! समझमें आया ? अभी तो वीतरागका विरह है लेकिन शास्त्र वीतरागताकी प्राप्तिका निमित्त है।केवलज्ञानको शास्त्रने सिद्ध कर दिया है, जो समझे उसे। आहाहा...!

यहाँ कहते हैं कि **'चेतनाके साथ व्याप्य-व्यापकरूप है...'** इसमें विकारके साथ भी व्याप्य-व्यापक कहा, परसे भिन्न करना है न ! इतनी अपेक्षा है। और 'कर्ता-कर्म अधिकार'की ७५-७६ गाथामें ऐसा कहा है कि विकार व्याप्य है और कर्म व्यापक है क्योंकि वहाँ स्वभावकी सिद्धि करनी है। यहाँ तो उसकी परिणतिकी सिद्धि करनी है और ७५-७६ गाथामें तो ऐसा लिया कि भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य शक्ति और शुद्ध द्रव्यका व्याप्य शुद्ध होता है, व्यापक द्रव्य और शुद्ध पर्याय उसका व्यापक है। विकार है न ! विकार व्याप्य है और कर्म व्यापक है। आहाहा...! कहाँ यह कथन और कहाँ वह ! भाई ! कौनसी नयसे कथन है ? शास्त्रमें पाठ है कि नहीं ?

श्रोता :— खूंटेसे बांध दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री :— यह खिलेसे बांधा न ! जिस नयसे जो कथन हो वहाँ वैसा ही समझना वह उसका खूंटा है। कहो भाई !

श्रोता :— हमें उसकी क्या जरूरत है ? हमें तो सम्यग्दर्शनकी बात करो न !

पूज्य गुरुदेवश्री :— यह सम्यग्दर्शनकी ही बात चल रही है न, भगवन् ! आहाहा...! अशुद्ध परिणति भी तेरेसे है ऐसा कहनेमें स्वतंत्र परिणति होती है तो ऐसा

कहनेका तात्पर्य तो वीतरागता प्रगट करना वह है। वह अशुद्ध परिणतिका लक्ष छोड़कर शुद्ध चैतन्य द्रव्यका आश्रय करनेसे वीतरागता उत्पन्न होती है। सर्व शास्त्रका तात्पर्य स्वका आश्रय करना वह है।

श्रोता :— हमें वीतरागता नहीं, सम्यग्दर्शन चाहिये।

पूज्य गुरुदेवश्री :— सम्यग्दर्शन कहो या वीतरागता कहो। सराग वह सम्यग्दर्शन है ही नहीं, यह अभी बड़ी चर्चा चल रही है न ! सराग समकित है वह तो रागके दोषके साथ बताया है, समकित तो वीतराग ही होता है। एक अनंतानुबंधीका अभाव और मिथ्यात्वका अभाव हुआ वह वीतराग पर्याय है। आहाहा...! सम्यग्दर्शन तो वीतरागी ही है। पंचाध्यायीमें बहुत स्पष्टीकरण किया है। शिष्यने प्रश्न किया है कि सराग समकित है न ? नहीं, नहीं, सराग समकित है ही नहीं। 'पंचाध्यायी' 'राजमलजी', बिलकुल नहीं। सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय है, क्यों ?—कि 'जिन सो ही आत्मा, अन्य सो ही कर्म; यही वचनसे समझ ले जिन प्रवचनका मर्म।' जिन आत्मा जो वीतराग स्वरूप है उसका आश्रय करनेसे वीतरागता उत्पन्न होती है, वीतरागता कहो या सम्यग्दर्शन कहो। समझमें आया ? जघन्य आश्रय है तो दर्शन, ज्ञान आदि उत्पन्न होता है, विशेष आश्रय हो तो चारित्र उत्पन्न होता है, विशेष आश्रय हो तो केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

श्रोता :— फिरसे कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री :— ऐसा कहा कि भगवान पूर्णानंदका नाथ सच्चिदानंद प्रभु शुद्ध ध्रुव परमात्मस्वरूप जिनस्वरूप है, उसका थोड़ा आश्रय करनेसे–जघन्य आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-स्वरूपाचरण आदि होता है, विशेष आश्रय करनेसे चारित्र होता है और उससे भी उग्र आश्रय करनेसे केवलज्ञान होता है। बात तो यह है। समझमें आया ? 'प्रियंकरजी' ! यह प्रिय है और यह प्रिय करना है। भाई है न ! प्रिय नाम भगवान आत्मा शुद्ध चिदानंद, उसका आश्रय करना वह 'प्रियंकर' है। आहाहा ! यह तो रात्रिमें उनको थोड़ी बात कही थी, बादमें विचार आया कि सब सुने, भाई आये है न ! 'भाई' !... प्रवचनके बाद थोड़ा दस मिनिट बोलेंगे। टेप रेकोर्डिंगमें उतार लेना ! वह तो यहाँ दलाल होकर आये हैं न ! आहाहा...!

'जिस काल जो चेतनारूप परिणमता है उस काल वही चेतनाके साथ व्याप्य-व्यापकरूप है...' भाषा देखो ! यहाँ तो विकारी परिणाम, मिथ्यात्वके और राग-द्वेषके परिणाम होते हैं उसे व्याप्य कहा, अवस्था कही और आत्मा व्यापक–अवस्थायी कहा।

इतना यहाँ सिद्ध करना है; लेकिन जहाँ अंतरकी दृष्टि सिद्ध करनी है, स्वभाव (सिद्ध करना है).....। आहाहा...! स्वभावकी कोई शक्ति अनंत शक्तिमेंसे विकार करे ऐसी कोई शक्ति नहीं। दोपहरको यहाँ चलता है। अनंत शक्तिमेंसे ४७ शक्ति ही है। कोई शक्ति ऐसी नहीं कि विकार करे, शक्ति तो शुद्ध चिदानंद आत्मा है। आहाहा...! तो फिर शक्ति अशुद्धता करे ऐसी कोई शक्ति नहीं। लेकिन पर्यायके लक्षसे अशुद्धता उत्पन्न होती है, वह शक्ति और शक्तिवानके आश्रयसे नहीं। समझमें आया ? आहाहा...! 'थोड़ा लिखा बहुत करके समझना' आपके लग्नमें आता है न ! थोड़ा लिखा बहुत करके समझना। ऐसे यहाँ थोड़ा लिखा है बहुत करके समझना। आहाहा...!

यहाँ व्याप्य-व्यापक ऐसे कहा। शुद्ध चेतना भी व्याप्य और अशुद्ध चेतना भी व्याप्य, दोनोंमें व्यापक आत्मा है। दूसरी जगह ७५-७६-७७में ऐसा कहा, अब टीका आयेगी, कलश आयेगा, कि कर्ता कौन है ? आत्मा कर्ता नहीं तो कर्ता कौन है ?–कि वह १३ गुणस्थानका भाव विकार है वह कर्मका कर्ता है, आत्मा नहीं। इसमें जरा सूक्ष्म बात है। क्या कहते हैं ? कि नया कर्मका जो बंध होता है उसको वहाँ व्याप्य कहा और विकारी पर्यायको व्यापक कहा। वह १३ गुणस्थान, गुणस्थान आत्माके नहीं, गुणस्थान आत्मामें नहीं, आत्मा तो गुणस्थानसे रहित है। १३ गुणस्थान है वह नये कर्मके कर्ता है। वास्तवमें तो नये कर्मके परमाणु भिन्न है और यह १३ गुणस्थानकी पर्याय भिन्न है।

नये कर्मके आवरणका निमित्त जो १३ गुणस्थानकी विकारी पर्यायको व्यापक–कर्ता कहकर नये कर्मकी पर्यायको उसका कर्म है ऐसा कहा है। वैसे तो कर्म भिन्न है और यह वस्तु भिन्न है। समझमें आया ? थोड़ा सूक्ष्म है। लो, यह वकील जैसी बुद्धिवाले जीव भी ऐसा कहते हैं। इस तरहका अभ्यास नहीं है न, भगवन् ! परम सत्य तत्त्वज्ञानका अभ्यास होना चाहिये यह तो तत्त्वज्ञानकी बात है। समझमें आया ? यह तो कॉलेज है तो कहींसे थोड़ा भी जाननेमें आया हो तो उसको यह समझमें आये। कॉलेजका प्रोफेसर कोई पहेली कक्षाका थोड़ी ही बोलेगा ? समझमें आया ? यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर भगवान वह प्रोफेसर है, उनकी वाणी कहनेमें बीचमें आडतीया संत है। समझमें आया ? थोड़ा अभ्यास तो होना चाहिये न ! अरे ! दुनियामें एल.एल.बी. और एम.ए.के लिए....यह वकील एल.एल.बी. पढ़े हैं, उन्होंने दस साल नहीं निकाले होंगे ? अपने तो यह वकील देखो न ! वकीलने एल.एल.बी.के लिए कितने साल निकाले होंगे ? तब जाके वकीलात पास करते हे न ! भाई कहते हैं कि २२ साल तो वकीलात पढ़नेमें जाते हैं और यह समझनेमें एक

साल भी न जाय ! पापकी वकीलात और पापके अभ्यासमें २२ साल !

श्रोता :— न्यायकी कोर्टको मदद करने जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :— ऐसा कहते हैं कि वकील कोर्टमें मदद करने जाते हैं। धूल पैसेके लोभसे जाते है, आहाहा...! वह बड़े वकील थे, 'प्रियंकरजी' ! 'रामजीभाई' तीस साल पहले दो सो रूपये लेते थे, पांच घंटे कोर्टमें जाते थे, एक घंटा सलाह लेने आये तो १०० रूपये लेते थे, एक घंटा सलाह लेने आये तो....तीस सालसे छोड़ दिया है। इसमें क्या है ? हमारे यहाँ वढ़वाणमें एक वकील तो ऐसा कहते थे कि, ओहो ! 'रामजीभाई' ? 'रामजीभाई' तो उनके समयके एक ही वकील थे। ऐसी 'रामजीभाई'की प्रतिष्ठा थी। वकीलका नाम क्या कहा ? 'मंगळभाई'। 'मंगल वकील' प्रवचनमें आते है, वढ़वाण। 'रामजीभाई'का नाम आये वहाँ ऐसा हो जाय कि 'रामजीभाई' तो उनके समयमें वह एक ही वकील थे। आहाहा...!

'तो भी पुद्गल पिंडजरूप जो ज्ञानावरणादि कर्म है उसके साथ व्याप्य व्यापकरूप नहीं....' आहाहा...! अपनी शुद्ध या अशुद्ध पर्यायके साथ व्याप्य-व्यापक है। व्याप्य नाम अवस्था और व्यापक नाम द्रव्य, वह व्याप्य-व्यापक है। लेकिन कर्मका पुद्गल बंध है या आत्मा कर्म बांधता है ऐसा बिलकुल नहीं। आहाहा...! उस समय कर्मवर्गणाकी पर्याय कर्मरूपसे होनेकी योग्यतासे जन्मक्षण है इसलिए कर्म उत्पन्न होते हैं। उस परमाणुमें भी कर्म उत्पन्न होनेकी जन्मक्षण है। आहाहा...! यहाँ विकार किया तो वहाँ कर्मरूपसे परिणमना पड़ा ऐसा नहीं है। आहाहा...! **'इसलिए उसका कर्ता नहीं'**। **'अज्जसा' 'समस्त रूपसे ऐसा अर्थ है।'** ऐसा तो कहते हैं, परमार्थसे कहते हैं, यथार्थरूपसे कहते हैं, समस्तरूपसे कहते हैं कि परका तो कर्ता है ही नहीं।

अब यह अपने श्लोक चल रहा है न वह ...यह श्लोक क्लासमें चल रहा है। पहले हमेशा बोलते हैं न !

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥१७-६२॥

यहाँ परभाव शब्दसे विकार नहीं लेना, यहाँ परभाव शब्दसे परभव लेना। यह अपेक्षा यहाँ लेना है। **'आत्मा ज्ञानं' 'आत्मा अर्थात् चेतनद्रव्य चेतना मात्र परिणाम करता है'**। चेतनामात्र परिणाम, अपना चेतन। कर्मचेतना कहो, ज्ञानचेतना कहो वह सब चेतनके

परिणाम है। कर्मचेतना–रागादि कर्मचेतना और अरागी सम्यग्दर्शन आदि ज्ञानचेनता। वह चेतनामात्र परिणाम करता है, ऐसा लेना। चेतना अर्थात् सिर्फ ज्ञानपरिणाम ऐसा न लेना। चेतना अर्थात् रागके परिणाम और सम्यग्दर्शन-ज्ञानके परिणाम, इन दोनोंको चेतना मात्र परिणाम करते हैं।

'कैसा होनेसे ?' 'स्वयं ज्ञानं' 'क्योंकि आत्मा स्वयं चेतनापरिणाममात्र स्वरूप है'। 'ज्ञानादन्यत्करोति किम' 'चेतना परिणामसे भिन्न जो अचेतन पुद्गल परिणाम कर्म उसको करते हैं क्या ? अर्थात् नहीं करता....' फिर यह आपकी फर्श-आदिका कहाँ गया ? यह हमारे 'भाई' है न ! सत्तर लाखका बड़ा अस्पताल है। अब बेंच दिया। दवाई बनाते थे।

श्रोता :— एक ओर आप ऐसा कहते हो कि कुछ बनाते नहीं और दूसरी ओर ऐसा कहते हो कि दवाई बनाते हैं, हमें क्या समझना ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह मानते थे कि हम बनाते हैं। यहाँ तो कहते है कि कौन बनाये, प्रभु ! आहाहा...! वह दवाई हिलती है वह क्रिया क्या आत्मा कर सकता है ? आहाहा...!

यहाँ कहते हैं कि रोटीके दो टुकडे करते हैं वह क्या आत्मा कर सकता है ? आहाहा...! आत्मा अशुद्धरूपसे परिणमता है लेकिन रोटीके टुकड़े करे ऐसा आत्मामें है ही नहीं। दाल-चावल बनाये ऐसा कर सकता है या नहीं ? किसी स्त्रीके हाथ हलके होते हैं तो बहुत अच्छा बनाती है। पापड और वड़ी औरसेव.... लकड़ीकी पाट होती है न ! उस समय ऐसा लगता है कि हम उस पर बैठे हैं, अभिमानका पार नहीं ! 'भाई' ! खाट होती है न ! ऐसी बड़ी पाट रखते हैं, उस पर गेंहूकीसेव बनाते है। यह हाथकी क्रिया भी आत्मा कर सकता नहीं ऐसा कहते हैं। आहाहा...! अच्छी हुशियार बहिन हो तो पापड और वडी बहुत अच्छी बनाती है ऐसा लोग कहते हैं। पागल है, सुन तो सही ! हुशियार कहाँसे आई ? पूरी दुनिया पागल है ! पागलके गाँव भरे पड़े हैं। आहाहा...!

यहाँ कहते हैं, देखो ! **'चेतन परिणामसे भिन्न जो अचेचन पुद्गल परिणामरूप कर्म उसको करता है क्या ? अर्थात् नहीं करता, सर्वथा नहीं करता।'** देखो, कथंचित् नहीं लेकिन सर्वथा नहीं (ऐसा कहा है)। वीतरागका मार्ग तो कथंचित् है न ? वह तो नित्य-अनित्यमें कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है। परके लिए सर्वथा कर्ता नहीं। समझमें आया ?

'आत्मा परभावस्य कर्ता अयं व्यवहारिणां मोहः' 'चेतन द्रव्य ज्ञानावरण आदि कर्मको करता है ऐसा जानपना, ऐसा कहना....' 'व्यवहारिणां मोहः' 'मिथ्यादृष्टि जीवोंका अज्ञान है।'

श्रोता :— व्यवहारीका अर्थ ही मिथ्यादृष्टि किया !

पूज्य गुरुदेवश्री :— मिथ्यादृष्टि किया, व्यवहारीका अर्थ मिथ्यादृष्टि किया। आहाहा...! मिथ्यादृष्टि परद्रव्यका कर्ता होता है। मैं अपने बेटेको शिक्षा दे सकता हूँ, बड़ा कर सकता हूँ। माता-पिता बालकको बड़ा करते हैं न ! कौन करता है ? आहाहा...! सारी भ्रमणा है। आहाहा...! परद्रव्यकी पर्याय पर करे ऐसा तीन कालमें बनता नहीं। आहाहा...!

श्रोता : वह झूठी बातको सत्य मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— लोगोंमें यह झूठी बात घुस गई है। झूठा भूत घुस गया है। जहाँ हो वहाँ मैंने किया, मैंने किया, मैंने किया....बीज बराबर बोता है, गरासिया ठीकसे अनाज बोता है न ! ऐसे बाजरा.... क्या कहते हैं ? जुवार, गेहुं और तिल....ओहोहो...! बेटेने पानी ठीकसे डाला था इसलिए ऐसा हुआ, बहुत अच्छा हुआ। बिलकुल ऐसा नहीं, सुन तो सही ! दरबार ! यह तो वस्तु है। आहाहा...!

'मिथ्यादृष्टि जीवोंका अज्ञान है।' आहाहा...! **'भावार्थ यह है कि कहनेमें ऐसा आता है कि ज्ञानावरणादि कर्मका कर्ता जीव है, वह कहना भी झूठ है।'** आहाहा...! आत्माने कर्म बाँधे और आत्माने कर्म भोगे यह कथनमात्र है। वह सब व्यवहार निमित्तमात्र है। पंडितजीने बहुत लिया है कि 'तत्त्वार्थसूत्र'में ऐसा आया है कि चार कर्मका नाश हो तो केवलज्ञान होता है, चार कर्मका नाश हो तो यह पर्याय होती है ? आत्माकी पर्याय हो ? कर्मकी पर्यायका नाश हो तो अकर्मरूप पर्याय होती है न ! कर्मकी पर्यायका नाश हो तो व्यय हो और अकर्मरूपी पर्यायका उत्पाद हो, उससे केवलज्ञान होता है ? आहाहा...! 'फूलचंदजी'ने 'जैनतत्त्व मिमांसा'में लिखा है। 'फूलचंदजी' पंडित बहुत हुशियार थे। अब उनसे भी विशेष यह 'हुकमचंदजी' हुये हैं। कहो, समझमें आया ? आहाहा...! कहनेमें तो आता है कि ज्ञानावरणादि (कर्मका कर्ता जीव है), सब झूठ है। आहाहा...! कर्ता नहीं, कर्ता नहीं ऐसा कहते हो तो कर्मका कर्ता कौन है ? वह विशेष कहेंगे.....

(श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव !)

२८ श्री प्रवचनसार, गाथा—३७, प्रवचन नं. ३५, दि. १०-०१-१९७९

'प्रवचनसार', गाथा-३७। यहाँ १ अंक तक पहले आ गया है। क्या कहा है इसमें ? कि, आत्मा है सो सर्वज्ञस्वरूपी है। प्रत्येक आत्मा...! यानि कि शक्तिसे केवलज्ञानस्वरूपी ही है। उस (शक्ति)की जब प्रगटता–केवलज्ञान होता है; सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रके साधन द्वारा एक समयमें तीनकाल, तीनलोकको जाने वैसा केवलज्ञान होता (है), (तब) यह केवलज्ञान तीनकाल, तीनलोकके द्रव्य, गुण, पर्यायको जानता है। वर्तमान वर्तती पर्यायको तो जानता है परंतु भूतकाल-बीते कालकी जो पर्यायें नष्ट हो गई हैं उन्हें भी वर्तमानवत् जानता है !! आहाहा...! और भविष्यमें (होनेवाली) जो अनंत पर्याय होंगी, अभी तक नहीं हुई, उन्हें भी वर्तमानवत् जानता है !! आहाहा...! ऐसा चैतन्यका चमत्कारिक स्वभाव है !! आहा...!

वैसा केवलज्ञान जगतमें है और तीनकाल, तीनलोककी पर्यायें जानता है। तो उसका अर्थ ऐसा हुआ कि, वीतरागने जिस समयपर जो पर्याय, जिसकी (होनेवाली) देखी है, सो होगी। उसमें वीतराग(को) भी अपनी (जो) पर्याय जिस समय होगी सो होती है, उसे (स्वयं वीतराग) भी बदल सकते नहीं। तो दूसरोंकी पर्याय दूसरा बदल तो सकता नहीं परंतु वह दूसरा भी अपनी पर्यायको आगे-पीछे कर सके (या) फेरफार (कर सके) वैसा होता नहीं। अरे...! ऐसी बात। सूक्ष्म मार्ग है।

भगवानने जो देखा–'जे जे देखी वीतराग ने, ते ते होसी वीरा, अनहोनी कबहु न होसी, काहे होत अधीरा ?' ऐसी जिनकी दृष्टि होती है, उसकी दृष्टिका विषय सर्वज्ञप्रभु है। उस सर्वज्ञको (अर्थात्) अपने स्वभावको वह जानता और मानता है। आहाहा...! और सर्वज्ञरूपी प्रभु यानी कि ज्ञानस्वरूपी-पूर्ण ज्ञानस्वरूप को जो जानते हैं और स्वसन्मुख होकर उसकी प्रतीति करता है और स्वरूपमें रमणता करता है उसे केवलज्ञान होता है, आहाहा...! किसी क्रियाकांडके द्वारा केवलज्ञान होता है वैसा नहीं। क्योंकि उसका जाननेका स्वभाव है कि जिसके द्वारा केवलज्ञान तीनकाल, तीनलोककी पर्यायको जानता है।

वैसे नीचे श्रुतज्ञानी भी परोक्ष रीतिसे तीनकाल, तीनलोकके द्रव्य, गुण, पर्यायको जानते हैं। और जानते हुये उनकी दृष्टि स्वरूप पर होती है। धर्मीकी दृष्टि पर्यायको जानती

है, परंतु दृष्टि उसपर होती नहीं। अरे...! ऐसी बातें हैं। त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप है उसपर उसकी दृष्टि होती है इसलिए उसे सम्यग्दर्शनमें श्रद्धा है कि जिस समय जड़की जिस चेतनकी जो पर्याय होती है सो होती है, ऐसी मान्यताके कारण वह परका भी बदलाव कर सकता नहीं; परका तो कर सकते नहीं परंतु अपनी पर्यायमें बदलाव कर सकता नहीं, आहाहा...!

श्रोता :—कर्ममें तो बदलाव होता है कि नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—कर्ममें भी कोई बदलाव (हो सकता नहीं)। क्रमबद्धपर्यायमें जो होनेवाली है सो होती है।

श्रोता :—उदीरणा क्यों कही जाती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—उदीरणा तो नाममात्र कहलाता है। वैसे उस समयमें उदीरणा होने लायक है (अतः होती है)। ऐसा पाठ शास्त्रमें है। उदीरणा जिसकी होनेलायक है उसकी उदीरणा होती है। ऐसी बात है।

श्रोता :—जल्द उदय आ गया ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—नहीं...नहीं...उदीरणाका वह समय है। उस समय उस कर्मकी उदीरणाकी पर्याय होनेका अपना स्वकाल है। ऐसी बात है। सूक्ष्म बहुत...! समझमें आया ? वह प्रश्न हमारे संप्रदायमें भी बहुत चर्चित हुआ है कि, इस कर्मको तो बदल सके न ? परंतु कर्मके परमाणुमें भी जिस समयमें जो पर्याय कर्मकी होनेवाली है उसी समय होती है और जिस समय जानेवाली है उसी समय जाती है। आत्माने पुरुषार्थ किया इसलिए यह वहाँ जाती है (है, ऐसा नहीं है)। उसके पर्यायमें कर्मरूप नहीं होनेकी पर्यायकी लायकातकी थी इसलिए अकर्मरूप हुई है। कठिन काम बहुत !

जीवमें ही क्रमबद्ध है और जड़में नहीं, ऐसा नहीं है। प्रत्येक परमाणुमें भी जिस समयपर जो पर्यायकी उत्पत्तिका जन्मक्षण है, उसी समय वह पर्याय उत्पन्न होती है। आत्माके कारण नहीं और जिस समय पर पर्यायका व्यय होनेवाला है उसी समय होता है, वह आत्माके कारण नहीं। आहाहा...! वीतरागमार्ग सूक्ष्म बहुत, बापू !

यहाँपर तो यह सिद्ध करना है कि '**(तीनोंकालकी पर्यायोंका वर्तमान पर्यायोंकी भांति...)**' है १ अंकके ऊपर ? '**तीनोंकालके पर्यायोंका**'–पर्याय अर्थात् अवस्था। आहाहा...!

अभी यह बड़ा विवाद (चल) रहा है न ! पर्यायको आगे-पीछे बदल सकते हैं।

उसने पदार्थकी व्यवस्था जानी नहीं (और) केवलज्ञानमें जो जाना सो होता है, उसकी उसे श्रद्धा नहीं। आहाहा...! कठिन बात है।

'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में आता है न, भाई ! **'कालादि लब्धि देखते...'** (अर्थात्) जिस समय वह पर्यायकी काल प्राप्ति है उसी समयपर (वह पर्याय) होगी। जड़ में या चैतन्य में या छः द्रव्योंमें (सबमें यह सिद्धांत लागू होता है)। आहाहा...! कठिन काम, भाई ! अभी तो विपरीतता बहुत हो चुकी है।

उसकी दृष्टि ज्ञायक स्वरूप (ऊपर) है। और भगवान जिस प्रकार जानते हैं वैसे मैं भी एक जाननेवाला हूँ। भले ही अल्पज्ञान में (वैसे जानता है), परंतु जाननेवाला त्रिकाल है न ! उस त्रिकाली जाननेवालेपर जिसकी दृष्टि है, उसे जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, उसका वह जाननेवाला रहेगा। आहाहा...! सूक्ष्म बहुत...!

वास्तवमें तो उसमें एक 'भाव' नामक गुण है। उस गुणके द्वारा उस समय पर्याय होती है। होनेवाली है सो (होती) है। अनंतगुण की (पर्याय) होगी। 'भाव' (गुणके) कारण (होगी) किन्तु 'भाव'का रूप सब गुणोंमें है न ! तो ज्ञानमें भी जिस समयकी जो पर्याय होनेवाली है, वैसा ज्ञानगुणमें भावगुणका रूप है। आहाहा...! कठिन काम बहुत, बापू ! वीतरागमार्ग (बहुत सूक्ष्म)। बनियेको फुरसत मिले नहीं और दो घड़ी सुनने जाय और जो कहे, उसमें हाँ (भर दे)....! आहाहा...!

सर्वज्ञ परमेश्वर एक समयमें तीनकालकी पर्यायको जानते हैं। आहाहा...! बीत चुकी है, है और होनेवाली। यह कहा न (यहाँपर) ? **'(तीनों कालकी पर्यायोंका...)'** पर्याय अर्थात् अवस्था। **'(...वर्तमान पर्यायोंकी भांति...)'** आहाहा...! वर्तमान अवस्था वर्त रही है उसकी भांति। तीनोंकालकी पर्याय उसकी (वर्तमान पर्यायकी) भांति **'(...ज्ञानमें ज्ञात होना) अयुक्त नहीं है;...'** आहाहा...!

जिस समयपर जो पर्याय जिसकी जो होनेवाली है सो सो द्रव्यकी होती है। और सो सो भगवानने देखा है, इसलिए ऐसी होगी वैसा भी नहीं। वहाँ होनेका काल है इसलिए वहाँ होती है, आहाहा...!

(यहाँपर) यह कहते हैं, **'(तीनोंकालकी पर्यायोंका वर्तमान पर्यायोंकी भाँति ज्ञानमें ज्ञात होना) अयुक्त नहीं है...'** यहाँ तक आया था। **'क्योंकि'**–अब न्याय देते हैं।

(१) **'उसका दृष्टिके साथ (जगतमें जो दिखाई देता है}अनुभवमें आता है उसके साथ) अविरोध है।'** (अर्थात् उसके साथ) बाधा नहीं आती। क्या ? **'(जगतमें) दिखाई**

देता है कि छद्मस्थ के भी, जैसे वर्तमान वस्तुका चिंतवन करते हुये ज्ञान उसके आकारका अवलंबन करता है उसी प्रकार...' आहाहा...! कल आटेका दृष्टांत दिया था न ?

आटा जो है, उसमेंसे इस तरह कटाई होती है, यह काटनेकी क्रिया तो उस समय होनेवाली थी, अंगुलीके द्वारा हुई नहीं। और उस समय आटेकी रोटी बनेगी, वह इसप्रकार होगी ऐसा ज्ञान तो उसी समय हो जाता है। वर्तमान आटेका लोया...'लोया' कहते हैं न ! क्या कहें उसे ? पिंड...! उसकी पर्यायका ज्ञान, भूत(काल)में गेहूँ स्वरूप थे, आटा हुआ और उस आटेका (पिंड) हुआ है। उस गेहूँके पर्यायका ज्ञान, आटेका ज्ञान और आगे रोटी बनेगी–इसे भी वर्तमानमें जानते है , आहाहा...! ऐसी बात...धर्मके नाम पर... ! बापू ! वीतरागधर्म बहुत सूक्ष्म है। लोगोंनें (जो) जैनधर्म माना है उससे विरुद्ध-न्यारा (है) आहाहा...!

जिस समय जो पर्याय होती है सो वस्तुका स्वभाव है। आगे ९९ (गाथामें) 'हार'का दृष्टांत आयेगा। हार है न हार ? उसमें जिस जगह मोती है उसी जगहमें (वह) है। आगे-पीछे स्थानमें नहीं। वैसे आत्मारूपी हार और परमाणुरूपी हार, उनकी जिस समयपर जो पर्याय होती है, उसी समयपर वह होगी। (हारमें मोतीका) क्षेत्र है (यहाँ पर आत्मा और परमाणुमें) काल (लेना) है। तत्त्वका स्वरूप ही ऐसा है। अब उसके स्वरूपकी जानकारी न हो और उसे धर्म हो जाय...(ऐसा कभी होता नहीं)। सम्यक्ज्ञान भी न हो, सम्यग्दर्शन न हो और उसे चारित्र-सामायिक और पौषध और प्रतिक्रमण और साधुपना हो जाय...!! (वैसा) तीनकालमें होता नहीं। आहाहा...!

(यहाँपर कहते हैं) **'(जगतमें) दिखाई देता है कि छद्मस्थ के भी...'** (अर्थात्) अल्पज्ञानीको भी, **'...जैसे वर्तमान वस्तुका चिंतवन करते हुये...'** आहाहा...! (दृष्टांतमें) यह गेहूँ लीजिये, इसप्रकार गेहूँ (हैं)। गेहूँ कहलाते हैं न ? पहले उसकी पर्याय धूलकी थी, अब गेहूँकी हुई और उन गेहूँका इसप्रकार आटा बनेगा। उसकी पर्याय ख्यालमें (आ जाती है)। (इसप्रकार) गेहूँका ख्याल आते ही भूत-वर्तमान-भविष्यका क्या ख्याल नहीं आता ? समझमें आया ? आहाहा...!

मान लीजिये, यह हाथ है ! उसकी यह वर्तमान पर्याय है। पहली पर्याय ऐसी थी और आगे इसप्रकार हुई तो यह पहली पर्यायका ज्ञान है, वर्तमानका ज्ञान है और आगेकी पर्याय भी इसप्रकार होगी–उसप्रकार होगी उनका भी उसे एक समयमें ज्ञान है। आत्मा करेगा सो होगा, यह प्रश्न नहीं। सूक्ष्म बहुत ऐसा।

वीतराग परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्माने जो देखा है, आहाहा...! वह तीनोंकालकी पर्यायें वर्तमानवत् देखी है, (ऐसा) कहते हैं। वर्तमानमें पर्याय अभूतार्थ है तथापि केवलज्ञान तो भूतार्थरूप जानता है। समझमें आया ? ऐसी धर्मकी बातें ! संसारकी पढ़ाईमें एम.ए. जैसे में रुकना (पढ़ना) हो जो पाँच-दस वर्ष निकालते हैं, वीतराग कहते हैं यह तत्त्व क्या है उसे समझनेके लिए समय नहीं !! आहाहा...!

यहाँ पर कहते हैं कि '**(जगतमें) दिखाई देता है कि छद्मस्थके भी, जैसे वर्तमान वस्तुका चिंतवन करते हुये ज्ञान उसके आकारका अवलंबन करता है...**' जैसे एक शरीर है वह जीवरहित मुर्दा हुआ। तो पहले जीव भीतर था तो इसप्रकार हिलती अवस्था थी, अभी (मुर्दारूप) स्थिर अवस्था (है) और अभी इन परमाणुकी पर्याय राख होगी, (वैसा) ख्यालमें आता है कि नहीं ? आहाहा...! जगतके छद्मस्थ मनुष्य भी परपदार्थके चिंतवन करते समय उसके भूत और भविष्य-तीनोंका आकार उनके खयाल(में) आ जाता है। तो सर्वज्ञ परमात्माको तीनकाल, तीनलोकका खयाल आ जाये उसमें विशेषता है ? आहाहा...! कठिन काम है। है (अंदर) ?

'**...छद्मस्थके भी, जैसे वर्तमान वस्तुका चिंतवन करते हुये ज्ञान उसके आकारका अवलंबन करता है...**' अवलंबन (अर्थात्) ज्ञानमें वह निमित्तरूप ज्ञात हो, आहाहा...! '**...उसीप्रकार भूत और भविष्य वस्तुका चिंतवन करते हुये (भी) ज्ञान उसके आकारका अवलम्बन करता है।**' यानी कि उसके ज्ञानमें वह वस्तु ज्ञात होती है। आहाहा...!

दृष्टांत (लेंगे)। एक पेन्सिल है। पेन्सिल कहते हैं न ? अब यह (पेन्सिल) पहले अखंड थी, आगे इसप्रकार छुरी चली इसलिए अवस्था (ऐसी) हुई, अब पहले (जो पर्याय) थी उस पर्यायका भी खयाल है और यह वर्तमान हुई उसका खलाय है और वह टूट जायेगी-खंडित हो जायेगी तब इसप्रकार होगी, उसका भी खयाल है। अथवा (पेन्सिल द्वारा) इसप्रकार लिखाई होगी, उस लिखाईकी पर्यायका खयाल है। करेंगे तो लिखाई होगी ऐसा यहाँ नहीं (कहना)। आहाहा...! ऐसा है।

लौकी...! लौकी...! (होती है न)? लौकी ऐसी है यह खयालमें है। अब उसके टुकड़े होते हैं। होते हैं। होते हैं हाँ....! टुकड़े करता है (वैसा) नहीं। तो अखंड लौकीका खयाल है और टुकड़े हुये उसका खयाल है और यह अब आगे पकेगी तब नर्म हो जायेगी, उसका भी खयाल है। है कि नहीं ? आहाहा...!

छद्मस्थ भी जगतकी चीजका विकार करता होनेसे उनके भूत, वर्तमान और भविष्य

तीनोंकालका उसके ज्ञानमें खयाल आ जाता है। उसके वर्तमान, भूत और भविष्यको जानते हैं, आहाहा...! उसे मैं ऐसा करूँ, कलम इसप्रकार करूँ, पेन्सिल इसप्रकार करूँ–सो प्रश्न नहीं। यह कुछ भी आत्मा कर सकता नहीं, आहाहा...! ऐसा अब (कब समझेगा ?)...! भाई ! धर्म कैसे होता है हमें कहिये न ! परंतु वही यह बात है। तेरा ज्ञानस्वभाव धर्म ऐसा है कि एक समयमें तीनकालको जाने वैसा ताकातवाला तेरा स्वरूप है, आहाहा...! ऐसे सर्वज्ञस्वभावीकी दृष्टि कर और उसमें स्थित हो, उसका नाम धर्म है। ऐसी कठिन बातें।

(संप्रदायमें) तो कहते हैं, 'व्रत करो और उपवास करो और भक्ति करो या पूजा करो और यात्रा करो...। ये तो राग हैं और शरीर चले वह तो जड़की क्रिया है। 'गिरनार या शत्रुंजय'की यात्रामें जड़ शरीर चलता है सो तो जड़की क्रिया है और उस जड़की उस समय वह पर्याय होती है और यह पैर इसप्रकार होते हैं; यह खयालमें है। करता है नहीं (परंतु) खयालमें है। इसप्रकार होते बनते यह पैर ऐसे जायेंगे इसका भी खयाल है। आहाहा...! खयालमें है, हाँ...! आत्मा उसका कर्ता नहीं। यह तो अज्ञानी (ऐसा मानता है) कि, शरीरकी अवस्थाको मैं करता हूँ, पैरको उठाता हूँ और इसप्रकार रखता हूँ–उस परकी क्रियाका कर्ता मिथ्यादृष्टि है। उसे जैनधर्मकी खबर नहीं, आहाहा...! ऐसा काम है। पहला अंक (१) था (सो पूरा हुआ)।

'(२) **और ज्ञान चित्रपटके समान है। जैसे चित्रपटमें अतीत, अनागत और वर्तमान वस्तुओंके आलेख्याकार...**' जैसे पटियामें या स्तंभमें गतकालके तीर्थंकर, वर्तमानके तीर्थंकर और भविष्यके तीर्थंकर इसप्रकार चित्रित करें तो (उसका) एक समयमें खयाल आ जाता है। (श्री जयसेनाचार्यदेवने) 'बाहुबली'का दृष्टांत दिया है। 'बाहुबलीभरतादि...' किन्तु उन बाहुबलीको चित्रित किया हो (या) तीर्थंकरकी स्तंभमें कोरनी की हो, चौबीस तीर्थंकर–भूतकालमें हुये उन्हें वर्तमान और भविष्यकी (कोरनी की हो) तो यहाँ एक समयमें सब तीर्थंकर ज्ञात होते हैं। जाननेमें आते हैं या नहीं ? आहाहा...! भले ही छद्मस्थको थोड़ा क्रम लगे, यह वस्तु अलग है। समझमें आया ? किन्तु उसका स्वभाव तो एक समयमें जाननेका ही है। आहाहा...! किसी परका कुछ कर सकूँ यह वस्तु नहीं है। क्योंकि परवस्तुमें जिस समय जो पर्याय होनेवाली है सो होकर रहेगी, अब उसे दूसरा करे क्या ? आहा...! ऐसा है। सारे जगतसे उलटी बात है। उलटेमें से उलटी (बात) है। जगतकी बातें सभी उलटी और भगवानका मार्ग उससे भी उलटा आहाहा...!

यहाँ पर कहते हैं कि, छद्मस्थ अल्पज्ञानी भी किसी भी चीजको चिंतवन करते हुये

उसकी वर्तमान पर्याय बीत चुकी वह पर्याय और भविष्यकी पर्याय (उनके) खयालमें आ जाती है। आहाहा...!

चनेका आटा है, इसके पहले वह पूरा चना था, उस पर्यायका खयाल आ जाता है। हालमें यह (आटा) है और तुरंत इस समय सेकेंगे (यानी) पकौड़ी बनेगी। मैं सेकूँ और अग्निके द्वारा सेकनेकी क्रिया हो, यह प्रश्न यहाँ अभी नहीं। भजिया कहते हैं क्या कहते हैं (हिन्दीमें) ? 'पकोड़ा...' आहाहा...!

यह एनक है, देखो। पहली अवस्था ऐसी है (अभी) इसप्रकार होती है और आगे भी इसप्रकार उतारेंगे तब वैसा होगा, ऐसा एक समयमें खयाल आता है। उसे कर सकता है या कानपर लगा सकते हैं, यह प्रश्न यहाँपर है नहीं, आहाहा...!

कुरता लो कुरता...! क्या कहते हैं अभी उसको ? कमीज...कमीज...! यह कमीज़ अभी खुला है, (आगे) हाथ डाला, (उस समय) खयाल आयेगा कि इस कमीजकी (बाँह) ऐसी है, वह यहाँ (ऊपर) आ जायगी, होगी। (तो) पहली अवस्था, रहेगी वह अवस्था और आगे वापिस तुरंत अवस्था बदलेगी–ऐसी हो...वैसी हो...उसका भी खयाल है। उसकी अवस्था बदलेगी, हाँ....! आत्मा बदलवायेगा, ऐसा नहीं। आहाहा...!

यह तो तीनकाल, तीनलोकको भगवान जानते हैं, अतः क्रमबद्धपर्याय होती है, ऐसी समकितीको श्रद्धा होती है। आहाहा...! किसी भी समयकी पर्याय कोई बदल सके, दूसरा तो उसे कर नहीं सके परंतु वह स्वयं बदल सके, ऐसा नहीं। आता है न भाई ! 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षामें' ! तीनकाल, तीनलोककी जिस समय जो पर्याय होनेवाली है उन्हें जिनेन्द्र भी बदल सकते नहीं। (मात्र) देखते हैं। आहाहा...! यह बात अंतरसे (स्वीकार होना चाहिये)।

जाननेवाला मैं हूँ यह जाननेवाला जाननेका काम करता है। यहाँ तो परको जानता है इतनी अपेक्षा लेनी है न ! यह पर(पदार्थ) जिस स्थितिमें है और पहली स्थितिमें था और आगेकी स्थितिमें होगा उसे ज्ञान जानता है। परंतु ज्ञान परको बदल डाले या तीनकाल नहीं जाने, ऐसा नहीं। वर्तमान ही जाने और भूत-भविष्यको नहीं जाने, वैसा नहीं। आहाहा...! जब इसप्रकार जिसके ज्ञानमें इस बात (का) निर्णय हो जाय तब उस क्रमबद्धकी पर्यायको जाननेवाला होता है, करनेवाला नहीं, आहाहा...!

वस्तु है–उसका निर्णय जिस ज्ञानमें हुआ वह निर्णय (जो) हुआ, सो भी उसका समय है, आहाहा...! और वह निर्णय भी षट्कारकके परिणमनसे हुआ है। आहाहा...! मात्र

लक्ष है ज्ञायक पर। (भले ही) लक्ष है, लक्ष होने पर भी कर्ता होकर, अपना कर्म, करण और संप्रदान अपनेसे करता है, आहाहा...! समझमें आया ? वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई ! यह तो वीतरागताकी कॉलेज है। आहाहा...! जिसे उस ज्ञानका भान नहीं और कर्ता होकर सारा दिन फिरता रहता है, उसका मिथ्यात्वका पोषण करके चार गतिमें भटनेका लक्षण है। ऐसी बात है, भाई ! आहाहा...! है ?

यह (ज्ञान) चित्रपट (समान) है। चित्रपट होता है न ऐसा ? (उसमें) तीनकालके तीर्थंकर चित्रित किये हों (तो) खयालमें आ जाता है या नहीं ? चित्रपटमें सिंह चित्रित किया हो, लो। बाघ चित्रित किया हो–गतकालमें ऐसा था, अभी ऐसा है और भविष्यमें मर गया—ऐसा चित्रित किया हो, (तो) खयालमें आ जाता है या नहीं ? आहाहा...!

जिस प्रकार 'महावीर भगवान'का आत्मा दसवें भवमें सिंह था, सिंह...। 'भगवान महावीर'का आत्मा दसवें भवमें सिंह (था)। (वह) हिरनको मारता था, उसी समय मुनिराज पधारे और मुनिने कहा कि, ''अरे...सिंह ! तू तो दसवें भवमें (होनेवाला) तीर्थंकर 'महावीर'का जीव (है) ! यह क्या करता है ?'' सिंहको भी खयालमें (है) कि, प्रथम अवस्था ऐसी थी, इसप्रकार हो गई और इसप्रकार रहेगी—यह खयालमें है या नहीं ? आहाहा...! परंतु इसमें धर्म क्या आया ? धर्म यह है कि, जिस समय जो पर्याय होती है उसका तू जाननेवाला है। उसे बदलनेवाला कर्ता तू नहीं। ऐसा जो सम्यग्दर्शन(रूपी) धर्म (सो) इसप्रकार होता है। आहाहा...! समझमें आया ?

(इसलिए) '**....ज्ञान चित्रपटके समान है। जैसे चित्रपटमें अतीत...**' अर्थात् बीता काल '**...अनागत...**' (अर्थात्) भविष्य, '**...और वर्तमान वस्तुओंके आलेख्याकार...**' है न ? आहाहा...! (नीचे अर्थ है) आलेख्य=आलेखन योग्य, चित्रित करने योग्य। '**....साक्षात् एक क्षणमें ही भासित होते हैं; उसी प्रकार ज्ञानरूपी भित्तिमें (-ज्ञानभूमिकामें, ज्ञानपटमें) भी अतीत, अनागत और वर्तमान पर्यायोंके ज्ञेयाकार साक्षात् एक क्षणमें ही भासित होते हैं।**' आहाहा...!

भगवान केवलज्ञानके द्वारा आत्माको जानते है, (ऐसा) आया था न ? (३३ गाथामें) आया था न ? आचार्य कहते (हैं) हम भी श्रुतज्ञानके द्वारा आत्मा ज्ञायक त्रिकाल है उसे हम जानते हैं, आहाहा...! हम भी 'श्रुतकेवली' हैं। आहाहा...! केवलज्ञानी परमात्मा केवलज्ञानके द्वारा आत्माको जानते हैं (और) हम श्रुतज्ञानके द्वारा जानते (हैं), भले ही क्रमशः (होती हुई) कुछ पर्याय (के द्वारा जानते हैं) परंतु उन पर्यायके द्वारा भगवान आत्माको ! आहाहा...! तो भूतकालमें हमारी यह अवस्था विपरीत थी उसे भी जाना,

वर्तमानमें सम्यक् हुई उसे भी जाना और आगे उसकी यह पर्याय रहेगी उसे भी जना, आहाहा...! ऐसा है।

जैनदर्शनमें तो आठ-आठ वर्षके बालक सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं!! आहाहा...! भगवान आत्मा अंदर...आहाहा...! चैतन्यस्वरूप, आनंदस्वरूपको ग्रहणकर जब 'सम्यक्' निर्णय होता है तब उसे तीनकालके, तीनलोकके जो द्रव्य-पर्याय हैं, उनका उसे परोक्ष ज्ञान होता है, आहाहा...! मैं किसीका कर दूँ और मेरे में परके द्वारा कुछ परोक्षज्ञान होता है, आहाहा...! में किसीका कर दूँ और मेरेमें परके द्वारा कुछ हो-ऐसा सम्यग्दृष्टिको रहता नहीं, आहाहा...! इनमें व्रत करना और तप करना, यह कहाँ आया ? परंतु सम्यग्दर्शन रहित व्रत, तप आये कहाँसे तेरे ?

ज्ञानस्वभाव जाननेवाला ही है। रागका भी करनेवाला नहीं, परका भी करनेवाला नहीं। पर (पदार्थ) भी उसकी पर्यायके कारण (परिणमित हो रहे हैं)। राग भी क्रमशः आया हुआ आयेगा और उस समय ज्ञान भी उसे जाननेके क्रममें उसे और स्वको जानेगा। बात समझमें आती है ? आहाहा...!

ज्ञानपर्याय जो (होती) है वह भी क्रमबद्ध ज्ञानकी पर्याय है। और क्रमबद्धमें राग जिसप्रकारका आया वह है इसलिए यहाँ जानते हैं (ऐसा) नहीं। उसके ज्ञानके क्रममें स्वका और परका ज्ञान (करनेवाली) पर्याय (उसके) क्रममें आई इसलिए उसमें ज्ञात हुआ है। बहुत सूक्ष्म बापू ! यह आपके थोथे व्यापारमें कहीं भी हाथ लगनेवाला नहीं।

अरेरे ! उसके भटकनेमें समय निकाला। आहाहा...! परंतु मैं एक जाननेवाला (तत्त्व) हूँ (ऐसा निर्णय किया नहीं)। जैसे भगवान सब तीनकाल, तीनलोकको जानते हैं (परंतु) किसीके वे कर्ता नहीं। वैसे मैं भी एक जाननेवाला हूँ। जगतकी चीजें जिसप्रकार वर्तती है, वर्तेगी (और) वर्त चुकी, उसे मैं जाननेवाला हूँ। उनको मैं बदलनेवाला या बदल डालूँ, वैसा मैं नहीं, आहाहा...!

यह बड़े पथ्थरोंके कारखाने बनाते हैं (तो) कहते हैं कि, यह जगह पहले ऐसी थी ऐसा जाना, आगे वहाँ कारखाना होने जा रहा है, वह इसप्रकार होगा वह भी पहलेसे ही ज्ञात है।

कुम्हारने मिट्टी ली, मिट्टी...! मिट्टीका पिंड है उसका ज्ञान है और पिंड अवस्था पलटकर अभी घड़ा बनेगा। उस पिंडके समय भी घड़ाका ज्ञान, ज्ञानमें ज्ञात है, आहाहा...! समझमें आया ? कुम्हार घड़ा बनाता नहीं है परंतु घड़ेकी अवस्था पहले पिंडकी थी, आगे

घड़ेकी हुई और उसके पहले सामान्य मिट्टीकी थी–उसे जानता है। आत्माका स्वभाव जानता है। किसी चीजको बनाना और बदलना, यह आत्माका स्वभाव नहीं। अरे...! अपनी जो पर्याय होनेवाली है उसे भी बदलनेका सामर्थ्य नहीं। आहाहा...! यह वीतरागता है।

इसमें यह कहा '**...ज्ञानरूपी भित्तिमें (–ज्ञानभूमिकामें, ज्ञानपटमें)...**' तीनकालके चित्रित चित्र, '**...भी अतीत, अनागत और वर्तमान पर्यायोंके ज्ञेयाकार साक्षात् एक क्षण में ही भासित होते है।**' आहाहा...! (यह दूसरा हुआ)।

(३) '**और सर्व ज्ञेयाकारोंकी तात्कालिकता (वर्तमानता, साम्प्रदातिकता) अविरुद्ध है।**' क्या कहते हैं? जगतकी सभी चीजें-ज्ञेय हैं उनके पर्यायोंके आकार, (उनका तात्कालिकता (वर्तमानता, साम्प्रतिकता) अविरुद्ध है। '**जैसे नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंके आलेख्याकार वर्तमान ही है...**' आहाहा...! नीचे अर्थ है न? आलेख्य=(आलेखन योग्य, चित्रित करनेयोग्य)।

किसी भी चीजकी पर्याय बदली और नष्ट अनुत्पन्न (अर्थात्) वह वस्तु उत्पन्न हुई नहीं। उन वस्तुओंके आलेख्याकार खयालमें आ जाते हैं, आहा...! '**...वर्तमान ही हैं,....**' आहाहा...!

और कोई ऐसा भी कहता है कि, 'जो पर्याय उत्पन्न हुई नहीं उसे केवली जानते हैं वह तो असत्य हुआ। यह प्रश्न आता है। असत्य नहीं है, प्रभु ! उसे खबर नहीं। हुई है, (होती) है और होगी–वे (पर्याय जो) होगी उसका ज्ञान वर्तमान (जैसा दिखाई देता है) वैसा ही यहाँपर दिखाई देता है, आहाहा...! होगी तब ज्ञात होगी, ऐसा नहीं। (भविष्यमें जो) होगी वह वर्तमानमें ज्ञात होती है, आहाहा...! समझमें आया?

सर्व ज्ञेयाकारोंकी तात्कालिकता (अविरुद्ध है)। '**जैसे नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंके आलेख्याकार वर्तमान ही हैं, उसीप्रकार अतीत और अनागत पर्यायोंके ज्ञेयाकार वर्तमान ही है।**' आहाहा...! अनंत आत्मा और अनंत परमाणु जो ज्ञेय (है) और भविष्यमें होनेवाले उनके आकार भी वर्तमानवत् ही ज्ञानमें ज्ञात हैं। यह केवलज्ञान !! और ऐसा केवलज्ञान आत्माका स्वभाव ! यह केवलज्ञान तो एक समयकी पर्याय है परंतु ऐसी अनंत अनंत पर्याय होनेका ज्ञानगुणका स्वभाव (है)। उस ज्ञानगुणका धारण करनेवाला 'मैं (हूँ)' ! ऐसा ज्ञायकका अनुभव होना उसका नाम सम्यग्दर्शन है और यह सम्यग्दर्शन (होनेके) बाद स्वरूपमें स्थित होता है उसका नाम चारित्र है। चारित्र कोई नग्नपना या महाव्रतके परिणाम (का पालन करे) यह कोई चारित्र नहीं आहाहा...! सूक्ष्म बहुत!

क्रमबद्धमें जिस समय जो (पर्याय) होनेवाली है (वह होनेवाली ही है) ऐसा जिसके ज्ञानमें संमत हो, उसका ज्ञान सर्वज्ञस्वभावीके ऊपर ढल जाता है। यह तो कहा था न ! (संवत) ७२की सालमें संप्रदायमें बड़ा प्रश्न उपस्थित हुआ। तिरेसठ साल हुये। 'केवलज्ञानीने देखा होगा ऐसा होगा। होनेवाला होगा सो होगा, उसमें हम क्या कर सकते हैं ?' (इसप्रकार संप्रदायमें कहते थे)। (हमने कहा) 'होनेवाला (होगा) सो होगा, (यह) किसने देखा ? (तो उन्होंने कहा) 'केवलज्ञानीने।' (अतः हमने कहा) 'केवलज्ञानी जगतमें है ऐसा किसने निर्णय किया ?' यह तो ७२की बात है। कितने साल हुये ? तिरेसठ वर्ष पहलेकी बात है।

मनुष्यको ऐसा लगता है कि हम परका कुछ कर सकते (हैं)। परकी दयाका पालन कर सकते हैं, हिंसा कर सकते हैं, पैसोंकी कमाई कर सकते हैं, पैसे खर्च कर सकते हैं। 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में कहा है, भाई ! कि, 'तुझे पैसे मिले है तो दान करना ! उपकार करना ! ऐसा आता है, हाँ ! वाचनमें बात हो गई थी। यह मात्र शुभभाव (की बात है)। (अशुभभावकी) तीव्रता मिटानेकी बात की। समझमें आया ? 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में है। तुझे पूर्वके पुण्यके कारण पैसे मिले हैं, यह कोई तेरे प्रयत्नसे मिले नहीं। उसमें कुछ करना। हिस्सा देना ! दानमें, भक्तिमें, प्रभावनामें....आहाहा...! सुना है ? उसमें कहीं है। शुरूआतमें कहींपे है। कहाँ होगा क्या मालूम ! काललब्धि। (२३२ गाथा है)। 'जीव द्रव्य है वह अपने चेतनस्वरूपमें, अपने ही क्षेत्रमें, अपने ही द्रव्यमें तथा अपने ही परिणमनरूप समयमें रहकर ही अपने पर्यायस्वरूप कार्यको साधता है। आहाहा...! यह स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा ! 'समयसार'से भी (पुराना) ! दानका कहीं (आता) है। यहाँ (२२९ गाथामें) यह (कहते) हैं। तीनोंकालमें एक एक समयमें पूर्व-उत्तर परिणामोंका आश्रय कर जीवादिक वस्तुओंमें नये नये कार्यविशेष होते हैं अर्थात् नई नई पर्यायें उत्पन्न होती है। (अर्थात्) उसके कालमें उसी उसी समयमें पर्याय उत्पन्न होती है। यह 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' समयसारसे पुराना ग्रंथ है। 'श्रीमद्'को मिला तब बहुत प्रसन्न हुये थे) !

उसमें कहीं दानका है सही ! हाथमें आये तब मालूम पड़े न ! उसमें कुछ करना ऐसा (कहा है), उसमें दानकी बात है। हमारे यहाँ उसका वाचन हो गया है। जीवका राग घटानेकी बात की जाय तो उसीकी बात हो। 'पद्मनंदीपंचविंशति'में दान अधिकारमें आता है न ? कि भाई ! तुझे पूर्वके पुण्यसे यह लक्ष्मी प्राप्त हुई है। अब यदि लक्ष्मीमें कुछ हिस्सा रखा (अर्थात्) दानमें, पूजामें, भक्तिमें, प्रभावनामें (खर्च नहीं किया तो) कंजूस हो जायेगा। आहाहा...! ऐसी बात है। 'पद्मनंदीपंचविंशति'में भी है और इसमें ('स्वामी

कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में) भी है, हाँ। यहाँ तो वहाँ तक कहा (है) कि लोभ कम करनेके लिए दान करना। यह तो वास्तवमें तो समयपर होता है। परंतु उसे राग कम करनेको कहा जाय तब तो ऐसे स्थापित करे न ! समझमें आया ? तीव्र लोभ है उसे कुछ कम कर...कम कर। घटाओ ! वरना तीव्र लोभमें तो मनुष्य पापबंधनमें पड़ेगा और पापमें भव खराब करके कहींका कही चला जायेगा। है, उसमें कहीं दानका आता है।

यहाँ पर कहते हैं कि, सर्व ज्ञेयाकार तात्कालिकता से (ज्ञात है)। आहाहा...! यह पैसोंकी पर्याय यहाँ पर पैसोंके रूप आयी यह भी उसका समय था। आगे कहीं और जानेवाली है तब भी उसका वह समय था, आहाहा...! उसने पैसे दिये हैं इसलिए गये हैं (अथवा) अवस्था हुई है, ऐसा नहीं। आहाहा...! यह तो ज्ञानमें जाननेवाला है कि, यह पैसे यहाँपर थे और वहाँ गये। उन (पैसोंके) परमाणु जो है सो वहाँ जानेवाले थे। उसकी पर्याय वहाँ जानेकी थी वह हुई है। आत्मा तो उसका जाननेवाला है। (उसके बजाय) ऐसा माने कि 'मैंने दिया है, वह मेरी चीज थी और मैंने दी है' (तो वह तो) भ्रम है। अज्ञान है। ऐसा है, आहाहा...!

यहाँ पर (कहते हैं) **'जैसे नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंके आलेख्याकार वर्तमान ही है, उसीप्रकार अतीत और अनागत पर्यायोंके ज्ञेयाकार वर्तमान ही है'**। आहाहा...!

भावार्थ :— **'केवलज्ञान समस्त द्रव्योंकी तीनोंकालकी पर्यायोंको युगपद् जानता है।'** अभी (तो अज्ञानीको) केवलज्ञानके निर्णयकी खबर नहीं। (और क्रमबद्धकी बात संमत नहीं होती) क्योंकि (अज्ञानीको) करना...करना...और करनेकी बुद्धि है। दूसरोंका कर दूँ, दूसरोंका इसप्रकार कर दूँ। यहाँ कहते हैं कि, केवलज्ञान समस्त द्रव्योंकी तीनों कालकी पर्यायोंको–अवस्थाओंको एक समयमें जानता है।

'यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ज्ञान नष्ट और अनुत्पन्न पर्यायोंको वर्तमानकालमें कैसे जान सकता है?' (अर्थात्) जो पर्याय हो गई (वह) अभी है नहीं–नष्ट हो गई है। जो होनेवाली है वह अभी हुई नहीं। आहाहा...! है? (ऐसी) ...नष्ट और अनुत्पन्न.. भूतकालकी (और) भविष्यकालकी अनुत्पन्न (ऐसी) **'पर्यायोंको ज्ञान वर्तमानकालमें कैसे जान सकता है?'**

'उसका समाधान–जगतमें भी देखा जाता है कि अल्पज्ञ जीवका ज्ञान भी नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंका चिंतवन कर सकता है...' है न? आहाहा...! (अर्थात्) पहले बाल्यावस्था थी, आगे युवान हुई, आगे वृद्ध होगी–उन सब अवस्थाओंको क्या नहीं जानता ?

आहा...! (उन्हें) वर्तमानमें जानता है या नहीं ? शरीर बालक था, बादमें जवान हुआ, फिर वृद्ध हुआ और वृद्ध होनेके पश्चात् स्मशानकी राख होगा। आहाहा...! मरेगा और जलायेगा। यह प्रश्न यहाँपर है नहीं। यहाँ तो (इतना ही कहना है कि) होगा, हो रहा है और हो चुका उनको जाननेका ज्ञानस्वभाव है, भगवान आत्माका (स्वभाव है), आत्माका, हाँ...! भगवानका तो है और यह आत्माका भी वैसा स्वभाव है। आहाहा...! ऐसा है। '...**अनुमानके द्वारा जान सकता है, तदाकार हो सकता है....**' देखा ! जैसा सामने भूत-भविष्यका स्वरूप है उन आकार भी ख्यालमें आ सकते हैं, आहाहा...! तब फिर पूर्ण ज्ञान नष्ट और अनुत्पन्न पर्यायोंका क्यों न जान सकेगा ?

ज्ञानशक्ति ही ऐसी है कि वह चित्रपटकी भाँति...आहाहा...! ज्ञानस्वभाव ही ऐसा है कि, उसे कोई भूत और भविष्यकी बात जाननेमें नहीं आये वैसा(नहीं)। यह तो चैतन्य चमत्कारी वस्तु है। आहाहा...! और वहाँ 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में तो ऐसा भी कहा (है) कि, समय-समय पर जो तीनकालकी पर्याय होनेवाली है, जिनेन्द्र भगवानने देखी है उसीप्रकार माने तो सम्यग्दृष्टि है। उससे विरुद्ध मानकर कि 'मैं कुछ कर दूँ या इसका मैंने किया' (तो) वह मिथ्यादृष्टि है, आहाहा...! जिस समय, जिसप्रकार (पर्याय) होनेवाली है, हुई है और होगी उसे ज्ञान जानता है। परंतु परका कर दूँ, और मैंने कहा इसलिए उसे ऐसा हुआ, मैंने पैसोंके बारमें उपदेश दिया इसलिए उसने दान दिया, प्यासेको पानी पिलाओ, रोगीको दवा दो–यह सब बातें जिस समय होनेवाली है तब होगी। उसे 'मैं दूँ और करूँ', यह बात वस्तुमें नहीं। भगवानका स्वभाव तो जानना है, बस भगवान यानी आत्मा हूँ....! केवलीका जाननेका (स्वभाव है) उसप्रकार भगवान आत्माका जाननेका स्वभाव (है)। हुआ, हो रहा है और होगा, उसे उसी समय वर्तमानवत् जानते हैं। आहाहा...!

और '**ज्ञानशक्ति ही ऐसी है कि वह चित्रपटकी भाँति, अतीत और अनागत पर्यायोंको भी...**' ऐसे। 'भी' क्यों कहा ? (क्योंकि) वर्तमान तो जानते हैं परंतु (अतीत और अनागतको) भी जान सकती है। और आलेख्यत्वशक्तिकी भाँति (अर्थात्) चित्रित किये गये चित्र जिसप्रकार देखनेमें आते हैं यानी यह सब पूर्वभव था, यह वर्तमान है और यह भविष्यका भव है। चित्रको इसप्रकार रखते हैं न ? भगवानका पूर्वभव सिंहका भव था, आगे यह भव था और अब भगवान हैं। इसप्रकार एकसाथ दिखाई देता हैं न ! आहाहा...!

'**और आलेख्यत्वशक्तिकी भाँति, द्रव्योंकी ज्ञेयत्वशक्ति ऐसी है....**' (अर्थात्) वस्तुकी ज्ञातव्यशक्ति ऐसी है '...**कि उनकी अतीत और अनागत पर्यायें भी ज्ञानमें एकरूप होती हैं–ज्ञात होती है।**' जाननेवाला तो जानता है परंतु उस ज्ञेयका ऐसा स्वभाव

है कि भूत-भविष्यका जिस समय जो ज्ञान हुआ वह जाननेमें आता है। यह ज्ञेयका स्वभाव है। आहाहा...! ऐसा है।

'इसप्रकार आत्माकी अद्भुत ज्ञानशक्ति...' आहाहा...! जाननेवाला...जाननेवाला ....जाननेवाला ...जानता है....जानता है...जानता है...। गत अवस्था, वर्तमान और भविष्य(को) जाननेवाली ऐसी आत्माकी अद्भुत शक्ति **'और द्रव्योंकी अद्भुत ज्ञेयत्वशक्ति...'** आहाहा...! उन ज्ञेयोंकी भी जो अवस्था हुई नहीं सो यहाँपर ज्ञात होता है ऐसी ज्ञेयकी शक्ति !! ज्ञानकी तो शक्ति है, परंतु ज्ञेय भी वैसा है। आहाहा...!

इसप्रकार आत्माकी अद्भुत ज्ञानशक्ति और द्रव्योंकी अद्भुत ज्ञेयत्वशक्तिके कारण केवलज्ञानमें समस्त द्रव्योंकी तीनों कालकी पर्यायोंका एक ही समयमें भासित होना अविरुद्ध है।' एक समयमें (सब) भासित हो। आहाहा...! समझमें कठिन पड़े भाई ! अभिमान है न कि 'उसे मैं कर दूँ !! मेरे कारण यह हुआ। मैंने जगत पर उपकार किया !!' कौन करे ? आहाहा...! उसकी जो पर्याय वहाँ होनेवाली थी वह उसके कारण हुई (है) आहाहा...! मैंने दवाई दी इसलिए उसका रोग अच्छा हो गया। यह भी अभिमान-अज्ञान है। उस समय पर्याय क्रमशः अच्छी होनेकी थी, सो अच्छी हुई (है), दवाईके द्वारा अच्छा हुआ नहीं, आहाहा...!

श्रोता :—उसे (अज्ञानीको) ऐसा लगता है कि उसमें पुरुषार्थका नाश हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :—उसमें ही पुरुषार्थ है। 'मैं जाननेवाला हूँ-(ऐसा परिणमन होना)' यह पुरुषार्थ है। 'परका करनेवाला हूँ'-यह बात तीनकालमें नहीं, यह पुरुषार्थ (है) वह तो विपरीत मान्यता है। आहाहा...! (इस तरह) **'...तीनों कालकी पर्यायोंका एक ही समयमें भासित होना अविरुद्ध है।'** यह ३७ (गाथा पूर्ण) हुई।

अब विद्यमान पर्यायोंकी (भी) (-किसी प्रकारसे; किसी अपेक्षासे) विद्यमानता बतलाते हैं :— .... यह बात विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

२१ श्री समयसार, गाथा-७५, प्रवचन नं. १६०, दि. ०४-०१-१९७९

'समयसार' ७५ गाथा। यहाँ है। 'पुद्गलद्रव्य स्वतंत्र व्यापक होनेसे...' है न ? क्या कहते हैं ? कर्म और नोकर्म जो पुद्गल है वह स्वतंत्ररूपसे व्यापक कर्ता होनेसे, स्वतंत्ररूपसे व्यापक अर्थात् कर्ता होनेसे 'पुद्गल परिणामका कर्ता है...' उन रागादिका कर्ता पुद्गल है। आहाहा...! यहाँ तो यह सिद्ध करना है। वैसे तो रागादि है वह आत्माकी पर्यायमें है, आत्माकी पर्यायके षट्कारकके परिणमनसे होते हैं। वह तो उसकी पर्यायको सिद्ध करना हो तब और उस समय वह होना है ऐसा जब सिद्ध करना हो तब भी वह विकार उस समय आत्माकी पर्यायमें, आत्मामें होता है। इतना सिद्ध करके अब आत्मा ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव है, वह वीतराग स्वरूप है। वह वीतराग स्वरूपका व्यापक होकर व्याप्य है, राग उसका व्याप्य-कार्य नहीं हो सकता। समझमें आया ?

यह एक, दो बात कही उस बातको रखकर (यह) बात कही है। लेकिन यहाँ अब आत्मा वीतराग स्वरूप है, जिनस्वरूप है अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव स्वरूप है उसका व्यापक अर्थात् प्रसरके व्याप्य जो हो, वह विकार नहीं होता। ज्ञातादृष्टा स्वभाव वह कर्ता होकर अथवा व्यापक होकर कार्य हो तो वह जानने-देखनेके और आनंदके परिणामकाकार्य हो। समझमें आया ? आहाहा...! ऐसी बात है।

यहाँ कहते है कि विकार परिणाम जो होता है और जो शरीरकी यह पर्याय होती है वह पुद्गल परिणामको, 'पुद्गल द्रव्य स्वतंत्र व्यापक होनेसे पुद्गल परिणामको करता है...' कर्ता स्वतंत्ररूपसे करे ऐसा यहाँ कहते है। कर्म स्वयं स्वतंत्र होकर विकारके परिणामका कर्ता होता है। यहाँ आत्माका जो स्वभाव है वह तो जिनस्वरूपी, वीतरागस्वरूपी प्रभु है। वीतराग स्वरूपी प्रभुके परिणाम तो वीतरागी ही होते हैं। आहाहा...! ऐसे स्वभावकी दृष्टि रखके जो स्वभाव वीतरागीरूपसे परिणमे वह स्वभाव रागरूपसे न परिणमे ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा...! इसलिए पर्यायदृष्टिमें जो रागादि होते हैं वह स्वतंत्ररूपसे पुद्गलके निमित्तके सम्बन्धसे होते हैं, इसलिए वह पुद्गल कर्म वह कर्ता-व्यापक और विकारी परिणाम उसका कार्य अर्थात् उसका व्याप्य, ऐसा है। कितने प्रकारसे उसमें बात आती है। अपेक्षा न समझे और उपादानकी जहाँ बात हो वहाँ आत्मा अशुद्ध उपादानरूपसे अर्थात्

व्यवहाररूपसे, पर्यायरूपसे, विकाररूपसे परिणमता है वह स्वयं। कर्म तो निमित्तमात्र है, कर्मको तो विकार छूता भी नहीं। वैसे ही कर्मका उदय है वह रागको छूता भी नहीं। आहाहा...! तब वह रागके परिणाम उसकी पर्यायमें स्वतंत्र षट्कारकके परिणमनसे होते हैं ऐसे उसकी पर्याय स्वयंसे है ऐसा सिद्ध करना है। लेकिन यहाँ तो वह उसका स्वभाव नहीं (ऐसा सिद्ध करना है)। आहाहा...!

स्वभाव जो आत्मा है वह तो जिनस्वरूपी, वीतराग स्वरूपी है। आहाहा...! जिनस्वरूप प्रभु उसके परिणाम सम्यग्दर्शनकी भी वीतरागी पर्याय होती है। कोई कहता है कि सम्यग्दर्शन सरागी होता है। वह तो दूसरी अपेक्षा है। वीतराग जिनस्वरूपी प्रभु वीतराग स्वरूपकी पर्याय वीतराग हो तो सम्यग्दर्शन भी वीतरागी पर्याय है और आगे चलकर चारित्र होता है वह भी वीतरागी पर्याय है। आहाहा...! वह वीतराग स्वभावका कार्य, वीतराग स्वभाव व्यापक और अविकारी पर्याय व्याप्य इतना भेद करके कथन करना वह भी उपचारसे है। आहाहा...! वह अविकारी परिणामका कर्ता और कर्म परिणाममें है। आत्मा उसका व्यापक अर्थात् प्रसरके होता है वह भी एक भेदनयका कथन है। विकारी परिणामका कर्ता आत्मा और विकारी परिणाम कार्य वह भी उपचारसे कथन है। आहाहा...!

जैसे द्रव्य कर्म और परका कर्ता तो उपचारसे भी नहीं वैसे कर्म और शरीर या आत्माके विकारी परिणामका कर्ता उपचारसे भी नहीं है। आहाहा...! लेकिन यहाँ स्वभावदृष्टिसे कथन करना है। आहाहा...! भगवान आत्मामें अनंत गुण है, उसमें एक भी गुण ऐसा नहीं कि जो विकाररूपसे परिणमित हो। अतः वह स्वभावी वस्तु स्वभावके परिणाम रूपसे परिणमित हो और उसका वह कार्य व्याप्य है ऐसा कहा जाता है, लेकिन विकारी परिणामका कार्य स्वभाव दृष्टिसे आत्माका है ऐसा नहीं है। आहाहा...! अब इतनी सारी अपेक्षाएँ रखके बात समझनी चाहिये।

यहाँ पुद्गल द्रव्य स्वतंत्ररूपसे व्यापक अर्थात् कर्ता होकर स्वतंत्र कर्ता है। स्वतंत्ररूपसे कर्ता होकर पुद्गल परिणामका अर्थात् राग-द्वेष, पुण्य-पापके भावका कर्ता है, इस दृष्टिसे। समझमें आया ? '**और पुद्गल परिणाम उस व्यापक द्वारा....**' वह राग और द्वेष और पुण्य-पापके भाव वह पुद्गल परिणामको उस व्यापक द्वारा अर्थात् कर्मके व्यापक द्वारा '**स्वयं व्याप्त होनेसे...**' स्वयं होनेसे, स्वयं कार्य होता होनेसे वह पुद्गल परिणाम उस द्रव्यका कार्य है। आहाहा...! ऐसी बात है। किस अपेक्षासे कथन है वह जानकर एक ही पकड़े कि बस....! कर्मसे विकार होता है, कर्मसे विकार होता है। भाई !

परद्रव्यसे हो ऐसा तीन कालमें न हो। पर्याय तो स्वतंत्र उस समयकी स्वयंसे होती है लेकिन वह गुण और स्वभाव नहीं। इसलिए गुण और स्वभावकी जहाँ दृष्टि हुई तब उस विकारके परिणामका कार्य वह स्वभाव नहीं है। तब उसके कार्यका कर्ता कर्म है ऐसा कहकर परसे भिन्न कर दिया है। स्वसे जुदा कर दिया है।

श्रोता :— कर्ता नहीं, ज्ञाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— ज्ञाता है; और परिणामरूपसे भले कर्ता कहो लेकिन कर्तारूपसे करने लायक है ऐसी बुद्धिरूपसे कर्ता नहीं। आहाहा...! कितनी अपेक्षा। ४७ नयमें ऐसा कहा है कि परिणमनकी अपेक्षासे ज्ञानी कर्ता है, उसका अधिष्ठाता है। किस अपेक्षासे ? यह 'प्रवचनसार' नय अधिकार...आहाहा...! वह ज्ञानपरिणमन उसका है इतना बतानेके लिए कर्ता, वह परिणमता है वह कर्ता ऐसा कहा है, लेकिन यहाँ तो स्वभावकी दृष्टिमें उसका स्वभावरूप परिणमन होता है। उसका परिणमन विकृत है वह कर्मका कार्य है ऐसा कहकर स्वभावके परिणमनसे उसे जुदा कर दिया है। इतना सब याद रखना।

यहाँ तो भगवान शुद्ध निश्चय-स्वभावकी दृष्टिसे ऐसा कहते हैं कि जो भगवान आत्मा है उसका स्वभाव तो वीतराग है न ! अकषाय स्वभाव है न ! शुद्ध स्वभाव प्रत्येक गुण शुद्ध है न ! वह शुद्ध व्यापक होकर विकारी पर्याय व्याप्य हो ऐसा नहीं है। इतना सिद्ध करनेके लिए उस विकारी परिणामका व्यापक कर्म है और विकारी परिणाम उसका व्याप्य नाम कार्य है। आहाहा...! ऐसा कहाँ है ? अभी तो आगे पुद्गल कह देंगे, पुद्गल परिणामको पुद्गल कहेंगे। कहा था न ! पुद्गलको और आत्माको ज्ञेय-ज्ञायक... आखिरी शब्द है। वह पुद्गल ही है, जीव द्रव्य नहीं। आहाहा...! भगवानकी भक्ति और स्तुतिका राग है उसका भी कर्ता कर्म है ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा...!

श्रोता :— कर्ता ज्ञानी कैसे हो सकता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— ज्ञान स्वरूपमें विकारका परिणमन कहाँ है ? उसके अनंत अनंत गुण है, लेकिन कोई भी गुण विकाररूपसे परिणमे ऐसा नहीं। पर्यायमें होता है इसलिए परके लक्ष्यसे हुआ है इसलिए वह व्यापक और वह उसका व्याप्य ऐसा कहा। आहाहा...! भगवान आत्मा निर्मल अनंत गुण व्यापक अर्थात् कर्ता और विकारी पर्याय व्याप्य अर्थात् कार्य ऐसा नहीं, इस बातमें सुमेल नहीं है। आहाहा...! यह सब अपेक्षाएँ और यह सब... आहाहा...!

श्रोता :— गुरुगमसे जाननेमें आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— गुरुगम चाहिये, बात सही है। आहाहा...!

'स्वयं व्याप्त होनेसे...' अर्थात् स्वयं होता, स्वयं कार्य होता होनेसे... कर्मकी वजहसे वह पुण्य-पापके भाव, भक्ति आदिके भाव... आहाहा...! भगवानकी स्तुति आदिके भाव वह कर्म व्यापक होकर कार्य होता होनेसे वह पुद्गलका कार्य है। आहाहा...! ऐसी गम्भीर वस्तु है, बापू ! आहाहा...!

'इसलिए पुद्गल द्रव्य द्वारा कर्ता होकर' देखा ? पुद्गल कर्म द्वारा कर्ता होकर वह **'कर्मरूपसे करनेमें आता जो समस्त कर्म-नोकर्मरूप पुद्गल परिणाम....'** वह कर्मके परिणाम और नोकर्म शरीर आदिके, भाषा आदिके वह पुद्गल परिणाम, **'उसको जो आत्मा, पुद्गल परिणामको और आत्माको घट और कुम्भारकी तरह....'** आहाहा ! दृष्टांत देखो ! **'पुद्गल परिणाम और आत्माको'** वह रागके, द्वेषके परिणामको और आत्माको **'घट और कुम्हारके जैसे...'** कुम्हार व्यापक और घट उसका व्याप्य ऐसा नहीं है। आहाहा...! यह घड़ा होता है न ! वह कुम्हारसे नहीं होता, मिट्टिसे होता है। बापू ! परद्रव्यके साथ क्या सम्बन्ध है ! परद्रव्य निमित्तमात्र हो लेकिन उससे इसका कार्य वह कैसे करे ? आहाहा...!

'घट और कुम्हारके जैसे' मतलब ? राग-द्वेषके परिणाम और आत्माको **'घट और कुम्हार जैसे व्याप्य-व्यापकभावके अभावके कारण'** आहाहा....! बहुत गंभीर टीका है। ओहो हो....! क्या कहा ? कि दया, दान, व्रत आदिके या भगवानकी स्तुतिके जो परिणाम है वह परिणामको और आत्माको, 'घट और कुम्हारकी तरह' घट व्याप्य और कुम्हार व्यापक ऐसा नहीं है। अतः यह परिणाम व्याप्य और आत्मा व्यापक ऐसा नहीं है। घट-कुम्हारकी तरह 'व्याप्य-व्यापकभावके अभावके कारण' आहाहा....! कुम्हार व्यापक होकरके प्रसरके घटका कार्य करे–ऐसे भावका अभाव है, वैसे आत्मा व्यापक होकरके प्रसरके विकारका परिणाम करे ऐसे भावका अभाव है। आहाहा....!

श्रोता :— ऐसा तो ज्ञानीको है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— यहाँ स्वभावकी बात कही न ! वस्तु स्वभावकी दृष्टि हुई है, स्वभावकी दृष्टि होनेसे स्वभावका जो परिणमन वह विकारी परिणमन नहीं हो सकता–वह बात यहाँ लेनी है। आगे तो कहेंगे कि मिथ्यात्व, अव्रत और प्रमादके परिणाम है वह जीवके भी है और जड़के भी है, दोनों अलग है। आगे लेंगे....आहाहा....!

यहाँ तो यह कहा है कि वस्तुका स्वभाव चैतन्यमूर्ति भगवानका रागके परिणामसे भिन्न प्रभुका स्वभाव है ऐसा जहाँ अंतरमें भान हुआ उस ज्ञानीके राग उनका व्याप्य और आत्मा व्यापक ऐसा नहीं है। किसके जैसा ? घट और कुम्हारके जैसे। कुम्हार व्यापक और घट उसका व्याप्य–कार्य नहीं है, वैसे ही आत्मा व्यापक और विकारी परिणाम व्याप्य, ऐसा नहीं है। आहाहा....! कितना याद रखें ? आहाहा....!

चैतन्य स्वभाव जिसका है वह महाप्रभु है। आहाहा....! पर्यायका अंश विकृत है वह वस्तु भिन्न कर दी है। भगवान आत्मा.....आहाहा....! घट और कुम्हारकी तरह अर्थात् कुम्हार कर्ता और घट कर्म—कुम्हार व्यापक और घट व्याप्य ऐसा नहीं है, वैसे ही आत्मा व्यापक और विकारी परिणाम व्याप्य ऐसा नहीं है। आहाहा....! ऐसा मार्ग है। वस्तुका स्वरूप ऐसा है।

'घट और कुम्हारकी तरह व्याप्य-व्यापकभावका अभाव होनेसे कर्ता-कर्मपनेकी असिद्धि होनेसे...' घटका कर्ता कुम्हारकी असिद्धि होनेसे....वैसे विकारी परिणामका कर्ता आत्मा–इसकी असिद्धि है। आहाहा....! **'परमार्थसे करता नहीं'** जैसे कुम्हार घटको परमार्थसे करता नहीं, वैसे ही विकारी परिणामको आत्मा स्वभावसे–परमार्थसे करता नहीं। आहाहा....! भाषा तो सरल लेकिन भाव तो जो है सो है, बापू ! आहाहा....!

'परंतु सिर्फ पुद्गल परिणामके ज्ञानको....' आहाहा....! रागादि, भक्ति आदि, स्तुति आदिका विकल्प होता है लेकिन उसके ज्ञानको–पुद्गल परिणामके ज्ञानको....यह भी निमित्तका कथन है। जो परिणाम हुये उसके ज्ञानको....उसको जाननेवाली ज्ञानकी पर्याय, उस समयकी ज्ञानकी पर्यायके षट्कारकसे परिणमती हुई प्रगट होती है। आहाहा....! उस **'परिणामके ज्ञानको'** ऐसी भाषा है। लेकिन वास्तवमें तो वह ज्ञानकी पर्याय स्वयंसे षट्कारकसे परिणमन करती है, जिसको **'रागके परिणामका ज्ञान'** ऐसी अपेक्षा भी नहीं है। भाई ! आहाहा....! लेकिन यहाँ थोड़ा उसको समझाना है। पुद्गल परिणामके ज्ञानको अर्थात् जो कोई दया, दान, भक्ति, स्तुति आदिका विकल्प हुआ उस समय यहाँ ज्ञान स्व-परप्रकाशकसे अपनेरूपसे अपनेसे परिणमित होता है उसको यहाँ रागके परिणामको ज्ञानको–रागके भावके ज्ञानको–वह ज्ञानके परिणामको आत्मा....आहाहा....! रागके परिणामके ज्ञानको कर्मरूपसे करता....आहाहा....! यह भी उपचारसे है, भाई ! 'कलशटीका' कलश ४९में है।

ज्ञानकी पर्यायका कर्ता और आत्मा कर्म यह भी उपचारसे है, भेद है न !

आहाहा....! 'कलशटीका'में है, भाई ! परका उपचारसे भी कर्ता नहीं है, रागका उपचारसे भी स्वभावदृष्टिसे आत्मा कर्ता नहीं है, लेकिन रागका जो ज्ञान कहनेमें आता है वह भी अपेक्षित समझानेके लिये (कहनेमें) आता है। उस समयमें ज्ञानकी पर्यायका स्व-परप्रकाशकरूपसे स्वतः परिणमनेका स्वभाव है, अतः षट्कारकरूपसे वह ज्ञानपरिणाम परिणमित होता है। वह ज्ञानपरिणामको पुद्गल-परिणामके ज्ञानको ऐसा कहा है। समझमें आया ? बहुत गंभीर वस्तु है, बापू ! आहाहा....!

उस **'पुद्गल परिणामके ज्ञानको (आत्माके) कर्मरूपसे...'** आत्मा ज्ञानके कार्यरूपसे परिणमता है। ज्ञानका कार्य उसरूपसे परिणमता है, रागका कार्य उसरूपसे परिणमता नहीं। आहाहा....! समझमें आया ? भाषा तो बहुत सरल लेकिन भाव तो जो है सो है न, भाई ! आहाहा....! यहाँ तो प्रभुकी प्रभुताका वर्णन है। पामरता जो होती है वह प्रभुताका कार्य नहीं ऐसा बताना है। आहाहा....! आहाहा....!

प्रभु ! प्रभुत्वगुणसे भरा भगवान–अनंत गुणके प्रभुत्वसे भरा प्रभु स्वयं रागके परिणामको कर्ता होकर करे ऐसा कैसे हो सकता है ? आहाहा....! क्योंकि उसके द्रव्यमें नहीं, उसके गुणमें नहीं। आहाहा....! समझमें आया ? आहाहा....!

वह **'पुद्गल परिणामके ज्ञानको...'** आहाहा....! ऐसी भाषा ! वास्तवमें तो वह ज्ञान जो है वह पुद्गल परिणामका ज्ञान है ऐसा कहना व्यवहार है। वह ज्ञानकी पर्याय उस समय षट्कारकसे स्वतंत्र परिणमता है जिसको परकी तो अपेक्षा नहीं लेकिन (स्व) द्रव्य-गुणकी भी अपेक्षा नहीं है। आहाहा....! आरेरे....! ऐसे तत्त्वको लोग अलग अलग दृष्टिसे बिखेर देते हैं। अपनी दृष्टिसे बिखेर देते है। आहाहा....!

कलशमें लिया है। इसमें ४९वें कलशमें आयेगा कि अपने ज्ञानके परिणामको करे वह भी उपचार है। भेद हुआना, इतना ! परिणाम परिणामको करे वह यथार्थ है। आहाहा....! वह क्या कहा ? रागका ज्ञान वह तो निमित्तका कथन हुआ, ज्ञानके परिणामको आत्मा करे वह भी भेदसे-उपचारसे कहा है। वास्तवमें ज्ञानके परिणामको परिणाम षट्कारकरूपसे स्वयं पर्याय करती है–यह निश्चय है। आहाहा....! कहो, पंडितजी ! समझमें आया ? बात समझमें आये ऐसी सरल भाषा है। भगवन् ! तेरे माहात्म्यकी क्या बात करनी ! आहाहा....! प्रभुत्व गुणसे भरा भगवान वह पामर रागके परिणाममें कैसे व्याप्त होवे ? आहाहा....! ऐसा कहते हैं। रागके परिणामका ज्ञान वह आत्माका कार्य–वह भी भेदसे कथन है। परिणाम परिणामका कर्ता, परिणाम कारण और परिणाम कार्य–वहके वह

परिणाम ! कर्ता कहो या कारण कहो या कर्म कहो ! आहाहा....!

श्रोता :— तब ही तो स्वतंत्रता रहेगी न !

पूज्य गुरुदेवश्री :— स्वतंत्र ही है। प्रत्येक समयकी पर्याय सत् है जिसका कोई हेतु नहीं होता। आहाहा....! 'है' उसका हेतु क्या ? 'है' वह स्वयंसे है, उसे परसे कैसे कहना ? आहाहा....! रागका ज्ञान हुआ ऐसा कहना व्यवहार है और उस ज्ञानके परिणामको आत्मा करता है ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। आहाहा....! और ज्ञानके परिणामको आत्मा करता है–यह व्यवहार है। परिणाम परिणामको करता है। रागकी और द्रव्य-गुणकी अपेक्षा बिना ! आहाहा....!

अतः उसमें कलशकारने ४९वें कलशमें लिया है कि द्रव्य परिणामी अपने परिणामका कर्ता-व्याप्य (और) परिणाम कार्य ! ऐसा भेद करो तो होवे और न करो तो न होवे। आहाहा....! जीव तत्त्वसे पुद्गल द्रव्यका तत्त्व भिन्न है।....व्यापक, व्यापकका नहीं। भावार्थ ऐसा है कि उपचारमात्रसे जीव अपने परिणामोंका कर्ता है। आहाहा....! समझमें आता है ? सूक्ष्म है बहुत !

श्रोता :— द्रव्य-गुण दोनों हेतु नहीं है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— नहीं, कहा न ! उपचार मात्रसे द्रव्य अपने परिणामका–ज्ञानके परिणामका कर्ता है। द्रव्यसे हुआ परिणाम परद्रव्यका कर्ता तो उपचारसे भी नहीं है। रागके परिणामका यहाँ ज्ञान हुआ, वह तो ज्ञानका ज्ञान हुआ है। रागके परिणामका (ज्ञान) नहीं है। फिर भी उसे समझना है इसलिए यह भगवानकी स्तुति आदिका राग हुआ उस रागका यहाँ ज्ञान हुआ ऐसे निमित्तका कथन है। वास्तवमें ज्ञान ज्ञानसे हुआ है, रागसे नहीं और द्रव्य-गुणसे भी नहीं। आहाहा....! ऐसे ज्ञानपरिणामका स्वतंत्ररूपसे षट्कारकसे पर्याय परिणमित होता है। द्रव्यको उसका कर्ता कहना–द्रव्य स्वभावको कर्ता कहना वह भी उपचार और व्यवहार है। आहाहा....! उसकी दृष्टिसे मिलान नहीं होता था। फिर क्या बदले ? तू स्वयं ही बदल जा न अब ! आहाहा....! समझमें आए ऐसा है। सूक्ष्म है इसलिए समझमें न आये ऐसा नहीं है। हमारा 'जीतु' (आत्मधर्ममें) अंदर लिख रहा है न ! आहाहा....!

'लेकिन पुद्गल परिणामके ज्ञानको...' वास्तवमें तो वह ज्ञानपरिणाम आत्माके भी नहीं है, परिणाम परिणामके है। आहाहा....! लेकिन यहाँ समझाना है तो कैसे समझाये

उसे ? रागका कर्ता नहीं ऐसा समझाना है। कौन किसका कर्ता है ?–कि राग संबंधीका जो ज्ञान अपनेसे अपनेमें हुआ उसका वह कर्ता कहा जाता है, वह भी भेदसे ! आहाहा....! गजब बात है ! ऐसी बात सर्वज्ञके सिवा, वीतरागी संतोंके अलावा और कहीं हो सकती नहीं। आहाहा....!

'पुद्गल परिणामके ज्ञानको (आत्माके) कर्मरूपसे करता ऐसे अपने आत्माको जानते हैं...' देखा ! पहले रागको जानता है ऐसा नहीं कहा। रागके (-ज्ञानको) परिणामको करता आत्मा परिणामको (आत्माको) जानता है, रागको जानता है ऐसा नहीं। आहाहा...! व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान आता है न ! उसको यहाँ उड़ा दिया है। आहाहा...! बापू ! यह तो एक एक अक्षर सर्वज्ञकी बात है। आहा...! सर्वज्ञके मार्ग पर चलनेवाले संतों की बातें है, बापू ! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। आहाहा...!

'ऐसे अपने आत्माको जानता है...' देखा ! प्रथम परिणामको जानता है ऐसा कहा, रागको जानता है ऐसा नहीं कहा। व्यवहार रत्नत्रयका विकल्प आया....आहाहा....! उसका यहाँ ज्ञातारूपसे पर्यायमें ज्ञान करता है वह भी व्यवहार कहा और वह परिणाम अपने आत्माको जानता है वह परिणाम अपना है, रागका नहीं, रागसे हुआ नहीं। वह रागको जानता नहीं, वह परिणामको जानता है। आहाहा....! समझमें आया ? **'ऐसे अपने आत्माको जानता है'** वह पर्यायको जानता है, आत्माको जानता है, न कि रागको जानता है।

'वह आत्मा (कर्म-नोकर्मसे) अत्यंत भिन्न'–राग और शरीरके परिणामसे अत्यंत भिन्न है। **'ज्ञानस्वरूप होता हुआ'** ज्ञान-स्वरूप होता हुआ–जाननेके स्वभावरूपसे होता हुआ **'ज्ञानी'** है त' आहाहा....! यह अपने आप पढ़े तो कुछ समझमें न आवे ऐसा है, कुछका कुछ समझ लेना। आहाहा....! ऐसी बात है।

श्रोता :— ज्ञानी ज्ञानपरिणामको जानता है कि आत्माको जानता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह ज्ञान-परिणामको जानता है, आत्माको जानता है; वह आत्माके परिणाम है इसलिए आत्माको जानता है ऐसा यहाँ कहते हैं। यहाँ तो रागको जानता नहीं ऐसा बतानेके लिए आत्मा अपने परिणामको जानता है, आत्मा आत्माको जानता है ऐसा कहा है। वह उसके परिणाम हुये न ! **'अपने आत्माको जानता है'** आहाहा....! क्यों कि वह ज्ञानके परिणाम स्वज्ञेयको जानता है और परज्ञेयको जानता है ऐसा न कहकरके वह परिणाम स्वज्ञेयको जानता है और परिणाम परिणामको जानता है, इसलिए आत्मा जानता

है ऐसा कहा है। क्या कहा ? वह परिणाम स्वज्ञेयको जानता है और वह परिणाम परिणाम को जानता है इसलिए आत्मा को जानता है ऐसा कहनेमें आता है। आहाहा....! गंभीर बात है ! गाथा ही अलौकिक है। हिन्दीमें समझमें आता है या नहीं ? आहाहा....!

'अत्यंत भिन्न ज्ञानस्वरूप होता हुआ ज्ञान है...' आहाहा....! रागसे भिन्न लेकिन रागका जो ज्ञानपरिणाम हुआ वह स्वयंसे हुआ है। आहाहा....! ऐसा ज्ञानी होता हुआ आत्मा, वह ज्ञानी है। आहाहा....! समझमें आया ? टीका बहुत गंभीर है, बहुत गंभीर है, बहुत गंभीर ! ओहो...हो...!

'पुद्गलपरिणामका ज्ञान आत्माका कर्म कैसे है....' रागका ज्ञान हुआ वह है तो ज्ञानका ज्ञान, लेकिन यहाँ समझाना है न ! आहाहा....! पुद्गलपरिणामका ज्ञान अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति, स्तुतिका जो विकल्प उत्पन्न हुआ उसका ज्ञान। यह निमित्तका ज्ञान उसे यहाँ होता है न ! इसलिए है तो स्वयंसे स्व-परप्रकाशक लेकिन यह (पुद्गलपरिणाम) है ऐसा कहा। **'लोकालोकका ज्ञान'** ऐसा कहा न ! वह लोकालोकका ज्ञान नहीं, वास्तवमें तो वह ज्ञानका ज्ञान है। समझमें आया ?

श्रोता :— परप्रकाशमें तो ऐसे....

पूज्य गुरुदेवश्री :— परप्रकाशक भी अपना स्वभाव है, परकी वजहसे प्रकाशक है ऐसा नहीं है।

श्रोता :— पर संबंधीका ज्ञान.....

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह परसंबंधीका भी अपना ही परसंबंधीका ज्ञान है। सर्वज्ञ शक्तिमें वहाँ 'आत्मज्ञ' कहा है। शक्तिमें लिया है, भाई ! सर्वज्ञ वह आत्मज्ञ है, पर ही नहीं है। आहाहा....! वह सर्वज्ञ स्वभाव ही स्वका स्वतः है। उस पर्यायमें सर्वज्ञपना आया वह सर्व अर्थात् पर है ऐसा नहीं, वह आत्मज्ञ है। सर्वज्ञको आत्मज्ञ कहनेमें आता है। आहाहा....! अब ऐसी बात कहाँ (सुनने मिले) ?

'पुद्गलपरिणामका ज्ञान' अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति आदिके परिणामका ज्ञान। क्योंकि ज्ञान ज्ञानका है न ! ज्ञान रागका-परका नहीं है, फिर भी परका ज्ञान कहा वह उसको समझाते हुये कहा कि उस परिणामका ज्ञान। ज्ञानपरिणामका नहीं है, ज्ञान तो ज्ञानका है, लेकिन उस संबंधी लोकालोक जाननेमें आया, इसलिए लोकालोकका ज्ञान कहा, लेकिन (ज्ञान) लोकालोकका नहीं है, ज्ञान ज्ञानका ही है। आहाहा....!

'पुद्गलपरिणामका ज्ञान आत्माका किस प्रकार है वह समझाते हैं...' आहाहा....! **'परमार्थसे पुद्गलपरिणामके ज्ञानको और पुद्गलको घट और कुंभारके जैसे व्याप्य-व्यापकभावका अभाव होनेसे...'** आहाहा....! **'पुद्गलपरिणामके ज्ञानको'** अर्थात् रागका यहाँ जो ज्ञान हुआ उसे **'और पुद्गलको' 'घट और कुम्हारकी तरह व्याप्य-व्यापकभावका अभाव'** है। आहाहा....! कुम्हार व्यापक और घट व्याप्य नहीं है वैसे ही रागका ज्ञान वह आत्माका व्यापक है, लेकिन वह पुद्गल और रागका ज्ञान है इसलिए राग व्यापक है और ज्ञान -परिणाम व्याप्य हुआ ऐसा नहीं है। राग कहो या कर्म कहो, वह कर्म व्यापक हुआ इसलिए यहाँ ज्ञान व्याप्य हुआ ऐसा नहीं है। आहाहा....!

'परमार्थसे पुद्गल परिणामके ज्ञानको और पुद्गलको...' आहाहा....! **'घट और कुम्हारकी तरह व्याप्य-व्यापकभावका अभाव होनेसे कर्ता-कर्मपनेकी असिद्धि है।'** आहाहा....! जैसे कुम्हार घटका कर्ता नहीं, वैसे ही आत्मा रागके परिणामका कर्ता नहीं है। आहाहा....! व्यवहार रत्नत्रयके रागका कर्ता आत्मा नहीं है। आहाहा....! कथनमें व्यवहारसे कहा।

'नियमसार'में कहा है कि आत्मा स्वको जानता है और लोकालोकको जानता नहीं– ऐसा कहे तो क्या आपत्ति ? ऐसा आता है न ! व्यवहारसे ऐसा कहा कि व्यवहारसे परको जाने और व्यवहारसे स्वको न जाने, लेकिन व्यवहारसे तन्मय होकर स्वको भी न जाने ! आहाहा....! ऐसी बात है, बापू ! 'समयसार' तो 'समयसार' है ! ऐसी बात और कहीं है नहीं। आहाहा....!

'परमार्थसे पुद्गलपरिणामके ज्ञानको और पुद्गलको...' आहाहा....! यह रागको और ज्ञानको **'घट और कुम्हारकी तरह व्याप्य-व्यापकभावका अभाव होनेसे....'** आहाहा....! **'कर्ताकर्मपनेकी असिद्धि है...'** कर्म कर्ता और ज्ञानके परिणाम उसका कार्य– उसका अभाव है। पुद्गल कर्म कर्ता, राग कर्ता और रागका (ज्ञान) परिणाम उसका कार्य– उसका अभाव है। आहाहा....! आज बहुत ज्यादा सूक्ष्म विषय है। आहाहा....! ऐसा है। शांतिसे पकड़में आये ऐसी यह बात है।

'आत्मपरिणामको और आत्माको व्याप्य-व्यापकभावका सद्भाव होनेसे...' देखा ! आत्माके परिणामको अर्थात् जो ज्ञानके परिणाम हुये उसे और आत्माके **'व्याप्य-व्यापकभावका सद्भाव होनेसे'** आत्मा व्यापक है और ज्ञानके, आनंदके, दर्शनके परिणाम है वह उसका व्याप्य है—इसका सद्भाव है। आहाहा....! **'कर्ताकर्मपना है...'** इसलिए

सिद्ध किया। आत्मा कर्ता और ज्ञानके परिणामका कार्य उसका व्यापक है, भेदसे। आहाहा....!

'**आत्मद्रव्य स्वतंत्र व्यापक होनेसे...**' भगवान आत्मा कर्ता अर्थात् स्वतंत्ररूपसे व्यापक अर्थात् प्रसरता होनेसे....व्यापक अर्थात् कर्ता होनेसे....'**आत्म परिणामका अर्थात्....**' आत्मपरिणामका अर्थात् '**पुद्गलपरिणामके ज्ञानका कर्ता है...**' आहाहा....! समझानेमें क्या शैली आयी है। आहाहा....! '**आत्मद्रव्य स्वतंत्र व्यापक होनेसे आत्मपरिणाम...**' अर्थात् वीतरागी परिणाम ज्ञानके परिणाम, श्रद्धाके परिणाम, शांतिके परिणाम, आनंदके परिणाम–ज्ञानके परिणाम अर्थात् यह सब परिणाम।

'**अर्थात् पुद्गलपरिणामके ज्ञानका कर्ता है...**' आहाहा....! वह रागके ज्ञानका आत्मा कर्ता है, रागके ज्ञानका आत्मा कर्ता है। आहाहा....! रागका (कर्ता) नहीं। '**और पुद्गलपरिणामका ज्ञान...**' अर्थात् रागका ज्ञान समझाना है न ! '**वह व्यापक द्वारा स्वयं व्याप्त होता होनेसे...**' आहाहा....! '**कर्म है....!**' वह आत्माका कार्य है। पुद्गलपरिणामका ज्ञान अर्थात् भगवानकी स्तुति आदिके रागका ज्ञान '**वह व्यापक द्वारा स्वयं व्याप्त होता होनेसे...**' वह आत्मा द्वारा स्वयं कर्ता होनेसे '**व्याप्तरूप होता होनेसे**' अर्थात् कार्यरूप होता होनेसे कार्य है। कार्यरूप होनेसे कार्य है। '**कर्म है**' ऐसा है। आज तो बहुत ही सूक्ष्म आया, भाई !

श्रोता :— दुबारा लिजीये।

पूज्य गुरुदेवश्री :— यह आता है वह शब्द-शब्दका भाव आता है। आहाहा....! ऐसा है। '**इसप्रकार (ज्ञाता पुद्गलपरिणामका ज्ञान करता है...)**' आहाहा....! भगवान आत्मा रागका ज्ञान करता है इसलिए '**ऐसा भी नहीं है कि पुद्गलपरिणाम ज्ञाताका व्याप्य है...**' वह रागका ज्ञान करता है इसलिए राग-पुद्गलपरिणाम जो राग वह ज्ञाताका व्याप्य ऐसा नहीं है। आहाहा....!

फिरसे....'**इसप्रकार (ज्ञाता पुद्गलपरिणामका ज्ञान करता है इसलिए) ऐसा भी नहीं है कि पुद्गल परिणाम ज्ञाताका व्याप्य है...**' रागका ज्ञान करता है इसलिए राग आत्माका व्याप्य है–ऐसा नहीं है। रागका यहाँ ज्ञान करता है इसलिए राग आत्माका व्याप्य है, आत्मा व्यापक है और यह ज्ञान उसका व्याप्य है ऐसा नहीं है। राग व्यापक है, कर्म व्यापक है और ज्ञानके परिणाम व्याप्य है ऐसा नहीं है। आहाहा....! यह 'समयसार' !

व्याप्यरूप होता होनेसे, इसप्रकार ज्ञाता-आत्मा पुद्गलपरिणामका अर्थात् रागका ज्ञान करता है इसलिए ऐसा भी नहीं, रागका ज्ञान करता है इसलिए पुद्गलपरिणाम आत्माका व्याप्य (अथवा) रागका ज्ञान करता है इसलिए राग आत्माका परिणाम व्याप्य है ऐसा नहीं है। रागका ज्ञान करता है इसलिए राग आत्माका कार्य-व्याप्य है ऐसा नहीं है। आहाहा....! ऐसा सूक्ष्म है। भाई ! आहाहा....! 'समयसार', 'समयसार' !!

'इसप्रकार' आत्मा रागका ज्ञान करता है इसलिए ऐसा भी नहीं है कि राग जो पुद्गलपरिणाम वह ज्ञाताका व्याप्य है, आहाहा....! ज्ञाताका व्याप्य तो ज्ञानके परिणाम है, रागका ज्ञान हुआ इसलिए वह (राग) ज्ञाताका व्यापक है ऐसा नहीं आहाहा....!

श्रोता :— राग तो पुद्गल परिणाम है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह तो पुद्गल कहा। पुद्गल परिणाम....परिणाम अभी तक कहा लेकिन अब छोटा करके उसे पुद्गल द्रव्य कह देंगे। आहाहा....!

श्रोता :— राग..... ही नहीं है तो व्याप्य कैसे होवे ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— नहीं है, कार्य ही नहीं है, यहाँ तो रागका ज्ञान करते हैं न ! ऐसा कहा है न ? रागका ज्ञान है न ? रागका ज्ञान है न ? तो राग उसका व्याप्य हुआ कि नहीं ?-नहीं। आहाहा....! ये सब 'नाईरोबी'में कहाँ सुनने मिले ऐसा है ! आहाहा....!

'पुद्गलपरिणाम ज्ञाताका व्याप्य है; क्यों कि...' 'ऐसा भी नहीं कि पुद्गलपरिणाम ज्ञाताका व्याप्य है' समझमें आया...? अब तक पुद्गल परिणाम कहते थे, अब उसे पुद्गल कह दिया। आहाहा....! भगवानकी भक्ति और स्तुतिका भाव पुद्गल है। आहाहा....! पुद्गलके परिणाम वह पुद्गल है ऐसे अभेद कर दिया, अभेद कर दिया। **'क्योंकि पुद्गलको और आत्माको'** अर्थात् पुद्गलके परिणाम वह पुद्गल, उसे पुद्गल कहा। **'और आत्माको ज्ञेय ज्ञायक संबंधका व्यवहार मात्र होने पर भी...'** आहाहा....! रागको अर्थात् पुद्गलको और आत्माको ज्ञेय, राग ज्ञेय है और आत्मा ज्ञायक है, ऐसे संबंधका व्यवहारमात्र होने पर भी....आहाहा....! **'लेकिन पुद्गल परिणाम जिसका निमित्त है'** किसका (निमित्त) ?-ज्ञानका। ज्ञान होता है उसमें निमित्त है। **'ऐसा जो ज्ञान' 'पुद्गल परिणाम जिसका निमित्त है ऐसा जो ज्ञान...'** आहाहा....! राग वह पुद्गल, वह ज्ञानके परिणामको निमित्त है। ऐसा जो ज्ञान वही ज्ञाताका व्याप्त है। वही ज्ञाताका कार्य और व्याप्य है। आहाहा....! वह उसकी पर्याय है, वह उसका कार्य है, वह उसका व्याप्य है।

आहाहा....! इसलिए ज्ञान ही ज्ञाताका कर्म। लो ! बहुत सूक्ष्म आया ! आहाहा....! इसलिए ज्ञान ही ज्ञाताका कर्म लो ! बहुत सूक्ष्म आया ! आहाहा....! क्या कहा वो समझमें आया ?

आत्मा ज्ञाता है और रागका ज्ञान है इसलिए राग व्यापक और ज्ञान-पर्याय व्याप्य ऐसा नहीं है। रागको जानता है ऐसा कहा न ! इसलिए राग व्यापक है और यहाँ जाननेका कार्य व्याप्य है ऐसा नहीं है। आत्माका व्याप्य तो ज्ञाताके परिणाम है, वह आत्माका व्याप्य है, वह उसका व्यापक है, वह भी भेदसे। वास्तवमें तो ज्ञाताके जो परिणाम है वह रागके नहीं वैसे ही द्रव्य-गुणके भी नहीं है। आहाहा....! वह परिणाम परिणामीके हैं। फिर भी ज्ञाताका वह व्याप्य है ऐसा कहना वह व्यवहार है। आहाहा....! राग उसका व्याप्य है ऐसा तो है ही नहीं। ओहो...! बहुत अच्छी बात है। आहाहा....! टीका तो टीका है न ! 'अमृतचंद्राचार्य' ओहोहो....! वस्तुकी स्थिति ऐसी ! वस्तुकी मर्यादा ! मर्यादा पुरुषोत्तम पुरुष आत्मा ! आहाहा....!

वह अपने ज्ञानपरिणामका कर्ता। रागका ज्ञान (हुआ) इसलिए रागका व्याप्य ज्ञान, ऐसा कहा न ! व्यवहार रत्नत्रयका ज्ञान कहा न ! इसलिए राग व्यापक और ज्ञानपरिणाम व्याप्य ऐसा नहीं है। आहाहा....! वह तो ज्ञानपरिणाम व्याप्य और आत्मा व्यापक ! इसप्रकारसे सिर्फ व्यवहारसे सिद्ध करते हैं। आहाहा....! वो तो व्यवहारसे भी नहीं। आहाहा....! विशेष कहेंगे।

(श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❀ तू चैतन्यमूर्ति ज्ञाता-द्रष्टा आनन्दकन्दमूर्ति है ऐसा भगवानने देखा है; तू रागवाला है ऐसा भगवानने तुझे नहीं देखा। परन्तु मैं ज्ञाता-द्रष्टा हूँ ऐसा तूने अपनेको न देखकर परको जानते हुए तुझमें जो रागादि होते हैं वे स्वभावके कारण नहीं हुए है या परको जाननेसे नहीं हुए है तथापि परवस्तुको जानते हुए यह वस्तु मुझे अच्छी लगती है और यह बुरी लगती है ऐसी मिथ्याभ्रान्ति तूने स्वयं पैदा की है। ११३.

–द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर पर्यायदृष्टि विनश्वर

३० श्री समयसार, गाथा—६१-६२, प्रवचन नं. १३५, दि. १३-११-१९७८

'समयसार' ६१वीं गाथाका भावार्थ है, क्या कहते हैं? सुनो! **'द्रव्य की सर्व अवस्थामें द्रव्यमें जो भाव व्याप्त होते हैं उन भावोंके साथ द्रव्यका तादात्म्यसंबंध कहलाता है।'** क्या कहा? द्रव्य नाम वस्तु-पदार्थ, उस द्रव्यके साथ सर्व अवस्थाओंमें, अनादि अनंत जितनी अवस्था है उन सब अवस्थाओंमें जो भाव व्याप्त होता है, उस भावके साथ द्रव्यका तादात्म्यसंबंध–तद्रूप संबंध है।

जैसे कि आत्माकी प्रत्येक अवस्थामें ज्ञान, आनंदादि रहते हैं, तो ज्ञान और आनंदादिके साथ (जिसका) तादात्म्यसंबंध है, उसे आत्मा कहते हैं। राग—दया, दानादि भाव आत्माकी प्रत्येक अवस्थामें नहीं है, इसलिए वह पुद्गल अवस्थामें गिने जाते हैं। पुद्गलके साथ तादात्म्यसंबंध है। आहाहा....!

प्रथम सिद्धांत तो यह कहा कि कोई भी द्रव्य-वस्तु जो है उसकी सर्व अवस्थाओंमें जो रहे और व्याप्त होवे तो उस द्रव्यके साथ उस भावको तादात्म्य कहते हैं; लेकिन कभी हो और कभी न हो तो उस द्रव्यके भावको तादात्म्यसंबंध नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदिके रागादिभाव जो है वह आत्माकी प्रत्येक अवस्थामें रहते नहीं; संसार अवस्थामें है लेकिन मोक्ष अवस्थामें नहीं है, इसलिए रागका आत्माके साथ तादात्म्य-तद्रूप संबंध नहीं है। आहाहा....! उस रागका पुद्गलके साथ तादात्म्यसंबंध है। आहाहा....! ऐसी बात है। सूक्ष्म बात है। भाई!

'पुद्गलकी सर्व अवस्थाओंमें पुद्गलमें वर्णादिभाव....' वर्ण अर्थात् रंग, गंध, रस, स्पर्श, शुभभाव, अध्यवसाय गुणस्थान आदि **'व्याप्त है....'** यहाँ तो पुद्गलमें व्याप्त है ऐसा कहा है। आहाहा....! शरीर, वाणी, मन, कर्म वह जड़ पर्याय पुद्गल है। यहाँ कर्म जो पुद्गल है उसके साथ वह पुण्य आदि परिणाम-शुभभाव (व्याप्त है)। जहाँ जहाँ कर्म है, वहाँ वहाँ राग है, जहाँ राग है वहाँ कर्म है। ऐसे कर्मके साथ रागका तादात्म्यसंबंध है। आहाहा....! ऐसी बात है। अब यहाँ तो वह दया, दान, व्रत, भक्ति आदिके भाव धर्म है और धर्मका कारण है ऐसा मानते हैं उनकी दृष्टि विपरीत-मिथ्या है। आहाहा....! समझमें आया?

'पुद्गलकी सर्व अवस्थाओंमें...' उसका मतलब यही की अंदर में जो भेद पड़

रहे है न ! गुणकी पर्यायमें भेद पडता है–लब्धिस्थान, संयम आदि लिये न ! भेद भी अभेद आत्माके साथ व्यापक नहीं। किसी समय हो और किसी समय न हो, वह आत्माके साथ व्यापक नहीं है। शरीर, वाणी, मन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्शको पुद्गलके साथ तादात्म्यसंबंध है, वैसे ही शुभराग—दया, दानके भावको पुद्गलके साथ संबंध है। साधककी संयमकी पर्याय, लब्धिस्थान भिन्न अवस्था होनेसे पुद्गलके साथ संबंध है, अभेद आत्माके साथ संबंध नहीं है। आहाहा....! ऐसी बात है। अरे...! सम्यग्दर्शन आदि जो पर्याय है वह भेदरूप है, अंतर त्रिकाली ज्ञानके साथ वह अभेद नहीं है। आहाहा....! कठिन बात है। चौदह प्रकारकी जो मार्गणा, ज्ञानके भेद, दर्शनके भेद, चारित्र के भेद—यह सब भेद पुद्गलके साथ संबंध रखते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा....! सुननेवालेको भी (गंभीरता रखनी चाहिये)। आहाहा....! क्या कहा समझमें आया ? उसे (सुननेवालेको) ध्यान रखना चाहिये। यह तो वीतरागकी वाणी है। आहाहा....! यह तो सर्वज्ञ परमात्माका कथन है, वह संत-दिगम्बर संत कह रहे हैं। आहाहा....!

यहाँ कहते हैं कि **'द्रव्यकी सर्व अवस्थाओंमें द्रव्यमें जो भाव व्याप्त होते हैं उन भावोंके साथ द्रव्यका तादात्म्य(–तद्रूप)संबंध कहलाता है।'** कैसी बात...! अब इतनी बात करते कहते हैं कि **'पुद्गलकी सर्व अवस्थाओंमें'** आहाहा....! कर्म जो जड़-पुद्गल है उसकी सर्व अवस्थाओंमें रंग, गंध, शुभभाव, गुणस्थानभेद आदि भाव (व्याप्त है)। **'व्याप्त होते हैं इसलिए वर्णादिभावोंके साथ पुद्गलका तादात्म्यसंबंध है।'** आहाहा....! पुद्गलके साथ (संबंध है)। भेद, राग और जड़की पर्याय–इन सबका पुद्गलके साथ तादात्म्यसंबंध है। आहाहा....! **'जीव-अजीव अधिकार'** है न !

श्रोता :— उसमेंसे नीकल जाते हैं इसलिए उसके नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— उसमें है ही नहीं। अभेदके साथ तादात्म्यसंबंध है। भेद पडा वह तादात्म्यसंबंध नहीं। भेद तो थोडे काल रहता है, बादमें नहीं रहता। उसकी प्रत्येक अवस्थामें भेददशा रहती नहीं है, इसलिए भेद अवस्था पुद्गलकी है। राग पुद्गलका है। आहाहा....! सूक्ष्म बात है, भाई ! परमात्माने कहा हुआ जैन दर्शन समझना सूक्ष्म है, सूक्ष्म है। यहाँ जीव-अजीव अधिकार है।

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मामें जो दया, दान, आदि राग होता है और पर्यायमें जो भेद पड़ता है वह आत्माकी प्रत्येक अवस्थामें नहीं रहते। इसलिए सर्व अवस्थामें रहनेवाले पुद्गलके साथ उनका संबंध है। आहाहा....! समझमें आता है ? सूक्ष्म बात है, भाई !

'संसार अवस्थामें जीवमें...' भेद, राग, रंग आदि भाव **'किसी प्रकारसे...'** पर्यायनयसे–व्यवहारनयसे समयकी स्थिति देखकरके व्यवहारसे कहनेमें आते हैं। **'लेकिन मोक्ष अवस्थामें जीवमें वर्णादिभावो...'** गुणस्थान, भेद, दया, दान, आदि रागभाव मोक्ष अवस्थामें **'सर्वथा नहीं होनेसे वर्णादिभावोंके साथ जीवका तादात्म्यसंबंध नहीं है...'** आहाहा....! जैसे अग्नि और उष्णताको तादात्म्यसंबंध है, वैसे भगवान आत्माके साथ दया, दान, राग और गुणस्थान भेदका तादात्म्यसंबंध नहीं है। आहाहा....! ऐसी बात है।

'वर्णादिभावोंके साथ जीवका तादात्म्यसंबंध नहीं है यह न्याय है'। यह बात न्यायसे सिद्ध की है। आहाहा....! जिसको आत्मद्रव्य दृष्टिमें लेना हो उसे अभेदकी दृष्टि करनी होगी। आहाहा....! जिसको सम्यग्दर्शन प्राप्त करना हो–धर्मकी पहली सीढ़ी चढ़ना हो उसे आत्मद्रव्य अभेद–पूर्ण गुणका अभेद आत्मद्रव्य दृष्टिमें लेना होगा। ३७६में आ गया। पूर्ण गुणका अभेद पूर्ण द्रव्य, आहाहा....! उसे दृष्टिमें लेना (होगा)। सम्यग्दर्शनका विषय पूर्ण गुणसे पूर्ण भरा हुआ द्रव्यस्वभाव है, वह सम्यग्दर्शनका विषय है। आहाहा....!

सम्यग्दर्शनका विषय वर्तमान राग भी नहीं। भेद भी नहीं, मनुष्यपना आदि संहनन, संस्थान भी नहीं। आहाहा....! अभेद चिदानंद भगवान पूर्ण स्वरूप जिसके साथ अनंत गुणोंका तादात्म्यसंबंध है, भगवान आत्माके साथ अनंत ज्ञानादि गुणोंका तद्रूप–तादात्म्यस्वरूप है जिसके उपर दृष्टि करनेसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा....! अभी तो धर्मकी पहली सीढ़ीकी बात है। चारित्रकी बात तो अभी बहुत दूर है, बापू ! आहाहा....! ६१वीं गाथाका भावार्थ हो गया। अब ६३वीं गाथा।

अब **'ऐसा मिथ्या अभिप्राय कोई करे...'** कोई ऐसी मिथ्याश्रद्धा–अभिप्राय प्रगट करे कि **'जीवका वर्णादिके साथ तादात्म्य है...'** आत्माका रंग और रागके साथ तादात्म्य है ऐसा कोई मिथ्या अभिप्राय करे तो **'उसमें दोष आता है ऐसा गाथामें बताया है।'** कोई ऐसा कहे कि भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभावके साथ दया-दान आदि राग, गुणस्थान आदि भाव और पर्यायके भेदका तादात्म्यसंबंध है, ऐसा कोई भ्रम करे तो उसमें यहाँ दोष दिखाते हैं। आहाहा....! ६२वीं (गाथा)

जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई॥६२॥

यह भाव सब है जीव जो, ऐसा ही तू माने कभी;
तो जीव और अजीव में कुछ, भेद तुझ रहेता नहीं॥६२॥

वह रागादि और पुद्गलादिके परिणाम तेरे हैं ऐसा माने....आहाहा....! सूक्ष्म गाथायें हैं। पूरा 'समयसार' ही सूक्ष्म है। सूक्ष्ममें सूक्ष्म भगवान आत्मा है। आहाहा....! चैतन्य भगवान अनंत गुणोंसे तादात्म्यस्वरूप प्रभुके उपर दृष्टि देनेसे धर्मकी सम्यग्दर्शनकी प्रथम शरूआत होती है। दूसरे लाख-करोड़-अनंत दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा करे उससे सम्यग्दर्शन होता नहीं, वह तो राग है। आहाहा....! वह तो पुद्गलके परिणामके साथ तादात्म्य है। जहाँ जहाँ पुद्गल वहाँ वहाँ भेद और राग है ऐसा कहते हैं। जहाँ जहाँ भगवान आत्मा, वहाँ वहाँ राग और पुद्गल, भेद नहीं। आहाहा....! ऐसा तो अभी सुनना भी मुश्केल लगे ! वीतराग जिनेश्वर परमेश्वर त्रिलोकीनाथ दिव्यध्वनिमें ऐसा कहते थे वह बात यह 'कुंदकुंदाचार्य', 'अमृतचंद्राचार्य' दिगम्बर संत जगतके सामने एलान कर रहे हैं। आहाहा....! आहाहा....! ऐसी बात और कहीं नहीं। आहाहा....! ओहोहो....! अलौकिक बात है, प्रभु ! शांतिसे समझना !

'जैसे वर्णादि' रंग, गंध, रागादिभाव **'क्रमसे आविर्भाव (प्रगट होना, उपजना) और तिरोभाव (छिप जाना, नाश होना)को प्राप्त होती हुई ऐसी उन उन व्यक्तियोंके द्वारा (अर्थात् पर्यायोंके द्वारा) पुद्गलद्रव्यके साथ ही साथ घूमते हुये...'** आहाहा....! वह तो कल सुबह कहा था न कि निमित्तसे हुआ वह वास्तवमें तो अपनेसे हुआ है। उस समय गुणस्थानभेद-राग उत्पन्न होनेका जन्मक्षण है तो उसमें उत्पन्न हुये हैं, लेकिन वह जो उत्पन्न हुये हैं वह आत्मामें त्रिकाल व्याप्त नहीं है। इस कारणसे रंग, गंध और दया, दानके साथ पुद्गलके साथ, पुद्गल जहाँ व्यक्त होता है वहां होता है और उसमें व्याप्त होते हैं। आहाहा....! ऐसा काम....!

एक ओर ऐसा कहना कि पुण्य और पापके भाव पर्यायमें होते हैं और उसका कर्ता-भोक्ता जीव है, यह ज्ञान-प्रधान कथन है। यहाँ दृष्टिप्रधान कथनमें...आहाहा....! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पंचमहाव्रतके भाव हो (वह सब पुद्गलके साथ व्याप्त हैं), प्रभु ! प्रभु कहते हैं वह बात दिगंबर संत कहते हैं। वह केवलीके मार्ग पर चलनेवाले हैं। केवली परमात्माने जो कहा उसकी साक्षीमें कहते हैं। आहाहा....! प्रभु तू एकबार सुन ! वह राग और पुण्य और पापके भाव आदिकी प्रगटता होती है....आहाहा....! उपजता है और नाश होता है वह सब पुद्गलके साथ है। आहाहा....! वह उत्पाद और व्यय तेरे साथ (व्याप्त) नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा....! समझमें आया ? ऐसा सूक्ष्म तत्त्व !

दया, दान, व्रत, शुभ स्वाध्याय आदि करना–उसका राग होना, श्रवणका जो राग

आता है वह पुद्गलके साथ उत्पन्न होता है और पुद्गलमें व्यय होता है, वह आत्माके उत्पाद-व्यय नहीं है। आहाहा....! समझमें आया ? यहाँ द्रव्यस्वभावका वर्णन है न ! और जीवद्रव्यका वर्णन है उसमें अजीवके भेद नहीं। इसलिए वह भेद और राग भी अजीव है। आहाहा....! देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धा, शास्त्रका ज्ञान, विकल्प, नव तत्त्वकी श्रद्धाका राग, छ कायकी दयाका राग वह सब कहते हैं कि पुद्गलके साथ उत्पन्न होता है और पुद्गलमें ही नष्ट होते हैं, अपने साथ नहीं। भाई ! ऐसी बात दिगम्बर संतके सिवा कहीं नहीं। आहाहा....! समझमें आया ? गजब बात है ! आहाहा....! कितना स्पष्ट कर दिया है !

उत्पाद-व्यय है लेकिन वह द्रव्य-स्वभावमें नहीं है। इसलिए रागकी उत्पत्ति और रागका नाश पुद्गलके साथ संबंध रखता है। आविर्भाव और तिरोभाव, क्या कहा ? आया न ! रागादिका उत्पन्न होना-आविर्भाव और रागादिका तिरोभाव-नाश होना **'ऐसी उन उन व्यक्ति द्वारा (अर्थात् पर्यायों द्वारा) पुद्गल द्रव्य के साथ-साथ रहते हुये....'** आहाहा....! शुभ-अशुभ राग जो उत्पन्न होता है और व्यय-नाश होता है, कहते हैं कि पुद्गलके साथ उसकी उत्पत्ति है। आहाहा....! आविर्भाव और तिरोभाव-प्रगट होना और नष्ट होना वह सब पुद्गलके साथ है। आहाहा....!

'उन उन व्यक्तियोंके द्वारा जीवके साथ ही साथ रहते हुये, जीवका वर्णादिके साथ तादात्म्य प्रसिद्ध करते हैं...' वह पुद्गलके साथ तादात्म्य प्रसिद्ध करता है, प्रसिद्ध करता है, वह पुद्गलका विस्तार है। आहाहा....! भगवान सच्चिदानंद प्रभुका वह विस्तार नहीं है, स्वभावका विस्तार नहीं है, यहाँ यह लेना है। भगवान चिदानंद प्रभु अखंडानंद जिनस्वरूपी प्रभु ! उन जिनस्वभावी भगवानका वह रागादि विस्तार नहीं है। आहाहा....! रागादिकी प्रसिद्धि वह जिनस्वरूप भगवान आत्माकी प्रसिद्धि नहीं है। आहाहा....! देखो यह संत ! जो सर्वज्ञ कहते हैं, वही दिगंबर संत कहते हैं। आहाहा....! और वह भी पंचमकालके जीवको कह रहे हैं। यह कोई चोथे कालके साधु नहीं है और चोथे कालके (जीवको) नहीं समझा रहे। आहाहा....! पंचमकालके जीवको पंचमकालके संत (समझा रहे हैं)। आहाहा....! कोई ऐसा कहे कि यह बात तो चोथेकालकी है और चोथेकालमें समझनेकी है, तो ऐसा नहीं है, प्रभु ! सुन तो सही पंचमकाल में भी तू आत्मा है कि नहीं ? आत्मा क्या है ? अपने गुणोंसे अभेद वह आत्मा है। अभी ऐसा है !

यहाँ कहते हैं कि जिसे अभेद आत्माकी दृष्टि करनी हो उसे यह रागादि परिणाम अजीवके परिणाम है (ऐसा समझना)। आहाहा....! अब यहाँ ऐसा कह रहे हैं कि अभी

शुभयोग ही होता है, धर्म नहीं होता ! अर...र...र...! और शुभयोग ही अभी धर्मका कारण है ! अरे प्रभु ! यह तू क्या कर रहा है, प्रभु !

वह पुद्गलमें व्याप्त होनेवाले भाव अपने हैं और उसमें लाभ मानना वह तो महामिथ्यात्व–अज्ञान है। आहाहा....! अंदर है या नहीं ? क्या सुन रहे हो ? वह कहते थे न...ऐसा मार्ग है। बापू ! आहाहा....! यह 'कुंदकुंदाचार्यदेव' कह रहे हैं, भगवानके पास गये थे। 'सीमंधर' परमात्मा त्रिलोकनाथ महाविदेहमें विराजमान है, उनके पास गये थे। ओ...हो...हो...! आठ दिन रहे थे। वहाँसे आनेके बाद शास्त्र बनाये थे और उनके एक हजार वर्ष बाद 'अमृतचंद्रदेव' (हुये)। यह 'कुंदकुंदाचार्यदेव' है और यह 'अमृतचंद्राचार्यदेव' है। जिन्होंने यह टीका बनायी है। आहाहा....!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु ! शांतिसे सुन ! आहाहा....! वह शुभ-अशुभ रागकी उत्पत्ति और व्यय पुद्गलके साथ संबंध रखता है, भगवान आत्माके साथ उसका संबंध नहीं है। वह संबंध हो तो (आत्माके साथ) त्रिकाल रहने चाहिये। रागकी उत्पत्ति और रागका व्यय आत्माके साथ त्रिकाल रहना चाहिये, (लेकिन वह त्रिकाल रहते नहीं) इसलिए वह आत्माकी चीज नहीं। पैसै, शरीर, धूल, लक्ष्मी, आदि पर तो कहीं रह गये, वह पुद्गल तो पर रह गये, उसके साथ यहाँ कोई संबंध नहीं है। आहाहा....! शरीर, मिट्टी, धूल वह तो अंदर आ गया। वज्रनाराचसंहनन, औदारिक, वैक्रियक शरीर आ गया है। आहाहा....! वह सब तो पुद्गलके साथ (है)। वह पर्याय उत्पन्न होती है और व्यय होती है वह पुद्गलके साथ है। यहाँ तो (कहते हैं कि) राग उत्पन्न होता है और रागका व्यय होता है उसका संबंध भगवान आत्माके साथ नहीं है। जो आत्माके साथ संबंध हो तो हमेशा रहना चाहिये। आहाहा....!

अरे ! यह सुनने मीले नहीं और मनुष्यपना चला जा रहा है। कहाँ जा करके अवतार लेंगे ? आहाहा....! यह संस्कार अगर अंतरमें नहीं पडेगा तो चोरासीके अवतार में कहाँ जन्म होगा ? भाई ! आहाहा....! भगवान तो अनादि-अनंत नित्य रहनेवाला है इसलिए यह भव बदलके कहीं जायेगा तो सही ! आहाहा....! तो जिसने, राग मेरा है और रागसे मुझे लाभ होगा (ऐसा माना है ऐसे) मिथ्यादृष्टि कहाँ जायेंगे ? मिथ्यात्वके (उदयमें) नरक और निगोदके जन्म करेगा ! आहाहा....!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु ! आहाहा....! जिस कारणसे तीर्थंकर गोत्रका बंध हो वह भाव राग है, प्रभु ! सुनो ! आहाहा....! वह पुद्गलके साथ संबंध रखता है। उसमें है कि

नहीं ? आहाहा....! जिस भावसे तीर्थंकर गोत्रका बंध हो वह भाव शुभराग है। बंधका कारण कोई धर्म नहीं है। है तो वह राग ही ! षोडशकारण भावना...आहाहा....! वह राग अजीव है। जिसके फलमें अजीवका बंध हो वह राग पुद्गलके साथ संबंध रखता है। उसके उत्पाद-व्ययके साथ पुद्गलद्रव्यका संबंध है। आहाहा....! भाई ! ऐसी सूक्ष्म बात है ! लोगोंको ऐसा लगे कि यह 'सोनगढ'का है, लेकिन यह 'सोनगढ'का है या भगवानका है ? आहाहा....!

प्रभु तेरे घरको देखनेकी बात कर रहे हैं, घरको देख ! उसमें रागकी और द्वेषकी उत्पत्ति और व्यय नहीं है। आहाहा....! तेरा नाथ भगवान है, वहाँ तो आनंदकी उत्पत्ति और आनंदका व्यय है। उसके साथ भगवानको तो संबंध है। आहाहा....! भाई ! चाहे तो पंचमहाव्रतके विकल्पका राग हो, चाहे तो दया, दान, भक्तिका राग हो....आहाहा....! उस रागका उपजना–प्रगट होना, व्यय होना–नाश होना ऐसा उत्पाद-व्ययका संबंध, आविर्भाव-तिरोभाव पुद्गलके साथ संबंध रखता है। आहाहा....! ऐसा अंतरमें उतरना जगतको दुष्कर लगे !

श्रोता :— आचार्यको भय नहीं लगा कि कोई निश्चयाभासी हो जायेगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— दुनिया दुनियाका जाने ! नग्न है वह बादशाहसे दूर है, उनको दुनियाकी क्या पड़ी है ! मार्ग यह है, वह तो एक भव करके मोक्ष चले जानेवाले हैं। दिगम्बर संत 'कुंदकुंदाचार्यदेव' उनको जगतकी कुछ पड़ी नहीं। समाज समतोल रहेगा या नहीं ? (उसकी दरकार उनको नहीं) आहाहा....!

तीनलोकके नाथ सर्वज्ञ परमात्माने कहा वह यह संत जगतको कहते हैं। आहाहा....! ऐसी वाणी और ऐसा भाव दिगम्बर शास्त्रके अलावा कहीं नहीं, प्रभु ! लेकिन उनमें रहेनेवालोंको भी उनकी मालूम नहीं। आहाहा....! भगवान 'अमृतचंद्राचार्यदेव', 'कुंदकुंदाचार्यदेव'की पुकार है प्रभु ! तेरी प्रसिद्धि रागसे हो सकती है ? आहाहा....! रागकी प्रसिद्धि तो पुद्गलकी प्रसिद्धि है ऐसा कहते हैं। आहाहा....! गजब बात करते हैं न ! ज्ञान और आनंदकी पर्यायसे तेरी प्रसिद्धि होती है। प्रभु ! द्रव्यस्वभावके अभेद पर दृष्टि होनेसे जो शांति और आनंदकी पर्याय उत्पाद-व्यय होती है वह तेरी प्रसिद्धि है। इस टीकाका नाम आत्मख्याति है न ! इस टीकाका नाम आत्मख्याति है। यह तो अलौकिक बात है, भाई ! 'समयसार' अर्थात् जगत्चक्षु ! अजोड़चक्षु ! आहाहा....! पंचमकालके संत और यह टीकाकार भी अभी एक हजार साल पहले ही हुये हैं। 'कुंदकुंदाचार्यदेव' तो दो हजार साल

पहले हुये और यह टीकाकार एक हजार साल पगले हुये। आहाहा....! जगतकी दरकार न करके 'सत् यह है' ऐसे सत्यके डंके बजाये हैं। आहाहा....!

प्रभु ! एकबार यह आया था न ! 'प्रभुता तारी तो खरी, मुजरो मुज रोग ले हरि !' प्रभु ! तेरी प्रभुता तो तब कहें कि निर्मल पर्यायकी उत्पत्ति और व्यय हो वह तेरी प्रभुता है। रागकी उत्पत्ति और व्यय होना तेरी प्रभुता नहीं, नाथ ! आहाहा ! वह तो दूसरा कहा था। आहाहा....! 'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी' हे नाथ ! तेरी प्रभुता तो तब कही जाये कि जब 'मुझरो मुझ रोग ले हरी' रागकी उत्पत्ति मेरेमें नहीं (ऐसा विश्वास हो)। रागकी उत्पत्ति और व्यय मेरेमें नहीं है , आहाहा....! भाई ! यह बच्चेको उत्पन्न करना और पैसे उत्पन्न करना, यह सब क्या है ? यह भ्रमणा कैसी है ? आहाहा....! अरेरे....! उसे कहाँ जाना है ? आहाहा....! ऐसी बात है, भाई ! आहाहा....!

वह तो उसका (–पुद्गलका) विस्तार है ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं ? शुभ-अशुभ–दया, दान, व्रत, भक्ति आदिके भाव तो पुद्गलका विस्तार है। पुद्गलकी प्रसिद्धि है, पुद्गल प्रसिद्ध होता है। उसमें भगवान प्रसिद्ध होता नहीं। आहाहा....! क्या उसकी गंभीरता ! कैसा उस टीकाका मर्म ! आहाहा....! 'अमृतचंद्राचार्यदेव'की अमृतवाणी है ! दिगम्बर संत अर्थात्....आहाहा....! भगवानको १००८ नाम दिये हैं न ! 'आदिपुराण' के रचयिता 'जिनसेनाचार्य'ने भगवानको १००८ नाम दिये हैं। वहाँ प्रभुको ऐसा कहा कि प्रभु ! आहाहा....! आप तो मुमुक्षु हो ! प्रभु ! आप मनीष हो ! मनीष अर्थात् प्रभु ! आप ज्ञानके ईश्वर हो ! प्रभु ! आपके गुणानुवाद कैसे करें ! आहाहा....! ऐसी बात प्रभु ! आहाहा....! जिसकी पर्यायमें अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य आदि गुण प्रगट हो चुके हैं....आहाहा....! परमात्मा हजार पंखसे प्रगट हो चुके हैं। गुलाब जैसे हजार पंखसे खिलता है, वैसे भगवान अनंत पंख-गुणोंसे खीला-प्रगट हुआ है, वह उसकी प्रसिद्धि है। अनंत आनंद, अनंत ज्ञानगुण, उत्पाद-व्यय होना, गुणके आश्रयसे (उत्पाद-व्यय) होना वह आत्माका स्वभाव है। परके आश्रयसे जो रागादि हो वह आत्माका स्वभाव नहीं। आहाहा....! ऐसा दुष्कर लगे लेकिन क्या हो भाई ! मार्ग तो यही है।

त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर इन्द्रों और गणधरोंके बीच बता रहे थे वह यह संत कह रहे हैं। आहाहा....! भगवान महाविदेहमें विरामजान है वहाँ यह बात बता रहे थे, वही बात 'कुंदकुंदाचार्यदेव', 'अमृतचंद्राचार्य' यहाँ बता रहे हैं। 'कुंदकुंदाचार्यदेव' तो वहाँ गये थे, लेकिन 'अमृतचंद्राचार्यदेव' नहीं गये थे फिर भी अंतरके भगवानके पास गये थे। इसलिए यह प्रसिद्धि करी है। आहाहा....!

हम आत्मा है वह कौन ? आहाहा...! हम आत्मा आनंदका नाथ प्रभु ! अनंत अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनंद, अनंत शांति, अनंत स्वच्छता, अनंत प्रभुता ऐसी एक एक गुणकी पूर्णता ऐसे अनंत गुणकी पूर्णताका प्रभु आत्मा हूँ। आहाहा...! उसकी उत्पत्ति तो निर्मल पर्याय हो और निर्मल पर्यायका व्यय हो वह उसका स्वभाव है। आहाहा...! समझमें आया ? अरेरे...! प्रभु ! क्या करे ? कोई इस व्रत, तप और भक्तिसे धर्म मानता है तो कोई देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति करनेसे धर्म मानता है, सब एक ही प्रकारके हैं। आहाहा....! देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति तो राग है और कहते हैं कि राग तो पुद्गलके साथ संबंध रखता है। अर..र...! आत्माके साथ संबंध रखता हो तो जहाँ जहाँ आत्मा है वहाँ सब जगह (राग) होना चाहिये। आहाहा...! भगवान आत्मा तो निर्मलानंद जब होता है तब वह (राग) होता नहीं है। इसलिए वह रागकी उत्पत्ति और व्यय भगवान आत्माके साथ संबंध नहीं रखते। आहाहा...!

श्रोता :— दुनियासे एकदम अलग बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— वो सब दुनियाकी पागलोंकी बातें हैं। पुण्य किसे कहना, पाप किसे कहना उसकी खबर नहीं। शुभभाव और पाप बुरा है ऐसा माने उसे 'कुंदकुंदाचार्यदेव' 'प्रवचनसार'में ७७वीं गाथामें कहते हैं की '**घोर हिडंति संसार मोह संछणो**' मिथ्यात्वसे ढंका हुआ घोर संसारमें रुलेगा। भाई ! यहाँ कुछ भी चले ऐसा नहीं है।

श्रोता :— दुनियामें चलता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— वहाँ चले (तो चलने दो) आहाहा....! २७वीं गाथामें 'कुंदकुंदाचार्यदेव'ने 'प्रवचनसार'में ऐसा कहा है कि जो कोई शुभ-अशुभभाव है उसमें भेद माने कि शुभभाव ठीक है और अशुभभाव अठीक है तो दोनोंमें विशेष-भेद माननेवाला मोहसे-मिथ्यात्वसे ढंका हुआ घोर संसारमें भटकेगा। '**मोह संछणो**' ऐसा पाठ है। भाई ! दिगंबर धर्म समझना यह कोई अलौकिक बात है। संप्रदाय मिल गया इसलिए दिगम्बर हो गया ऐसा नहीं है। आहाहा....! दिगम्बर धर्म कोई पंथ या पक्ष नहीं है, वह तो वस्तुका स्वभाव है। आहाहा....! वस्तुका स्वभाव है कि जिसमें दया, दान और तीर्थंकर (गोत्र) बंधे ऐसा भाव भी आत्मामें नहीं है-वह(भाव) आत्माके साथ संबंध रखता नहीं है—ऐसा यह मार्ग है।

'वर्णादिक भाव, क्रमशः आविर्भाव और तिरोभावको प्राप होती हुई ऐसी उन उन व्यक्तियोंके द्वारा जीवके साथ ही रहते हुये...' क्या कहते हैं ? पहले ऐसा कहा कि पुद्गलके साथ आविर्भाव-तिरोभाव, उत्पन्न और व्यय होता है। ऐसे ही आत्माके साथ भी

उत्पन्न और व्यय...। आहाहा....! **'जीवके साथ रहते हुये, जीवका वर्णादिकके साथ तादातम्य प्रसिद्ध करता है...'** प्रसिद्ध करता है ऐसा मानता है **'ऐसा जिसका अभिप्राय है उसके मतमें, अन्य शेष द्रव्योंसे असाधारण ऐसी वर्णादि स्वरूपता}कि जो पुद्गलद्रव्यका लक्षण है}उसका जीवके द्वारा अंगीकार किया जाता है इसलिए'** जो पुद्गलका स्वरूप है वह जीवके द्वारा अंगीकार करनेमें आता होनेसे...आहाहा....! **'जीव-पुद्गलके अविशेषका प्रसंग आता है'** जीव और पुद्गल दोनों एक है ऐसा प्रसंग आता है। आहाहा....!

जैसे पुद्गल जड़कर्म अजीवके साथ रागादि अजीव उत्पन्न होते हैं और व्यय होता है, उसके साथ तादात्म्यसंबंध है। वैसे ही, कोई ऐसा अभिप्राय रखे कि जीवके साथ रागका, अजीवका उत्पन्न होना और व्यय होना संबंध रखता है, तो उसने पुद्गलको ही जीव माना है। आहाहा....! जीवद्रव्य भिन्न है ऐसा नहीं माना। आहाहा....! ऐसी बात वीतरागका मार्ग है। बापू ! और जो वीतरागमार्ग समझे–एक क्षणके लिये भी समझमें आ जावे तो भवका अंत आ जाये ! आहाहा....! ऐसी बात है। आहाहा....!

क्या कहते हैं ?–कि जैसे पुद्गलके साथ–जड़कर्मके साथ राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं और व्यय होते हैं, उसके साथ संबंध रखते हैं, वैसे ही यही आत्माके साथ राग और द्वेष उत्पत्तिका संबंध रखे तो आत्मा पुद्गल हो जाय–जीवद्रव्य रहे ही नहीं। आहाहा....! जो पुण्य-पापका आत्माके साथ संबंध मानता है, उसे जीवद्रव्य रहा नहीं, पुद्गल हो गया ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई !

जिस आत्माने ऐसा अभिप्राय किया कि मेरे साथ रागकी उत्पत्ति और व्यय होता है तो उसने पुद्गलको ही अपना माना है। आत्मा भिन्न है ऐसा माना नहीं। आहाहा....! ऐसी बात है। 'श्रीमद्'में 'अगास'में रात्रिको एक घंटा प्रवचन हुआ। थोड़े प्रश्न हुये। यह बात सही लेकिन उसका साधन क्या ? भक्ति आदि करना वह साधन (ऐसा वो मानते हैं)। अरेरे प्रभु ! आहाहा....! भगवानकी और गुणकी और शास्त्रकी भक्ति वह तो राग है। रागकी उत्पत्ति और व्ययका संबंध निश्चयसे तो पुद्गलके साथ है। व्यवहारसे एक समयकी पर्यायमें संसार हो, लेकिन तादात्म्यसंबंध नहीं है।

श्रोता :— ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह व्यवहारसे एक समयकी पर्यायकी अपेक्षासे कहा लेकिन तादात्म्यसंबंध नहीं है। कायम नहीं रहते इसलिए संबंध नहीं है। आहाहा....! आगेकी

गाथाओंमें कहेंगे। आहाहा....! आगेकी गाथामें आयेगा। संसारमें हैं उसे भी, वह ऐसा माने कि यह मेरा है, तो वह पुद्गल हो गया और पुद्गलकी मुक्ति हो गई। आहाहा....! क्या यह बात श्वेताम्बरके ४५-३२ सूत्र भी पढ़े तो भी यह बात वहाँसे नीकलनेवाली नहीं...आहाहा....!

यह तो भगवान त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेवके पास गये थे अंतरमें उनकी यह वाणी है...आहाहा....! हमारा प्रभु जो आत्मा शुद्ध चिदानंद वहाँ हम गये तो वहाँ तो राग, द्वेष, संसार है ही नहीं। उन राग-द्वेषका संबंध आत्माके साथ है ही नहीं। आहाहा....! यह तो 'अमृतचंद्राचार्यदेव', 'कुंदकुंदाचार्यदेव'के बाद एक हजार साल बाद हुये थे और वह तो भगवानके पास गये भी नहीं थे। वह तो यहाँ (अंतर)में गये थे ! आहाहा....! वाणी सुनना दुष्कर हो जाये ऐसी बात है !

एक तरफ ऐसा कहते हैं कि पुण्य, पाप और राग जीवकी पर्यायमें होते हैं, जीव उसका कर्ता-भोक्ता है। वह ज्ञानकी अपेक्षासे कहा है। एक तरफ दृष्टिकी अपेक्षासे कहते हैं कि राग और द्वेषकी उत्पत्तिको पुद्गलके साथ संबंध है, स्वभावकी दृष्टिसे देखे तो वह परके हैं। आहाहा....! ऐसी बात है।

वह पुण्य और पापके भाव, दया-दान आदिके भाव पुद्गलके साथ उत्पाद-व्यय धारण करते-व्याप्त होते दिखते हैं, वैसे ही यदि आत्माके साथ भी वह दीखे तो (आत्मा भी) पुद्गल हुआ, आत्मा पुद्गल हुआ, जीव रहा नहीं। रागरहित अखंडानंद प्रभु जीवद्रव्यका तो नाश हुआ और पुद्गलद्रव्यकी प्रसिद्धि हुई। आहाहा....! आहाहा....! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनंद और अतीन्द्रिय ज्ञानका सागर प्रभु विराजमान है न, प्रभु ! नाथ ! आहाहा....! उसे तू रागसहित माने तो तो वह पुद्गलमय हो गया ! वहाँ वह जीव न रहा, प्रभु ! आहाहा....! अरे...! रागके शुभभावको तू धर्म मान और वह राग मेरा है ऐसा माने, प्रभु ! वहाँ आत्मा न रहा ! आहाहा....! वह तो पुद्गलकी प्रसिद्धि हुई। आहाहा....! इसमें नहीं उलझने जैसा है। आहाहा....! यह तो धीरजवानका कार्य है, बापू ! आहाहा....! संतोंने गजब कार्य किया है।

'न्यायप्राप्त' शब्द आया न ! आहाहा....! वहाँ पहले आया था न ! **'वह न्याय है'**। भावार्थमें आखिरी शब्द है। लोजीकसे-न्यायसे यह मार्ग प्राप्त है। आहाहा....! भगवंत ! तेरे स्वरूपमें राग-द्वेषकी उत्पत्ति यदि तेरेसे हो तो तो तू पुद्गल हो गया, आत्मा रहा नहीं। आहाहा....! क्योंकि वह राग-द्वेषकी जो उत्पत्ति होती है वह राग-द्वेष तो अजीव है। समझमें

आया ? दया दान, व्रत, भक्तिके परिणाम अजीव है। अगर वह अजीव तेरेसे उत्पन्न हो जाये तो तू जीव रहा नहीं। यह जीव-अजीव अधिकार है। आहाहा....! वहाँ 'धनबाद'में मिले ऐसा नहीं है।

श्रोता :— इसलिए तो यहाँ आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :— इसलिए आते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा....! ऐसी बात, भाई ! क्या करे ? अभी तो बहुत गड़बड़ कर दी है। पंडित लोग और साधु ऐसी प्ररूपणा कर रहे हैं कि यह व्रत, तप, भक्ति करोगे तो धर्म होगा। प्रभु...प्रभु...प्रभु...! पंचमकालमें दूसरा नहीं हो सकता, शुभभाव ही होता है, ऐसा कहते हैं। अररर...! लेकिन आत्मामें शुभभाव है ही नहीं। शुभभाव तो पुद्गलके साथ संबंध रखता है।

श्रोता :— आप अकेले हो गये !

पूज्य गुरुदेवश्री :— अकेला कौन और साथमें कौन ? भगवन् ! यहाँ तो जो है सो है। आहाहा....! संत दिगंबर मुनियोंने गजब कार्य किये हैं, प्रभु ! आहाहा....! केवलज्ञानीका विरह भुलाया है संतोंने ! आहाहा....! भाई ! तू ऐसा कहे कि शुभरागसे मुजे लाभ हो, शुभराग मेरा....आहाहा....! भाई ! वह तो पुद्गलकी प्रसिद्धि हुई, नाथ ! उसमें तेरी प्रसिद्धि नहीं हुई। आहाहा....! तूने तो रागको प्रधानपद दे दिया। राग तो पुद्गलके साथ संबंध रखता है। तादात्म्यसंबंध कहा है। जहाँ जहाँ कर्म, वहाँ वहाँ राग !

'आत्मावलोकन'में एक बात आई है, भाई ! जहाँ तक निमित्त है वहाँ तक राग है। ऐसा क्युं कहा ? दोनोंका संबंध दिखाना है। 'आत्मावलोकन'में ऐसा कहा है। जब तक कर्म है, तब तक राग है, कर्म न हो तो राग नहीं होता। ऐसा बताकर अनित्यता स्थापित करनी है और पुद्गलके संबंधके लक्षसे होता है इसलिए वह आत्माका स्वरूप नहीं है। आहाहा....! 'आत्मावलोकन'में है। उस दिन पढ़ा तब चिह्न किया था। कल देखा था। भाई लाया था। आहाहा....!

भगवान आत्मा तो अनंत अनंत ज्ञान, अनंत आनंद, अनंत शांति, अनंत वीतरागताका भंडार भगवान है। उस भंडारमेंसे नीकले तो राग नीकलेगा क्या ? रागको उत्पन्न करे ऐसा कोई गुण है ही नहीं न ! आहाहा....! ऐसा जो भगवान अनंत गुणका पिंड प्रभु, उसका जैसे ही स्वीकार होता है वैसे ही पर्यायमें अनंत आनंद, शांति आदिकी पर्याय प्रगट हो जाती है। उस उत्पाद-व्ययका संबंध द्रव्यके साथ है। आहाहा....! कि जो उत्पाद और व्यय सिद्धमें भी रहते हैं। आहाहा....!

एकबार विचार आया था, प्रभु ! तुने मुजे यहाँ कहाँ भेजा ? ऐसा आया था। उसका मतलब कि प्रभु ! तेरे ज्ञानमें यहाँ आया ऐसा कैसे आया ? प्रभु ! तेरे ज्ञानमें ऐसा आया कि मैं यहाँ आउँगा। इसीको तुने मुझे भेजा। भाई ! समझमें आया ? आहाहा....! उसका मतलब यह कि प्रभु ! तेरे ज्ञानमें ऐसा था कि (मैं) यहाँ आऊँ। आहाहा....! इस अपेक्षासे... ऐसी बात है। आहाहा....! 'अमृतचंद्राचार्य'ने अमृत परोसा है।

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! एकबार सुन ! चाहे तो भक्तिका राग, परमात्माके स्मरणका, पंच परमेष्ठीके स्मरणका (राग हो)....एकबार किसीने कहा था कि भगवानका स्मरण करनेमें क्या कषाय ? लेकिन स्मरण करना वही विकल्प–राग है। वह परद्रव्यके गुणोंका स्मरण करनेसे विकल्प होता है, भाई ! आहाहा....! ऐसा कहते हैं कि कहाँ कषाय आया (उसमें) ? बापू ! वह स्वयं कषाय है, भाई ! और वह कषायकी उत्पत्ति और व्यय पुद्गलके साथ संबंध रखता है, प्रभु ! आहाहा....! गजब बात है, भाई !

भगवान तीनलोकके नाथ दिव्यध्वनि द्वारा यह अर्थ करते होंगे तब...आहाहा....! और गणधर और एकावतारी इन्द्रों जहाँ होंगे....गणधर उसी भवसे मोक्ष जायेंगे और इन्द्र एकावतारी है। उनको भी जहाँ विस्मय लगता है वह कैसी बात होगी ??

यहाँ कहते हैं **'कि जो पुद्गल द्रव्यका लक्षण है'** द्रव्योंसे असाधारण है न ? **'ऐसा जिसका अभिप्राय है उसके मतमें, अन्य बाकीके द्रव्योंसे असाधारण ऐसा वर्णादि स्वरूपपना कि जो पुद्गल द्रव्यका लक्षण है....'** रागादि **'उसका जीव द्वारा अंगीकार करनेमें आता होनेसे...'** उस पुद्गलके स्वभावको जीवके साथ अंगीकार किया उसने **'जीव-पुद्गलके अभेद...'** जीव और पुद्गलकी भिन्नता रही नहीं, एकरूपताका प्रसंग आया। आहाहा....! शुभरागसे आत्माको धर्म होता है ऐसा माननेवालेको कहते हैं कि तूने पुद्गलको आत्मा माना। आहाहा....! **'जीवका जहाँ अभाव होता है।'** आहाहा....! वह रागका जो विकल्प है वह आत्माके साथ संबंध रखता है ऐसा जो माने तो वो तो पुद्गलका–अजीवका लक्षण है। वह तो अजीवके साथ तादात्म्य है और अजीवका लक्षण है। आहाहा....! क्योंकि राग स्वयं अजीव है। आहाहा....! वह जीव स्वरूप नहीं है। आहाहा....! और जीवस्वरूप न होनेपर भी उसका संबंध अपनेमें मान तो आत्मा पुद्गल हो गया, जीव तो भिन्न रहा नहीं। आहाहा....! **'जीवका जरूर अभाव होता है।'** लो ! बहुत ही अच्छी टीका आ गई ! विशेष कहेंगे.... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

३१ श्री परमात्मप्रकाश, गाथा—५१-५२, प्रवचन नं. ३३, दि. १३-७-१९७६

'परमात्मप्रकाश' ५१ गाथा है, भावार्थ....

श्रोता :— ५२

पूज्य गुरुदेवश्री :— ५१, ५१, ५१ बाकी है। यह आत्मा '**व्यवहारनयसे केवलज्ञानरूपकर लोक-अलोकको जानता है...**' लोकालोकको व्यवहारनयसे जानता है, निश्चयसे नहीं अर्थात् तन्मय होकरके नहीं जानता इसलिए व्यवहारसे जानता है ऐसा कहा। अपने ज्ञानको जानता है वह तो तन्मय होकरके जानता है कि जिससे सुख-आनंदका वेदन (होता है)। स्वयंको तन्मय होकरके जानता है इसलिए आनंदका वेदन स्वयंमें है। परको तन्मय होकरके जाने तो उसके सुख-दुःखका वेदन यहाँ आ जाय। समझमें आया? यह 'समयसार'में 'सर्वविशुद्ध अधिकार'में आया है। 'जयसेनाचार्य'की संस्कृत टीकामें लिखा है।

'**व्यवहारनयसे केवलज्ञानकर लोक-अलोकको जानता है। शरीरमें रहने पर भी निश्चयनयसे अपने स्वरूपको जानता है...**' ज्ञान ज्ञानको जानता है। 'समयसार' १७-१८ गाथामें आया न कि ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञायक ही जाननेमें आ रहा है। क्या कहा? ज्ञानकी पर्यायमें द्रव्य ही जाननेमें आ रहा है, लेकिन अज्ञानीकी दृष्टि उस द्रव्यके उपर नहीं है इसलिए ज्ञानमें यह जाननेवाला आत्मा ही पर्यायमें आ रहा है, पर नहीं (यह ख्यालमें नहीं आ रहा)। १७-१८ (गाथा), सबको (जाननेमें आ रहा है) ऐसा वहाँ कहा है। सदाय सर्व जीवको...आहाहा...! भगवान आत्मा उसकी ज्ञानकी पर्यायमें (जाननेमें आ रहा है) क्योंकि उस पर्यायका स्व-परप्रकाशक स्वभाव होनेसे वह स्व-जाननेवालेको ही जानता है; फिर भी अज्ञानीकी दृष्टि, '**उस ज्ञानकी पर्यायमें जाननेवाला ही जाननेमें आ रहा है**', उस पर नहीं होनेसे उसको ऐसा लगता है कि यह रागको जान रहा है। समझमें आया? क्या कहा?

ज्ञानकी पर्यायका त्रिकाल-सदाय स्व-परप्रकाशक स्वभाव ही है। वास्तवमें तो ज्ञानकी पर्याय द्रव्यमें जो है उसको जानती है और उसमें परप्रकाशकपना साथमें आ जाता है। स्वको जानते हुये रागको जाने ऐसा स्वतः स्वपरप्रकाशकपना आ जाता है, लेकिन अज्ञानीको 'ज्ञानकी पर्यायमें स्वप्रकाशक सामर्थ्यसे जाननहारा जाननेंमें आ रहा है' ऐसे

उसका लक्ष नहीं। इसलिए उसे राग और परप्रकाशक है, सिर्फ परप्रकाशक है ऐसा मिथ्यादृष्टिको आभास होता है। समझमें आया ? आहाहा...! इसमें कुछ समझमें आया ? भाई ! यह सूक्ष्म बात है। आहाहा...!

१७-१८में कहा कि सदाय सबको जानता होने पर भी उसका उसे लक्ष न होनेसे उसे ज्ञानमें-पर्यायमें राग और परज्ञेय जाननेमें आते हैं। सिर्फ परप्रकाशक (है ऐसा) अज्ञानीको आभास होता है। समझमें आया ? मार्ग तो सूक्ष्म है, बापू ! समझमें आया ? एकबार कहा था न ! लड्डु मैंने खाया, यह मैंने छोडा... वह जब तन्मय हुआ ही नहीं तो छोडे क्या ? यह मकान बनाया ऐसा व्यवहारसे बोलनेमें आता है। उसमें (मकानमें) तन्मय होकर बनाया है ? 'लड्डु खाया' (तो क्या) लड्डुके परमाणुको खाता है ? वह तो रागको खाता है, व्यवहारसे ऐसा कहते हैं कि लड्डु खाया, रोटी खाई, मैसुब खाया। समझमें आया ?

वैसे ही मकान बनाया (तो क्या) उसने बनाया है ? रागको बनाया है। (मकान) कौन बनाये ? वह तो परमाणुकी पर्याय बनाती है। परमाणुमें कर्ता और करण नामके गुण है या नहीं ? उसके द्वारा यह (मकानकी) पर्याय होती है। लेकिन कहते हैं कि 'यह मैंने किया' ऐसा कहना व्यवहार है ऐसा कहना है। इसके साथ मिलान करना है न !

लोकालोकको आत्मा जानता है वह व्यवहार है क्योंकि परको जानते समय परके साथ एकमेक होकर नहीं जानता और स्वयंको जानते समय तन्मय होकर उसकी पर्यायको जानता है। आपका प्रश्न है इसलिए कहा। पर्यायको जानते समय पर्यायमें तन्मय होकर पर्यायको जानता है। परको जानते समय परमें तन्मय होकर जानता नहीं, इसलिए व्यवहारसे जानता है ऐसा कहनेमें आता है। भाई ! इसमें बहुत लंबा है। आहाहा...!

श्रोता :— परको जानना झूठा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— हाँ, है तो ऐसा ही; परको जानना, झूठा ! अभी कहेंगे, इसमें भी कहा है। तो फिर व्यवहारसे सर्वज्ञ है न ? ऐसा पूछा है। व्यवहारसे सर्वज्ञ है न ? आहा...! लड्डु, रोटी, दाल, सब्जी, चावल, आदि भोक्ता हूँ वह तो व्यवहार है, उसका कहाँ भोग करता है ? 'यह छोडा' (लेकिन) उसने कहाँ छोड़ा है ? वास्तवमें तो उसने रागको किया और रागको भोगा है। लड्डु खाया और घर-मकान बनाया ऐसा है ही नहीं। इत्यादि अनेक पर्याय...निश्चय-व्यवहारको जानना। तब प्रश्न आया था। 'परमात्मप्रकाश'....

क्या कहा ? निश्चयसे सर्वज्ञ इन सबके जाननहार नहीं है। व्यवहारसे परको

जाननेवाले हुये तो निश्चयसे सर्वज्ञ नहीं हुये। जैसे अपने आनंद और ज्ञानमें तन्मय होकर जानते हैं वैसे ही परद्रव्य न जानाति ! आहाहा...! जानता तो है बराबर...परको तन्मय होकर जाने तो परके जो काल्पनिक सुख-दुःख है उसके साथ इसका तन्मयपना हो जाये और उसके सुख-दुःखका यहाँ वेदन होने लगे ! देखो !

'निश्चयनयसे अपने स्वरूपको जानता है...' ज्ञान ज्ञानको जानता है। वह अपने (२७१ कलशमें) आया है न ! स्वयं ज्ञेय, स्वयं ज्ञाता और स्वयं ज्ञान। यह ज्ञान और यह परज्ञेय–ऐसा नहीं है। परज्ञेयको जानता है वह तो व्यवहार हुआ और उसको जाननेवाला जो ज्ञान हुआ अपनेमें हुआ उसे ज्ञेय करके जानता है वह निश्चय हुआ, आहाहा...! **'इस कारण ज्ञानकी अपेक्षा तो व्यवहारनयसे सर्वगत है...'** इस अपेक्षासे, **'प्रदेशोंकी अपेक्षासे नहीं...'** परके क्षेत्रमें ज्ञान जाता है ऐसा नहीं है, अपने प्रदेशमें रहकरके जानता है। दृष्टांत दिया है।

'जैसे रूपवाले पदार्थोंको नेत्र देखते हैं...' नेत्र रूपको देखता है, रूपमें तन्मय होकर देखता है क्या ? **'परंतु उन पदार्थोंसे तन्मय नहीं होते...'** आंख परको जाने, अग्निको जाने, बरफको जाने....अग्निमें तन्मय होकर जानती है क्या ? (तन्मय होकर जाने) तो तो आंख जल जाये लेकिन आंख जलती नहीं है। आंखमें गरमीका ज्ञान अपना है, वह होता है। अग्नि ज्ञात होने पर अग्नि संबंधीका स्व जो अपना ज्ञान है वह जाननेमें आता है। अग्नि जाननेमें आती है ऐसा कहनेसे तो अग्निके साथ एकमेक हो जावे (लेकिन) ऐसा तो नहीं है। आहाहा...! **'उसरूप नहीं होते हैं'**।

'यहाँ कोई प्रश्न करता है कि जो व्यवहारनयसे लोकालोकको जानता है और निश्चयनयसे नहीं, तो व्यवहारसे सर्वज्ञपना हुआ...' वहाँ ऐसा कहा था। व्यवहारनयसे सर्वज्ञ हुये। **'निश्चयनयसे नहीं हुये ? उसका समाधान करते हैं—जैसे अपनी आत्माको तन्मय होकर जानता है उसप्रकार परद्रव्यको तन्मयीपनेसे नहीं जानता...'** इस अपेक्षासे व्यवहारनय कहा। अपना और परका अपनेमें जो जानना हुआ वह तो तन्मय है, समझमें आया ? **'परद्रव्यको तन्मयीपनेसे नहीं जानता, भिन्नस्वरूप जानता हैं...'** वह मेरेसे भिन्न है ऐसा जानते हैं। अग्निको जानने पर ज्ञान जानता है कि अग्नि भिन्न है। लोकालोकको जानने पर ज्ञान जानता है कि लोकालोक भिन्न है। समझमें आया ? आहाहा...!

'व्यवहारनयसे कहा, कुछ ज्ञानके अभावसे नहीं कहा ...' क्या कहा ? परके ज्ञानका यहाँ अभाव है इसलिए उसे व्यवहारसे परको जानता है ऐसा कहा है, ऐसा नहीं है। उसमें तन्मय होकर नहीं जानता है इसलिए नहीं जानता (ऐसा कहा है), लेकिन

तन्मयीपने जानना तो अपनेमें है। स्व-परप्रकाशकका ४७ शक्तियोंमें आता है न ? सर्वज्ञ है वह आत्मज्ञ है। वह तो सर्वज्ञपना ही–आत्मज्ञपनेका ही इतना सामर्थ्य है। उसको (सर्वको) जानता है ऐसा कहना वह तो व्यवहार है। सर्वज्ञपनेकी जो पर्याय है वह तो स्वयंको–सर्वज्ञपदको स्वयं जानती है, स्व और परको पूर्ण जानती है, वह आमत्मज्ञ है, सर्वज्ञ नहीं, आहाहा...! भिन्नता दिखा रहे हैं।

भिन्नताका ज्ञान होने पर भी (वह ज्ञान) भिन्नताके कारण नहीं है। समझमें आया ? भिन्न पदार्थका ज्ञान यहाँ होता है वह भिन्न पदार्थ है इसलिए होता है ऐसा नहीं है और भिन्नको जानता है वह उसमें तन्मय होकर जानता है ऐसा नहीं। वह भिन्न संबंधीका जो ज्ञान (होता है) वह अपने सामर्थ्यसे हुआ अपनेमें होकर जानता है और अपनेमें रहेगा। आहाहा...! ऐसी सूक्ष्म बात !

'भिन्न स्वरूप जानता है, इस कारण व्यवहारनयसे कहा, ज्ञानके अभावसे नहीं कहा।' परके ज्ञानका यहाँ अभाव है इसलिए परको जाने उसे व्यवहार कहा ऐसा नहीं है। पर संबंधके ज्ञानका तो अपनेमें सद्भाव है लेकिन **'परको जानता हूँ'** ऐसा जो कहना है वह व्यवहार है। समझमें आया ? सर्वज्ञ अर्थात् सर्वको जाने ऐसा कहना वह तो व्यवहार है, क्योंकि सर्वको जानते सर्व वस्तुमें वह ज्ञान स्पर्शके, प्रवेश करके जानता है ऐसा नहीं है। आहाहा...! इस लकडीको ऐसे जानता है, उस लकडीमें ज्ञान प्रवेश करके जानता है ?—(नहीं), फिर उस (लकड़ी) संबंधीका ज्ञान यहाँ होता है वह तो अपने स्व-पर(प्रकाशक) सामर्थ्यकी वजहसे हुआ है; इसकी वजहसे हुआ है, उसमें प्रवेश करके हुआ है ऐसा नहीं है। आहाहा...!

श्रोता :—....

पूज्य गुरुदेवश्री :—प्रवेश तो है, पर्यायमें प्रवेश नहीं है क्या ? वह दूसरी बात है, वह प्रश्न दूसरा है। वह पता है इसलिए तो पहलेसे –शुरुसे बात कर रहे हैं। द्रव्यमें वह (पर्याय) तन्मय होकर जानती है उसका मतलब कि (द्रव्यके) और पर्यायके प्रदेश एक है ऐसा मानकरके (कहा है)। वास्तवमें तो पर्याय द्रव्यमें तन्मय होकर जानती है ऐसा नहीं है। यहाँ वह बात नहीं करनी। यहाँ तो परको जाननेमें परमें उसका स्पर्श हुआ नहीं है, इसलिए उसे व्यवहारसे जानता है ऐसा कहा है; लेकिन परसंबंधी ज्ञान और स्वसंबंधके ज्ञानका उसमें अभाव है ऐसा नहीं। ज्ञान तो स्व-परप्रकाशक अपने सामर्थ्यसे हुआ है। समझमें आया ? अरे ! अरे...! ऐसा है। सर्वज्ञको सिद्ध करनेके लिये भी...आहाहा...!

सर्वज्ञ सर्वको जाने, सर्वज्ञ सर्वको जाने इसलिए सर्वज्ञ है ऐसा नहीं है। सर्वको जानते हुये सर्वज्ञकी पर्याय परमें चली गई नहीं, परको स्पर्शी नहीं है। लेकिन परका ज्ञान यहाँ अपनेसे अपने द्वारा हुआ है इसलिए तन्मय होकर जानता है ऐसा कहकर निश्चय कहा। परमें तन्मय होकर जानता नहीं है इसलिए व्यवहार कहा। समझमें आया ? यहाँ वह बात न लेना। वह तो पहलेसे ही दिमागमें था। ज्ञानकी पर्याय द्रव्यको जानती है तब तन्मय होकर जानती है। वह अभी नहीं लेना है। समझमें आया ? आहाहा...!

श्रोता :— ....

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह पर्याय पर्यायमें रहकर द्रव्यको जानती है, (पर्याय पर्यायमें) रहकर द्रव्यको जानती है।

श्रोता :—

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह व्यवहार नहीं। व्यवहारका अर्थ कि वो दोनों भिन्न है। यह और यह दोनों भिन्न वस्तु है न ? उस अपेक्षासे उसको जानती है तो तन्मय होकर, अपने असंख्य प्रदेशमें है इसलिए। वास्तवमें तो पर्याय द्रव्यमें एक होती नहीं। यह तो कल बहुत बात हो गई है। समझमें आया ? वह प्रश्न अभी नहीं है। अभी तो, परको जाने वह व्यवहार और स्वको जाने वह निश्चय इतना सिद्ध करना है। बस इतना, इस कारणसे...आहाहा...!

अपनेमें द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों आ गये। समझमें आया ? लेकिन बादमें जब दोनोंका भेद करना हो तब एक समयकी पर्याय जो है वह पूर्ण द्रव्यको जानती है। वह तो कल बहुत बात हो गई है। वहाँ ('समयसार') १७-१८में कहा न कि (आबाल-गोपाल) सबको पर्यायमें स्वद्रव्य ही जाननेमें आता है, क्योंकि पर्यायके स्वयंके स्व-परप्रकाशक स्वभावका सामर्थ्य है, वह द्रव्यकी वजहसे नहीं। समझमें आया ? वह पर्यायका-एक समयकी पर्यायका सामर्थ्य है। स्व और परको अपनेमें रहकर जानना ऐसी उसकी (पर्यायकी) ताकात है। आहाहा...! ऐसा सूक्ष्म मार्ग है, भाई !

अभी तो सिर्फ परको जानता है इसलिए व्यवहार कहा, इसलिए परका ज्ञान यहाँ नहीं ऐसा नहीं है। परका ज्ञान वह अपना ज्ञान है। स्वका ज्ञान और परका ज्ञान यह (दोनों) स्वका ज्ञान है। सर्वज्ञपनेका अभाव नहीं है। परसंबंधी ज्ञान और स्वसंबंधी ज्ञानका अभाव नहीं है। सिर्फ परको तन्मय होकर नहीं जानता इसलिए व्यवहार कहा, लेकिन सर्वज्ञपना जो है वह व्यवहार है ऐसा नहीं है। समझमें आया ? भाई ! ऐसी बात है यह सब। आहाहा...! जैन परमेश्वरका कथन अलौकिक है, ऐसा और कहीं नहीं है। आहाहा...!

'व्यवहारनयसे कहा, कुछ ज्ञानके अभावसे नहीं कहा।' देखा ! क्या कहा ? कि सर्वको जानता है ऐसा कहना तो व्यवहार है, तो क्या यहाँ सर्वका ज्ञान नहीं है ?–कि सर्वका ज्ञान वह यहाँ अपना ज्ञान है। सर्वका ज्ञान....वह तो निमित्त है लेकिन परसंबंधीका–स्वसंबंधीका ज्ञान पर्यायमें अपनेसे है। ज्ञानके स्व-परप्रकाशक ज्ञानका अभाव नहीं है। परप्रकाशक ज्ञानका अभाव नहीं है, परवस्तुका अभाव है। समझमें आया ? आहाहा...! इतना एक समयकी पर्यायका सामर्थ्य कहते हैं। आहाहा...!

कल रह गया था। अलिंगग्रहणका २०वाँ बोल, भाई ! आत्मा अपने द्रव्यको छूता नहीं है। २०वाँ बोल। प्रत्यभिज्ञानका कारण ऐसी जो वस्तु, प्रत्यभिज्ञानका कारण ऐसा जो द्रव्यस्वभाव उसको आत्मा छूता नहीं है, आलिंगन नहीं करता, वर्तमान पर्यायके वेदन जितना ही आत्मा है। भाईने कहा था न ! पीछली बार दर्शन करने आये थे न ! आहाहा...! महाराज...! 'लोटिया वोरा' ९३-९४ वर्षकी आयुका मुसलमान घर पर पढे (और) पढ़कर दर्शन करने आये। शरीरमें कंपन था इसलिए प्रवचनमें नहीं आये थे। शेठ ! भाई (अलिंगग्रहण) १८, १९, २० बोलका स्वाध्याय करके आये और कहा कि १८, १९, २० बोलने तो कमाल कर दिया है ! आहाहा...!

क्या है १८वें बोलमें ?–कि **'आत्मा गुण विशेषको स्पर्शता नहीं, भेदको स्पर्शता नहीं'**। ऐसा १८वाँ बोल है। ऐसा घरसे पढकर आया और ऐसा खुशी हुआ...ऐसा खुशी हुआ...आहाहा...! यह वस्तु !! हमने प्राप्त कर लिया है, हमारा तो मोक्ष होना है ऐसा कहते थे। १८वाँ बोल ऐसा था। अलिंगग्रहण अर्थात् अर्थावबोधरूप गुणविशेष...ऐसा पाठ है। अर्थावबोधरूप गुणविशेषको आलिंगन नहीं करता। ऐसा वह आत्मा शुद्धात्मा है। अर्थात् गुणी, गुणके भेदको नहीं स्पर्श करता, अभेद है; भेद करना वह तो व्यवहार हो गया। आहाहा...! सूक्ष्म बात है।

अर्थावबोधरूप गुणविशेषको नहीं आलिंगन करता ऐसा आत्मा शुद्ध है ऐसा पाठ है। अर्थात् आत्मा गुणी वह गुणभेदमें नहीं आता। शेठ ! घरपर स्वाध्याय करके वह वोरा ऐसा लेकरके आये थे। अभी भी है, अभी भी आये थे। इसबार व्यवहारका दूसरा लाये थे। आत्मामें दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन (भेद) नहीं है। आज लाये थे, (समयसार) ७वीं गाथामें आता है। फिर जंगलमें ध्यान करने चले जाते थे। मुसलमान भी आत्मा है कि नहीं ?

पहेले (१८वाँ) बोल यह हुआ कि अर्थावबोधरूप गुणविशेषको आत्मा आलिंगन नहीं करता ऐसा वह शुद्ध आत्मा अभेद है। १९वाँ, अर्थावबोधरूप पर्यायविशेष...अब

पर्यायकी बात है...उसको नहीं आलिंगन करता ऐसा आत्मा शुद्धात्मा है। आहाहा...! फिर तीसरा (२०वाँ)। प्रत्यभिज्ञानका कारण यह है...है...है... है...है...है... आत्मा ध्रुव है। प्रत्यभिज्ञानका कारण वह है...है...है... उसको आत्मा नहीं आलिंगन करता हुआ पर्यायमात्र है। अनुभवमें पर्याय आती है, द्रव्य अनुभवमें नहीं आता, वेदनमें तो पर्याय आती है। आहाहा...! उसकी दृष्टि द्रव्य पर है, लेकिन वेदनमें तो पर्याय है। अनुभव है वह द्रव्य, गुण-ध्रुवका नहीं हो सकता। समझमें आया ? वेदनमें तो पर्याय ही आती है। केवलीको भी पर्यायका वेदन है, द्रव्य-गुणका (वेदन) नहीं होता। द्रव्य-गुणका ज्ञान होता है लेकिन वेदन द्रव्य-गुणका नहीं होता। आहाहा...! एक एक न्याय तो देखो !

आनंदके अनुभवमें वेदन पर्यायका है फिर भी उस ज्ञानकी पर्यायमें द्रव्य और गुणका ज्ञान है। लेकिन द्रव्य-गुणका वेदन नहीं है। आहाहा...! समझमें आया ? आहाहा...! एक समयकी पर्यायमें संपूर्ण द्रव्यका-अनंत गुणोंके पिंड वस्तुका उसमें ज्ञान है, लेकिन उस पर्यायमें द्रव्य-गुणका वेदन नहीं है। आहाहा...!

भगवान आत्मा एक समयकी ज्ञानकी पर्यायका सामर्थ्य संपूर्ण द्रव्यको जाने, संपूर्ण लोकालोकको जाने ! स्वप्रकाशकरूपसे जाने और परप्रकाशकरूपसे लोकालोकको (जाने)। वह स्व-परप्रकाशकका सामर्थ्य अपना है, परसे नहीं है। वह परका ज्ञान हुआ इसलिए परकी वजहसे (ज्ञान) हुआ है ऐसा नहीं है। समझमें आया ? ऐसा मार्ग है लेकिन लोगोंको नक्की करनेके लिए समय-फुरसत कहाँ है ? आहाहा...! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ...आहाहा...! जिसको इन्द्र-गणधर सुनते हैं...! आहाहा...! चौद पूर्व और बारह अंगकी रचना गणधरने अंतर्मुहूर्तमें करी वह गणधर भी सुनने बेठते हैं। समझमें आया ?

यहाँ वह कहते हैं **'यहाँ कोई प्रश्न करता है कि व्यवहारनयसे लोकालोकको जानता है और निश्चयसे नहीं, तो व्यवहारमें सर्वज्ञपना हुआ, निश्चयनयकर नहीं हुआ ? उसका समाधान करते हैं}जैसे अपनी आत्माको तन्मयी होकर जानता है, उस तरह परद्रव्यको तन्मयी होकर जानता है, उस तरह परद्रव्यको तन्मयीपनेसे नहीं जानता...'** इतना सिद्ध करना है। **'भिन्न स्वरूप जानता है इस कारण व्यवहारनयसे कहा, कुछ ज्ञानके अभावसे नहीं कहा।'** परको (जाननेवाले) अपने ज्ञानका जहाँ अभाव है, स्वका ही ज्ञान है और परका ज्ञान नहीं ऐसा नहीं है। आत्माको स्वका ही ज्ञान है और परका नहीं है ऐसा नहीं है। **'कुछ ज्ञानके अभावसे नहीं कहा...'** समझमें आया ? आहाहा...!

'ज्ञानकर जानना तो निज और परका समान है।' देखा ! आहाहा...! ज्ञानकी

पर्यायमें निज संपूर्ण द्रव्य-गुण-पर्याय और पर-लोकालोक-यह पूरा अस्तित्व है। **'निज और परका समान है।'** अर्थात् निजका ज्ञान भी अपनेमें है और परका ज्ञान भी अपनेसे हुआ अपनेमें है, समान है। निजका ज्ञान और परसंबंधीका अपना ज्ञान दोनों समान है। वह तो परमें घुसता नहीं इसलिए परको जानता नहीं-परको जानता है वह व्यवहार कहा है; परमें जाता नहीं, स्पर्शता नहीं। आहाहा...! और वास्तवमें तो लोकालोककी हयाती है इसलिए ज्ञानकी पर्यायमें परप्रकाशकपनेका ज्ञान आया ऐसा भी नहीं है। आहाहा...!

वह तो (संवत) १९८३में 'दामनगर'में चर्चा हो गई थी। शेठने कहा कि लोकालोक है तो यहाँ उसे जाननेकी पर्याय हुई, (लेकिन) ऐसा नहीं है। ज्ञानकी पर्यायका सामर्थ्य ऐसा है। स्व और परको जाननेका समान सामर्थ्य है ऐसा कहा न ! परको जाननेके लिये परकी उपस्थिति है इसलिए जानता है (ऐसा नहीं है) अरे...! द्रव्यको जाननेके लिए द्रव्यकी उपस्थिति है इसलिए पर्याय (द्रव्यको) जानती है ऐसा भी नहीं है। पर्यायका ही इतना सामर्थ्य है, स्वको जानना और परको जानना दोनों समान अपनेसे है। आहाहा...! भाई ! यह सब विचार भी कभी कहाँ किया है ! ऐसे ही संसारकी मजूरी करी है ! एक तो शेठ और उपरसे कार्यकर्ता ! फँस गये अंदर !

श्रोता :— कीचड़....कीचड़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— कीचड़ है, सही बात है। फिर भी सब भाग्यशाली है। आहाहा...! क्या कहा ? देखो ! **'निज और परका समान है'** वह क्या कहा ?-कि अपना ज्ञान और परका ज्ञान वह स्वयंसे समान है। ऐसा नहीं है कि पर है तो ज्ञान होता है। वह अपना और परका ज्ञान अपनेमें अपने सामर्थ्यसे होता है। आहाहा...!

यहाँ कहते हैं...आहाहा...! **'ज्ञानकर निज और परका जानपना समान है'**। आहाहा...! अर्थात् स्वयं अपने ज्ञानमें तन्मय होकर (स्वयंको) जानता है वैसे ही यहाँ जो परसंबंधीका ज्ञान है, उसमें वह तन्मय होकर जानता है, परमें तन्मय होकर नहीं। आहाहा...! क्या कहा ? वीतराग मार्ग...बापू ! **'ज्ञानकर जानपना'** निज और परका समान है। इतने शब्दोंमें कितना समा दिया है, देखा ! स्वयं तो द्रव्य-गुण-पर्याय है उनको जानता है वैसे ही परके-लोकालोकके द्रव्य-गुण-पर्याय त्रिकाल है उसको जानता है, यह जानना तो समान ही है। स्वका और परका जानना अपनेमें समान है। परको जानना ऐसा कहना व्यवहार है। इसलिए परसंबंधीका अपना जो ज्ञान है उसका अभाव नहीं है। आहाहा...! सर्वज्ञपना है वह आत्मज्ञपना है ऐसा सिद्ध करना है। समझमें आया ? सर्वज्ञपना है वह आत्मज्ञपना

ऐसा सिद्ध करना है। समझमें आया ? आत्मज्ञ ही ऐसी स्थिति है कि स्वको और परको जाननेकी स्थितिवाला आत्मज्ञपना सामर्थ्य है। आहाहा...! समझमें आया ? आहाहा...! खुलासा कैसा है ? देखा !

'ज्ञानकर जानना तो निज और परका समान है। जैसे अपने को संदेह रहित जानता है वैसे ही परको (संदेहरहित) जानता है...' परसंबंधीका ज्ञान निःसंदेह अपनेमें है ऐसा कहते हैं। **'परको भी जानता है, इसमें संदेह नहीं समझना...'** परको जानना वह व्यवहार कहा इसलिए यहाँ पर संबंधीका ज्ञान नहीं ऐसा नहीं है। वह परसंबंधीका ज्ञान वह यहाँ अपना ज्ञान है। आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा सूक्ष्म है, बापू ! वस्तुका स्वरूप ऐसा है, आहाहा...!

इसलिए रागको ज्ञान जाने उसे उपचरित सद्भूत व्यवहारनय कहा। चार नय कही है न ! सद्भूत उपचारनय, सद्भूत अनुपचारनय, असद्भूत उपचारनय, असद्भूत अनुपचार नय। राग है वह ख्यालमें आवे उतना राग असद्भूत उपचार कहा और उस समय रागका भाग जो पकड़में आया, उसके पीछे (जो राग) पकड़में नहीं आया उसे असद्भूत अनुपचार कहा, लेकिन उस (राग) संबंधीका ज्ञान हुआ है। इसका ज्ञान, उसका ज्ञान वह सब असद्भूत लेकिन उस संबंधीका ज्ञान अपनेमें हुआ है वह तो अपनेसे हुआ है। समझमें आया ? आहाहा...! दो (नय) हुये।

तीसरा...रागको ज्ञान जाने ऐसा जो सद्भूत उपचार प्रमाण, उस प्रमाणको भी सद्भूत उपचार कहा। रागको जाने वह सद्भूत उपचार और ज्ञान वह आत्मा वह सद्भूत अनुपचार। उसे उपचार कहा लेकिन जाननेकी जो पर्याय हुई है रागको जाननेकी, अनुपचार जाननेकी, उपचारको (जाननेकी) वह पर्याय अपनेसे हुई है, आहाहा...! वह चैतन्य-सूर्य भगवानका चैतन्य-तेज उसका है, जिसमें चैतन्यके नूरका, तेजका प्रकाश पूरा भरा है। आहाहा...! पर्यायमें स्व और परका भास हुआ वह अपनी चीज है ऐसा कहते हैं, वह परसे नहीं है। समझमें आया ? शेठ ! यह समझमें आये वैसा है। भाषा तो सरल है, भाव भले ही ऊँचे हो ! उनको ज्यादा रुचि है, निवृत्ति लेते हैं। बापू ! यह करने जैसा है। बाकी और क्या है उसकी खबर नहीं है क्या ? आहाहा...! ओहोहो...!

कहते हैं, **'जैसे अपनेको संदेह रहित जानता है, वैसा ही परको भी जानता है, इसमें संदेह नहीं'**... परको जानना ऐसा कहना वह व्यवहार है लेकिन परसंबंधीका ज्ञान है उसमें संदेह नहीं, वह अपना ज्ञान है। आहाहा...! भाई ! विषय थोडा सूक्ष्म आ गया है।

ऐसी बात है। जितना उसका अस्तित्व, सामर्थ्य है उतना उसे ख्यालमें आना चाहिये न ! क्या कहा समझमें आया ? ज्ञानकी पर्यायके अस्तित्वका सामर्थ्य इतना है कि स्व और परको जानना अपनेसे अपनी वजहसे है, ऐसा उस पर्यायका सामर्थ्य है। उस पर्यायको माना तब कहा जाये कि जितना उसका सामर्थ्य है उतना माने ! समझमें आया ? सम्यग्दर्शन उसे कहा न ? सम्यक् अर्थात् जैसा सत्का स्वरूप द्रव्य-गुण-पर्यायका है उस प्रकारसे सम्यक् प्रतीति होवे ! जिस प्रकार है वैसी प्रतीति होवे तो वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा...!

'लेकिन निज स्वरूपसे तो तन्मयी है और परसे तन्मयी नहीं; जिस तरह निजको तन्मयी होकर निश्चयसे जानता है...' यही खुलासा वहाँ किया। **'उसी तरह यदि परको भी तन्मय होकर जाने तो परके सुख, दुःख, राग, द्वेषके ज्ञान होने पर सुखी, दुःखी, रागी, द्वेषी हो...'** ज्ञानकी पर्याय परके सुख-दुःखमें तन्मय होकर जाने तो यहाँ (सुखी, दुःखी हो जाय)। सुख अर्थात् संसारिक सुख ! इन्द्रियके सुखकी बात है। इन्द्रियके सुख-दुःखको तन्मय होकर जाने तो यहाँ इन्द्रियका सुख-दुःख आ जाय ! समझमें आया ? तो यहाँ राग-द्वेषको तन्मय होकर जाने तो राग-द्वेष यहाँ आ जाय आहाहा...! अग्निमें तन्मय होकर जाने तो ज्ञान गरम हो जाय, बरफको तन्मय होकर जाने तो ज्ञान ठंडा हो जाय; (लेकिन) गरम-ठंडी तो जड़की अवस्था है, स्पर्शकी अवस्था है। आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा मार्ग है, भाई !

'इसप्रकार कभी नहीं हो सकता'। ज्ञान परको जानते हुये परमें तन्मय हो जाय तो ज्ञानमें सुख-दुःख और राग-द्वेष हो जाय, लेकिन ऐसा नहीं। आहाहा...! पापीके परिणाम ज्ञान जाने लेकिन वह (ज्ञान) पापीके परिणाम है इसलिए उसे जाने ऐसा नहीं है, वह अपने सामर्थ्यसे जानता है, उसको (परको) स्पर्श किये बिना उसकी हयाती है, इसलिए जानता है ऐसा भी नहीं है। आहाहा...! ऐसी उसकी (ज्ञानकी) उपस्थतिका सामर्थ्य है। सत्...सत्...सत्...समझमें आया ?

'सो इसप्रकार कभी नहीं हो सकता। यहाँ जिस ज्ञानसे सर्वव्यापक कहा, वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रिय सुखसे अभिन्न है...' आहाहा...! जो ज्ञान उपादेय सर्वव्यापक कहकर सर्व अर्थात् सर्वको जानना, ऐसा व्यापकका अर्थ...जो ज्ञान सर्वको जाने ऐसा कहा...व्यापकका अर्थ वह... **'वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रिय सुखसे अभिन्न है...'** आहाहा...! उस ज्ञानको उपादेय जाननेसे अतीन्द्रिय आनंद आये बिना रहता नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा...! समझमें आया ? जो सर्वव्यापक अर्थात् स्वको, परको जाननेका जो पर्यायधर्म ऐसा जो ज्ञान उसको जाननेपर वह उपादेय है। वह उपादेय अर्थात् उसके सन्मुख

होकर अतीन्द्रिय ज्ञानके द्वारा, अतीन्द्रिय आनंद द्वारा उसको उपादेय किया तब उपादेय हुआ, तब अतीन्द्रिय आनंद साथमें है। समझमें आया ? आहाहा...!

ऐसा क्यों कहा ?–कि भाई ! ऐसे स्व-परप्रकाशक आत्माको उपादेय किया। उपादेय कब होता है ?–जब वह अंतरमें शुद्धस्वरूपसे परिणमन करे तब (उपादेय है)। तब साथमें आनंद आता ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा...! धारणामें उपादेय किया वह अलग बात है और उपादेयरूपसे परिणमन किया वह अलग बात है। समझमें आया ? आहाहा...! उपादेयरूपसे परिणमन हो तब अतीन्द्रिय आनंदका स्वाद भी साथमें आता है ऐसा कहते हैं। आहाहा...! क्योंकि वहाँ स्वभावमें ज्ञानके साथ अतीन्द्रिय आनंद साथ है। इसलिए जैसे ही उस ज्ञानमें उपादेयरूपसे परिणमन हुआ कि वहाँ साथमें ही अतीन्द्रिय आनंद आया। आहाहा...! समझमें आया ?

'वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रिय सुखसे अभिन्न है, सुखरूप है, ज्ञान...' आहाहा...! सुखरूप वह ज्ञान है ऐसा कहा न ! कौन सा ज्ञान ? निजपरकी परिणतीका ज्ञान ! अपना ज्ञान उसे ही उपादेय करने जाता है तब उसे, अतीन्द्रिय सुखसे अभिन्न होनेसे, वह ज्ञान सुखरूप परिणमता है, वह ज्ञान आनंदरूपसे परिणमता है ऐसा कहते हैं। आहाहा...! समझमें आया ? **'ज्ञान और आनंदमें भेद नहीं 'है'**। क्योंकि अंतरमें ज्ञान और आनंद अभिन्न है, तो अंतरमें निर्मल परिणति द्वारा जैसे ही उस ज्ञानका आदर किया वैसे ही उस ज्ञानके साथ ही आनंद भी आता है। आहाहा...! समझमें आया ?

कल कहा था न ! २९वाँ कलश। अशुद्ध परिणतिका अभाव, वहाँ शुद्ध परिणतिका सद्भाव ! शुद्ध परिणति भी हो और अशुद्ध परिणति भी साथमें हो (ऐसा नहीं है)। जैसा अशुद्धपना अनादिसे है वह वैसा का वैसा रहे और शुद्ध परिणति होवे ऐसा नहीं है। आहाहा...! २९वें कलशमें (आया है), २८वें कलशमें मरण-प्राप्त (आया है)। आहाहा...! अर्थात् सिर्फ पुण्य-पापके रागादिके अस्तित्वको स्वीकारनेवाला संपूर्ण तत्त्वको मार डालता है, अनादर करता है। पुण्यका–दया, दानके, व्रतके परिणाम शुभ है। इतना अस्तित्वका स्वीकार करनेवाला, त्रिकाली आनंदका नाथ है उसका अस्वीकार करता है। अर्थात् मरणतुल्य कर देता है। आहाहा...! ऐसा है। यह २८में आया, वह २९में आया।

अनंत आनंद आदि उसका जो स्वभाव है उसका जो आदर करे तब उसकी शुद्ध परिणति हुये बिना रहे ही नहीं। उस समय अशुद्ध परिणति रहे ही नहीं। अस्थिरता रहे उसकी बात यहाँ नहीं है। शुद्ध परिणतिमें, जो मिथ्यात्व सहित अशुद्ध परिणति है वह (नहीं हो सकती) आहाहा...! समझमें आया ?

'ज्ञान और आनंदमें भेद नहीं है, वही ज्ञान उपादेय है...' आहाहा...! जिस ज्ञानमें निज और परका जानपना समानरूपसे अपनेसे हुआ है...आहाहा...! ऐसे ज्ञानका आदर करनेवाला उस आनंदसे खाली नहीं होता। क्योंकि ज्ञान और आनंद अभिन्न है। ऐसी बात है यह ! वह तो कहते हैं कि एकेन्द्रियकी दया पालो और यह करो... आहाहा...! परकी दया, पूजा वह सब शुभराग है, वह कोई धर्म नहीं है, वह तो नुकशान करनेवाला है।

श्रोता :— अचेतन है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— हां, अचेतन है। आप दया, दानके परिणामको राग होनेसे अचेतन कहते हो, अचेतन कहते हो तो दुनियाको डुबा दोगे (ऐसा कहते हैं)। वास्तवमें तो श्वेताम्बर और स्थानकवासी अन्यमती है, जैनमति नहीं है। 'टोडरमलजी'ने कहा है।

श्रोता :— 'टोडरमलजी'ने कहा है इसलिए ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— नहीं, वस्तुस्थिति ही ऐसी है इसलिए ! 'कुंदकुंदाचार्य'ने कहा कि वस्त्रका टूकडा जिसके नहीं है और जिसके तीन कषायके अभावकी दशा प्रगट हुई है ऐसे नग्नका मोक्ष है, इसके अलावा अन्य सब उन्मार्ग है। श्वेताम्बर और स्थानवासी मार्ग नहीं है, उन्मार्ग है—ऐसा कहा है। 'कुंदकुंदाचार्य'की पुकार है। समझमें आया ? आहाहा...!

'यह अभिप्राय जानना' लो, यह सब कहनेका अभिप्राय यह है कि जिसके ज्ञानमें स्व और परको, परके संबंध बिना, जानना-परके अस्तित्वके स्वीकार बिना अपने ही अस्तित्वका स्वीकार है वह ज्ञान आदरणीय है। समझमें आया ? थोड़ा सूक्ष्म है, भाई ! मार्ग यह है, बापू ! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर....आहाहा...!

'इस दोहामें जीवको ज्ञानकी अपेक्षा सर्वगत कहा है।' लो यह सिद्ध किया। ज्ञानकी अपेक्षासे, जाननेकी अपेक्षासे सर्वगत कहा, लेकिन प्रसारकी अपेक्षासे-विस्तारकी अपेक्षासे सर्वगत नहीं कहा। समय हो गया।

(श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव !)

३२ श्री परमात्मप्रकाश, गाथा—६७-६८, प्रवचन नं. ४४, दि. २५-७-१९७६

'**शुद्धात्मा तो केवल ज्ञानादि स्वभाव है...**' त्रिकाली शुद्ध आत्मा वस्तु वह तो केवल ज्ञान, आनंद आदि स्वभाव स्वरूप है। केवल अर्थात् सिर्फ, केवल(-ज्ञानकी) पर्याय नहीं। केवल दर्शन, केवल आनंद ऐसा शुद्धात्माका स्वभाव है। '**जड़रूप नहीं है...**' वह शरीररूप नहीं है, रागरूप नहीं है। वह आत्मा उपादेय-दृष्टिमें ग्रहण करनेलायक है ऐसा कहना है। ऐसी बात है। '**उपाधिरूप नहीं..**' भगवान आत्माका द्रव्यस्वभाव, नित्यस्वभाव ज्ञान और आनंद है। उसका स्वरूप-स्वभाव है, वह कभी रागरूप हुआ नहीं। शरीररूप तो कभी हुआ नहीं लेकिन रागरूप भी वह वस्तु नहीं हुई। आहाहा...!

'**उपाधिरूप नहीं है....**' चैतन्यबिंब प्रभु जो सम्यग्दर्शनका विषय पर्यायमें उपादेय करनेलायक ऐसा जो शुद्धात्मा वह रागरूप हुआ नहीं। '**शुद्धात्मस्वरूप ही है...**' वह तो शुद्ध चैतन्यघन निर्मलानंद प्रभु (है)। '**पर जो काम-क्रोधादि परवस्तु भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म है वे पर ही है...**' इच्छा, क्रोध, राग, द्वेष, दया, दानके भाव, जड़कर्म और शरीर वह सब पर है। '**अपने नहीं है...**' वह स्वरूपमें नहीं, स्वरूपके नहीं ! आहाहा...! समझमें आया ?

'**जो यह आत्मा...**' तब कहते हैं कि है न पर्यायमें ? '**संसार-अवस्थामें यद्यपि अशुद्धनयकर...**' पर्यायमें अशुद्धता है वह '**अशुद्ध निश्चयनयकर काम-क्रोधादिरूप हो गया है...**' पर्यायमें अशुद्धनिश्चयसे (है), शुद्धनिश्चय तो त्रिकाल शुद्ध है। आहाहा...! वही आदरणीय है, लेकिन उसकी पर्यायमें अशुद्धनिश्चयसे काम-क्रोधादिरूप हुआ है। '**तो भी परमभावके ग्राहक शुद्धनिश्चयनयकर..**' आहाहा...! तो भी त्रिकाली उसका जो स्वभाव है उस दृष्टिसे उसको देखे तो...परमभाव ग्राहक (अर्थात्) त्रिकाली स्वभावको जाननेवाला-ग्रहण करनेवाला ऐसा जो शुद्धनिश्चयनय है... '**अपने ज्ञानादि एक स्वभावको छोड़कर...**' एक शब्द रह गया है, अंदर संस्कृतमें है। '**शुद्धनिश्चयकर अपने ज्ञानादि एक निजस्वभाव...**' एक निजस्वभाव... एकरूप जो त्रिकाल स्वभाव है...समझमें आया ? आहाहा...! चिद्घन प्रभु ज्ञान-स्वभावी वह वस्तु उसको शुद्धनिश्चयसे देखे तो एक स्वभावी ज्ञानस्वरूप त्रिकाल है। उसने कभी अपने निजस्वभावको छोड़ा नहीं है।

वस्तु है उसका ज्ञान-आनंद आदि स्वभाव (है वह) शुद्धनिश्चयसे देखो तो उसने कभी छोड़ा ही नहीं है और रागको और काम-क्रोधके विकल्पको कभी ग्रहा नहीं है। आहाहा...! ऐसी बात है। **'काम-क्रोधादिरूप नहीं होता अर्थात् निजभावरूप ही है।'** शुद्ध चैतन्यकी दृष्टिसे देखें तो निजभावरूप शुद्ध एकरूप त्रिकाल स्वभाव है और वही उपादेय है। पर्यायमें उपादेय (अर्थात्) उसके सन्मुख होकर उसका ही आदर करने जैसा है। आहाहा...! यह धर्मकी रीत है। यहाँ तो कहते हैं कि दया, दान, व्रत, व्यवहार रत्नत्रय जो है उसरूप निजस्वभाव कभी हुआ ही नहीं है। क्या है ?

श्रोता :— काम-क्रोधादि...

पूज्य गुरुदेवश्री :— काम-क्रोधादि विकार है। विकार आया न ! व्यवहार रत्नत्रय विकार है। शुभराग है। यद्यपि पर्यायमें अशुद्धनिश्चयसे है लेकिन वह तो पर्यायमें अशुद्ध है, वस्तुमें नहीं है। आहाहा...! ऐसा वीतरागका मार्ग ! रागादिरूप नहीं होता ! यह आया कि नहीं ?

'निजभावरूप ही है। ये रागादि विभावपरिणाम उपाधिक है...' क्या आया ? आया कि नहीं ? आहाहा...! भगवान त्रिकाल नित्यानंद प्रभु रागकी उपाधिसे रहित है, एकरूप स्वभावसे भरा वह तत्त्व है। वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, बापू ? लोगोंने बहारसे मानकर मनाया है, वह वीतराग मार्ग नहीं है। आहाहा...!

श्रोता :— माना-मनाया तो है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— यह रागसे धर्म मनाया है और पुण्यसे, व्यवहारसे और शुभरागसे (धर्म है ऐसा माना है)। सबकी यही तकलीफ है न ! शुभ उपयोग ही अभी सबको करने जैसा है (ऐसा मनाया है) आहाहा...! भाई ! वह तो अनंतकालसे कर रहा है। जो स्वभावमें नहीं है ऐसी पर्यायमें शुभभाव तो अशुद्धनिश्चयसे अनादिसे कर रहा है, वह कोई नई बात नहीं है। नई बात तो यह है कि शुद्धभावसे, शुभसे भिन्न भगवान पूर्णानंदके नाथ वीतरागमूर्ति प्रभुको उपादेय करना उसका नाम धर्म है।

श्रोता :— वीतरागमूर्ति तो वहाँ (मंदिरमें) है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— यहाँ है; वह तो स्थापना निक्षेप है, यह भाव निक्षेप है। वह तो स्थापना है, भाव स्वरूप तो यहाँ है। वीतराग स्वरूपी शुद्धात्मा केवल ज्ञान स्वरूप, वीतराग स्वरूप, अकषाय स्वरूप ऐसा भगवान नित्यानंद प्रभु पर्यायमें उपादेय है। वह तो

जो है सो है। आहाहा...! उस तरफकी दृष्टि करना वही उसका उपादेयपना है। समझमें आया ? ऐसा मार्ग है। भाई !

'ऐसा योगीश्वर कहते हैं...' मुनिगण ऐसा कहते हैं कि त्रिकाली स्वभाव भगवान आत्मा कभी भी रागरूप, व्यवहाररूप हुआ ही नहीं और पर्यायमें हुआ है वह तो अशुद्धनयका विषय है अर्थात् वह व्यवहारनयका विषय है, वह वस्तु नहीं है। आहाहा...! जिसमें जन्म-मरण और जन्म-मरणके भाव नहीं है, लेकिन उसके भाव बिनाका स्वभाव जिसमें है उसका आश्रय करनेसे जन्म-मरण मिटे ऐसा है। यह ८४के अवतार ! एक एक भवके दुःखका वर्णन शास्त्रमें (आता है)। निगोदके जीव एक श्वासमें अठारह भव करे उस दुःखकी क्या पराकाष्टा ! आहाहा...! भगवान आत्मा पूर्णानंदके नाथका आश्रय लिया नहीं, उसका स्वीकार किया नहीं कि मैं पूर्णानंद स्वरूप हूँ। इस वजहसे अशुद्ध परिणतिमें पुण्य और पाप भावमें अटका और उसमे परिभ्रमण किये ! समझमें आया ?

'यहाँ उपादेयरूप मोक्ष-सुखसे तन्मय...' अर्थात् भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सुखसे अभिन्न है। मूल शब्द **'अभिन्न'** है, उसका अर्थ 'तन्मय' किया है। टीकामें **'मोक्षसुखादुपादेयभूताभिन्नः'** भाई ! पहले रागादिको भिन्न कहना है इसलिए मोक्षके सुखको अभिन्न कहा है। संस्कृतमें है नीचेसे दूसरी लाईन। आहाहा...! **'मोक्षसुखादुपादेय भूतादभिन्नः'** आहाहा...! ऐसा शुद्धात्मा ! आहाहा...! परमानंदका नाथ प्रभु मोक्षके सुखसे वह अभिन्न है और काम-क्रोधादिके व्यवहार विकल्पसे भिन्न है। आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा मार्ग है। कल किसीका पत्र आया था कि मैं समझने आया था लेकिन कुछ समझमें आया नहीं।

श्रोता :— दिव्यध्वनि जैसा लग रहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह बोले थे कि आप हसते-हसते कुछ बात कर रहे थे जिससे ऐसा लग रहा था जैसे दिव्यध्वनि हो ! लेकिन क्या कह रहे थे वो (समझमें नहीं आया)। बात तो ऐसी लग रही थी जैसे कि हसते-हसते दिव्यध्वनि खीर रही हो ! ऐसा लिखा है। लेकिन कुछ समझा नहीं हूँ, अब समझनेकी जिज्ञासा है। शास्त्र भेजें ऐसा कहा है। आहाहा...!

प्रभु ! तू अनादिसे अनजान रहा ! शुद्ध चैतन्य वस्तु है वह अनादिसे अनजान रही और शुभाशुभभावका परिचय किया। आहाहा...! वह शुभभाव कोई नवीन वस्तु नहीं है।

ऐसा कहते हैं कि अब आप शुभभावका कुछ कहो, कुछ सुधार करो। शुभभावको हेय बताते हो उसमें सुधार लाओ ऐसा कहते हैं। अरे...! भगवन् !

श्रोता :— व्यवहार रत्नत्रय है न !

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह तो अनादिसे है, वह नई बात कहाँ है ? वह तो शुद्ध चैतन्यके स्वभावका भाव-दशा हो उसे व्यवहार रत्नत्रयका आरोप शुभभावसे देते हैं। लो ! इतना आता है ! जिसने भगवान आत्मा वीतराग आनंदका नाथ प्रभु पूर्ण स्वरूप है, उसको उपादेय करके निश्चयमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट किया है, उसको जो रागादि है उसे व्यवहार रत्नत्रय और परंपरा मोक्षका कारण है ऐसे आरोप करके कहनेमें आता है। समझमें आया ? है, वस्तु नहीं लेकिन बंधका कारण है, उसको आरोप करके मोक्षका कारण कहा है। वह कहा न ! आहाहा...! ऐसी बात है, बापू ! उसने कभी निजस्वभावका अवलंबन लिया नहीं (और) यह रागका आधार-अवलंबन लेकर पड़ा है। उसमें उसे मजा आती है, वह भटकनेके रास्ते हैं। आहाहा...! वह आरोपित वस्तु है।

श्रोता :— लोग भ्रममें पड़ जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :— लोग भ्रममें पड़ जाय वह... न समझे वह तो भ्रममें पड़े ही है। आत्मा शुद्ध चैतन्य भगवान आनंद स्वरूप उसकी श्रद्धा उपादेय करके निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ, उसके साथ देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धाका विकल्प जो है उसे सहज निमित्तरूपसे देखकर-सहचर देखकर उपचारसे-व्यवहारसे उसे समकित कहा है। 'मोक्षमार्गप्रकाशक' सातवें अधिकारमें (आता है)। आहाहा...!

सीधा ही कहा है कि बंधका कारण है, लेकिन यहाँ यह (निश्चय) है उसका आरोप देकरके-सहचर देखकरके व्यवहार कहा है। 'मोक्षमार्गप्रकाशक'में है। आहाहा...! बहुत अच्छी बात ! और उन्होंने यहाँ तक कहा कि यह लक्षण जो बता रहा हूँ वह निश्चय और व्यवहारका लक्षण सर्वत्र जानना। आहाहा...! जहाँ कहीं भी रागको साधक कहा हो वहाँ भी उसे उपचारसे-व्यवहारसे आरोप देकर साधन कहा है। सच्चा साधन तो, भगवान आत्मा रागसे भिन्न होकर अनुभवकी क्रिया करे, प्रज्ञाछैनीसे छेदकर रागसे भिन्न करे, वह साधन है। आहाहा...!

श्रोता :— अनुभवकी रीत बताईये।

पूज्य गुरुदेवश्री :— यह रीत है। आहाहा...! और जिसमें आनंद आये उसे साधकपना कहते हैं। रागमें तो दुःख आता है। व्यवहार रत्नत्रयका राग है वह तो दुःख

है। दुःखको मोक्षका उपाय कहना वह तो आरोपित कथन है, निरुपण करनेकी शैली है, वस्तुस्थिति वैसी नहीं है। आहाहा...!

अरे भगवन् ! ऐसा समय मिला है, भाई ! जगतको ऐसे देखते हैं। आहाहा...! कितने जीव पड़े हैं थर के थर (एकेन्द्रियके)! वह नीम देखो ! ओहोहो...! पत्तेके एक टुकड़ेमें असंख्य जीव पड़े हैं। बेचारे कब मनुष्य होंगे ? तिरनेका उपाय सुनने कब मिलेगा उसे ? आहाहा...! ऐसी दुर्लभ वस्तु है उसे समझ ले। ऐसा कहते हैं। आहाहा...! दुर्लभ कहा है। कल ८५वीं गाथामें आया था न ! **'कालु लहेविणु जोइया'** उसके अर्थमें लिया है कि एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय और तीन इन्द्रिय करते...करते...करते... ऐसा लिया है। ८५ गाथामें। कल याद आई थी।

'कालु लहेविणु जोइया' ८५ (गाथा) वह काललब्धिको प्राप्त करके हे योगी ! **'जिमु जीमु मोहु गलेइ तिमु तिमु दंसणु लहइ जिउ णियमें अप्पु मुणेइ'** आहाहा...! इसके बाद उसमें बहुत खुलासा किया है। **'एकेन्द्रियसे विकलत्रय दुर्लभ है, विकलत्रयसे पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियसे सैनी पर्याप्त, उसमें मनुष्य होना कठिन है। मनुष्यमें भी आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, शुद्धात्माका उपदेश आदि मिलना...'** आहाहा...! जैनमें जन्म हो और उपरसे शुद्धात्माका उपदेश मिलना ! आहाहा...! **'दुर्लभ सामग्री मिलने पर भी जैन-शास्त्रोक्त मार्गसे मिथ्यात्वादिके दूर हो जानेसे आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होते हुये, जैसे जैसा मोह क्षीण होता जाता है वैसा वैसा शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसा रुचिरूप सम्यक्त्व होता है।'** आहाहा...!

कितना दुर्लभ है ! अरे ! उसे भूल नहीं, भाई ! बहारके रसके प्रेममें काल चला जायेगा तो वह तो जो अनंतकालमें किया वही है। भगवान अनंत आनंदका नाथ प्रभु है न ! आनंदकी निधि है, ज्ञानकी निधि है, श्रद्धाकी निधि है, शांतिकी निधि है। आहाहा...! ईश्वर शक्तिओंकी वह निधि है। उसे तू साधारण न समझ, भाई ! वह शुभ उपयोगसे होगा। वह तो स्वरूपसे विरुद्ध बात है, भाई ! विरुद्धभावसे स्वभावभाव होता है ?

श्रोता :—अशुभसे तो बचेगा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—वह कौन बचेगा ?—जो समकिती होगा वह ! जिसे शुद्ध चैतन्यका भान हुआ है उसको शुभरागमें अशुभसे बचना होता है। मिथ्यादृष्टिकी तो दृष्टि ही वहाँ पड़ी है, वह कहाँ अशुभसे बचता है ! भाई ! भगवन् ! ऐसा तेरा स्वरूप है न ! उसको पामरमें मत डाल ! आहाहा...! भाई ! तुझे उसमें नुकशान है, दुनिया खुश होगी और

तू खुश होगा। आहाहा...! शुभभाव तो होता है न....शुभभाव तो होता है न....भाई ! वह शुभभाव तो निगोदमें भी अनंतबार किया है। निगोदमें भी अनंतबार शुभभाव किया है, (लेकिन) वह कोई वस्तु नहीं है। आहाहा...! भगवन् ! शुभभावके पीछे महाप्रभु पड़ा है न ! आहाहा...! जो स्वयं कभी शुभरागरूप हुआ ही नहीं है। आहाहा...! और राग भी कभी शुद्धात्मारूप हुआ ही नहीं है। आहाहा...!

श्रोता :— शुद्धात्माकी पर्यायबुद्धिमें राग है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह अब आयेगा, यहाँ तो अभी ६७ (गाथा) तक लिया। अब ६८(गाथामें) आगे आयेगा। गाथा आगे बढ़ती जाती है न ! आहाहा...!

'**उपादेयरूप मोक्षसुखसे तन्मय...**' अभिन्न। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनंदसे तन्मय है। अंदर स्वभावमें अतीन्द्रिय आनंदसे तन्मय है। आहाहा...! '**काम-क्रोधादिसे भिन्न है। जो शुद्धात्मा है वही उपादेय है, ऐसा अभिप्राय है।**' लो, अब आगे बढ़ते हैं। यह ६८वीं गाथा तो बहुत ऊंची है। 'जयसेनाचार्य'की ३२०वीं गाथामें भी यह लिया है। ३२० गाथा अभी मुंबईमें पढ़ी है। हजारों (लोगोंके बीचमें), दस-दस हजार, पंदर-पंदर हजार लोग (थे)। 'जयसेनाचार्य'की ३२० गाथा जैसी यह गाथा है। अब तो लोग सुनते हैं...सुनते हैं, बापू ! सुनो भाई ! अरे भगवन् ! पक्षको छोड़ दो। फलाना ऐसा कहेगा और ढिकना वैसा कहेगा—वह कहने दे, बापू ! तीनलोकके नाथ जिनेश्वरदेव क्या कहते हैं उसको देख न तू ! आहाहा...!

परमात्मा तो ऐसा कहते हैं कि त्रिकाली शुद्ध आत्मा जो है वह रागरूप हुआ नहीं है। आहाहा...! और राग है वह शुद्धात्मारूप हुआ नहीं है। यहाँ तक ६७ गाथाकी बात करी। अब ६८ गाथामें आगे ले जाते हैं। अलौकिक बात है, बापू ! आज रविवार होनेसे 'भावनगरवाले' सब हमारे भाई आये हैं।

श्रोता :—हम आपके हैं कि नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—यहाँ कोई किसीका नहीं है। आहाहा...! भाई ! यह समझमें आता है ? अशुद्धनय, भाईने पूछा था।

शुद्धनिश्चय वह वस्तु। वस्तुको शुद्धनिश्चय कहा, परम शुद्धनिश्चय, त्रिकाल और पर्यायमें अशुद्धता...अरे...! शुद्धता हो फिर भी उसे अशुद्धनय कहते हैं। पर्यायमें शुद्धता... 'प्रवचनसार'में ४७ नय आते हैं न ! ४६, ४७ आखिरी नय ! मिट्टीको सिर्फ मिट्टीके रूपमें देखो वह शुद्ध है, वैसे ही भगवानको उनकी निर्मल पर्यायसे भी नहीं देखना और केवल

द्रव्यको देखना वह शुद्ध है। ४६, ४७ अशुद्धनय और शुद्धनय है न ! आहाहा...! अरे....! दिगंबर संतोंने तो जगतको निहाल कर दिया है। आहाहा...! केवलज्ञानके पथिक ! सिर्फ माल परोसा है। ऐसी बात कहीं नहीं है, भाई ! समझमें आया ? आगे ले जाते हैं।

'**शुद्धनिश्चयनयकर आत्मा जन्म**' अर्थात् (आत्मामें) उत्पाद-पर्याय नहीं है, मृत्यु अर्थात् व्यय उसमें नहीं है, उसे बंध नहीं और मोक्षको करता नहीं। वह (आत्मा) उत्पादको करता नहीं, व्ययको करता नहीं, बंधको करता नहीं और मोक्षको करता नहीं। आहाहा...! क्या पाठ है ?

ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थँ जोइया जिणवरु एउँ भणेइ॥६८॥

तीनलोकके नाथ ऐसा कहते हैं...आहाहा...! हम जिसे जीव कहते हैं...आहाहा...! वह जीव उत्पन्न नहीं होता, पर्यायमें नहीं आता, पर्यायको व्यय नहीं करता। हम उसे जीव कहते हैं कि जो बंधको करता नहीं। आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा प्रभु एक समयमें चैतन्यधातुसे धारण किया हुआ, धातु अर्थात् स्वभावसे धारण किया हुआ ऐसा जो त्रिकाली तत्त्व, उसे जिनवर ऐसा कहते हैं कि यह जीव है। आहाहा...! भाई ! आहाहा...!

ऐसा जो जीव त्रिकाली ध्रुव स्वरूप परमात्मा, स्वयं मोक्षके मार्गको करता नहीं है। आहाहा...! मोक्षको करता नहीं और बंध और बंधके मार्गको भी करता नहीं। वह उत्पादकी पर्यायमें आता नहीं और वह व्यय-पर्यायमें आता नहीं। आहाहा...! ऐसे जीवको जिनवर जीव कहते हैं। आहाहा...! 'समयसार'की ३२०वीं गाथाकी टीकामें यह गाथा ली है।

ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थँ जोइया जिणवरु एउँ भणेइ॥६९॥

तीनलोकके नाथ इसको जीव कहते हैं। आहाहा...! समझमें आया ? सम्यग्दर्शनका विषय जो जीव है वह मोक्षकी पर्यायको नहीं करता। आहाहा...! मोक्षमार्गको नहीं करता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी पर्यायको जीव नहीं करता। आहाहा...! उस पर्यायको पर्याय करती है, समझमें आया ?

सम्यग्दर्शनकी पर्यायको जीव करता नहीं। क्यों ?-कि उस पर्यायमें षट्कारकरूपसे परिणमन करनेकी शक्तिसे वह पर्याय परिणमित होती है। सम्यग्दर्शनकी पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, पर्याय साधन....आहाहा...! पर्याय अपादान, पर्याय संप्रदान, पर्याय करके (अपनेमें)

पर्याय रखती है, पर्यायका आधार पर्याय। वह एक समयकी सम्यग्दर्शनकी पर्याय षट्कारकरूपसे परिणमित होती हुई (उत्पन्न होती है)। वह द्रव्य उसरूप परिणमित नहीं होता (और) वह द्रव्य उस समकितको करता नहीं है। आहाहा...! शेठ ! ऐसी बात है, बापू ! अरेरे...! ऐसा वास्तविक सत्य...भाई ! अच्छा किया कि धंधा छोड़कर यहाँ समझने आये हो। यह तो समझने जैसा है, बापू ! क्या करे ? अरेरे...! दुनियाने मार्गमें गड़बड़ी कर दी इसलिए मार्ग नहीं बदलेगा, मार्ग तो जो है वही रहेगा, भाई ! आहाहा...!

यहाँ परमात्मा ऐसा कहते हैं, **'जिणवरु एउँ भणेइ'** जिनवर त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर इन्द्रों और गणधरोंकी सभामें ऐसा कहते थे। आहाहा...! ऐसा संत कहते हैं। आहाहा...! वह वीतरागी संत वीतरागके मालके आडतिया (दूत) है। वह कहते हैं कि जिनवर ऐसा कहते हैं। लेकिन प्रभु ! आप भी मुनि हो और कहो तो वह भी व्याजबी है। लेकिन वह तो (कहते हैं कि) जिनवर ऐसा कहते हैं। आहाहा...! भाई ! यह वाद-विवादकी वस्तु नहीं है। यह तो अंतरमें समानेकी वस्तु है। आहाहा...! जहाँ वस्तु है वहाँ जानेके लिये (यह बात) है, वह जानेकी पर्यायको भी वह करता नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा...! वह ध्रुव भगवान उत्पाद-व्ययकी पर्यायको–निर्मल (पर्याय)को–मोक्षमार्गकी पर्यायको करता नहीं। पंडितजी ! आहाहा...! ऐसी बात है, भाई ! आचार्यने तो वहाँतक कहा, 'जिणवरु एउँ भणेइ' क्या कहा ?–उसे जीव कहते हैं। ऐसे जीवको भगवानने ऐसा कहै कि वह जीव है कि जो बंध और मोक्षकी पर्यायको करता नहीं, उस जीवको हम जीव कहते हैं। आहाहा...!

श्रोता :—.....

पूज्य गुरुदेवश्री :—जुदा ही है। पर्याय और द्रव्य दोनों एक है ही नहीं। आहाहा...! पर्यायमें द्रव्यका ज्ञान आता है लेकिन पर्यायमें द्रव्य नहीं आता। आहाहा...! परमभाव स्वभावभाव भगवान नित्यानंद प्रभु ऐसा जो जीव, वह एक समयकी ज्ञानकी पर्यायमें जैसा है वैसा उसका यहाँ ज्ञान आता है लेकिन वह द्रव्य नहीं आता। आहाहा...! देखो। वीतरागमार्गकी बलिहारी ! आहाहा...! एक समयकी पर्यायमें लोकालोकका ज्ञान आता है, लोकालोक नहीं आता। एक पर्यायमें संपूर्ण द्रव्यका ज्ञान आता है, यह वस्तु ऐसी है ऐसा ज्ञान होता है, वस्तु नहीं आती। आहाहा...! अरे ! ऐसा तत्त्व है, भाई !

तू रागकी एकतामें दब गया है, प्रभु ! दबावमें आ गया है। पर्याय दबावमें आई है। द्रव्य तो द्रव्यरूपसे सदाय एकरूप रहा है। वह रागके दबावमें नहीं आता, वह

मोक्षमार्गकी पर्यायमें भी नहीं आता। आहाहा...! रागके दबावमेंसे छुटा तो उस पर्यायमें द्रव्य नहीं आता। आहाहा...! ऐसी वस्तु है। कहाँ है, बापू? आहाहा...! जिनवर त्रिलोकीनाथ....उसमें भी दिगम्बर धर्म और सनातन जैनदर्शन....आहाहा...!

श्रोता :—पर्याय बिनाका द्रव्य तो....

पूज्य गुरुदेवश्री :—वह तो परकी अपेक्षासे पर्याय सहितका द्रव्य है, स्वकी अपेक्षासे तो पर्याय बिनाका द्रव्य है। दो है कि नहीं? कि एक है? पर्याय और द्रव्य दो वाचक है न ! तो वाच्य भी दो है, तो दो भिन्न वस्तु है। वास्तवमें तो द्रव्य पर्यायको छुआ ही नहीं। आहाहा...! वो आता है न ! ४९वीं (गाथा)में...पर्यायको द्रव्य छूता नहीं। आहाहा...! ४९वीं गाथामें आता है, व्यक्त-अव्यक्तका एक साथ ज्ञान होने पर भी व्यक्तको प्रभु स्पर्श नहीं करता। आहाहा...! पर्यायको आत्मा छूता नहीं। आहाहा...! देखो, यह जिनवरकी (कथनी) ! आहाहा...!

भाई ! तेरी स्थिति ऐसी है। आहाहा...! उसको तू लक्षमें तो ले ! भगवान आत्मा (उसे) लक्षमें लेनेवाली पर्यायमें आता नहीं। आहाहा...! ऐसा है, बापू ! यह तो वीतराग स्वरूपकी बात है, भगवन् ! इसमें रागमें खुश होना और होंश आदि, बापू ! वह तो उन्मत्त-उन्मादता है। यहाँ तो परमात्मा स्वयं जिनवर ऐसा कहते हैं कि उसे हम जीव कहते हैं कि जो जीव बंध और मोक्षकी पर्यायमें आता नहीं, उसे करता नहीं। उसे हम जीव कहते हैं कि जो उत्पाद-व्ययकी दशामें आता नहीं। आहाहा...! समझमें आया? ऐसा उपदेश अब लोगोंको कठोर लगता है। वह बेचारा कह रहा था कि मैं कुछ समझा नहीं। कभी सुना ही न हो इसलिए (बेचारा) (ऐसा कहे), क्या हो बापू ! तेरे घरकी बात है, भाई ! आहाहा...!

पर्यायमें जो आता नहीं, मोक्षकी पर्यायमें आता नहीं ऐसा आत्मा दृष्टिमें लेना, फिर भी उस दृष्टिमें वह वस्तु आती नहीं। आहाहा...! श्रद्धाकी पर्यायमें वह वस्तु है ऐसी श्रद्धा आती है। वह वस्तु जितनी और जैसी है ऐसी श्रद्धा होती है, लेकिन वह वस्तु पर्यायमें नहीं आती। आहाहा...! यह शराफी धंधा है। अपने शेठ शराफ है न ! आहाहा...! शराफी धंधा है, बापू ! आहाहा...! भाई ! उसको वाद-विवादमें मत ड़ाल ! समझमें आया? उसको जैसा है वैसे रहने दे ! आहाहा...! भाषा तो देखो ! आहाहा...!

'जिणवरु एउँ भणेइ' जिनवर ऐसा कहते हैं। हम उसको जीव कहते हैं कि जो जीव मोक्षकी पर्यायमें मोक्षमें नहीं आता, मोक्षकी पर्यायको करता नहीं है, उसे हम जीव

कहते हैं। यह गजब बात है। आहाहा...! गाथा तो गाथा है न ! अमृत भरा है ! अमृत भरा है ! आहाहा...! **'ण वि उप्पज्जइ'** वह जीव उत्पाद-पर्यायमें आता नहीं, गजब बात ! प्रभु ! आत्मा तो उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तम् सत् है न ! वह तो प्रमाणके विषयका सत् है। समझमें आया ? **'शुद्धनिश्चयनयकर'** अर्थात् त्रिकाली वस्तुको देखनेवाली नयसे देखे तो **'आत्मा...'** पाठमें जीव है, यहाँ **'आत्मा'** शब्द लिया है। कोई ऐसा कहे कि जीव और आत्मा दो अलग है। यह वेदांतवाले ऐसा कहते हैं न ! अंत:करण विशिष्ट वह 'जीव' और निर्मल तद्दन त्रिकाली वह 'आत्मा' ! (लेकिन) ऐसा नहीं है। आहाहा...!

'शुद्धनिश्चयनकर...' भगवान आत्मा ध्रुव जो है उसे यहाँ आत्मा कहा है। आहाहा...! नित्यानंद स्वभावको यहाँ आत्मा कहा। वह आत्मा जन्म नहीं लेता अर्थात् उत्पादमें नहीं आता, मरता नहीं (अर्थात्) व्ययमें नहीं आता। आहाहा...! उत्पादव्ययध्रुवयुक्तम् सत् है न ! वह तो संपूर्ण द्रव्यकी बात कही, लेकिन मूल द्रव्य जो ध्रुव है उसकी बातमें यह बात है। समझमें आया ?

'जैसा है वैसा ही है...' आहाहा...! वह तो भगवान जैसा है वैसेका वैसा एकरूप है। एकेन्द्रियकी पर्याय, सिद्धकी पर्याय या मोक्षमार्गकी पर्याय (हो), सब जगह वह तो जो है सो है। आहाहा...! समझमें आया ? आज रविवार आया और यह गाथा भी आ गई। भाई ! आहाहा...! अरे भगवन् ! तू कितना और कहाँ है उसकी प्रभु बात कर रहे हैं। कितना-कहाँ है ? उसको हम आत्मा कहते हैं। वह कहाँ है ? कितना है ? आहाहा...! तीनलोकके नाथ जिनेश्वरदेव दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा फरमाते हैं। जीव बंध और मोक्षकी पर्यायको करता नहीं ऐसा हम कहते हैं। उसे जीव कहते हैं। आहाहा...! समझमें आया ?

सम्यग्दर्शनका विषय ध्रुव है, पर्याय नहीं। सम्यग्दर्शन पर्याय है...आहाहा...! लेकिन उसका विषय है वह त्रिकाली वस्तु है। उस पर्यायमें संपूर्ण वस्तु है उसकी श्रद्धा आती है लेकिन श्रद्धाकी पर्यायमें वह वस्तु नहीं आती। समझमें आया ? श्रद्धाकी पर्यायमें उसकी पाचक शक्ति है। अग्नि जैसे पका देती है न ! कैसा भी अनाज हो उसे (पका देती है), वैसे ही सम्यग्दर्शनकी पर्यायमें जो पाचक शक्ति है उससे, संपूर्ण प्रभु है उसका पाचन (डाईजेस्ट) कर लेती है। समझमें आया ? वह श्रद्धामें संपूर्ण पूर्णानंदको लेता है। उस प्रतीतिमें पूर्णानंदकी श्रद्धा आई लेकिन पूर्णानंदका नाथ श्रद्धाकी पर्यायमें नहीं आया। आहाहा...! भाई ! ऐसी वस्तु है, बापू ! अभी तो बहुत गड़बड़ी कर दी है।

यहाँ आया था न—भेदाभेद रत्नत्रयकी भावना ! पाठमें तो इतना है-भेदाभेद भावना,

उसका अर्थ वह है। ६२वीं गाथामें आया था न, भाई !–कि आगे भेदाभेद रत्नत्रयकी भावनासे नौ सूत्र कहेंगे। उसमेंसे यह एक है न ! पाठमें भेदाभेदकी भावना है, खुलासा भेदाभेद रत्नत्रय। वह भी कथन है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निश्चय है आनंददाता वह पर्यायको अभेद कहता है तब साथमें रागका भाग आता है। व्यवहारसे श्रद्धाका, ज्ञानका, महाव्रतका विकल्प और निमित्तपना देखकर और सहचारी है इसलिए उपचारसे उसे व्यवहार रत्नत्रयका आराधन कहा है। आहाहा...! समझमें आया ?

अभेद रत्नत्रयके परिणाम जिसमें नहीं है। आहाहा...! और अभेद रत्नत्रयके परिणाममें आत्मा नहीं है। वह भेद रत्नत्रयके परिणाममें कैसे आया ? आहाहा...! मार्ग ऐसा है, बापू ! वह देह छूट जायेगा, भाई ! और कोई साथ नहीं आयेगा ! बहारकी अनुकूलता लोग खुश हुये होंगे, लोगोंको खुश रखना...आहाहा...! वह कोई मदद नहीं करेगा, बापू ! आहाहा...! जिसकी शरणमें जाना है वह तीनलोकका नाथ है। आहाहा...! वह शरणमें जानेवाली पर्याय भी जिसमें नहीं और जिसमें वह नहीं आता। आहाहा...!

'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं' मोक्षका मार्ग है, निश्चयसे वह शरण है। वह शरणकी पर्यायमें ध्रुव आता नहीं है। आहाहा...! ऐसा आत्माका शरण है। समझमें आया ? कितनोंने तो यह बात सुनी भी नहीं होगी। यह दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, त्याग करो– ऐसी बातें साधुलोग करे इसलिए सरल लगता है, हमें समझमें आता है। (लेकिन) आपकी बात समझमें नहीं आ रही। कुछ है तो सही ऐसा कहा, लेकिन कुछ समझमें नहीं आया, ऐसा पत्र आया था।

अब यहाँ ऐसा कहे कि निश्चय मोक्षमार्ग जो है वह स्वके आश्रयसे प्रगट हुआ। आश्रयसे प्रगटाका अर्थ ? द्रव्यमेंसे आया ? द्रव्य तो द्रव्य है ऐसा कहते हैं। आहाहा...! भाषा तो ऐसी ही आयेगी। वस्तुस्थिति तो संपूर्ण पड़ी है न ! उसमेंसे निर्मल परिणति आती है न ! भेद हुआ, ऐसा भेदसे कहा, भेदसे ऐसा कहते हैं; वस्तु है वह वस्तु है, पर्याय पर्यायमेंसे होती है, पर्याय पर्यायसे होती है। आहाहा...! पर्याय द्रव्यसे भी नहीं। आहाहा...! ऐसा वीतरागमार्ग ! जिनवरदेवकी....आहाहा...! परम निधानको, 'परम निधान प्रगट मुख आगळे, परम निधान प्रगट मुख आगळे, जगत उल्लंघी जाय जिनेश्वर' वह परमात्मा परम निधान पड़ा है न ! उसे पार करके पर्याय और रागमें चीपका है। 'परम निधान प्रगट मुख आगळे, जगत उल्लंघी जाय।' आहाहा...!

श्रोता :— पर्याय ध्रुव... पर्यायकी एकता करे या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— तीनकालमें एकता नहीं करती। एकता कहनेका मतलब यह कि उस तरफ झुकी है इसलिए एकता (करी ऐसा कहा)। पर्याय और द्रव्यकी एकता तीनकालमें कभी नहीं होती ! सामान्य-विशेषमें न आवे और विशेष सामान्यरूप न हो ! दो धर्म भिन्न है। आहाहा...! यह तो गाथा ऐसी है। ऐसी बात है, भाई ! ध्रुव तो सदृशरूप त्रिकाल एकरूप है। कूटस्थ है, बदलता नहीं है।

कहीं ऐसा हो तो 'पंचाध्यायी'में ऐसा भी कहा है कि गुण है वह पर्याय होती है तो बदलता है, गुण भी बदलता है। पर्याय आये और जाये उस अपेक्षासे (कहा) लेकिन गुण और द्रव्य त्रिकाल सदृश है। 'पंचाध्यायी'में है कि पर्याय पलटती है वैसे गुण भी पलटता है कि नहीं ? गुण भी पलटता है। बदलता है न ! पर्याय आये और जाय, नई आये और पुरानी जाय, इस अपेक्षासे गुणको पर्यायनयसे पलटता है ऐसा कहा। द्रव्यनयसे देखो तो...आहाहा...! एकरूप परमात्मा विराजमान है। उसे जन्म भी नहीं, मृत्यु भी नहीं, बंध भी नहीं, मोक्ष भी नहीं !

'जैसा है वैसा ही है, ऐसा निरूपण करते हैं–हे योगीश्वर !' हे संत ! आहाहा...! 'प्रभाकर भट्ट'को कहते हैं न ! **'निश्चयनयकर विचारा जावे...'** यह द्रव्यसंग्रहमें है। पृष्ठ नं. २०८ 'द्रव्यसंग्रह'में भी यह बात आयी है। ध्यान विनश्वर है। हे संत ! **'निश्चयनयकर....'** परमार्थ निश्चयसे देखे...परमार्थ शब्द है न ! परमार्थसे देखे तो... आहाहा...! **'यह जीव न तो उत्पन्न होता है, न मरता है और न बंध-मोक्षको करता है, वह शुद्धनिश्चयनयसे बंध-मोक्षसे रहित है...,'** भगवान वस्तु है वह निश्चयसे बंध हो तो, कभी छूटे ही नहीं। बंध हो तो उसका अभाव हो जाता है। **'शुद्धनिश्चयसे बंध-मोक्षसे रहित है ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं...'** आहाहा...! विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❀ विकल्पका भाग भी क्रमानुसार होता है, परन्तु जहाँ उसके कालक्रमसे निकलता है तब मैंने किया ऐसा भ्रम उसे हो जाता है। २६१.

–द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर - पर्यायदृष्टि विनश्वर

३३ श्री परमात्मप्रकाश, गाथा—८८-८९, प्रवचन नं. ६७, दि. २०-८-१९७६

'परमात्मप्रकाश' ८८वीं गाथा, भावार्थ फिरसे। भाईने फिरसे लेनेके लिये बोला है। **'यद्यपि व्यवहारनयकर यह आत्मा..'** दिगम्बर, श्वेताम्बर, बौद्धके आचार्य (आदि) **'अनेक भेखोंको धरता है...'** व्यवहारसे भेख धरता है ऐसा कहनमें आता है। **'तो भी निश्चयनयकर कोई भी भेष जीवको नहीं है...'** वह अट्ठाईस मूलगुण–रागादि या नग्न देह यह सब देहके धर्म है। आहाहा...! **'देहके हैं...'** आहाहा...!

'यहाँ देहके आश्रयसे जो द्रव्यलिंग है, वह उपरचितासद्भूत व्यवहारनयकर जीवका स्वरूप कहा जाता है....' उपचारसे–झूठी व्यवहारनयसे कहा जाता है। आहाहा...! असद्भूत कहा न ! उपचरित कहा क्योंकि बाह्य भेष है न ! **'असद्भूत व्यवहारनयकर जीवका स्वरूप कहा जाता है, तो भी निश्चयनयकर जीवका स्वरूप नही है।'** वह लिंग आदि जीवका स्वरूप ही नहीं है। आहाहा...! अठ्ठाईस मूलगुणका विकल्प है वह भी जीवका स्वरूप नहीं है, वह असद्भूत व्यवहारनयसे है। आहाहा...!

'क्योंकि जीव देह ही जीवका नहीं है, तो भेष कैसे हो सकता है?' जब देह ही आत्मा नहीं है, तो देहके भेषको आत्माका कैसे कहा जावे ? **'इसलिए द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है...'** अब भावलिंगको उपचारसे कहना है न (इसलिए यह द्रव्यलिंग) सर्वथा नहीं ऐसा कहा है। आहाहा...! नग्नपना या भेष है वह सर्वथा आत्माका नहीं है। कथंचित् आत्माका और कथंचित् (देहका) ऐसा नहीं है। आत्माकी पर्यायसे तो वह सर्वथा भिन्न वस्तु है। **'द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है और वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप भावलिंग...'** आहाहा...! देखो, मोक्षका मार्ग ! जो जैन शासन...आहाहा...! जो अपना अबद्धस्पृष्टकर स्वरूप है उसे देखनेवाली नय अथवा देखनेवाला भाव वह जैनशासन भावलिंग है। आहाहा...! समझमें आया ? जो अपनेको अबद्धस्पृष्ट जाने, माने वह पर्याय जिसको यहाँ जैनशासन कहा है, वह भावलिंग निर्विकल्प दशा है। आहाहा...!

'यद्यपि शुद्धात्मस्वरूपका साधक है...' क्या कहते हैं ? वह शुद्ध पूर्णानंदकी प्राप्तिमें निश्चय मोक्षमार्ग निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, शांति वह मोक्षमार्गमें साधक होनेसे **'उपचारनयकर जीवका स्वरूप कहा जाता है...'** साधक है उस अपेक्षासे... मोक्षका साधक

है....आहाहा...! उस वीतरागी जैनशासनकी पर्याय भी मोक्षकी साधक होनेसे 'उपचारनयकर जीवका स्वरूप कहा जाता है...' आहाहा...! समझमें आया ? यहाँ तो (अभी) व्यवहारके विकल्प और व्यवहारकी क्रियासे मुझे धर्म होगा (ऐसा मानते हैं)। आहाहा...!

यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं कि निमित्तका लक्ष तो छोड, रागका लक्ष छोड़ और पर्यायका लक्ष भी छोड़ ! आहाहा...! समझमें आया ? मार्ग बहुत (सूक्ष्म है) भाई ! यह लोग ऐसा कहते हैं न कि भक्तिसे मोक्ष होता है, भगवानकी भक्तिसे (मुक्ति) होती है.... अरे प्रभु ! भगवानकी भक्ति तो शुभराग है। 'परदव्वादो दुग्गई' ऐसा पाठ है। परद्रव्यके लक्षसे यह राग होता है वह आत्माकी गति नहीं है। वह तो दुर्गति है, चार गतिका कारण है। चाहे स्वर्गका कारण कहो (लेकिन) स्वर्ग और मनुष्यगतिका कारण वह तो दुर्गति है, दुःख है। आहाहा...! बहुत सूक्ष्म बात, भाई ! लोगोंको स्थूल मिला इसलिए लोगोंको यह बात एकांत जैसी लगती है। अरे ! एकांत ही है, सम्यक् एकांत ! अनेकांतका नय है वह सम्यक् एकांत है। अनेकांतमें सम्यक् नय है वह एकांत है। आहाहा...! समझमें आया ? भाई ! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, आहाहा...!

कहते हैं, '**शुद्धस्वरूपका साधक है...**' कौन ? निर्विकल्प निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, स्वसंवेदन ज्ञान; शास्त्रज्ञान आदि नहीं और स्वरूपकी रमणता वह भावलिंग, शुद्धात्मस्वरूप, पूर्ण मुक्तिकी प्राप्ति शुद्धात्मस्वरूपकी (प्राप्तिका) साधक होनेसे शुद्धात्म पर्यायकी प्राप्ति साधक होनेसे '**उपचारनयकर जीवका स्वरूप कहा जाता है।**' आहाहा...! उसको उपचारसे कहा वो सिद्धांत है। वह बराबर देखा नहीं....कल रात्रिमें याद आया था। 'आलापपद्धति'में है। उपचार कर कहें कि मुख्यका उसमें अभाव है। आहाहा...! अखंडानंद प्रभु मुख्य वस्तु है, उस मुख्य (वस्तुका) पर्यायमें अभाव है। निर्मल वीतरागी मोक्षमार्गमें....! रागकी तो यहाँ बात ही कहाँ है ? वीतरागी पर्याय जो मोक्षका मार्ग वीतरागस्वरूप भगवानके आश्रयसे पर्यायमें उत्पन्न हुआ, वीतरागी दशा–निर्विकल्प आनंदकी दशा (प्रगटी), वह वीतरागी दशा–भावलिंगी मोक्षकी, शुद्धात्मस्वरूपकी प्राप्ति अर्थात् मोक्षकी साधक होनेसे उपचारसे जीवका स्वरूप कहनेमें आया है....आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा मार्ग है, भाई ! सूक्ष्म तो है लेकिन क्या करे ? लोग अभी भी बहारसे चिल्लाते हैं कि व्यवहार करते करते होता है। व्यवहार तो राग है। यहाँ तो कहते हैं कि निर्विकल्पदशा शुद्धात्मस्वरूपकी साधक होनेसे उपचारसे जीवका स्वरूप कहा जाता है। व्यवहारमें (कहा जाता है) क्योंकि वह पर्याय है। आहाहा...! भगवन् ! अब आगेकी लाईन....

'**वो भी...**' ऐसा कहा फिर भी '**परमसूक्ष्म शुद्धनिश्चयनयकर भावलिंग भी जीवका**

नहीं है।' आहाहा...! निश्चय मोक्षमार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, निश्चय वीतरागी पर्याय, जैनशासन (वह भी जीवका स्वरूप नहीं है)। आहाहा...! १५वीं गाथामें कहा न कि **'जो पस्सइ अप्पाणं'** आत्मा देखे, श्रद्धा करे उस पर्यायको जैनशासन कहनेमें आता है। पर्यायको कहते हैं न ! आहाहा...! जो भगवानको देखता है, अपने भगवानको ! पर भगवानको और गुरुको देखनेंमें तो राग होगा। आहाहा...! समझमें आया ?

आचार्य तो ऐसा कहते हैं, भगवान ऐसा कहते हैं कि प्रभु ! तू हमारे सामने देखता है तो एकबार अपनी ओर देख न ! जहाँ तेरा निधान है वहाँ देख न ! तेरा निधान हमारे पास कहाँ है, जो हमें देख रहा है ! आहाहा...! समझमें आया ? त्रिलोकीनाथ वीतरागकी दिव्यध्वनिमें ऐसा आता है। आहाहा...! हमारे सामने देखनेसे तुझे राग होगा, प्रभु ! राग तो बंधका कारण है। आहाहा...! अपने सामने देख ! तेरा निधान अंदर पडा है, नाथ ! तू निर्विकल्प आनंदका कंद है न ! जो पर्यायमें आता नहीं और पर्याय वहाँ जाती नहीं। समझमें आया ? ऐसा मार्ग है। अरे...! पिताजी कुछ निधान छोड़ जाये तो वारसाई लेने तुरंत तपास करता है। प्रभु कहते हैं कि तेरे पास निधान पड़ा है वह भी जीवका व्यवहार स्वरूप है, वह वास्तविक जीव नहीं। आहाहा...! वह औपचारिक जीव है। आहाहा...! भाई ! समझमें आया ? आहाहा...!

प्रभु ! तेरा मार्ग... वीतराग त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञकी वाणीमें ऐसा आया, प्रभु ! तू हमारे सामने—देव-गुरु-शास्त्रके सामने देखता है, तो तुझे राग होगा, **'पस्सइ अप्पाणं'** आहाहा...! तेरा नाथ तो तेरे पास अंदर पड़ा है न ! वहाँ निधानके उपर दृष्टि करनेसे तुझे आनंद आयेगा। हमारे उपर दृष्टि करनेसे तुझे दुःख होगा, प्रभु ! भाई ! ऐसा मार्ग सुनने मिलता नहीं। ऐसे ही जिन्दगी चली जा रही है धूलमें ! यह पूजा और भक्ति और यात्रा करो और हो गया धर्म ! भाई ! वह तो राग है, वह धर्म तो नहीं लेकिन धर्मका कारण भी नही; लेकिन जो वीतरागी निर्विकल्प मोक्षमार्ग है उसका व्यवहार कारण भी नहीं। निश्चय मोक्षमार्गका कारण द्रव्य स्वभाव है। समझमें आया ? और वह द्रव्यस्वभाव त्रिकाली है उसकी यह मोक्षपर्याय है ?-तो कहते हैं कि नहीं, वह उपचार है। आहाहा...! गजब बात है। समझमें आया ? यह बात तो शास्त्र चलता हो तब कही जाती है, उपर उपरसे कहने पर पकडमें नहीं आती। यह अधिकार चल रहा है और सामने गाथा है। आहाहा...! समझमें आया ?

'उपचारकर जीवका स्वरूप' गजब बात है, प्रभु ! राग तो उसका स्वरूप नहीं, देह उसका स्वरूप नहीं लेकिन मोक्षका मार्ग भी जीवका स्वरूप उपचारसे है। आहाहा...! गजब

बात है। क्यों ?–कि वो पर्याय है। वह पर्याय उपचारसे द्रव्यकी है। आहाहा...! द्रव्यमें पर्याय नहीं है। समझमें आया ? आहाहा...! ऐसा मार्ग है। लोगोंको ऐसा लगे....बीच बीचमें यह बात नहीं थी न ! भगवन् ! आहाहा...! निश्चयाभासी एकांती है, ऐसा कहते हैं। बापू ! उसे पता नहीं है, परमात्मा तो ऐसा कहते हैं।

त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेव, गणधरदेव और इन्द्रोंके बिचमें यह कहते थे, वह संत कह रहे हैं। दिगम्बर संत वह कह रहे हैं जो सर्वज्ञने कहा है। समझमें आया ? श्वेताम्बर जैसा नहीं है कि भगवानने कहे हुये शास्त्र हम कहते हैं। यह तो हम अपने वैभवसे भगवानने कहा वह कह रहे हैं। आहाहा...! गजब बात है, भाई ! यह सत्य बात कानमें पहुँचनेके लिये भाग्य चाहिये ! यह पैसेका भाग्य नहीं। आहाहा...! वह तो जड़ कंकर है। वह तो जड़ कंकर परमाणु है, वह तेरे कहाँसे ? यहाँ तो कहते हैं कि राग तेरा नहीं और निर्विकल्प मोक्षका मार्ग भी उपचारसे तेरा है, गजब बात है ! समझमें आया ? आहाहा...!

गजब बात कही है ! यह यहाँ कहते हैं कि पूर्ण शुद्धात्माका स्वरूप प्राप्त हो उसका साधक मोक्षमार्ग होनेसे उपचारसे जीवका (स्वरूप) है ऐसा कहते हैं। आहाहा...! यहाँ तो शुद्धात्माकी पर्याय प्राप्त हो उसका साधक सिद्ध करना है। वह शुद्धात्माकी पर्याय पूर्ण प्राप्त हो उसका साधक होनेसे जीवका (स्वरूप) उपचारसे है ऐसा कहते हैं। समझमें आया ? आहाहा...! यह सब व्यवहारके और निमित्तके और क्रमबद्धके झगड़े ! यह तीनों सोनगढ़के नामसे (चलते हैं)।

क्रमबद्ध–एकके बाद एक क्रमबद्ध होता है, तो (लोग) कहते हैं कि नहीं। अरे भगवन् ! फिर तो सर्वज्ञ ही नहीं रहे। जिस समय जो पर्याय होनी है वह सर्वज्ञने पहलेसे देखी है। समझमें आया ? आहाहा...! सोनगढका है या भगवानके घरका ? अरे....! वह 'सम्यग्ज्ञान दीपिका' ब्रह्मचारी क्षुल्लकजीका है, उन्होंने थोड़े सिद्धांत सिद्ध किये हैं, उनकी वह बात झूठ नहीं है। अब वह (बात) सोनगढ़के नामसे चलाकर कहते हैं कि सोनगढवाले ऐसे कहते हैं। अरे भगवन् ! भाई ! ऐसा न चले। यहाँ वीतरागका विरह हुआ तब ऐसा अन्याय ना चले। समझमें आया ? आहाहा...! भाषा तो देखो ! ऐसी (भाषा) सुनने मिलना दुष्कर है। जिंदगी ऐसे ही अज्ञानमें चली जा रही है। आहाहा...! अंतमें चार गतिमें भटकना ! आहाहा...!

परिभ्रमणका अंत लानेके लिए मोक्षका मार्ग है। वह मोक्षका मार्ग भी पर्याय है, अतः उपचार है। आहाहा...! वास्तविक जीव स्वरूपमें वह नहीं है। त्रिकाली भगवान

आनंदका नाथ प्रभु ध्रुव...ध्रुव स्वरूप...आहाहा...! आहाहा...! **'परम शुद्धनिश्चयकर भावलिंग भी जीवका नहीं है।'** द्रव्यलिंग तो नहीं, भावलिंग भी नहीं। प्रभु ! तू तो साक्षात् परमात्म स्वरूप है न ! आहाहा...! वीतरागमूर्ति तेरी चीज है। अकषायरस तेरा स्वरूप है। अनंत शक्तिका संग्रहालय, गुणोंका धाम-गोदाम तू है, उसमें यह पर्याय नहीं ! समझमें आया ?

दृष्टिका विषय दिखाते हैं। मोक्षमार्गकी पर्याय भी दृष्टिका विषय नहीं, दृष्टिका विषय दृष्टि नहीं है। गजब बात है। समझमें आया ? सम्यग्दृष्टिका विषय सम्यग्दृष्टि नहीं है। आहाहा...! फिर तो सम्यग्दर्शनका विषय व्यवहार रत्नत्रय तो कहीं दूर रह गया ! सम्यग्दर्शनका विषय मोक्षका मार्ग नहीं। आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा मार्ग है। देहादि तो नहीं, रागादि तो नहीं, व्यवहार रत्नत्रय भी जीवका स्वरूप नहीं है। आहाहा...! असद्भूत व्यवहारनयसे कहो, झूठी नयसे कहो...आहाहा...! और यह जो मोक्षका मार्ग निर्विकल्प भावलिंग वह सद्भूत व्यवहारनयका विषय है। सद्भूत व्यवहारनयका विषय होनेसे उपचारसे जीवका (स्वरूप) कहनेमें आता है। आहाहा...! यह मार्ग ऐसा है, क्या करे ! पहले उसका पक्ष तो करना चाहिये (कि) मार्ग ऐसा है। यह कोई घरकी बात नहीं है। यह तो तीनलोकके नाथके घरकी बात है, प्रभु ! परमेश्वरकी पर्याय जितना तू नहीं है। मोक्षमार्गकी पर्याय जितना नहीं, सिद्धकी पर्याय, परमात्माकी पर्याय जितना नहीं। परमात्मा सिद्धकी पर्याय भी सद्भूत व्यवहारनयका विषय है। केवलज्ञान सद्भूत व्यवहारनयका विषय है। निश्चयका विषय नहीं। समझमें आया ? आहाहा...! पर्याय है न ! द्रव्यमेंसे भेद पड़ा न ! भेद पड़ा इसलिए (व्यवहार) और उसकी है इसलिए सद्भूत। केवलज्ञान सद्भूत व्यवहारनका विषय है। गजब बात है, प्रभु ! आहाहा...! उसका साधक है ऐसा उपचारसे कहनेमें आता है। आहाहा...!

ऐसी बात भी कहाँ है प्रभु ! आहाहा...! जीवन चला जा रहा है। समय समय मृत्यु समीप जा रहे हैं। जो समय गया वह लौटकर नहीं आयेगा। आहाहा...! जीवनका अंत आनेकी तैयारी है। देह छूट जायेगा, भगवन् ! जो आत्माका शरण नहीं लीया तो कुछ नहीं कीया ! तूने कुछ नहीं किया !

श्रोता :— उस समय याद तो आयेगा न !

पूज्य गुरुदेवश्री :— याद किया हो तो याद आये न ! याद क्या आयेगा ? याद आये उसमें क्या है ! याद आये वह तो धारणा हुई। अंतरमें आत्माकी दृष्टि हुई हो तो मृत्यु समय पर वह दृष्टि आयेगी। समझमें आया ? याद आये उसमें क्या हुआ ? वह तो धारणा

हुई। सूक्ष्म बात है, भाई ! वीतरागका मार्ग ऐसा है। जन्म-मरणका अंत लाये ऐसी बात है। चौरासीका सिंधु-दरिया (उसका अंत लानेकी बात है)। शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है ! यह भवसिंधु मेरा रूप नहीं है ! भवसिंधुका कारण राग भी मेरा रूप नहीं है। आहाहा...! 'कहे विचक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ, अपने रससो भर्यो अनादि टेक हूँ।' मेरी चीज अनादि आनंदकंद शुद्ध चैतन्य घन निर्विकल्प आनंद सामान्य ध्रुव स्वरूप त्रिकाल है। 'कहे विचक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ, अपने रससो भर्यो अनादि टेक हूँ, मोहकर्म मम नहीं, नाहीं भ्रमकूप है।' वह भ्रमका कुआ है और शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है, शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है। आहाहा...! जिसमें पर्याय भी नहीं है। ऐसी बात है, प्रभु ! आहाहा...! भाईने कहा कि फिरसे पढ़ना, इसलिए फिरसे लिया। अरे भाई ! यह बात कहाँ है ? बापू ! मान-सम्मान आदि सब शून्य है-धूल है। भरा हुआ भगवान गुणका सागर तो यहाँ अंदर है। वह रागसे खाली, पर्यायसे खाली है। आहाहा...! वह दृष्टिका विषय है। सम्यग्दर्शनका आधार-विषय यह है। ऐसे तो निश्चयसे मोक्षमार्गकी जो पर्याय है वह पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, पर्यायका आधार पर्याय, पर्याय पर्यायको रखती है और पर्यायमेंसे पर्याय आती है। आहाहा...!

निश्चय मोक्षमार्ग जो है वह भी पर्याय है और पर्यायके कर्ता-कर्म षट्कारक पर्यायमें है। उसे आत्माका कहना वह उपचारसे ऐसा कहते हैं। आहाहा...! जिस भगवानमें कर्ता, कर्म, करण, गुण त्रिकाल पड़े हैं। यह तो एक समयकी पर्यायके कर्ता-कर्म हुये। समझमें आया ? आहाहा...! वस्तुमें तो त्रिकाली कर्ता, त्रिकाली कर्म, गुण-शक्ति करण, संप्रदानस अपादानस अधिकरण, स्वच्छता, प्रभुता, जीवत्व आदि अनंत शक्तियोंका संग्रह-अनंत शक्तिका पिंड प्रभु है ! यह व्यवहार उपचारसे भावलिंग कहा वह जीवका (स्वरूप) नहीं है। अरेरे...! स्त्री, पुत्र और पैसे कहाँ गये ? भाई ! यह मेरा पुत्र और यह मेरी वो और यह मेरा और यह मेरा....आहाहा...!

श्रोता :— ....

पूज्य गुरुदेवश्री :— ...उड़ ही गया है, उसमें था ही कब ! उसमें है ही कहाँ ? आहाहा...! एक द्रव्य दूसरे द्रव्यके उपर ही उपर तैरता है। 'बहिर्लूटंती' शब्द संस्कृतमें है। एक द्रव्य (दूसरे द्रव्यपर) तैरता है, कलश है। समझमें आया ? उपर ही उपर पूरा द्रव्य रहता है। 'बहिर्लूंटंति' ऐसा शास्त्रमें पाठ है। शरीर, कर्म, वाणी, मन, स्त्री, कुटुंब, परिवार सब 'बहिर्लूंटति' ! तेरा और उसका क्या संबंध है ?

यहाँ तो कहते हैं कि तेरे तो रागके साथ संबंध नहीं है। अरे...! निर्विकल्प पर्यायका संबंध तेरे साथ कहना वह भी व्यवहार है। आहाहा...! भाई ! ऐसी बात है, प्रभु ! भाईने फिरसे पढ़नेको कहा इसलिए फिरसे पढ़ा। आहाहा...! भगवान आत्मा है न ! भाई ! उस भगवान आत्मामें भावलिंगपना भी नहीं है। आहाहा...! क्योंकि पलटती दशा है। मोक्षमार्ग तो एक समयकी दशा है। भावलिंग है वह तो एक समयकी दशा है और वस्तु त्रिकाल है। समझमें आया ? क्या कहते हैं ? अंदरमें समझना वह करना है। आहाहा...!

भगवान आत्मा वस्तु कि जो चिद्घन स्वरूप आनंदकंद नित्यानंद है उसमें तो भावलिंगकी परिणति भी नहीं है अथवा वह भावलिंग जीवका स्वरूप नहीं है, वह तो पर्यायका स्वरूप है। समझमें आया ? अब इतना स्पष्ट कथन है। यह 'परमात्मप्रकाश' है न ! तो कहते हैं कि भावलिंग है वह परमात्मप्रकाश वस्तुमें नहीं है। परमात्म पर्याय जो प्रगट हुई वह परमात्मस्वभावमें नहीं है। आहाहा...! परमात्मस्वभाव तो ध्रुव त्रिकाल आनंदकंद है। ऐसी परमात्मप्रकाशकी अनंती अनंती पर्यायका पिंड तो है। समझमें आया ? अरे....! उसने आत्माको सुना नहीं है। आहाहा...!

'पद्मनंदी-पंचविंशति'में बारह-तेरह बोल लिखे है : आत्माको सुनना, आत्माको पूछना, आत्माके प्रश्न करना, आत्माके विचार करना, आत्माका चिंतवन करना, आत्माका मनन करना,....ऐसे तेरह बोल लीये है। 'पद्मनंदी पंचविंशति'में यह लिया है। २६ अधिकार है लेकिन २५ नाम दिया है, अधिकार २६ है, 'पद्मनंदि पंचविंशति'में सब देखा है न ! सब शास्त्र (देखे हैं)। उसमें २६ अधिकार है, लेकिन नाम २५ दिया है। 'पद्मनंदि पंचविंशति' बनाया है न ! उसमें यह लेख है। प्रभु ! तुजे आत्मा सुनना, आत्मा विचारना, चिंतवन करना, पूछना (इत्यादि)। आत्मा कैसा है वह पूछना। दूसरी बात छोड़ दे, तू यह कर ! 'पद्मनंदी पंचविंशति'में यह तेरह बोल है। २६ अधिकार है लेकिन नाम 'पंचविंशति' दिया है। उसमें बीचमें है, शायद 'निश्चय अधिकार'में है। 'निश्चय अधिकार' है न ! सब पढ़ा है, प्रवचनमें पढा है। प्रवचन हो गये हैं। वह अधिकार पढ़ा है। ४२वाँ चोमासा चल रहा है, यहाँ ४२वाँ चोमासा चल रहा है। आहाहा...!

'भावलिंग भी जीवका नहीं है। भावलिंग साधनरूप है...' वह तो पर्यायरूप साधन है ऐसा कहते है। आहाहा...! **'यह भी परम अवस्थाका साधक नहीं है।'** अर्थात् द्रव्यको सिद्ध करनेमें वह पर्याय साधन है लेकिन द्रव्यमें वह पर्याय साधन नहीं है। समझमें आया ? पर्याय जो साधनरूप है वह द्रव्यमें नहीं है। द्रव्यमें यह है उसे सिद्ध नहीं कर सकती। द्रव्यमें यह है ऐसा पर्याय सिद्ध नहीं कर सकती। द्रव्य तो द्रव्य है ! आहाहा...!

ऐसा द्रव्य भगवान साक्षात् परमात्म स्वरूप है। ८८=आठ कर्मका अभाव, भावलिंगका अभाव। आहाहा...!

'आगे, यह गुरु-शिष्यादि भी नहीं है...' देखो ! यह गुरु मेरे और यह देव मेरे– ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा...! ८९।

अप्पा गुरु णवि सिस्सु णवि सामिउ णवि भिच्चु।
सूरउ कायरु होइ णवि णवि उत्तमु णवि णिच्चु॥८९॥

भगवान आत्मा गुरु नहीं है। आहाहा...! यहाँ तो कहते हैं कि गुरु मेरे नहीं है, शिष्य भी मेरे नहीं है, स्वामी भी नहीं और नोकर भी नहीं। गुरु नहीं, शिष्य नहीं, स्वामी नहीं, भृत अर्थात् सेवक भी नहीं। भृत अर्थात् सेवक-नोकर। **'शूरः कातरः नैव'** भगवान आत्मा शूरवीर नहीं। पर्यायके शूरवीर, हाँ ! और परमात्मा कायर भी नहीं है। आहाहा...! वह शूरवीर और कायर तो पर्यायकी बात है। समझमें आया ? उत्तम और नीच नहीं। उंच कूलवाले हम हैं (ऐसा नहीं है)। नीच कुल भी नहीं, वह सब गुरु, शिष्य, स्वामी, सेवक आदि संबंध नहीं है। आहाहा...! वह तो व्यवहारसे कहनेमें आता है, ऐसा कहते हैं। गुरु ऐसा कहते हैं कि हम तेरे नहीं है, तू हमारा शिष्य नहीं है। सब जगह गड़बड़ है न ! पता है न, भाई !

यहाँ तो शरीरको ८७वाँ वर्ष चल रहा है। १९६५से शास्त्र अभ्यास है। 'पालेज'में पिताजीकी दुकानमें भी शास्त्र पढ़ते थे। पूर्वके संस्कार थे (इसलिए यह धर्म मिल गया), लेकिन यहाँ तो श्वेताम्बर थे न !....वह सब बहुत पढ़ा लेकिन यह जैनदर्शनकी बात कहीं नहीं है। कोई कहे कि बौद्ध मिथ्यादृष्टि और भगवान महावीर दोनों मोक्ष गये हैं। स्थानकवासी जैन होकर ऐसी बात! गजब बात है न ! कहाँ बौद्ध गृहीत मिथ्यादृष्टि और कहाँ भगवान केवलज्ञानी ! आहाहा...! अभी तो सब ऐसे ही अंधाधूंध चल रहा है। स्थानकवासीमें कोई ऐसा विचार करनेवाला भी नहीं है कि क्या चल रहा है और यह क्या बोल रहे हैं !

श्रोता :— गहरे उतरकर....

पूज्य गुरुदेवश्री :— लेकिन इसमें गहरा कहाँ है ? कहाँ बौद्ध और कहाँ परमात्मा ! निश्चय-व्यवहारकी बात हो तो सूक्ष्म लगे लेकिन कहाँ वह बौद्ध और कहाँ भगवान तीनलोकके नाथ और कहाँ गृहीत मिथ्यादृष्टि क्षणिकवादी ! बेचारा वैरागी राजा था लेकिन क्षणिकवादी ! दुःखसे वैराग्य (आया था) लेकिन वस्तु त्रिकाल क्या है (उसकी समझ नहीं

थी) ! वह बौद्ध नित्यको मानता ही नहीं था। 'श्रीमद्'में भी पीछे आता है। २७ प्रश्नोत्तर है, उसमें किसीने प्रश्न किया है–बौद्ध है ? उसके शास्त्रसे देखें तो बौद्ध धर्मको प्राप्त हुआ ही नहीं है, ऐसा लिखा है। 'श्रीमद्'की दृष्टि निर्मल थी। एक यह श्वेताम्बर-दिगम्बरकी भिन्नता पहलेसे नहीं हुई थी, बादमें (भिन्नता) करी लेकिन उनके भक्त अब मानते नहीं। बादमें स्पष्ट कर दिया है। सत्श्रुतमें १९ नाम दिगंबरके (शास्त्रोंके) दिये हैं। लोगोंको वह पकड़ होती है इसलिए आग्रह (छूटता नहीं)।

श्रोता :— ...

पूज्य गुरुदेवश्री :— नहीं, वस्तु उसमें नहीं है। मूल तो गृहीत मिथ्यादृष्टि होनेके बाद शास्त्र रचे हैं। कहीं नहीं है; थोड़ा निकाला है लेकिन वह भी समयसारमेंसे लेकर डाला है, अभी नया बनाया है यह वस्तु, बापू ! यह तो सनातन सत्य है। आहाहा...! सनातन सत्यका प्रवाह बह रहा है। ऐसा मार्ग है, बापू ! यह भगवानका कहा हुआ है। आहाहा...!

श्रोता :— 'समयसार'को भी नहीं मानते ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— नहीं, वह नहीं मानते। दिगम्बरका ग्रंथ क्युं माने ? 'समयसार'को माने तो श्वेताम्बर धर्म पूरा गलत हो जाये, उसको क्युं मानेंगे ? आहाहा...!

यहाँ तो दूसरा लेना है कि गुरु और शिष्य भी व्यवहारनयसे कहनेमें आते हैं। आहाहा...! यह मेरे गुरु और यह मेरा शिष्य, वह तो व्यवहारसे कथन है। गुरु-शिष्य कैसे ? भगवान आत्मामें द्वैत कैसा ? आहाहा...! विकल्पका द्वैत जिसमें नहीं। अरे ! निर्मल पर्यायका द्वैत जिसमें नहीं, उसमें गुरु-शिष्य कहाँसे आये ? अद्वैत भगवान...अन्यमतवाले–वेदांतवाले अद्वैत कहते हैं वैसा नहीं। यह अद्वेत अर्थात् एकरूप वस्तु कि जिसमें पर्यायकी द्वैतता नहीं। पंच परमेष्ठिमें आता है–मैं द्वैत भी नहीं, मैं अद्वैत भी नहीं। मैं तो जैसा हूँ वैसा हूँ, ऐसा आता है। द्वैत अर्थात् द्रव्य-पर्याय, 'पद्मनंदि-पंचविंशति'में श्लोक आता है। 'नियमसार'में उसका आधार लिया है। आहाहा...! द्रव्य और पर्याय—ऐसा द्वैत भी नहीं और 'मैं द्रव्य हूँ' ऐसा अद्वैतका विकल्प भी नहीं आहाहा...! ऐसा मार्ग है। प्रभु ! सम्यग्दर्शनका विषय अलौकिक वस्तु है। लोग ऐसा मान लेते हैं कि हम सम्यग्दृष्टि है और अब पड़िमा ले लो और व्रत ले लो ! अभी तो सम्यग्दर्शन कैसे हो (उसकी खबर नहीं)। आहाहा...!

अरे ! सम्यग्दर्शन हुआ तो वस्तु है वह मोक्षस्वरूप है (ऐसा भान हुआ)। सम्यग्दर्शनमें मोक्षस्वरूपका भान है तो अंदर मोक्ष हो गया। पर्यायमें मोक्ष होना है, द्रव्य

मोक्ष तो अंदर हो गया, अबद्ध कहो या मोक्ष कहो। आहाहा...! ऐसी वस्तुमें गुरु-सेवकादि तो व्यवहारसे है। आहाहा...! यहाँ तो (ऐसा कहते हैं कि) हमारे गुरुको हम माने तो मोक्ष होता है। गुरुको माने वह तो विकल्प है। वह मार्ग तो वीतराग है। मुँहके सामने खाना रखो तो किसे पसंद ना आये ! यह (वीतराग) तो मना करते हैं कि हमारे सामने देखोगे तो राग होगा। यह वीतरागमार्ग है, भाई !

देखो, यहाँ कहते हैं कि गुरु और शिष्य व्यवहारसे हैं। **'शुद्ध-निश्चयनयसे शुद्ध आत्मासे जुदे हैं...'** गुरु कौन ? उसका आत्मा भिन्न, तेरा आत्मा भिन्न, शिष्यका आत्मा भिन्न। तुझे ऐसा क्युं लगता है ? समझमें आया ? कोई कहता है कि गुरुकी भक्ति करते करते मोक्ष होगा। भाई कल कह रहे थे कि लोग ऐसा कहते हैं कि गुरुकी भक्ति करेंगे तो मुक्ति होगी। 'श्रीमद्'में बहुतको यह शल्य घुस गया है, पता है। किसी भाईने एकबार प्रश्न किया था कि महाराज ! देव-शास्त्र-गुरु तो शुद्ध है, वह परद्रव्य ? वह 'श्रीमद्'में जानेवाले और 'अगास'में पढ़नेवाले थे, ऐसा मानते थे कि गुरुकी भक्ति करो, बस ! मुक्ति हो जायेगी। भाई ! गुरुकी भक्ति तो राग है। भगवान तो वहाँ तक कहते हैं, आगे आयेगा....राग है, शुभ (राग) है।

अनंतबार समवसरणमें साक्षात् जाकरके तीनलोकके नाथकी हीरेके थाल, मणिरत्नके दीपक, कल्पवृक्षके फूलसे (पूजा करी)। 'मोक्षमार्गप्रकाशक'में आता है, 'सम्यग्ज्ञान दीपिका'में भी आता है। 'सम्यक्ज्ञान दीपिका'में भी आता है। 'सम्यक्ज्ञान दीपिका'में विशेष स्पष्ट कर दिया है। अनंतबार पूजा करी (लेकिन) क्या हुआ ? वह तो शुभभाव है। साक्षात् तीनलोकके नाथ समवसरणमें (विराजमान है)। सिद्धकी तो परोक्ष भक्ति करते हैं। वर्तमानमें नहीं है न ! तो सिद्धकी परोक्ष भक्ति करते हैं और यह (अरिहंत) भगवान तो समवसरणमें विराजमान है। समवसरणमें ऐसी भक्ति करी। वह क्या है ? वह तो राग है, उससे बंध होता है। यह गजब बात है, भाई ! 'मोक्षपाहुड'में तो यहाँतक कहा है, 'परदव्वादो दुग्गई' १६वीं गाथा। परद्रव्यके उपर लक्ष जायेगा तो तुझे राग उत्पन्न होगा ही ! तेरी चैतन्यकी गति नहीं रहेगी ! आहाहा...! ऐसी बात...! दिगंबर मुनि 'नागा ए बादशाहथी आघा'...! उनको जगतकी कहाँ परवाह है। कैसे माने या न माने, वो जाने ! मार्ग ऐसा है ? आहाहा...!

'समंतभद्र आचार्य'की स्तुतिमें आता है न ! भगवानने उपदेश दिया लेकिन उसका फल... वह तो केवली है। चोबीस (तीर्थंकर स्तुति)में आता है। 'स्वयंभूस्तोत्र' ! भगवानने मार्ग कह दिया। शायद तक 'धर्मनाथ'की स्तुतिमें आता है। चोबीस (तीर्थंकरकी) स्तुति है न ! 'समंतभद्र आचार्य'का 'स्वयंभूस्तोत्र', भगवानने धर्म बता दिया अब उसका फल

आया नहीं वह कौन देखे ? वह तो केवलज्ञानी है। वैसे ही धर्मात्मा मुनियोंने सत्य बात करी ! किसको समझमें आयी नहीं उससे क्या काम है ? आहाहा...! समझमें आया ?

देखो, यहाँ (कहते हैं कि) गुरु-शिष्य नहीं है। गुरुका आत्मा भिन्न, तेरा आत्मा भिन्न ! देवका आत्मा भिन्न, तेरा आत्मा भिन्न ! भवोभव पूजा करी है। दूसरे भागकी गाथा १४३में हैं। 'भवे भवे जिन पूजिओं' ऐसा शास्त्रका कथन है अर्थात् भवोभव इस जीवने जिनवरको पूजा और गुरुको वंदन किया, अनंतबार जिनवरकी पूजा की है। दो भाग है, दूसरे भागकी १४३वीं गाथाके भावार्थकी ९-१० लाईन बाद–भवे भवे जिन पूजियो ! आहाहा...! समकित बिना भावभक्तिके अभावसे जिनस्वामी नहीं मिले ! कहते हैं, जिनस्वामी ही नहीं मिले ! अर्थात् बिना सम्यग्दर्शन जिनस्वामी (मिले ऐसा) कहनेमें नहीं आता। आहाहा...! बहुत अच्छा अर्थ किया है। १४३ है। दो को प्राप्त नहीं किया– जिनस्वामी और समकित ! जिनस्वामी मिले ऐसा कब कहलायेगा ?–कि जो सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा उसे जिनस्वामी (मिले) कहलायेगा। दूसरे भागमें 'परमात्मप्रकाश'की गाथा बहुत अच्छी है। आहाहा...!

शुद्धनिश्चयसे गुरु और शिष्य जुदा है। शूरवीर और स्वामी, कायर और नीचता–सब आत्मासे भिन्न है। '**आत्माके नहीं है, त्यागनेयोग्य है...**' '**हेयभूतान**' संस्कृतमें '**हेय**' है। वह गुरु आदि त्यागने योग्य है, ऐसा कहते हैं। (क्योंकि) दृष्टिका विषय नहीं है न ! सूक्ष्म बात है, बापू ! जब तक परके उपर लक्ष रहेगा तब तक राग-विकल्प होगा। आहाहा...! ऐसा मार्ग है ! '**इन भेदोंको वीतराग परमानंद, निज शुद्धात्माकी प्राप्तिसे रहित बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव अपने समझता है...**' भाषा देखो ! वह मेरे गुरु और यह मेरा शिष्य— बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि अपने मानता है। शेठ ! देखा ? ८९ गाथा, हिन्दीमें चल गया फिर भी यह हिन्दी चल रहा है, यह तो हिन्दी पुस्तक है न !

'**वीतराग परमानंद शुद्धात्माकी प्राप्ति...**' भाषा देखो ! '**वीतराग परमानंद निज शुद्धात्माकी प्राप्तिसे रहित बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव अपने समझता है...**' यह मेरे गुरु और यह मेरा शिष्य—ऐसा अंतरमें निश्चयसे माने वह तो बहिरात्मा है। आहाहा...! परद्रव्य मेरे ! फिर यह 'मेरा बेटा' वह कहाँ रहा ! भाई इटलीसे मशीन लाये हैं। साडे तीन लाख अक्षर (लिखे हैं)। चारों ओर जिनवाणी माता ! आता है न 'सुधा धर्मसाधनी धर्मशाला' ! आहाहा...! उसमें आता है, 'क्षुधा मोहतापनी नाशनी...मोक्षदानी...' आहाहा...! जिनवाणीका बहुमान तो आता है न ! सर्वज्ञकी बातका बहुमान आता है। विकल्प है न ! आता है। आहाहा...! लेकिन उतनेसे ऐसा मान ले कि कल्याण हो जायेगा (तो ऐसा नहीं है),

मिथ्यादृष्टि ऐसा समझता है। गुरु मेरे और शिष्य मेरा–ऐसा मिथ्यादृष्टि मानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा...! यह मेरे शिष्य है। किसके शिष्य ? बापू ! परवस्तु भिन्न है, तेरे पास आई नहीं, तेरी परिणति जो शुद्ध है वह भी तेरी वस्तुमें नहीं है तो फिर यह वस्तु अंदरमें कहाँसे आई ? आहाहा...!

'और इन्हीं भेदोंको वीतराग निर्विकल्प समाधिमें रहता हुआ अंतरात्मा सम्यग्दृष्टि जीव पररूप (दूसरे) जानता है।' लेकिन पररूप कब जानता है ?–वीतराग निर्विकल्प समाधिमें रहता हुआ ! अंतरमें वीतरागी निर्विकल्प शुद्धतामें रमता हुआ अंतरात्मा सदाय उस परको जुदा मानता है, ऐसा कहते हैं। शुद्ध वीतरागी आनंद प्रभु (हूँ)—ऐसी दृष्टि करनेवाला अंतरात्मा सदाय उस वस्तुको जुदा जानता है। जुदा हुआ है वह जुदा जानता है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❀ व्रत, नियम और तपके—शुभरागके—अभ्याससे आत्मा जाननेमें नहीं आता। मैं तो मात्र ज्ञाता-द्रष्टा हूँ—ऐसा बारम्बार अभ्यास करनेसे, ज्ञायककी ओर उन्मुख होनेसे, अंतरमें ज्ञातृत्व प्रगट होनेसे आत्मा ज्ञात होता है और परका तथा रागका कर्तृत्व छूटता है। यह सम्यग्दर्शन करनेकी विधि है। मैं मात्र ज्ञाता-द्रष्टा हूँ—ऐसा अंतर्मुख अभ्यास बारम्बार करनेसे पर्यायमें ज्ञातापना प्रगट होता है और तब परका कर्तापना छूटता है; रागके विकल्पका भी कर्तापना तभी छूटता है। अज्ञानी अपने ज्ञातास्वभावसे अनभिज्ञ है। वह शरीरादि परकी क्रिया तो नहीं कर सकता, परन्तु वह ज्ञातापनेके अभ्याससे रहित है, इसलिये व्रत, तप, पूजा, भक्ति आदि बाह्य क्रियाओंका तथा पुण्य-पापके भाव जो अपना स्वभाव नहीं है उनका वह कर्ता होता है। अकेले शास्त्रज्ञानके अभ्याससे ज्ञातापना प्रगट नहीं होता और व्रत, नियम, भक्तिके ढेर लगाये तब भी उसे आत्माका ज्ञाताद्रष्टापना प्रगट नहीं होता। अहा! ऐसी बात है प्रभु! ५००.

–द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर - पर्यायदृष्टि विनश्वर

३४ श्री समयसार, गाथा-३२०J, प्रवचन नं. ६, दि. १७-८-१९७०

'समयसार' ३२०वीं गाथा, 'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार' आचार्यकी टीका चल रही है। तीसरे पेईजका तीसरा पेरेग्राफ हो गया। बराबर है ? तीसरेमें क्या कहा ? इसलिए यह सिद्ध हुआ...सिर्फ मख्खन है। जिसको धर्म करना हो उसे, मोक्ष स्वभाव जो त्रिकाल स्वरूप ध्रुव है उसकी दृष्टि करनेसे ही सम्यग्दर्शन होगा, दूसरा और कोई उपाय नहीं है। तो कहते हैं कि इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ कि शुद्ध पारिणामिकभाव विषय, वह द्रव्यनयका विषय हुआ। ऐसे चार बोल पहले आये थे, यह पांचवाँ बोल आया।

शुद्ध पारिणामिकभाव विषय, स्वयंका जो सहज ध्रुव ज्ञायक अभेद सामान्य नित्य एकरूप ऐसा जो तत्त्व है, उस तत्त्वको विषय करनेवाली, उस तत्त्वको ध्येय करनेवाली ऐसी भावना। समझमें आया ? वह भावना। उसरूप जो उपशम आदि तीन भाव है, उसरूप पारिणामिकभाव त्रिकाल वह तो ध्रुव भाव है वह तो ध्येय, विषय, लक्ष करने योग्य है। जिसको धर्म करना हो, सुखके पंथ पर चलना हो....समझमें आया ? दुःखका नाश करना वह भी नास्तिसे बात है, सुखके पंथ पर आना हो....अनादिसे दुःखी है। समझमें आया ? अपने अकषाय ज्ञायक स्वभावको भूलकरके रागादि विकल्प आदि मेरे हैं—यही संसारका बीज–मिथ्यात्वभाव है। समझमें आया ? रागादि पुण्यादि विकल्प मेरे है–यह मिथ्यात्वभाव है, उससे रहित पारिणामिकभाव मेरा है–यह सम्यक्भाव है।

भगवान आत्मा अपना ज्ञायकभाव पूर्ण ध्रुव स्वरूप अविनाशी पद उसे भूल रागादि विकल्प, चाहे तो महाव्रतका विकल्प हो या दया, दान, भक्ति, पूजाका (विकल्प हो), लेकिन वह विकल्प अन्य तत्त्व है। अन्य तत्त्व सहित स्व-तत्त्व है ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है, वह संसारका बीज है। उस मान्यताका नाश करना नहीं है। भगवान आत्मा पारिणामिकभाव है उस तरफका झुकाव, ऐसी जो भावना, ऐसा जो मोक्षका मार्ग उसका विषय–ध्येय तो द्रव्य है। बात तो ऐसी है। लोगोंको बाहरमें....अंतरमें वस्तु पातालमें महा भगवान पूर्णानंद पड़ा है। समझमें आया ? अंतर अंतर पातालमें पर्यायबुद्धि छोडकर जाय, यह पर्यायबुद्धि छोडकर....समझमें आया ?

एकसमयकी पर्याय-अवस्था या राग या पर वह सब तो बहुत दूर रह गया, उसकी रुचिमें पड़े हैं वह मिथ्यात्वभाव है, निगोदके रास्तेमें जानेका वह रास्ता है। समझमें आया ? पन्ना है कि नहीं ? 'भाई' ! दो है न ? दो कहाँसे आये ? न हो तो वहाँसे ले जाना। पढ़े, सुने तो सही। 'पालेज'में ऐसा पढ़नेमें नहीं आता।

यहाँ कहते हैं, परम स्वभाव भगवान पूर्ण ध्रुवको विषय करनेवाली भावना, उसरूप उपशमिक आदि तीन भाव। आगे ज्ञानप्रधान शैलीसे क्षयोपशमभाव एक लेंगे, भाई ! यहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनोंकी अपेक्षा लेकरके त्रिकाल वस्तुका विषय दर्शनने किया, ज्ञानने किया और उसमें लीन हुआ ऐसा जो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव-यह तीन भाव समस्त रागादिसे रहित होनेकी वजहसे....देखो ! लोगोंको ऐसा लगता है कि समस्त रागादिसे रहित तो तेरवें-बारहवें (गुणस्थानमें) होते हैं। अरे ! वह तो दूसरी बात है। वह तो ज्ञानमें-पर्यायमें रागके साथ जो निमित्त-नैमित्तिक संबंध था वह बारहवेंमें छूट जाता है। यहाँ तो दृष्टिमें रागादि सब छूट गया (उसकी बात है)। समझमें आया ?

यहाँ पहले कहा न ! दो बात तो पहले कह दी कि विकल्प राग है, पुण्यसे सहित मैं हूँ वह तो मिथ्यात्वभाव है। 'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय'की १४वीं गाथा। समझमें आया ? भगवान चैतन्यतत्त्व निर्मल ज्ञान भगवान, ज्ञानका भंडार परमात्मा वह तो मोक्ष स्वरूप ही है। आयेगा...देखो ! शक्तिके बाद आयेगा। ऐसी दृष्टि बिना एक सूक्ष्मसे सूक्ष्म विकल्प जो राग है, गुण-गुणीका भेद, गुणी भगवान आत्मा द्रव्य और उसमें रहनेवाला ज्ञायकभाव— ऐसा भेदरूप जो विकल्प है, वह विकल्प नाम राग है। राग सहित आत्माको मानना वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा....! गजब बात !

त्रिकाल शुद्धतामें अशुद्धता सहित मानना....दूसरी भाषासे कहें तो...आहाहा....! शांतिसे समझनेकी चीज है। यह तो कभी भी पढ़ सकते हैं, यहाँ तो क्लासके समय पढ़नेका विकल्प था तो क्लासके समय आ गया। बात तो ऐसी है। ऐसी वाणी ! ऐसा वीतरागका भाव कभी कभी निकलता है ! समझमें आया ?

श्रोता :— वाणी क्रमबद्धपर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह तो उसकी वजहसे है। कभी वह भी ऐसा होता है। यहाँ तो भगवान आचार्य महाराज परमेश्वरके जो भाव है उसको सामने रखते हैं। मर्म-रहस्य (बताया है), तेरी चीज जो पूर्ण है उसको विषय करनेवाली भावना तीनरूप है—उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। यहाँ तीन कहते हैं , बादमें ज्ञानप्रधान कथनमें क्षयोपशमज्ञान

(लेंगे)। यह साधककी बात है न ! यह क्षायिकभाव उपरके (गुणस्थानकी) बात नहीं है। केवलीके क्षायिकभावकी वह बात नहीं है। यहाँ तो साधकभावमें जो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक है उसकी बात है। क्या कहा ? समझमें आया ?

यह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जो तीन भाव कहे हैं, वह क्षायिक वह केवलीके क्षायिककी बात नहीं है। समझमें आया ? यहाँ जो नीचेके गुणस्थानमें जो सम्यग्दर्शन स्वरूप परमात्मा आनंदका धाम हूँ ऐसी दृष्टि हुई, उस दृष्टिको उपशमभाव कहते हैं, क्षयोपशमभाव कहते हैं और क्षायिकभाव कहते हैं। यहाँ तो नीचेके (गुणस्थानकी बात है)। क्यों कि उसके तीनों बोलमें ज्ञानकी कथनशैली आयेगी। तो उन तीनोंमें क्षयोपशमज्ञानरूप पर्याय स्वसंवेदन है ऐसा कहेंगे। समझमें आया ?

कहते हैं कि तीन भाव समस्त रागादिसे रहित है। सूक्ष्ममें सूक्ष्म विकल्प आता है, उससे भी भगवान पर्यायमें तद्दन भिन्न है। द्रव्य तो भिन्न है ही। समझमें आया ? द्रव्य तो पर्याय रहित है, लेकिन यह तो पर्याय रागरहित हो गई। समझमें आया ? आहाहा....! गजब बात, भाई ! मार्ग तो थोड़ेमें बहुत है लेकिन लंबी लंबी बात कर दी है, इसलिए कहीं हाथमें नहीं आ रहा।

त्रिकाल ज्ञायकभावको विषय करके, ध्येय करके जो पर्याय उत्पन्न हुई है कि द्रव्यमें तो पर्याय ही नहीं है। लेकिन वह मोक्षमार्गकी पर्याय जो सम्यग्दर्शन आदि प्रगट हुआ उस पर्यायमें राग नहीं। 'भाई' पेईज रखा है न ! बादमें ले जाना, वहाँ बराबर विचार करना। आहाहा....!

कहते हैं, ऐसे रागादिरहित होनेके कारण...देखो, कारण तो सिद्ध करना है, भाई ! लेकिन रागादि रहित वह चीज है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपकी ओर आचरणकी दशा–वह तीनों पर्याय विकल्प नाम अशुद्धतासे रहित है। समझमें आया ? ऐसा होनेसे उसको क्या नाम दिया ? देखो, शुद्ध उपादान कारणभूत ! यह पर्यायकी बात है। समझमें आया ? शुद्ध उपादान कारणभूत ! यह पर्यायकी बात है। समझमें आया ? शुद्ध उपादान कारणभूत, ऐसा लिया है न ! यह पर्यायका शुद्ध उपादान, द्रव्यका त्रिकाली शुद्ध उपादान पहले आ गया। यहाँ तो त्रिकाली भगवान आत्मा, परमात्माका मूल मार्ग, द्रव्यको ध्येय बनाकरके जो पर्याय उत्पन्न हुई है वह पर्याय शुद्ध उपादान कारणभूत होनेसे, शुद्ध उपादान, वह अशुद्ध निकाल दिया न ! भाई ! अशुद्धता जो व्यवहार रत्नत्रयका विकल्प है वह तो निकाल दिया। समझमें आया ? आहाहा....!

भगवान आत्मा अपने ध्रुव ध्येयके उपर दृष्टि होते ही और ज्ञानकी वर्तमान पर्याय ध्रुवको ज्ञेय करते ही और स्वरूपमें एकाकार चारित्रकी पर्याय उत्पन्न होते ही रागका अभाव (हो जाता है)। समझमें आया ? वह विकल्प-व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं न ! व्यवहार मोक्षमार्ग, मोक्षमार्ग। वह व्यवहार मोक्षमार्ग उसमें है ही नहीं ऐसा कहते हैं।

श्रोता :— तो फिर वह क्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह राग है वह बंधका कारण है। बंधके कारणमें पर्यायका अभाव है। क्योंकि आत्मा अबंध स्वरूप है, मोक्ष स्वरूप ही है, लो !

'श्रीमद्'में आता है न ! भाई ! दिगम्बरके आचार्योंने ऐसा माना है कि....आता है ? एक बार आया था, वह 'आत्मधर्म'में आ गया है। 'मोक्ष समझमें आता है,' देखो ! श्वेताम्बरके आचार्यकी बात कहीं नहीं ली, क्योंकि उसमें यह है नहीं। समझमें आया ? कौन सी साल ? ३२में आता है न ? ४९८ पेज। कोई आचार्य ऐसा कहते हैं....देखो, 'श्रीमद्'को भी वह खयाल आ गया। श्वेताम्बरकी शैलीका खयाल वहाँ छोड़ दिया। कोई आचार्य ऐसा ऐसा कहते हैं कि दिगम्बरके आचार्योंने ऐसा स्वीकार किया है कि-दिगम्बर संतों आचार्योंने ऐसा स्वीकार किया है कि....दिगम्बरके आचार्योंने....बहुवचन है न ! देखो, दिगम्बर संतो सनातन मार्गके साधु ऐसे मुनि, 'कुंदकुंदाचार्य' आदि सब दिगम्बर आचार्योंने ऐसा स्वीकार किया है कि जीवका मोक्ष होता नहीं। जीवका मोक्ष होता नहीं।

जरा बात सुनो ! त्रिकाली भगवान आत्मा मुक्त स्वरूप ही है। बंध वस्तुमें कैसा ? बंध तो पर्यायका है। बंधपर्याय तो उसमें है नहीं। बंध सहित द्रव्य मानना तो मिथ्यात्वमें लिया है। समझमें आया ? बंधसहित कहो या अशुद्धता सहित कहो या अबंधस्वरूप कहो ! अबंध तो निषेधसे कहा। मोक्ष स्वरूप कहो, वह तो मोक्षस्वरूप ही है। भगवान मोक्षस्वरूप परमात्मा है। ऐसा आचार्योंने स्वीकारा है कि जीवका मोक्ष होता नहीं। गजब बात ?

देखो ! यहाँ दिगम्बरकी बात सनातन सत्य है उसको यहाँ प्रसिद्ध करते हैं। समझमें आया ? लेकिन मोक्ष समझमें आता है। समझमें आता है। विकल्प सहित मैं हूँ माना था वह मान्यता, बंध सहितकी जो मान्यता थी वह छूट गई। यह कभी वहाँ सुना भी न होगा। इतने साल संप्रदायमें निकाल दिये। अब तो उनको उत्साह आता है न ! आहाहा....! संप्रदायमें निकाल दिये। अब तो उनको उत्साह आता है न ! आहाहा....!

भगवन् ! यहाँ तो कहते हैं, देखो ! सीधी बात है, बहुत सीधी है कि जो विकल्प-राग है वह भावबंध है, द्रव्यबंधकी बात छोड़ दें, कर्मका बंध उसमें है ही नहीं, वह तो

पर है, विकल्प जो राग है वह भावबंध है। भावबंध क्यों माना ?–कि मैं मुक्त नहीं, बंध हूँ–ऐसी मान्यतामें वह रागमें खड़ा था। मैं रागसे सहित, भावबंधसे सहित हूँ–ऐसी मान्यताकी थी। समझमें आया ?

यहाँ कहते हैं कि मोक्ष समझमें आता है, मोक्ष होता नहीं। समझमें आया ? वह ऐसे कि जीव शुद्ध स्वरूपी है। भगवान आत्मा तो परम शुद्ध स्वभावरूप है, शुद्ध स्वरूपी है, अशुद्ध स्वरूपी है (वह) तो मान्यतामें किया था। आहाहा....! त्रिकाल वस्तु तो शुद्ध स्वरूप ही है। जीव शुद्धस्वरूप है, उसे बंध होता नहीं। शुद्ध स्वरूपमें अशुद्धता आती ही नहीं। बंधका मतलब यह कि शुद्धस्वरूपी भगवानने भावबंध–अशुद्धता होती ही नहीं। आहाहा....! देखो ! कैसी बातकी है ! दिगम्बर आचार्योंने ऐसा माना है ऐसा कहकरके संतोंकी सत्य बातकी परम प्रसिद्धिकी है। समझमें आया ? ऐसी बात और कहीं होती नहीं।

कहते हैं कि शुद्ध स्वरूपी है उसे बंध हुआ नहीं है, तो फिर मोक्ष होना कहाँ रहा ? जहां बंध ही नहीं हुआ वहा मोक्ष कहाँसे आया ? आहाहा....! समझमें आया ? मार्ग यह है। आहाहा....! कहते हैं कि शुद्ध स्वरूपी है उसे अशुद्धता हुई ही नहीं उसका मतलब क्या ?–कि अशुद्धता है ही नहीं, अशुद्धता हुई ही नहीं है...आहाहा....! तो फिर मोक्ष होना कहाँ रहा ?

लेकिन उसने माना है। देखो ? भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूपी बंधमें है ही नहीं। शुद्ध है वह अशुद्ध हुआ ही नहीं। ऐसा कहते हैं। फिर भी मान रखा है कि मैं बंधा हूँ। मान्यतामें बंधा हुआ है ऐसा माना है; क्योंकि वस्तु तो शुद्ध त्रिकाली ज्ञायकभाव है। उसने मान रखा है कि रागसहित हूँ, रागसहित हँ, बंधसहित हूँ–ऐसी मान्यता थी। आहाहा....! 'भाई' ! समझमें आता है ? 'समझाय छे' यह हमारी गुजराती भाषा है। समझमें आया ?

माना है कि मैं बंधा हूँ, भाषा देखो ! माना है कि मैं अशुद्ध हूँ। अशुद्ध हूँ या बंधा हूँ, एक ही बात है, समझमें आया ? वह मान्यता विचारनेसे समझमें आती है, ऐसा माना था। भगवान शुद्ध स्वरूपी प्रभु ! वह शुद्ध वस्तु वह अशुद्ध हुई ही नहीं लेकिन मान्यतामें माना है कि मैं अशुद्ध हूँ। ऐसी मान्यतामें मैं बंध (स्वरूप हूँ ऐसा माना था)। अशुद्ध कहो या बंध कहो, एक ही बात है। मैं बंधसहित हूँ ऐसा माना था वह मान्यता विचार करनेसे समझमें आती है। दूसरे कोई क्रियाकांड नहीं कि यह व्यवहार–कषायकी मंदता, व्रतकी क्रियाकी उससे यह हुआ, ऐसा नहीं है,सेठ ! यह आपका दान... शेठ लोग सब दस-बीस हजार दान देते हैं; लाख-दो लाख-पांच लाख इतना ज्यादा नहीं देते, दस-बीस

हजार खर्चा करते हैं। समझमें आया ? पचास-साठ लाखवाले पचास लाख थोड़ी न दे देंगे ?

यहाँ तो कहते हैं कि (पैसे) मेरे हैं यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा....! समझमें आया ? वह तो ठीक लेकिन उसमें जो राग है उस रागसहित मैं हूँ, रागसहित हूँ, मैं बंधा हूँ ऐसी मान्यता मिथ्यात्वमें हैं। वह विचार द्वारा समझमें आती है। आहाहा....! इस वस्तुमें बंध है ही नहीं, उसमें अशुद्धता है ही नहीं। समझमें आया ? कल्पना थी, मान्यता थी। आहाहा....! समझमें आया ? मिथ्या मान्यता थी। बंधसहित हूँ....वास्तवमें वह उसका विषय हुआ ही नहीं। समझमें आया ? मिथ्या मान्यताका वह विषय हुआ ही नहीं। आहाहा....! माना था कि अशुद्ध हूँ, मैं बंध हूँ...आहाहा....! यह मिथ्यात्व विचार द्वारा समझमें आता है कि मैं बंध नहीं। देखो ? अभी तो सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञानकी बात चल रही है, चौथे गुणस्थानकी बात चल रही है।

श्रोता :— गुरुके ज्ञान द्वारा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— आत्माके द्वारा। आत्मा ही गुरु। आत्मा ही तीर्थ, आत्मा ही देव और आत्मा ही धर्म। समझमें आया ? ऐसी बात है। हैकी नहीं ? पेईज हैकी नहीं ? वह समझमें आता है कि मुजे बंधन नहीं है। आहाहा....! देखो ! उस वस्तु को देखो ! अशुद्ध-अशुद्ध मैं हूँ ऐसी मिथ्यात्वकी मान्यता थी। आहाहा....! कौन सी शैली यह देखो तो सही ! स्वतंत्र वस्तु ऐसी है, उस तत्त्वमें अशुद्धता कैसी ? भावबंध कैसा ? भावबंध मैं हूँ ऐसी मान्यता खडीकी थी, (वस्तुमें) नहीं है। समझमें आया ? ऐसी मान्यता खड़ीकी थी। आहाहा....! बनावट....शाहुकार भेष करता है कि नहीं ? बनावटी भेष अज्ञानीने खड़ा किया है। आहाहा....! उसका स्वरूप तो मुक्त है, राग और विकल्पके बंधसे रहित है। आहाहा....! समझमें आया ? यह आपके राजकुमारको ऐसा समझमें आता है या नहीं ? वहाँ पालेजमें कुछ मिलनेवाला नहीं।

श्रोता :—अब यहाँ लेने आये है न।

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह तो 'भाई' बहुत कहते हैं।

श्रोता :— एक बार माल चख ले तो बार बार आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री :— उनको जिज्ञासा हुई तब आये न ? आहाहा....! क्या बात है ! अंदरमें समुद्र उछल रहा है ! आनंदकंद प्रभु है। ऐसी ज्ञानसे मान्यता हुई कि मुझे बंध नहीं

है। क्योंकि बंध और अशुद्धता तो अंदर भिन्न तत्त्व है, द्रव्यके साथ उनकी एकता नहीं है। समझमें आया ? वह बंधन मुझे नहीं। अर्थात् मुझमें अशुद्धता नहीं है। आहाहा....!

दिगम्बर आचार्योंका तो ऐसा मानना है कि जीवका मोक्ष होता नहीं। आहाहा....! क्यों कि उसमें अशुद्धभावरूपी बंधभाव नहीं है। मान्यतामें माना था कि मैं अशुद्ध हूँ और भावबंधरूप हूँ, वह ज्ञान द्वारा समझमें आया कि मैं राग नहीं हूँ, मैं अशुद्ध नहीं हूँ। मैं तो त्रिकाली आनंदकंद हूँ यह तो समझमें आवे ऐसा है। भाषा सरल है, भले ही भाव गंभीर हो। आहाहा....!

मुझे बंधन नहीं है। धर्मीको जैसे ही स्वभावकी दृष्टि हुई कि वैसे ही वह मुक्त स्वरूप ही है। मुझे बंधन है ही नहीं। आहाहा....! अशुद्धता है ही नहीं। बंधन कहो या अशुद्धता कहो, एक ही बात है न ? अशुद्धता कहो या बंधभाव कहो, दोनों एक ही बात है या अलग है ? भाई ! आश्रव सहित हूँ ऐसा कहो, बंध सहित हूँ ऐसा कहो ! मैं बंधा हूँ, मैं अशुद्धता सहित हूँ वह मान्यता थी। आहाहा....! समझमें आया ? वह मान्यता शुद्ध स्वरूप समझमें आने पर रहती नहीं। शुद्ध स्वरूप भगवान आत्मा जाननेमें आया तो अशुद्ध हूँ, भावबंध हूँ–ऐसी मान्यता रहती ही नहीं। समझमें आया ? देखो ! सम्यग्दृष्टिकी ध्येय वस्तु बन्धरहित है। आहाहा....! समझमें आया ?

इसमें ऐसा लिया है 'शुद्धस्वरूप समझनेसे' लेकिन 'समझानेसे' ऐसा होना चाहिये। दूसरी जगह मूल शब्द ऐसा था। मैं अशुद्ध हूँ वह तो मान्यता थी, मिथ्यात्वकी गांठ थी। अशुद्ध तत्त्व तो भिन्न है, लेकिन मान्यतासे ज्ञायकके साथ अशुद्धता मिला दी, आहाहा ! समझमें आया ? मानता था, लेकिन वह मान्यता, शुद्ध स्वरूप समझमें आनेसे, रहती नहीं है अर्थात् मोक्ष समझमें आता है, मोक्ष समझमें आता है, मोक्ष समझमें आता है, मोक्ष होता नहीं। समझमें आया ?

यह शुद्धनयकी बात निश्चयनयकी है, वास्तविक तत्त्वदृष्टिका विषय है। पर्यायार्थिकनयवाले उसको लिपटकर आचरण करे तो भटक जायेंगे ! रागके उपर लक्ष है, परके उपर लक्ष है और फिर कहे कि हम शुद्ध है....शुद्ध है... ऐसा कहेगा तो मर जायेगा....चार गतिमें भटक जायेगा....ऐसा कहते हैं। यह तो 'श्रीमद् राजचंद्र' पेईज ४९८ पर, ३२वें सालमें है। समझमें आया ? आहाहा....!

एक तत्त्वमें दूसरे तत्त्वको माना ऐसा कहते हैं। एक तत्त्वमें दूसरा तत्त्व मेरा है ऐसा माना था, लेकिन हुआ नहीं ऐसा कहते हैं। ज्ञायक तो त्रिकाल ज्ञायक ही रहा है।

'प्रवचनसार'में आता है न। भाई ! 'प्रवचनसार'में २००वीं गाथा, आखिरमें आता हैं, भगवान आत्मा ज्ञायक शुद्ध वह तो शुद्ध ही रहा है, ज्ञायक तो ज्ञायक ही रहा है, अन्य रीतसे अध्यवसित हुआ है। वह बात यहाँ है। आहाहा....! यह तो अभी खयालमें आया। देखो २००वीं गाथा।

शुद्धात्मा सहज अनंत शक्तिमय ज्ञायकभावके द्वारा एकरूपताको छोड़ता नहीं। अनादि संसारसे यही स्थितिसे ज्ञायकभावरूपसे रहा है। टीका 'अमृतचंद्राचार्यदेव'की है, 'प्रवचनसार' २००वीं गाथाकी टीका। क्या कहा ? मैं तो अनादि संसारसे ज्ञायकभावरूपसे ही आत्मा रहा हूँ। समझमें आया ? और ऐसा होने पर भी मोह द्वारा अन्यथा अध्यवसित होता है। लो भाई ! यह तो बराबर आया, समझमें आया ? दिगम्बर आचार्यने यह बातकी है। कहाँसे कहाँ आया ! यह तो मालूम नहीं...आचार्यने कहा कि आत्मा तो ज्ञायकभाव ही रहा है, वह अनादिसे ज्ञायकभाव मिटकर अन्यथा हुआ नहीं है। लेकिन मोह-मिथ्यात्व द्वारा...आहाहा....! देखो ! अचानकसे कहाँसे कहाँ मील गया ! मोह-मिथ्यात्व द्वारा अन्यथा अध्यवसित होता है। मिथ्यात्वसे अन्यरूपसे जाननेमें आता है। कल्पना। समझमें आया ? देखो ! यह संतोंकी टीका ! दिगम्बर संतोंने ऐसा कहा कि ज्ञायक तो ज्ञायक ही रहा है। समझमें आया ? लेकिन मिथ्यात्व द्वारा अन्यथा अध्यवसित-अज्ञानीने अन्यथा निर्णय किया है, (लेकिन) ऐसा है नहीं। भाई ! ऐसी बात है। आहाहा....! दिगम्बर संतोंने केवलज्ञानका मर्म खोलके रखा है। फिर भी उसकी दृष्टि बदलती नहीं और यह बात अंदर उतरती नहीं है। अंदर खटक...खटक.. (रहा करती है कि) मैं अशुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ। समझमें आया ?

श्रोता :— गुरु मिलेंगे तब समझमें आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री :— आत्मा अंतरमें ध्यान करेगा तो समझमें आयेगा। तब गुरु मीले ऐसा व्यवहारसे आरोप करनेमें आता है। निश्चय (प्रगट) हुआ तब व्यवहारमें आरोप करनेमें आता है। समझमें आया ?

देखो ! अध्यवसाय करता है कि मैं अपनी मान्यतामें जो था कि, मैं अशुद्ध हूँ ऐसे उस मोहको मैं निकाल फेंकता हूँ , उस मोहको मैं छोड़ता हूँ, मैं अशुद्ध नहीं हूँ। ए भाई ! देखो ! इस बातकी साक्षी ही है। आचार्योंने कहाँ कहा है ? यहाँ २०० गाथामें कहा है। समझमें आया ? यहाँ साक्षी-सबूत मिल गया। ओहो...! अन्यरूपसे अध्यवसित होता है, ऐसा हुआ नहीं है। है तो ज्ञायकरूपी ज्ञायकभाव ही, मिथ्यात्वसे अन्य अध्यवसाय-निर्णय

किया है, उस मोहका निर्णय छोड़ दे। जो है सो है। समझमें आया ?

हम यहाँ पहुंचे हैं। देखो, यहाँ रागादि रहित कहा है, उसमें सब आ गया। समस्त रागादिसे रहित...कोई ऐसा कहे कि वह रागादि....अरे ! सुन तो सही, त्रिकाल रागादिसे रहित ही है। समझमें आया ? भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञायकभाव तो त्रिकाल वैसाका वैसा ही रहा है। मोह द्वारा–मिथ्यात्व द्वारा जो अन्यथा निर्णय किया था कि मैं अशुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ, मैं भावबंध हूँ–ऐसा निर्णय किया था वह छोड़ दिया। वह समस्त रागादिसे रहित होनेसे, शुद्ध उपादान कारणभूत होनेसे...वह पर्याय...पर्यायमें मैं अशुद्ध हूँ–ऐसी जो दृष्टि थी वह छूट गई। त्रिकाली स्वभावकी ओरका ध्येय-विषय करनेसे, उसको ध्येय जाननेसे छूटता है। छोड़ता नहीं है, छूट जाता है। आहाहा....! भ्रांति-भ्रम जो है कि मैं अशुद्ध हूँ, बंध हूँ–उसकी जो उत्पत्ति हुई है उस उत्पत्तिका नाश दूसरे समयमें सहज होता ही है, करना पडता नहीं, उसमें निमित्तपना भी नहीं है। क्या कहा ? फीरसे...

जिस मोहसे एकता मानी थी ऐसी जो एक समयकी पर्याय उसका दूसरे समयमें नाश होगा, होगा और होगा ही ! उसमें किसीने आत्माका पुरुषार्थ किया तो निमित्त हुआ और नाश हुआ ऐसा है नहीं। क्षणिकके अर्थमें थोडा मर्म है कि यह मोह अध्यवसाय जो निश्चित किया था वह भाव तो भाव है। अब, वह पर्याय है तो उसका दूसरे समयमें नाश होता है, तब उस पर्यायमें अपने शुद्ध ध्येयका परिणमन होकरके जो मिथ्यात्वकी उत्पत्ति होनेवाली थी वह नहीं हुई, उसे मिथ्यात्वका नाश किया ऐसा कहनेमें आता है। यह मर्म है। ए भाई ! समझमें आया ?

शुद्ध उपादान पर्यायने ध्रुवको ध्येयमें लिया कि मैं तो शुद्ध त्रिकाली ज्ञायकभाव हूँ, ऐसा लिया तो मिथ्यात्वकी उत्पत्ति ही नहीं हुई। पहले जो मिथ्यात्व था वह तो अपने आप नष्ट होता ही है। वह तो पर्यायका धर्म है कि दूसरे समयमें न रहे। समझमें आया ? लेकिन जो मिथ्यात्वका निर्णय था वह (पर्याय) ज्ञायकभावके निर्णय सन्मुख हुई कि मिथ्यात्वकी उत्पत्ति नहीं हुई, उसे मिथ्यात्वका नाश किया ऐसा कहनेमें आता है। आहाहा....! नाश किसका करे ? भगवान आत्मा किसीका नाश करे ऐसा तो आत्मामें कुछ है ही नहीं। रागके नाशका कर्तापना आत्मामें नहीं, नाशका कर्तापना उसमें नहीं है। ऐसी वस्तु है। समझमें आया ? बहुत बात करी।

पहले बोलमें ऐसा लिया, शरूआतमें लिया, कि कर्ता-भोक्ता नहीं है, भाई ! पहले शरूआतमें आया न ! अकर्तृत्व, अभोक्तृत्व पहले (आ गया)। उसमें ऐसा लिया कि जैसे

यहाँ अध्यवसानसे माना था, वैसे भगवान आत्मा त्रिकाली शुद्ध है वह परका कर्ता तो नहीं लेकिन रागका कर्ता भी नहीं है। समझमें आया ? यदि रागका कर्ता द्रव्य हो, तो त्रिकाल राग करनेमें ही उसीकी दृष्टि हो जाय, कभी सम्यग्दर्शन हो ही नहीं। समझमें आया ?

वहीं आया कि अशुद्धता-विकार जो है वह तो मान रखा था कि मेरा है, वह दृष्टि छूट गई तो आत्मा रागका कर्ता तो नहीं, लेकिन रागका नाशकर्ता भी नहीं। क्योंकि रागके नाशकर्तामें भी आत्मा निमित्त है ऐसा नहीं। कर्तापनेमें निमित्त नहीं, तो नाशकर्तामें भी निमित्त नहीं। आहाहा....! समझमें आया ?

रागका कर्ता अज्ञानपनेमें माना था। परद्रव्यकी पर्यायका तो कर्ता नहीं लेकिन परद्रव्यकी पर्यायमें जो राग और कंपन निमित्त होते हैं उसका भी कर्ता ज्ञानी नहीं है। अज्ञानी मानता है कि राग और कंपन मेरा है। ऐसी मान्यतावाले जीवकी पर्याय दूसरे द्रव्यकी पर्यायके कालमें निमित्त होती है, निमित्त कहनेमें आती है। आहाहा....! समझमें आया ? यह तो वही बात खड़ी हुई।

राग और कंपन है वह अशुद्धता है, लो। बराबर है ? अशुद्धता सहित हूँ–ऐसी जिनकी मान्यता है उस मिथ्यादृष्टिका राग और कंपन–अशुद्ध पर्यायको, दृष्टि वहाँ है उस वजहसे, जड़की पर्याय होती है उसमें निमित्तकर्ताका आरोप आता है। ज्ञानी तो निमित्तकर्ता भी नहीं। आहाहा....! क्योंकि राग और कंपनसे भिन्न है वह अशुद्धभाव है न ! भावबंध है न ! जो भावबंध माना था वह मान्यता छूट गई, मैं तो ज्ञायक शुद्ध चैतन्य द्रव्य हूँ–ऐसी दृष्टि हुई तो कंपन और रागसे मुक्त हुआ। वह रागका कर्ता भी नहीं और रागका नाशकर्ता भी नहीं। समझमें आया ? आहाहा....! गजब बात, भाई ! आहाहा....!

कहते हैं कि शुद्ध उपादान होनेसे बंधका कारण है, कौन ? जो तीन भावरूप मोक्षमार्ग है वह अंतर ध्रुव स्वभावका अवलंबन लेकरके मिथ्यात्वकी पर्यायका नाश हो गया, उत्पन्न न हुआ। सम्यग्दर्शन-ज्ञानकी शांतीकी पर्याय उत्पन्न हुई वह तीन भावरूप है, वह शुद्ध उपादान कारणभूत पर्याय है, मोक्षका कारण वह है, मोक्षका कारण है, देखो ! रागादि विकल्प वह मोक्षका कारण नहीं है। मोक्षके कारण है ऐसा नहीं है, ऐसा यहाँ लिया है। मोक्षका कारण एक ही है, दूसरा मोक्षका कारण नहीं है। आहाहा....! कैसी सब गड़बड़ चला रखी है। (व्यवहारको) मोक्षका कारण कहा है ! अरे...! सुन तो सही ! वह तो कथन शैली है। निरूपण दो प्रकारसे है, वस्तु दो प्रकारसे नहीं है, क्या कहते हैं ? देखो, व्यवहार रत्नत्रय तो उदयभाव है। समझमें आया ? उदयभावसहित हूँ ऐसा जब तक मानता है तब

तक तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा....! समझमें आया ?

यहाँ तो उदयभाव तो नहीं लेकिन यह एक समयकी शुद्ध पर्याय हुई उससे भी रहित मेरी वस्तु है —ऐसी दृष्टि हुई तो निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई। मलिन पर्याय उत्पन्न न हुई और निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई, उस मोक्षका कारण निर्मल पर्याय है। निश्चय मोक्षमार्ग, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय वही मोक्षका कारण है; व्यवहार रत्नत्रय मोक्षका कारण नहीं। ऐसा यहाँ सिद्ध किया है। उसमें है कि नहीं ? आहाहा....!

श्रोता :— है वह तो हमको दिखा नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— अब देखो, देखनेवाला देखेगा, दूसरा कौन देखेगा ? समझमें आया ?

श्रोता :— इसलिए आपके पास आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :— अपने पास–समीप जाना है, उसे 'पास' कहते है। आहाहा....! समझमें आया ? मोक्षके कार्यका कारण–पारिणामिक ध्रुव वस्तुकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता जिसको यहाँ तीन भाव कहा वह मोक्षका कारण है। व्यवहार मोक्षका कारण नहीं है, द्रव्य मोक्षका कारण नहीं है। क्या कहा ? व्यवहार कारण नहीं। वह तो 'रागादि रहित'में बात आ गई। अब शुद्ध पारिणामिक नहीं उसमें द्रव्य आ गया। समझमें आया ? गजबकी अलौकिक गाथा रखी है ! वस्तुके स्वरूपके आधार पर जंगलमें रहकर...आहाहा....! खजाना खोल दिया है ! आहाहा....!

वह शुद्ध पारिणामिक नहीं....क्या नहीं ? वह मोक्षका कारण नहीं। कौन ? त्रिकाली द्रव्य स्वभाव मोक्षका कारण नहीं है। वह तो त्रिकाल मोक्ष स्वरूप ही है। समझमें आया ? आहाहा....! जो शक्तिरूप मोक्ष है....आहाहा....! शक्ति अर्थात् पूर्ण मुक्तस्वरूप ध्रुव है वह तो पहलेसे है। अनादिसे वह तो शुद्ध पारिणामिक है। शक्तिरूप मोक्ष जो त्रिकाल है वह यहाँ कहा कि आत्माकी मुक्ति होती नहीं है। मुक्त हूँ ऐसे समझमें आता है। रागसे बंधा नहीं, मान्यतामें था कि रागसे बंधा हूँ अशुद्धतासे बंधा हूँ, आहाहा....! देखो ! दृष्टिके विषयमें कहाँ जोर जाता है ? और वहाँ पर्याय पर जोर जाता है उसका उसे पता नहीं चलता ! सूक्ष्म भाव है !

शास्त्रसे चर्चा करते करते तो दोष देखें। अब सुन तो सही ! आहाहा....! जो आये वह जनीज जाता है....उसका जोर क्या ? जाननेमें आता है इसलिए दोषका नाश होता है ?

स्वभावका आश्रय लेनेसे दोष उत्पन्न होता ही नहीं। समझमें आया ? वह तो व्यवहारके कथन ऐसे आते हैं। किसके आश्रयसे दोषकी उत्पत्ति न हो ? भगवान चिदानंद प्रभु शुद्ध ध्रुवका माहात्म्य आया और उस पर दृष्टि हुई तो (दोष) उत्पन्न होता ही नहीं। जितने अंशमें अंतरमें एकाग्रता होती है उतने अंशमें अंतरमें अशुद्धता उत्पन्न नहीं होती। अशुद्धताके नाशका उपाय यह आत्मद्रव्य है। समझमें आया ?

कहते हैं कि जो शक्तिरूप मोक्ष है... यह तो मोक्षका कारण कहा न ? तो मोक्ष क्या ? जो पर्यायमें मोक्ष होता है उसकी बात चली। शक्तिरूप जो त्रिकाल मोक्ष है, पहेले जो कहा कि मोक्षरूप ही पारिणामिक स्वभाव है, वह तो त्रिकाल मोक्षस्वरूप ही है, वह तो शुद्ध पारिणामिक ही है। वह तो प्रथमसे ही विद्यमान है, वह मोक्ष तो पहेलेसे ही त्रिकाल विद्यमान है। आहाहा....! अनादिसे है। समझमें आया ? आहाहा....! हमारे 'भाई' बहुत खुश हो रहे हैं, देखो !

पहलेसे विद्यमान है, क्या कहते हैं ? मोक्ष तो पहलेसे ही है, शक्तिरूप मोक्ष तो पहलेसे ही है। आहाहा....! समझमें आया ? वह तो अनादिकी भूल हो तो क्या है ! यहाँ तो कहते हैं कि मेरेमें भूल है ही नहीं। समझमें आया ? भूल ही नहीं है, भगवानमें भूल कैसी ? भगवानको भूलसहित मानना वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा....! समझमें आया ?

श्रोता :— आप क्या कह रहे हो वह कुछ समझमें नहीं आ रहा !

पूज्य गुरुदेवश्री :— हम कह रहे हैं कि भगवान शुद्ध स्वरूप प्रभुको अशुद्ध कहना, भूल सहित कहना, भूलसहित द्रव्य कहना वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा....! अशुद्धता रहितको अशुद्धता माननी या भूलरहितको भूलसहित मानना–वह दोनों एक ही बात है। यह तो दूसरी रीतसे कथन हुआ। आहाहा....! कहते हैं कि ऐसा मोक्षका मार्ग–ऐसी बात होगी ?

श्रोता :— 'कुंदकुंदाचार्यदेवने तो पांचवी गाथामें प्रतिज्ञाकी है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— मैं तो शुद्ध स्वरूप कहूँगा। कैसा है शुद्ध स्वरूप :— कि जिसमें प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय नहीं है ऐसा वह शुद्ध है। वह बात छठवीं गाथासे शुरू कर दी है। कैसा शुद्ध कि जिसको जानना चाहिये ? भगवान 'कुंदकुंदाचार्यदेव' उत्तर देते हैं, परमेश्वर है न ! आचार्यपदमें है न ? पंचपरमेष्ठीमें है। आहाहा....! हम उसे शुद्ध कहते हैं कि जिसमें प्रमत्त और अप्रमत्त, निर्मल पर्याय और मलिन पर्याय जिसमें नहीं है, उसे हम शुद्ध कहते हैं। उस शुद्धकी सेवा करनेसे निमित्तका लक्ष और परका लक्ष छोड करके द्रव्यके लक्षमें जो आया वह शुद्ध है। समझमें आया ? फिर भी यह शुद्ध है ऐसी पर्याय

भी द्रव्यमें नहीं। आहाहा....! उसमें बहुत स्पष्टीकरण आ गया है। समझमें आया ? पहलेसे ही विद्यमान है; 'ही' कहा न, भगवान ? तेरी मुक्ति तो पहलेसे अनादिसे है।

श्रोता :— जैनदर्शनमें 'ही' नहीं चलता महाराज !

पूज्य गुरुदेवश्री :— यह 'ही' है न, देखो ! यह क्षुल्लकजीने कहा कि इसमें 'ही' आया है, जोरदार आया ! 'ही' आया है न, 'ही' ! नित्य है तो नित्य ही है। नित्य है तो अनित्य भी है–ऐसा है ? शुद्ध ध्रुव वह ध्रुव ही है। अशुद्ध भी है ऐसा नहीं, यह सम्यक् एकांत ! मार्ग ऐसा है, भगवन् ! समझमें तो लो, बात ज्ञानमें तो लो ! उसको खयालमें तो लो कि मार्ग (ऐसा है) आहाहा....! अलौकिक मार्ग लौकिकमें कहीं नहीं मिलता, संप्रदायमें भी दिगम्बर संप्रदायके अलावा (यह बात) कहीं नहीं। दिगम्बर संप्रदायमें भी अब संप्रदायके नामसे क्या होता है ? शरीरकी क्रियासे धर्म होता है ?–ऐसे तो प्रश्न चलते हैं, गजब बात है, प्रभु ! जैन दर्शनमें ऐसी बात कलंक है। आहाहा....! शरीरकी क्रियासे धर्म होता है। अरे भगवन् ! क्या कह रहे हो, प्रभु ! आहाहा....! अशुद्धता—दया, दान, व्रत, भक्तिके परिणामसे धर्म होता है—वह भी वस्तुमें नहीं है। आहाहा....! और वह अशुद्धता वस्तुमें नहीं है। अशुद्धतासे धर्म होता है ऐसा तो नहीं लेकिन वह अशुद्धता वस्तुमें नहीं है, आहाहा....! ऐसी वस्तुकी दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता मोक्षका कारण है, परम स्वभाव नहीं। क्योंकि वह मोक्ष तो त्रिकाल है। यह तो व्यक्तिरूप मोक्षका विचार चल रहा है, प्रगटरूप दशाकी बात चल रही है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❀ नग्नता–द्रव्यलिंग तो सर्वथा आत्माके नहीं हैं परंतु जो मोक्षमार्ग है, जो जिनशासन है वह भावलिंग दशा जो कि पूर्णानन्दकी प्राप्तिमें साधन है उसे भी उपचारसे आत्माका स्वरूप कहा जाता है। ऐसा कहकर निमित्तका लक्ष छुड़ाया है, रागका लक्ष छुड़ाया है। अरे! निर्विकल्प मोक्षमार्गकी पर्यायका भी लक्ष छुड़ाया है। १०६.

–द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर - पर्यायदृष्टि विनश्वर

३५ श्री प्रवचनसार, गाथा—३८, प्रवचन नं. ३६, दिनांक ११-२-१९७९,

(प्रवचनसार) ३८ (गाथाका) शीर्षक। (यहाँपर) केवलज्ञानको सिद्ध करते हैं। 'तत्त्वार्थसूत्र'में (२९वें सूत्रमें आता) है न? **'सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य'**। यह तो 'तत्त्वार्थसूत्र'में (आता) है। सर्वद्रव्य और त्रिकाल पर्याय केवलज्ञानमें (ज्ञात होती है)। वह यहाँपर कहते हैं, देखिये।

'अब अविद्यमान पर्यायोंकी...' है? (अर्थात्) द्रव्यमें भूतकालकी और भविष्यकी अविद्यमान (पर्यायें)। क्या कहते हैं? जैनदर्शनका बहुत ही तात्त्विक विषय (आया) है। 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'के 'धर्मानुप्रेक्षा'में आया है न! (वहाँ) 'धर्मानुप्रेक्षा'में (ऐसा कहा कि) धर्मके मूल कहनेवाले वक्ता 'सर्वज्ञ' हैं। (वैसा) धर्मानुप्रेक्षामें आया है, 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'। जिसे सर्वज्ञका जहाँतक निर्णय नहीं उसे तो जिनशासनकी किसी वस्तुका निर्णय नहीं, आहाहा...! वैसा 'धर्मानुप्रेक्षा'में आया है यह बात हम ले चुके हैं। जैनधर्मका मूल तो सर्वज्ञ हैं।

अन्य प्रकारसे कहें तो जीवका स्वभाव ही सर्वज्ञ है। 'सर्वज्ञशक्ति' है कि नहीं? 'सर्वदर्शी, सर्वज्ञ(शक्ति)। आहा...! चिति, दृशि, ज्ञान इत्यादि (शक्ति) लो। ये शक्ति पूर्ण है। स्वभाव परमात्मस्वरूप ही है। सर्वज्ञ स्वरूपी, अनंत अमृतरूप विज्ञानघनरूपी। अनंत प्रभुत्वरूपी। आहाहा...! 'बेहद' आया था न? आहाहा...! ऐसा उसका स्वभाव ही (है)। सर्वज्ञप्रभुका–प्रत्येक आत्माका (ऐसा स्वभाव) है। अभव्यका स्वभाव भी सर्वज्ञ है। आहाहा...!

यह प्रश्न (संवत) ८५(की सालमें) हुआ था। कितने वर्ष हुये? पचास! उस समय प्रश्न हुआ था कि जीवको अनादि(से) मिथ्यात्व, मिश्र और समकित यह तीन प्रकृति होती है, वैसा (एक आदमीने) कहा। भले ही समकितमोहनीय न हो किन्तु दो तो होती ही है (मिथ्यात्वमोहनीय) और मिश्र (मोहनी)। अर्थात् भव्यजीवको अट्ठाईस प्रकृति होती है। (वैसे तो) अभव्यको भी अट्ठाईस होती है। बात समझमें आती है? (उसमें कहा कि) भवी है वह समकित पानेवाला है। इसलिए उसे समकितमोहनीय, मिश्रमोहनीय (और मिथ्यात्वमोहनीय) ऐसी अट्ठाईस प्रकृति होती है। (और) अभव्यको छब्बीस (प्रकृति) है।

(मैंने कहा) वैसा नहीं। यह तो ८५में चर्चा (हुई थी)।

मिथ्यादृष्टिको अनादिसे छब्बीस ही प्रकृति होती है। सत्ताईस और अट्ठाईस प्रकृति होती है सो समकित होनेके पश्चात्। उसका ऐसा कहना था कि (जो) समकित प्राप्तकरते हैं और केवलज्ञान प्राप्त करते हैं उन्हें केवलज्ञानावरणीय होता है। परंतु जो केवलज्ञान प्राप्त नहीं करते उन्हें केवलज्ञानावरणीय होता नहीं। इसमें क्या कहा कुछ समझमें आया ? भाई ! उसमे ऐसा प्रश्न रखा...उसने मुझे ८०में पुस्तिका भेजी थी। पश्चात् ९५में मिले तब बात कही कि 'आपकी बात गलत है।' मैं जब होता हूँ तब कोई व्याख्यान देता नहीं। सब बैठकर सुनते हैं। (उन्होंने) कहा कि, केवलज्ञानावरणीय अभव्यको होता नहीं। क्यो (नहीं होता) ? (क्योंकि) उसको केवलज्ञान होता नहीं। मैंने कहा 'गलत बात है'। (फिर मैंने पूछा कि) 'तो अभव्यको कितनी प्रकृति होती हैं ?' तो कहे, 'तीन (होती हैं)। मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय (ऐसी) तीन होती हैं। (मनःपर्यय और केवलज्ञानावरणीय) दो नहीं होती। सुना भाई ? मैंने कहा 'अभव्यको भी पाँच प्रकृति होती है क्योंकि अंदर उसका केवलज्ञानस्वरूप है। इसलिए केवलज्ञानस्वरूप और केवलज्ञानावरणीय प्रकृति अभव्यको भी है। भाई ! सूक्ष्म बात है, बापू ! यह तो अंदर पूर्वके संस्कार थे अतः अंतरसे आता था। यह तो पचास वर्ष पहलेकी बात है।

वह कहता है कि, जिसे केवलज्ञान होता नहीं उसे केवलज्ञानावरणीय होता नहीं। क्योंकि उसे अंदर केवलज्ञान कहाँ है। मैंने कहा (कि) गलत बात है। अभव्यको भी पाँच आवरण हैं। मति आवरण, श्रुत आवरण, अवधि, मनःपर्यय और केवल(ज्ञान आवरण)। (अभव्यको केवलज्ञान) होता नहीं, यह अलग बात है परंतु आवरण पांच हैं। और भीतर केवलज्ञान(स्वरूप) है। यह तो ८५ और ७१ की सब पुरानी बातें पहले भी कह चुके हैं। आहाहा...! आगे सामने बोले नहीं। दूसरे भाईने कहा 'कानजीमुनि क्या कहते हैं, सुनो ! वरना लोग आपका नहीं मानेंगे व उसका मानेंगे। उनकी प्रसिद्धि है।' यह तो '८५की बात है। पंद्रह-सोलह सालकी दीक्षा। आहाहा...! मैंने कहा, वैसा नहीं, अभव्यको भी केवलज्ञानावरणीय है। हमें इसमें क्या सिद्ध करना है यह समझमें आता है ? (कि), केवलज्ञान है, सर्वज्ञपना है उसमें। अतः केवलज्ञानावरणीय है, आहाहा...! मनःपर्ययज्ञान होता नहीं इसलिए मनःपर्ययज्ञानावरणीय होता नहीं (परंतु ऐसा नहीं)। पाँचों हैं। अभव्यको भी पाँचों हैं और भव्यको (भी पाँचों हैं)। (वे) आगे बोले नहीं। पुस्तक छपाया था उसमें छाप डाला कि, अभवीको तीन प्रकृति होती है और दो नहीं होती। अनादिसे भवीको सत्ताईस होती है और अभवीको छब्बीस होती है। मैंने कहा सत्ताईस

होती नहीं। अनादिसे छब्बीस ही है। (उनका ऐसा कहना था कि) मिश्र और समकित(मोहनीय) दोनों हो तो वह समकित पा सकता है। मैंने कहा, यह प्रश्न गलत है। इसमें न्याय समझमें आता है कुछ ? आहाहा...! अभव्य और भव्य–सब जीव सर्वज्ञस्वरूपी ही है, आहाहा...!

लोगोंको निर्णय करना नहीं। सत्य वस्तु क्या है ? भगवान क्या कहते हैं ? और वस्तुका स्वभाव भी क्या है ? (उसका) उसे तटस्थ (होकर), मध्यस्थ (होकर) निर्णय करना चाहिये। बापू ! ऐसा समय कब मिलेगा ? आहाहा...! अभव्यको आप छब्बीस प्रकृति कहते हो और भव्यको सत्ताईस (प्रकृति) कहते हो, यह भी गलत (है) और अभव्यको तीन आवरण है और भव्यको पाँच आवरण है, यह भी गलत। बात समझमें आती है ? क्यों (सभी जीवोंको पाँच आवरण हैं ?) (क्योंकि) जब केवलज्ञानावरणीय है तो अंदर केवलज्ञानशक्ति–सर्वज्ञशक्ति है, इसलिए उसे आवरण है। निश्चयसे तो अपनी ही हीन हालत वह आवरण है। परंतु केवलज्ञानावरणीय निमित्तसे आवरण कहलाता है, भाई !

हमारे यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित हुआ था। 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में (आता) है न कि, **'अपूर्व पुद्गलकी शक्ति कि जिस केवलज्ञानावरणीयने केवलज्ञानको रोका'**। ऐसा पाठ है। पुस्तक हो तो बतायेंगे। 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' है। (उसमें) ऐसा पाठ है, (तो किसीने कहा था कि) 'देखिये, यह पुद्गलकी (शक्ति)। (हमने कहा) पुद्गलकी शक्ति अर्थात् आवरण है, वैसा यहाँपर कहनेका नहीं। यहाँपर तो कहना है कि परमाणुमें निमित्तरूप केवलज्ञानावरणीय(रूप) परमाणु परिणमनको प्राप्त है, ऐसी पर्याय उसे ही होती है। वैसी पर्याय पुद्गलमें और होती नहीं। क्या कहा इसमें कुछ समझमें आया ? ऐसा ही (समझे)....। **'पुद्गलकी अपूर्व केवलज्ञानावरणीय शक्ति कि जो केवलज्ञानका आवरण हो।'** ऐसा पाठ है। उसका अर्थ कि, निमित्तसे कथन है। वह केवलज्ञानावरणीय निमित्त है और अंदर स्वयं हीन भावरूप परिणमित होता है, ऐसा भावकर्म है, तब उस (कर्मको) निमित्त (कहनेमें आता) है। किन्तु ऐसा विस्तार नहीं करते हुये, वैसा कहनेमें आता है। एक बात (हुई)।

दूसरी बात कि, जगतमें कई प्रकारसे परमाणु परिणमित होते हैं, उनमें जो केवलज्ञानावरणीयरूप परिणमित होते हैं वे कोई अलौकिक रीतिसे (परिणमित होते) हैं। समझमें आया ? अन्य परमाणु किसी और प्रकारसे परिणमित हो–मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, साता-असाता(रूप परिणमित हो) परंतु परमाणुमें केवलज्ञानावरणीय(रूप) जो पर्यायें होती हैं, वे वैसी कोई परमाणु(की) पर्यायमें शक्ति (है) आहाहा...! कि, यहाँ

केवलज्ञान है उसके आवरणमें निमित्त कहलाता है। आहाहा...! ऐसी लंबी बातें ! बड़ी चर्चा हुई थी।

यहाँ पर तो ऐसा सिद्ध करना है कि, भगवान केवलज्ञानके द्वारा भूत और भविष्यकी पर्यायें अविद्यमान होते हुये उनको जानते हैं, अतः (वे पर्यायें) अविद्यमान होनेपर भी जाननेकी अपेक्षासे वे विद्यमान हैं वैसा कहनेमें आता है। आहाहा...! समझमें आया ? इसलिए तो ऐसा कहा कि, यह न्याय है कि, यह आत्मा और परमाणु आदि छः द्रव्य हैं। उनकी अनंत पर्यायें बीत चुकी, उनका अस्तित्व अभी नहीं। वर्तमान एक समयकी अनंत (पर्यायें) हैं। एक समयकी एक (पर्याय) है, परंतु एक गुणकी एक है, तो अनंतगुणकी अनंत है। अनंत वैसी पर्यायें बीत गई, नष्ट हो गई और अभी तक अनंत पर्यायें अनुत्पन्न हैं। भविष्यकी पर्याय उत्पन्न हुई नहीं। फिर भी यह अपेक्षासे उसे असद्भूत, अभूतार्थ वैसा कहनेमें आता है। तथापि यह ज्ञानका वैसा स्वभाव है (यानि कि) केवलज्ञानका वैसा स्वभाव है...आहाहा...! कि, उन अविद्यमानको भी वर्तमान भूतार्थकी तरह जानता (है)। 'है' वैसा वह जानता है, आहाहा...! समझमें आया ? अरे...! ऐसा निर्णय करे तब तो उसे सर्वज्ञस्वभावी (अपने आत्माका) निर्णय हो जाता है। बात भी लोगोंको रुचना (कठिन है)। मूल तो यह है। जैनदर्शनका मूल तो यह है।

(एक लेखमें) लिखा है न ! (उसमें) 'दार्शनिक' शब्द है, हाँ। वास्तविक दर्शन-जैनदर्शनकी दार्शनिक उपलब्धिकी प्राप्ति है। 'क्रमबद्ध' यह तो जैनदर्शनकी दार्शनिक प्राप्ति है। उसमें तो केवलदर्शन, केवलज्ञान और पदार्थकी व्यवस्थित सिद्धि होती है। आहाहा...! तीन बोल रखे हैं। 'इस महान दार्शनिक उपलब्धिको व्यर्थ वादविवादने सामाजिक व राजनीतिका विषय बना लिया है। यह एक शुद्ध दार्शनिक विषय है। यह वादविवाद एवं हँसी-मजाकका विषय नहीं है।' (अर्थात्) आप तो जो होनेवाला है सो होगा...! वैसे माननेवाले हो। ऐसा कहकर मजाक उड़ाते हैं। 'इस पर विशुद्ध दार्शनिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे विचार किया जाना चाहिये।' विचार करना चाहिये। वैसा ही वैसा पंडितोंको मान लेना, वैसा नहीं है। जैनदर्शन यह कोई संप्रदाय नहीं। जैनदर्शन यह वस्तुका दर्शन है। विश्व जैसा है, (जैसा उसका) स्वरूप है, उसे जाना है, वैसा उन्होंने कहा है और उस तरह मार्गको साधना, क्योंकि भूतार्थ त्रिकाल वस्तु जो है उसका आश्रय लेना यह जैनदर्शनका तात्पर्य है। 'क्रमबद्ध' (का) निर्णय करनेमें भी भूतार्थका आश्रय करनेपर 'क्रमबद्ध'का निर्णय होता है। भाई ! आहाहा...! ग्यारहवीं गाथा (समयसार)। 'भूदत्थमस्सिदो खलु' आहाहा...! एक समयमें भूतार्थ (वस्तु है)। भूत...भूत...अर्थात् भूत

लगा है, यह नहीं। यह 'भूत' अर्थात् विद्यमान वस्तु, आहाहा...! विद्यमान पदार्थ। सकल निवारण अखंड एक प्रभु आत्मा। आहाहा...! यह जैनदर्शनका रहस्य और तत्त्व है। आहाहा...!

एक विद्वानने एक जगह लिखा है कि, 'क्रमबद्धपर्याय'की बात पहले हमारे ध्यानमें नहीं आयी। अबतक यह शब्द ही (ध्यानमें) आया नहीं था। **'और वह इस युगमें एक ऐसे व्यक्तिके माध्यमसे प्रस्तुत हुई....'** (अर्थात्) यहाँसे (पूज्य गुरुदेवश्रीसे)। **'...इस युगके ऐसे व्यक्तिके माध्यमसे प्रस्तुत हुई जिसे हम किसी कारणवश पसंद नहीं करते...**(यानी कि) स्थानकवासीमेंसे निकले हुये....और इस व्यक्तिने क्रमबद्ध निकाला। और न थे पंडित, नहीं विद्वान या संस्कृत व्याकरणके पाठी....! **'...तो इसका मतलब यह तो नहीं होना चाहिये कि हम सर्वज्ञकी भविष्यज्ञतासे भी इन्कार कर अपने पैरों पर ही कुल्हाडी मार लें।'** भविष्यकी जिस समय जो पर्याय होनेवाली है उसको भगवान अभी भी जानते हैं। यदि तू भविष्यकी (जिस) प्रकार (पर्याय होनेवाली) है उसी प्रकार होती है, वैसा न माने तो सर्वज्ञके ऊपर कुल्हाड़ी पड़ती है। समझमें आया ? आहाहा...! सूक्ष्म बातें बहुत हैं, बापू ! लोग जैनदर्शन क्या है ? (यह) कुछ समझते नहीं और वैसे ही वैसे (चलते रहते हैं) जिस संप्रदायमें पैदा हुये (वैसी मान्यता कर ली)। जिस कुलमें पैदा हुये और जिसकी संगत (हुई) उसे माना, हो गई छुट्टी....। व्यर्थ जिंदगी गवाँई !! आहा...!

यहाँ ऐसा कहा **'...इन्कार कर अपने पैरों पर ही कुल्हाडी मार लें। इस आत्मघाती कदम उठानेके पूर्व...'** यह आत्मघाती कदम है। क्रमबद्धका निषेध करनेवाला सर्वज्ञका निषेध करता है। केवलज्ञानी तीनकालको जानते हैं उनका निषेध करते हैं। आहाहा...! **'...यह आत्मघाती कदम उठानेके पूर्व चिंतकवर्गसे एकबार पुनः विचार कर लेनेका सानुरोध आग्रह है।'** विचार किजिये। एकबार विचार किजिये। विचार किजिये...!! वैसाका वैसा न मानो। एक व्यक्तिने कहा इसलिए हमें मान लेना ? हमारे इतने-इतने साधु हो गये (और) अब कोई कहते नहीं है और (उनका मान लिया जाय ?) आहाहा...! बहुत अच्छा लिखा है।

आहाहा...! यहाँ कहते हैं, **'अब अविद्यमान पर्यायों...'** है न ऊपर ? **'अविद्यमान अर्थात् भूतकालीन जो अभी है नहीं, भविष्यकी उत्पन्न हुई नहीं है, उन्हें '**...(भी) कथंचित् (किसी प्रकारसे, किसी अपेक्षासे)....अर्थात् कि, वहाँ भूत(कालकी पर्याय) हालमें नहीं है और भविष्यकी है नहीं, परंतु ज्ञानका ऐसा कोई स्वभाव है कि जो इसप्रकार होगा, जो हो (गई) जिस समय, वैसा ही यहाँ जानते हैं। इस अपेक्षासे (अर्थात्) ज्ञानकी

अपेक्षासे उसे 'भूतार्थ' कहनेमें आता है। आहाहा...! समझमें आया ? लोजिक-न्याय बहुत सूक्ष्म है, भाई ! जैनदर्शन कोई अपूर्व चीज है !! जगतमें कोई दूसरा है नहीं। जैनदर्शनके अलावा कोई धर्म तीनकालमें सत्य है नहीं। समझमें आया ?

यह यहाँ कहते हैं। ऊपर शीर्षक चल रहा है। **'अविद्यमान पर्यायों...'** **'अविद्यमान'** अर्थात् **'नहीं'**। भूत(काल)की नहीं भूत (अर्थात्) गत समयकी, भविष्यकी नहीं। उसका भी...ऐसा है न ? देखिये न ! (संस्कृतमें है) **'अथासद्भूतपर्यायाणां कथंचित्सद्भूतत्वं विदधाति'** (अर्थात्) किसी अपेक्षासे यानी कि 'है' ऐसा कहते हैं। (किसी) अपेक्षासे अर्थात् ज्ञान वैसा जानता (है), सबकुछ प्रत्यक्ष जानता है। इसलिए 'नहीं' उसे हम 'है' वैसा कहते हैं। आहाहा...!

(अब) ३८ **गाथा :—**

जे णेव हि संजाया जे खलु णट्ठा भवीय पज्जाया।
ते होंति असब्भूदा पज्जाया णाणपच्चक्खा॥३८॥

आहाहा...! क्या गाथा है। जैनदर्शनका प्राण है।

हरिगीत : **जे पर्ययो अणजाण छे, वली जन्मीने प्रविनष्ट जे;**
ते सौ असद्भूत पर्ययो पण ज्ञानमां प्रत्यक्ष छे. ३८

आहाहा...! भगवान परमेश्वरके महामंत्र है। आहाहा...! हम ऐसा करें व हम वैसा करके वैसा कर दें और किसीका कर दें एवम् मेरी पर्याय भी बदल दूँ और... आहाहा...! ये सब अभिमानके जहर उतारनेके मंत्र हैं। सर्पके जहरको उतारनेके लिए मंत्र होते हैं न ! वैसे ये मिथ्यात्वके जहर उतारनेके मंत्र हैं। आहाहा...!

टीका :— **'जो (पर्यायें)...'** 'पर्याय समझमें आती है ? (पर्याय अर्थात्) अवस्था। प्रत्येक द्रव्य और गुण त्रिकाल रहते हैं और अवस्था क्षण...क्षण...क्षण...में पलटती है। क्रमसर पलटती है। एकके बाद एक...एक...एकके बाद एक...लोग गतकालकी (पर्यायोंको केवलज्ञान जानता है) वैसा मानते हैं। गतकालकी प्रत्येक समयपर हुई है यह बराबर है। इसलिए उसे मानते हैं। परंतु भविष्यकी हुई नहीं, जिस समय (होनेवाली) उसी समय होगी, वैसा मानना कठिन पड़ता है। क्योंकि गतकालकी जो पर्यायें हो गई है वे तो उसी समय हुई थी (तो) उसी समय (ही) होनेवाली थी। इसलिए उन्होंने कहा ठीक (है कि) क्रमबद्ध मान लेते हैं। परंतु भविष्यकी जिस समय होगी उसी समय होगी, आगे पीछे

नहीं, आहाहा...! ऐसा जो मानना यह लोगोंको कठिन पड़ता है। इसलिए वे सर्वज्ञको भी उड़ाते हैं। क्योंकि सर्वज्ञ ही भविष्यकी सभी पर्यायें (वर्तमानमें) नहीं है, तथापि ज्ञानमें प्रत्यक्ष (जानते) हैं, आहाहा...! यह ज्ञानका-केवलज्ञानकी पर्यायका कोई अलौकिक चैतन्यस्वभाव (है) कि, एक समयकी पर्यायके अलावा अनंतकाल(की) भविष्यकी, कोई पर्याय वर्तमानमें नहीं है तथापि भगवानके ज्ञानमें ये वर्तमान हैं वैसे जानते हैं। तब (अतिरिक्त) प्रश्न यह आया था कि, '(जो पर्याय) नहीं है उसे (प्रत्यक्ष) जाने यह तो विपरीत हुआ।' अरे...! परंतु सुन तो सही। यह तो वहाँ उत्पन्न नहीं हुई है, उस अपेक्षासे नहीं है। परंतु ज्ञानमें तो, जिस समय उत्पन्न होगी वैसा ही यहाँ ज्ञान हुआ है, आहाहा...! ऐसी बातें हैं। बहुत कठिन काम ! आहाहा...! भविष्यकी जिस समय जो पर्याय होगी उस समय होगी, यह मानना लोगोंको (कठिन पड़ता है)। परंतु उसका मतलब ऐसा है, प्रभु ! देखिये ! (यहाँ क्या कहते हैं ?)

'जो (पर्यायें) अभीतक भी नहीं हुई है...' है न ? भविष्यकी...! भविष्यकी पर्यायें वर्तमानमें नहीं–अनुत्पन्न हैं। कल जो पर्याय होगी वह अभी उत्पन्न नहीं हुई है। अर्थात् कि ये पर्यायें, अब तक भी उत्पन्न हुई नहीं है **'...और जो उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं,...'** पर्यायें उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं, आहाहा...! विलय हुई हैं वे वर्तमानमें नहीं, उस अपेक्षासे (कहा है)। शेष (जो) पर्याय विलय हुई हैं सो गई हैं द्रव्यमें। आहाहा...! परंतु वर्तमान विलय है न (इसलिए विलय हो गई, वैसा कहा है)। गतकालकी पर्याय वर्तमान नहीं। वे विलय हो गई हैं। और वे (भविष्यकी) उत्पन्न हुई नहीं हैं।

'...वे (पर्यायें) वास्तवमें अविद्यमान होने पर भी,...' भाषा फिर ऐसी देखो। यथार्थमें अभूतार्थ होने पर भी, आहाहा...! वास्तवमें 'नहीं' वैसा होने पर भी–अविद्यमान (होने) पर भी **'...ज्ञानके प्रति नियत होनेसे...'** आहाहा...! यह तो कोई बात (है) !! परंतु केवलज्ञानकी पर्यायमें तो प्रत्यक्ष...प्रत्यक्ष... जिस प्रकार वर्तमान है उसी तरह भूत और भविष्यकी (पर्यायोंको) वर्तमान देखता है। आहाहा...! यह तो कोई (बात है) !! यह चैतन्यकी चमत्कारी पर्यायका सामर्थ्य है। आहाहा...! जो पर्यायें उत्पन्न हुई नहीं और उत्पन्न होनेपर भी द्रव्यमें तो जितनी शक्ति है उतनी नित्य रहती है !! पर्याय उत्पन्न हुई इसलिए पूर्ण (स्वरूप) है उसमें कोई कमी आयी है, (वैसा नहीं)। यह भी कोई अचिंत्य बात है न !!

यहाँपर तो कहते हैं, प्रभु ! मार्ग प्रभुका ऐसा है...। आहाहा...! जड़ और चैतन्य छ द्रव्यकी भूतकालकी अवस्थाएँ और छ द्रव्यकी भविष्यकी अवस्थाएँ–अनुत्पन्न और विनष्ट (ऐसी पर्यायें) इस अपेक्षासे असद्भूत होनेपर भी... आहाहा...! (उनको प्रत्यक्ष

जानते हैं)! प्रभु ! परंतु तेरी शक्ति ऐसी है न ! आहाहा...! द्रव्यकी शक्ति वैसी है। आहाहा...! द्रव्यकी शक्ति हो तो पर्यायकी शक्तिमें आये न ! आहाहा...!

ज्ञानकी एक समयकी पर्याय विनष्ट-अवस्थाएँ हो गई और उत्पन्न हुई नहीं, उस अपेक्षासे उसे अविद्यमान कहते हैं। परंतु ज्ञानकी अपेक्षासे, प्रभु ! हम प्रत्यक्ष कहते (हैं)। आहाहा...! परंतु ज्ञानका कोई ऐसा स्वभाव (है)... आहाहा...! केवलज्ञानकी पर्यायका कोई ऐसा स्वभाव (है)... आहाहा...! वास्तवमें अविद्यमान (होने) पर भी ज्ञानमें प्रत्यक्ष, वर्तमान, भूतार्थ है। यहाँ अपनी पर्याय भी हुई नहीं उसे भी केवलज्ञान (जानता) है। भविष्यकी अनंत पर्यायें हुई नहीं उन्हें भी केवलज्ञान प्रत्यक्ष जानता है। आहाहा...! केवलज्ञान भी एक समयमें, दूसरे समयमें, तीसरे (समयमें)...नया-नया होता ही रहता है न ! जो (पर्याय) अबतक हुई नहीं उसे भी केवलज्ञान प्रत्यक्ष है ऐसा जानता है। उस ज्ञानकी अपेक्षासे उसे भूतार्थ कहनेमें आता है। बहुत सूक्ष्म बात है, भाई ! यहाँ 'सोनगढ'में ऐसी बात न हो तो (और) कहाँ हो भाई ?

आहाहा...! भगवन् ! तू ऐसा (है), तेरे भीतर सामर्थ्य है कि भूत और भविष्यकी पर्याय नहीं होनेपर भी, ज्ञानमें निर्णय करने जाय तो यह श्रुतज्ञानकी पर्यायमें भी (यह) परोक्ष है, केवलज्ञानमें प्रत्यक्ष है। परंतु परोक्ष भी प्रमाण है न ! क्या कहा समझमें आया ? आहाहा...! केवलज्ञानकी पर्यायमें, नहीं और उत्पन्न हुई नहीं, होकर गई और नहीं हुई, उन अपेक्षासे तो वास्तवमें अविद्यमान है। तथापि वह ज्ञान ऐसा है कि, ज्ञान उसे प्रत्यक्ष करता है। इसलिए उसे व्यवहारसे 'भूतार्थ' कहनेमें आता है। (परंतु) है यह व्यवहार ! आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा मार्ग ! वह तो व्रत करना व तपस्या, उपवास करना और चौविहार करना... लो धर्म हो गया ! छः पर्व ब्रह्मचर्यका पालन, छः पर्व कंदमूल न खाना..बापू ! वे सभी बातें...'यह मैं छोड़ता हूँ व यह मैं खाता हूँ ' ये सब जड़की क्रिया (है)। (यह) 'मैं करता हूँ' यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा...! आहाहा...! यहाँ पर तो (ऐसा कहते हैं कि) केवलज्ञान और तेरी श्रुतज्ञानकी पर्याय भी जिस द्रव्यकी पर्याय होकर गई और हुई नहीं, उसे श्रुतज्ञानकी पर्याय परोक्ष रीतिसे है वैसे बैठाते हैं। परोक्ष भी प्रमाण है न ? आहाहा...! समझमें आया ?

(अब कहते हैं) '...**ज्ञानके प्रति नियत होनेसे (ज्ञानमें निश्चित)**...' ज्ञानमें तो निश्चित है। (वर्तमानमें) नहीं है इसलिए ज्ञानमें व्यवहार है, ऐसा नहीं। आहाहा...! ज्ञानस्वरूप भगवानमें क्रमबद्ध जो पर्याय होनेवाली और हो गई वे ज्ञानमें निश्चित हैं। '...(**ज्ञानमें निश्चित-स्थिर-लगी हुई होनेसे**,...)' आहाहा...! वे पर्यायें मानों ज्ञानमें चिपक

गई हों। आहाहा...! एक समयका (केवल)ज्ञान! बापू ! यह क्या है भाई ! आहाहा...! समय एक, जाने तीनकालको। समय एक-वर्तमान और तीनकाल !! आहाहा...! बापू ! नौ तत्त्वोंमें मोक्षतत्त्व-केवलज्ञानतत्त्वका निर्णय करना पड़ेगा, भाई ! मोक्षतत्त्व है न ? केवलज्ञान...! आहाहा...! यह होता है द्रव्यके आश्रयसे, परंतु हुई पर्यायका इतना सामर्थ्य है (कि सबको) प्रत्यक्ष जानती है।

'(...**लगी हुई होनेसे, ज्ञानमें सीधी ज्ञात होनेसे**)...' (अर्थात्) नहीं होने पर भी ज्ञानमें सीधी ज्ञात होती है। आहाहा...! आहाहा...! जैसे है वैसे ज्ञानमें ज्ञात होती है। आहाहा...! प्रभु तेरे पर्यायमें चैतन्यका स्वभाव तो देख ! आहाहा...! सीधा...ज्ञानमें सीधा (ज्ञात होता है)। (कोई) ऐसा कहे कि, होगी तब जानेंगे, वर्तमानमें होगी तब जानेंगे, वैसे नहीं। वर्तमानमें हुई नहीं उन्हें सीधा जानते हैं। आहाहा...! आड़में (जानना) होगा वैसे नहीं, (परंतु) सीधा जानते हैं, आहाहा...! यह नौं तत्त्वोंमें मोक्षतत्त्व-केवलज्ञानतत्त्वका निर्णय कराते हैं। आहाहा...! यद्यपि है तो पर्यायका निर्णय, परंतु पर्यायका निर्णय द्रव्यके आश्रयसे होता है। पर्यायका निर्णय पर्यायके आश्रयसे होता नहीं।

आहाहा...! केवलज्ञानका निर्णय करने जाय कि उसकी एक समयकी पर्याय अनंत...अनंत...पर्याय उत्पन्न हुई नहीं और अनंत पर्याय उत्पन्न होकर गई हैं, उन्हें ज्ञानकी पर्याय सीधा जानती है। '**सीधा जानती है...**' आहाहा...! अर्थात् वर्तमान जैसा है वैसा सीधा जानती है, आहाहा...! यह वर्तमान पर्याय है इसलिए आगे भविष्यमें क्रमिक होगी, ऐसा अनुमान या अन्य रीतिसे जानती नहीं, वैसा कहते हैं। आहाहा...!

ज्ञान, एक समयकी पर्यायको सीधा जानता है। अनंतकाल आगे जो पर्याय होगी उसे ज्ञान सीधा (अर्थात्) प्रत्यक्ष जानता है। आहाहा...! क्या कहते हैं यह ? विचारकोंको विचार और मंथन करनेकी यह बात है। आहाहा...! वैसे ही वैसे मान ले वह कोई वस्तु नहीं है। अंदरमें यह वास्तविक स्वभाव है (उसका निर्णय करना चाहिये)। (जो पर्यायें) हो गई हैं और होगी उसे ज्ञानका कोई ऐसा स्वभाव है कि सीधा (जानता है)। यह वर्तमान है तो आगे (भविष्य) होगा, वर्तमान है तो भूतकाल था, वैसे (नहीं जानता)। समझमें आया ? आहाहा...! धन्य भाग्य ! वीतरागकी ऐसी वाणी मिले, बापू।

इसलिए तो 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में ऐसा कहा है न ! भगवान, इन्द्र और जिनेन्द्र जिस समयपर जिसकी पर्याय होगी, जिस तरह, जिस क्षेत्रमें, जिस कालमें, जिस निमित्तसे जिस प्रकार (होनेवाली होगी उस प्रकारकी होगी, उसे इन्द्र या जिनेन्द्र कोई रोक सकते नहीं)। उस प्रकारसे माने तो वह सम्यग्दृष्टि है और उससे विपरीत माने तो मिथ्यादृष्टि है।

'स्वामी कार्तिकेय'। समझमें आया ? 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में ३२१-३२२ गाथा (है), आहाहा...!

यह चर्चा करने जैसा है, यह गुप्त रखने जैसा नहीं है। भले चाहे जल्द समझमें न आये, लेकिन बात गुप्त रखने जैसी नहीं है। भाई ! आये थे न ! २००१में पहली बार सुना कि उपादानकी पर्याय कालमें होगी तब निमित्त हो, लेकिन निमित्तसे कुछ होता नहीं। वह पर्याय स्वयंसे होती है। मैंने कहा कि इस बातकी चर्चा पंडितोंमें करो। २००१में आये थे, ३४ वर्ष हो गये। उनको लगा कि सबको मानना पड़ेगा। स्वामीजी कह रहे हैं वह मानना पड़ेगा। उपादानकी जिस समय जो पर्याय होनी है वह होगी। निमित्त आवे तब हो ऐसा तीनकालमें नहीं है। घड़ा कुम्हारसे बने ऐसा तीनकालमें नहीं है। घड़ा मिट्टीसे जिस समय होना है उस समय ही होगा। जिस समय घड़ा मिट्टिमेंसे होना है उसी समय होगा। कुम्हार उसे आगे-पीछे कर सके ऐसा तीनकालमें नहीं है। मैंने कहा कि इस बातको पंडितोंके सामने रखो। आहाहा...! भाई...! यह तो वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है और प्रभुने कहा है। उसकी चर्चा नहीं करनी ? चर्चा करो, छपवाओ, पुस्तक बनवाओ, पंडितोंके सामने रखो...! अब यह क्रमबद्ध आया है। आहाहा...!

ऐसा एकबार गजपंथामें प्रश्न हुआ था। (वहाँ) एक श्वेताम्बर साधु थे। हमारे यहाँका अध्ययन किया तथा सब बातें करते थे। हम गये तब वे आये, पैर छूये, परंतु बादमें आये नहीं। हमें तो शामको आना था (इसलिए बादमें) किवाड़ बंद करके बैठे थे। (हम गये तब) पैर छूये। मैंने कहा 'शास्त्रमें पाठ है कि कालमें मुक्ति होती है, (वैसे) दो पाठ हैं। ('प्रवचनसार') ४७ नयमें (आता है), कालमें भी मृत्यु होता है और अकालमें भी मृत्यु होती है, (उसका) क्या है ? (उन्होंने कहा) मैंने कुछ विचार नहीं किया है।

'प्रवचनसार'में ऐसा पाठ है कि, कालमें भी मोक्ष होता है और अकालमें भी मोक्ष होता है। परंतु ऐसा ही माने कि जिस समय जो हानेवाला है वह होगा, तो अकालमें मोक्ष होता है, वैसा कहा है। (उसका अर्थ ऐसा है कि) कालमें मोक्ष होते समय स्वभाव, पुरुषार्थ है उसे अकाल कहनेमें आता है। पढ़-पढ़कर बैठाया था, न्यायसे अंदर बैठा नहीं था। (मैंने कहा) कालमें भी मोक्ष होता है और अकालमें भी मोक्ष होता है। (ऐसा) पाठ है। जिस कालमें, जिस समयमें (मोक्ष) होनेवाला है वह होगा ही। तथापि अकालमें मुक्ति (भी आती) है। है न इसमें ? इसमें है ? यह 'प्रवचनसार' है न ? ३० और ३१ (वाँ नय है) ४९८ पन्ना है।

'आत्मद्रव्य कालनयसे जिसकी सिद्धि समयपर आधार रखती है ऐसा है, गर्मीके दिनोंके अनुसार पकनेवाले आम्रफलकी भांति। (कालनयसे आत्मद्रव्यकी सिद्धि समयपर आधार रखती है, गर्मीके दिनोंके अनुसार पकनेवाले आमकी भाँति।)' (३०)

'आत्मद्रव्य अकालनयसे जिसकी सिद्धि समयपर आधार नहीं रखती ऐसा है, कृत्रिम गर्मीसे पकाये गये आम्रफलकी भाँति।' (३१) क्या कहा है यह ? अतः यहाँ पुरुषार्थ और स्वभावको साथमें स्थापित किया है। समझमें आया ? यह तो (संवत्) १३(की सालकी) बात है। यहाँ तो पहलेसे ही (यह बात) चर्चित है न ! यह इसमें– व्यवहारसे मुक्ति होती है और निश्चयसे मुक्ति होती है व क्रियानयसे होती है व ज्ञाननयसे होती है, किन्तु इसका अर्थ क्या ? उस प्रकारकी योग्यता उसी समय गिनतीमें ली गई। बाकी तो जिस समय मुक्ति होनेवाली है, जिस समय भगवानने देखी उस समय वैसा ही होनेवाला है, आगे-पीछे होनेवाला नहीं। परंतु 'अकालसे (मुक्ति) कहा यह (क्या है) ? (उस समय) स्वभाव है, पुरुषार्थ है, केवल काल नहीं। अकालसे पुरुषार्थ, स्वभाव, भवितव्यता और भाव सब मिलकर है। उसे 'अकाल' कहनेमें आता है। आहाहा...! सूक्ष्म बातें बहुत, बापू ! वीतरागमार्ग सूक्ष्म बहुत, भाई ! आदमीको फुरसत न मिले...! आहाहा...!

श्रोता :— अकालमृत्यु कहनेमें कौनसा काल है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— उसमें भी वही है। अकाल कुछ है नहीं, कर्मकी स्थिति उस प्रकार वहाँ पूर्ण होनेवाली थी, इस कारण अकाल कहा। 'पद्मनंदीपंचविंशती'। 'अनित्य अधिकार' हमने कल पढ़ा था। उसमें यह आया–जिस समय, जिस प्रकार, जिस क्षेत्रसे देहकी (स्थिति) पूर्ण होने वाली है सो होगी। एक समय आगे-पीछे नहीं। और तुम्हारे यहाँ कहा जाता है न कि 'पंचमीकी षष्ठी होती नहीं।' कहनेमें आता है या नहीं ? पंचमीको देह छूटनेवाला होगा तो पंचमीके (दिन ही छूटेगा), षष्ठी तीनकालमें (होनेवाली नहीं), आहाहा...! ''मोक्षमार्गप्रकाशक''में कहा है न कि भगवानने कहा ऐसे मार्गका आचरण करें तो उसके पांचों कारण साथ ही होते हैं। 'मोक्षमार्गप्रकाशक'के नौंवें अधिकारमें है। 'मोक्षमार्गप्रकाशक'में 'टोडरमलजीने' बहुत अच्छा खुलासा किया है।

यहाँ कहते हैं, आहाहा...! क्या बात (है) !! गतकालकी पर्याय वर्तमानमें नहीं। अनंत...अनंत..अनंत..अनंत...काल(का) भविष्य वर्तमान(में) नहीं। इस अपेक्षासे वास्तवमें अविद्यमान ही है। परंतु ज्ञानका कोई ऐसा स्वभाव है कि, जैसे वह प्रत्यक्ष हो, विद्यमान हो वैसे प्रत्यक्ष जानता है !! आहाहा...! ऐसा केवलज्ञान, बापू ! उसकी पर्यायकी इतनी

ताकत !! तो उसके गुणका क्या कहना ? और अनंतगुणके पिंड (वैसा) द्रव्यका क्या कहना !! आहाहा...! यह द्रव्यकी दृष्टि !! ऐसी दृष्टि हुये बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा...! पर्यायकी दृष्टि नहीं। केवलज्ञान है यह भी सद्भूत व्यवहारनयका विषय है।

यह विषय भी जब आता है कि, अविद्यमानको भी प्रत्यक्ष जानता है, यह क्या है बापू ? नहीं उसको प्रत्यक्ष जानता है कि यह है। आहाहा...!

श्रोता :— द्रव्यमें तो शक्तिरूप योग्यता रही हुई है (इसलिए तो जानता है)?

पूज्य गुरुदेवश्री :— यह तो त्रिकाल (है)। यह प्रश्न नहीं है। यहाँ तो भविष्यकी जो पर्याय हुई नहीं और भूत(कालकी) हो गई, उसे वैसे प्रत्यक्ष जानता है कि, यह है। द्रव्यको जानता (है) अतः वैसा नहीं। यह जानता है इसलिए है।

श्रोता :— द्रव्यमें शक्तिभूत योग्यता विद्यमान है...

पूज्य गुरुदेवश्री :— नहीं...नहीं...नहीं...! शक्तिरूप योग्यता (की बात नहीं)। यह तो उसकी गतकालकी और भविष्यकी पर्याय वर्तमानमें नहीं हैं, उन्हें ज्ञानमें वर्तमान प्रत्यक्ष जानता है। द्रव्यमें भविष्यकी शक्ति है इसलिए जानता है, वैसा नहीं। भविष्यकी जिस समय, जिस प्रकार (पर्याय) होनेवाली है उसे ज्ञान वैसे प्रत्यक्ष जानता है। यह तो बापू वीतरागकी बातें (हैं) !! आहाहा...! जिनेश्वरदेव, प्रभु परमात्मा...आहाहा...! उनके एक-एक वाक्योंकी श्रद्धा, उसका ज्ञान होना, बापू ! यह कोई अलौकिक बात है !! यह कोई सामान्य बात नहीं। आहाहा...!

यह बात एक बार दोहरायी थी कि, वर्तमान नहीं और केवलज्ञानमें निमित्त क्यों कहा ? भविष्यमें (जो पर्याय होगी) यह सब वर्तमानवत् (केवलज्ञानको) निमित्त होती है। भविष्यमें होगी इसलिए (यहाँ केवलज्ञानमें) निमित्त होती है, वैसा नहीं। आहाहा...! सूक्ष्म बात है भाई ! ये सब प्रश्न उपस्थित हो चुके हैं। यह द्रव्यकी पर्याय जिसरूप होगी (उसके अनुसार जानता है) वर्तमान योग्यता है वह वर्तमानको जानती है इसलिए भविष्यको जानती है, वैसा नहीं। समझमें आया ? वर्तमान द्रव्यमें भविष्यकी योग्यता है और भूतकालकी योग्यता है, इसलिए उन्हें जाननेसे भूत-भविष्यको जानती (है) वैसा नहीं। यह तो उसकी पर्याय है इसलिए उन्हें जाननेसे भूत-भविष्यको जानती (है), वैसा नहीं। यह तो उसकी पर्यायको जानता है। यह तो शक्तिको जानता है, वैसा कहा। आहाहा...! भाई ! यह वीतरागमार्ग कोई गंभीर है !! आहाहा...! अरेरे...! ऐसा मार्ग अलौकिक है, प्रभु !

(यहाँपर कहते हैं) वह पर्यायें... '**(...ज्ञानमें सीधी ज्ञात होनेसे)...**' '**ज्ञानके प्रति**

नियत' ऐसा है न ? उसका अर्थ किया है। ज्ञानके प्रति तो निश्चय है। वहाँ भले ही नहीं है परंतु ज्ञानके प्रति तो निश्चय है, आहाहा...! उस '**...ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई**' '**ज्ञानके प्रति नियत होनेसे**' (अर्थात्) ज्ञानके प्रति निश्चय होनेसे '**ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई**' उस ज्ञानमें प्रत्यक्ष वर्तती हुई (वैसा कहा है)। (अर्थात्) भूत और भविष्य ज्ञानमें प्रत्यक्ष वर्तती हुई (वैसा कहते हैं)। आहाहा...! समझमें आता है न ? आहा...! ऐसी बात है, बापू ! आहाहा...! त्रिलोकनाथ वीतरागका एक-एक वाक्य (शब्द) कोई अलौकिक है। लोगोंको सुनने मिला नहीं, आहाहा...! क्या कहते हैं ?

गतकालमें होकर **नष्ट** हो गई, भविष्यकी उत्पन्न हुई नहीं, इसप्रकार वास्तवमें तो (वे पर्यायें) अविद्यमान ही है, वर्तमानमें नहीं। परंतु ज्ञानका कोई ऐसा स्वभाव है कि, ज्ञानमें वह नियत-प्रत्यक्ष ज्ञात होती है, आहाहा...! होगी तब ज्ञात होगी, वैसा नहीं। वैसे द्रव्यमें ऐसी योग्यता है इसलिए द्रव्यको जाने, इसलिए भवितव्यकी पर्यायको जाने, वैसा नहीं। आहाहा...! ऐसा उपदेश है !

ज्ञानके प्रति अर्थात् ज्ञान और आत्मा (के प्रति) नियत होनेसे (अर्थात्) निश्चयसे सीधी ज्ञात होनेसे, ज्ञानमें परिणमित होकर सीधी ज्ञात होनेसे '**..ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई**' (प्रत्यक्षका) नीचे अर्थ किया है। प्रत्यक्ष अर्थात् अक्षके प्रति। (उसके नीचे) अक्षका अर्थ है। दो (अर्थ कहे हैं)। अक्ष अर्थात् आत्मा और अक्ष अर्थात् ज्ञान। प्रत्यक्ष=अक्षके प्रति अर्थात् आत्माके प्रति (और) ज्ञानके प्रति। अक्षके सम्मुख अर्थात् आत्माके सम्मुख (और) ज्ञानके सम्मुख। अक्षके निकट अर्थात् आत्माके निकट (और) ज्ञानके निकट। अक्षके संबंधमें अर्थात् आत्माके संबंधमें (और) ज्ञानके संबंधमें हो वैसा। अक्ष=(१) ज्ञान (२) आत्मा। समझमें आया ? भाई ! यह कोई कथा-कहानी नहीं। आहाहा...! यह तो अंदर वस्तुका स्वरूप कोई अचिंत्य, अद्‌भुत (है उसकी बात चलती है) आहाहा...! इस तरह न माने तो वह केवलज्ञानको मानता नहीं।

कई लोग केवलज्ञानमें शंका उठाने लगे हैं (कि) भविष्यमें होगा तब जानेंगे, अभीसे कैसे जाने ? 'क्रमबद्ध'की बात छेड़ी तब लोगोंको ऐसा हो गया था, ऐसा...! सर्वज्ञ वर्तमान एक समयमें जानते हैं ? भविष्यकी पर्याय होगी सो वर्तमानमें (जाने) ? अब, वैसा न जाने तो दिव्यज्ञान किसे कहेंगे ? आहाहा...! भाई ! परमात्माका एक तत्त्व-एक पर्याय-केवलज्ञानकी एक पर्यायकी भी इतनी विस्मयता !! आश्चर्यता !! आहाहा...! यह '**...ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई...**' उनके बारेमें विशेष आयेगा...

(श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव!)

३६ श्री कलशटीका, कलश—२५८, प्रवचन नं. २७६, दि. २१-१२-१९६५

१२वाँ कलश है।

विश्रान्तः परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुषु
नश्यत्येव पशुः स्वभावमहिमन्येकान्तनिश्चेतनः।
सर्वस्मान्नितस्वभावभवनज्ञानाद्विभक्तो भवन्
स्याद्वादि तु न नाशमेतिसहजसष्टीकृतप्रत्ययः॥१२-२५८॥

क्या कहते हैं? यहाँ स्वभावकी अस्ति दिखानी है। उसमें पहले परभावसे अस्ति माननेवाले एकांती कैसे होते हैं उसकी बात करते हैं। सूक्ष्म तो है, यह अनेकान्त सूक्ष्म वस्तु है। बराबर ध्यान रखकर लक्षमें रखना। उसमें ज्यादा ध्यान रखना ऐसा उसका अर्थ है। सूक्ष्म अर्थात् बराबर ध्यान रखना चाहिये तब समझमें आये। सूक्ष्म (कहते हैं, लेकिन) दुनियाकी बाते याद रखता है! ममताका ढेर! उसके पास कितना ढेर हैं! आहाहा...! अंदरसे नीकल गया है। वह यहाँ कहते हैं कि तेरी शक्तिमें तू है कि नहीं? तेरे स्वभावमें कोई शक्ति है कि नहीं? या फिर तू पर शक्तिके आश्रयसे है? ऐसा यहाँ कहते हैं। समझमें आया?

'**भावार्थ इसप्रकार है...**' कहना तो यह है कि '**एकान्तवादी**' एक पक्षसे देखनेवाला... '**मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है कि वस्तुको पर्यायमात्र मानता है...**' अर्थात् आत्माको पर शक्तिसे ही मैं हूँ ऐसा मानता है। समझमें आया? '**द्रव्यरूप नहीं मानता...**' मैं स्वशक्तिवान स्वभाव सामर्थ्यवाला हूँ ऐसा अज्ञानी मानता नही। '**इसलिए जितनी समस्त ज्ञेय वस्तुओंके जितने हैं शक्तिरूप स्वभाव।**' क्या कहते हैं? जितनी समस्त जाननेयोग्य जो वस्तु है उसकी उतनी शक्ति...दो बोल (आये)—जितनी जाननेयोग्य वस्तु और जितनी उसकी शक्ति। आत्मामें शरीर, देह, आदि सब परपदार्थ–जितने परपदार्थ है और उसमें जितना शक्तिका सामर्थ्य है...शरीरमें जैसे हलन-चलन आदि शक्ति, परमाणुमें नीला-पीला आदिकी शक्ति, अनेक प्रकारके संहनन अर्थात् मजबूती–शक्ति। समझमें आया? ऐसी अनेक प्रकारकी वस्तुका–पर पदार्थके जितने भाव है '**उसको ज्ञान जानता है...**' ज्ञानकी अवस्था दूसरे पदार्थकी शक्तिरूप सामर्थ्यको जानती है।

'जानता हुआ उसकी आकृतिरूप परिणमता है।' ज्ञानकी अवस्था पर पदार्थके सामर्थ्यकी शक्तियोंको जानता हुआ स्वयं ज्ञान पर्यायरूपसे परिणमता है। **'इसलिए ज्ञेयकी शक्तिकी आकृतिरूप है ज्ञानकी पर्याय...'** वह जाननेकी पर्याय **'ज्ञेयकी शक्तिकी आकृतिरूप है ज्ञानकी पर्याय, उनसे ज्ञानवस्तुकी सत्ताको जानता है....'** उतनी ही ज्ञानकी सत्ता मानता है। क्या कहा ? थोड़ा सूक्ष्म है। आत्माकी ज्ञानपर्याय–ज्ञानदशा दूसरे अनंत पदार्थ और उनके सामर्थ्य-शक्तिरूप जाननेरूपसे परिणमता है, उतना ही आत्मा है और उतना ही (मैं) आत्मा हूँ ऐसा अज्ञानी मानता है। समझमें आया ? शरीरके संहननकी मजबूती ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञात होती है कि इस शरीरका संहनन मजबूत है। ऐसी ज्ञानपर्याय उसे जाने, ज्ञानकी पर्याय उसकी शक्तिको जानती है उतना परिणमन है; शक्तिकी वजहसे अपना परिणमन है (और) उतना ही आत्मा है, उतना ही शक्तिवान आत्मा है ऐसा अज्ञानी मानता है। समझमें आया ?

शुभाशुभभाव या देह आदिकी शक्ति या गुणोंके गुणकी शक्ति है न ! परमाणुमें अचानकसे रंग बदलता है–हरे रंगसे सफेद हो जाये, कभी अंदरमें ठंडा हो जाय, कभी गरम हो जाय ऐसी शक्तियाँ पुद्गलमें है न ! उन शक्तियोंको जानती ज्ञानपर्याय...आहाहा...! उन शक्तियोंके आकारसे ज्ञानपर्याय परिणमित होवे ऐसा पर्यायका धर्म है, लेकिन उतना पर्याय जितना ही आत्मा है ऐसा जो मानता है वह, आत्मा उनसे भिन्न अनंत गुणोंकी शक्ति चैतन्य आनंदकंद है, ज्ञानका सागर है, ऐसी शक्तियोंको मानता नहीं। समझमें आया ?

देखो, बहुत ऐसे होते हैं (कि) पर पदार्थकी शक्तिको (देखे तो) ओहोहो...! ओहोहो...! (हो जाता है)। विमान जैसे एक मिनिटमें यहाँसे वहाँ चला जाता है, एक घंटेमें पांचसो माईल दूर चला जाता है, वह सब पुद्गलकी शक्तियाँ और किसी जीवकी बहारकी पर्यायमें रागादि विकार आदिकी शक्ति–ऐसी शक्तियोंको जानती ज्ञानकी पर्याय वर्तमानमें उस शक्तिके आकारसे परिणमित होवे ऐसा पर्याय-धर्म है; लेकिन उतना पर शक्तिके आधारसे परिणमित हुआ उतना ही आत्माको माननेवाला, अपनी महान चैतन्य आनंद शक्ति है उस दृष्टिको भूल जाता है। समझमें आया ? देखो, आजकल लोगोंको परकी शक्तिका माहात्म्य बहुत आता है।

सायन्सका गुरु ! वह तो धूलकी शक्ति है, उसमें जैसा होना था वैसा होता है। इसने ऐसा किया, ऐसा किया ! देखो, कितनी शक्तियोंका विकास किया ! ज्ञानकी पर्यायमें वर्तमानमें पर द्रव्यकी शक्तिको जाननेरूप ज्ञान परिणमित होता है, लेकिन उतना ही आत्मा है ? उतना ही आत्मा है ? उस शक्तिके परिणमनके अलावा भी स्वयं त्रिकाल अनंत ज्ञानकी

मूर्ति चिदानंद है। उसरूपसे परिणमित होकर अपना ज्ञान स्वरूप जानना चाहिये। उसके बदले इतना परिणमा वही मैं आत्मा हूँ, वही आत्मा है और परकी शक्तिसे स्वयंको मानता है, अपनी शक्तिसे स्वयंको मानता नहीं है। समझमें आया ? भाई ! क्या कहा ? देखो, यह हड्डीकी शक्ति, दवाकी शक्ति, फलाणी शक्ति सबको मानते हो कि नहीं ? पुद्गलकी शक्ति आदि... हाँ, इन्जेक्शनकी शक्ति... ऐसी शक्ति कि ऐसे तुरंत (ऐसा हो जाय) ऐसी परमें परकी शक्ति है। उस शक्तिका वर्तमान ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञेयाकाररूप परिणमन होता है, उतना ही आत्मा है ऐसा माननेवाला मूढ, अपनी अनंत ज्ञान शक्तिके भंडारमें अनंत ज्ञान और आनंदकी शक्ति पड़ी है, उस शक्तिकी श्रद्धा नहीं करता। समझमें आया ? भाई ! 'मुंबई'में तो बहुत (बड़े बड़े मकान बनते हैं न) ! बाईस बाईस मंझील ! आहाहा...!

अज्ञानीको ऐसा लगता है कि आहाहा...! इन्सानकी कितनी शक्ति ! (लेकिन उसमें) इन्सानकी क्या शक्ति ? शक्ति तो सब (उस परमाणुकी है) जो उनके स्वयंकी वजहसे वहाँ इकठ्ठा हो गये। आहाहा...! क्या शक्ति ! बड़े बड़े मशीनसे बड़े बड़े मकान उठाते हैं, तीस-चालीस मंजिला लकड़ीके मकान ! मशीनसे एक जगहसे दूसरी जगह ले जाते हैं। उसकी शक्तिका ज्ञानमें परिणमन होनेसे ऐसा मानते हैं कि आहाहा...! इतना ही मैं हूँ ! परवस्तुमें पूरा अर्पण हो जाता है ! भाई !

श्रोता :— उसमें शक्ति नहीं है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— उसकी शक्ति उसमें रही लेकिन उसकी शक्तिका यहाँ ज्ञान हुआ उतना ही आत्मा है ? इतनी शक्तिवाला ही आत्मा है ? उसमें तो अनंत-अनंतगुणी शक्तिका गुण और उसकी शक्तिको जाननेरूप (परिणमित हुई) पर्याय, इतनी पर्यायको भी वह जानता नहीं। समझमें आया ? एक समयमें भगवान अनंत ज्ञानकी मूर्ति, अनंत ज्ञानका स्वरूप ऐसी अनंत शक्तियोंका सत्त्व, उस शक्तिके आश्रयसे जो ज्ञान होता है, उस शक्तिके अनलंबनसे हुई ज्ञानकी पर्याय तो आत्माकी है। वह तो अभेद होकर स्वयंको माना कि मैं ऐसा पूर्ण आत्मा हूँ। समझमें आया ? लेकिन उस पर्यायमें परकी शक्तिका ज्ञान होनेसे उसे शक्तिके ज्ञेयाकाररूप परिणमनका माहात्म्य आ गया कि आहाहा...! समझमें आया ? उस परशक्तिकी वजहसे मैं हूँ ऐसा उसने जाना।

दूसरा अर्थ यह किया कि उस शक्तिरूप ज्ञानका परिणमन यहाँ हुआ उतना (आत्मा) माना। उसका अर्थ यह हुआ कि उसने पर्यायको माना, द्रव्यको नहीं माना। एक समयमें जाननेकी शक्तिको जानी, मानी (और) वह भी सिर्फ परशक्तिको जाननेवाली पर्यायको (जाना, माना), स्वशक्तिको जाननेवाली पर्याय रह गई। समझमें आया ? आहाहा...!

एक समयमें भगवान अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, आनंदका कंद महा अनंत गुणका महा स्वरूप है। अनंत शक्ति, एक ज्ञानगुणमें ! एक आत्माके एक ज्ञानगुणमें अनंती शक्तियाँ और अनंती पर्यायें ! क्या कहा ? ज्ञानगुण एक, उसमें अनंत शक्तियाँ और एक एक गुणकी अनंत पर्यायें ! इतने गुणके आश्रयसे जो पर्याय होनी चाहिये वह तो आत्माकी पर्याय ही है और वह पर्याय द्रव्यके साथ अभेद हुई इसलिए उसने पर्याय और द्रव्य दोनोंको माना ! यह तो एक समयकी पर्याय कि जो निमित्तके अवलंबनसे प्रगट हुई–ऐसा उसे लगा। देखो, यह शास्त्र पढ़ा, यह पढ़ा, यह पढ़ा, इसका लक्ष बहुत रखा और उससे यह ज्ञानकी पर्याय प्रगटी ऐसा माना और उपरसे उसके आकारसे ज्ञानकी पर्यायका परिणमन हुआ उतना मैं हूँ ऐसा माना, वह मूढ मिथ्यादृष्टि एकांतवादी है, उसे स्वशक्तिका माहात्म्य मालूम नहीं है। समझमें आया कि नहीं ?

एकदम रंग पीला हो जाय, एकदम हरा हो जाय...आहाहा...! कैसी शक्ति है ! उसे देखकर 'ओहो...!' हो जाता है। वह तो ज्ञानकी एक समयकी पर्याय, एक समयकी वीर्यकी पर्याय अपने आश्रयसे प्रगट हुई है, उसमें उन परशक्तिका ज्ञान स्वतः हो जाता है। उसके बदले परशक्तिके ज्ञानकी ओर झुका हुआ (अज्ञानी) उसने उस पर्यायको उधर ही झुका दी। उस ज्ञेयके आकारसे ज्ञान हुआ इसलिए उससे हुआ और उस आकारसे हुआ उतना ही मैं हूँ (ऐसा अज्ञानी मानता है)। समझमें आया ? आहाहा...! सूक्ष्म है, भाई !

दो अस्ति तत्त्व ! अंतरमें पूर्ण शक्तिका भंडार है। अनंत...अनंत शक्ति एक एक गुणमें ऐसी अनंती शक्तियाँ ! आत्मद्रव्यमें अनंत गुण अर्थात् शक्ति है। उस एक शक्तिका अनंत सामर्थ्य ! उस अनंत सामर्थ्यकी अनंत पर्यायें ! उसमें एक ही पर्याय जब परावलंबी आकृतिकी शक्तिरूपसे जानी, उतना ही स्वयंको माना वह पर्यायमूढ़ है। परभावके परिणमनके ज्ञानमात्र भावरूपवाला हूँ ऐसा (अज्ञानी) मानता है; लेकिन मैं एक अनंत गुण–शक्तिवान महान (पदार्थ हूँ) उसका लक्ष (नहीं है), वहाँ दृष्टिमें द्रव्यकी शक्तियोंकी अनंत अमाप गुणकी प्रतीतिका अभाव है। सिर्फ उतनी ही पर्यायकी प्रतीतिका वहाँ भाव वर्त रहा है, उसे एकांतपक्षी मूढ़ मिथ्यादृष्टि कहते हैं। समझमें आया ? आहाहा...! भाई !

'समस्त ज्ञेय वस्तुओंके जितने है शक्तिरूप स्वभाव उनको जानता है ज्ञान। जानता हुआ उनकी आकृतिरूप परिणमता है, इसलिए ज्ञेयकी शक्तिकी आकृतिरूप हैं ज्ञानकी पर्याय...ज्ञेयकी शक्तिरूपसे परिणमित हुई है ज्ञानकी पर्याय, बस ! **'उनसे ज्ञानवस्तुकी सत्ता मानता है...'** उनसे ज्ञानकी अस्ति मानता है। समझमें आया ?

ज्ञान तो त्रिकाल अनंत केवलज्ञानका कंद है। समझमें आया ? जैसे जैसे निमित्तोंमें

लक्ष जाता है, वैसी वैसी ज्ञानकी पर्याय प्रगट होती है। इसलिए वो पर्याय निमित्तके लक्षसे आई है, (निमित्तमेंसे) आई है ऐसा माननेवाला मूढ़ है। उसे ज्ञानकी शक्तिके अनंतपनेकी प्रतीति नहीं हैं। समझमें आया ? आहाहा...!

मेरी ज्ञान-पर्याय जितनी परके लक्षवाली होती है–बहुतोंका लक्ष करे तो ज्ञान-पर्याय ज्यादा प्रगट हो। (ऐसा नहीं है)। ये बच्चे मुसाफरी करते है न ! बहुत देशोंमें घुमते हैं तो बुद्धि (ज्ञान)का विकास होता है, चारों ओर जाये तो बुद्धिका विकास ज्यादा हो ! देश देशके रंग, देश देशके इन्सान, देश देशके कपड़े, देश देशकी बोली जाने तो विचिक्षण हो। कहते हैं कि मूढ़ है। आहाहा...! कुछ (विकास) नहीं होता। वह तो ज्ञानकी उस समय उस शक्तिरूप परिणमन करनेकी ताकत है, उनकी (परकी) वजहसे परिणमित नहीं हुई। यह तो पर है इसलिए ज्ञान-पर्याय हुई (ऐसा माननेवाला) मूढ़ है। उसकी बात तो यहाँ ली ही नहीं है। क्या कहा ? वह घुमा इसलिए ज्ञानकी पर्याय हुई वह बात तो यहाँ ली ही नहीं है। यहाँ तो उस आकृति अनुसार पर्यायमें ज्ञान हुआ, पर आकृतिकी शक्ति अनुसार ज्ञानपर्याय हुई उतना ही आत्मा, ऐसा माननेवाला वस्तुको मानता नहीं है। समझमें आया ? आहाहा...!

देखो, ये बहुत सारे रंग होते हैं न ! क्या कहते हैं ? बहनोंकी साड़ीमें बहुत डीझाईन होती है न ! आहाहा...! कितनी शक्ति ! डिझाईन (देखो तो) आहाहा...! ऐसा रंग किसने लिया होगा ? ऐसा परशक्तिका महात्म्य आता है। समझमें आया ? आहाहा...! एक एकमें फूलकी डीझाईन करते हैं, हरे पत्ते, उपर हरा और नीचे पीला....पत्ते, फूलझाड़...आहाहा...! ये तो गजबकी शक्ति है ! लेकिन क्या है ? भाई ! हाँ, बांधणी। यह तो फूलकी बात कर रहा हूँ, बांधणी तो ऐसी कहे...वनस्पतिके फूल ऐसे होते हैं कि उपर पीला रंग और नीचे हरा रंग...एक ही पत्तेमें दो रंग...समझमें आया ? उसकी शक्तिको देखकर 'आहा...!' कहता है, उसे विस्मय हो जाता है और उसके आकारसे परिणमित हुआ उतना ही आत्मा वहाँ समा जाता है। उसे द्रव्यशक्तिका लक्ष और दृष्टि रहती नहीं ऐसा कहते हैं। समझमें आया ? भाई ! आपके भी सब होगा न ! मोटरके क्या कहते हैं ? मोटरके पार्ट्स, बहुत हुशीयार ! समझमें आया ?

श्रोता :—उसकी किंमत याद रखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :—हाँ, उसकी किंमत याद रखता है और ये याद रखता है कि ऐसे पार्ट्स यहाँ लगते हैं और यहाँ लगते हैं।

श्रोता :—काममें आया न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—क्या काममें आये ? वह तो वहाँ जो पर्याय होनेवाली थी वह हुई है, वहाँ उसकी (परकी) वजहसे हुई है ऐसा नहीं है। उसकी शक्तिकी वजहसे यह सब शक्तियाँ(पर्याय) होती है, एक द्रव्यकी शक्ति दूसरे द्रव्यकी शक्ति देता है ऐसा माननेवाला, द्रव्यकी पूर्ण शक्ति स्वतंत्र है उसे मानता नहीं है ऐसा कहते हैं। समझमें आया ?

'उनसे ज्ञानवस्तुकी सत्ता मानता है; उनसे भिन्न है अपनी शक्तिकी सत्तामात्र उसे नहीं मानता...' देखो, पाँचवीं लाईन है। भगवान आत्मा ! यहाँ तो ज्ञानप्रधान शैलीसे बात करी है। उसे परमें जो कोई शक्तिका ज्ञान होता है तो उस शक्तिका ज्ञान होनेसे उसे उसमें मजा आती है। आहाहा...! चेन लगता है, मजा आती है ! क्या कहते हैं ? समझमें आया ? उसमें आनंद आता है ! बहुत आनंद ! उस शक्तिको देखनेसे उस शक्तिकी वजहसे मेरेमें आनंद आया, परकी शक्तिको देखकर मुझे आनंद आया ऐसा माननेवाला, मेरे आत्मामें आनंद भरा है ऐसा मानता नहीं है। अपना आनंद अंतरमें पड़ा है। यह सब परका आनंद आया, यह बराबर है या नहीं ? देखो, भाई मना कर रहे हैं। सुबह कह रहे थे न कि शरीरसे सुखी तो सुखी ! कहते हैं कि शरीरकी शक्तिकी वजहसे मुझे सुख हुआ ऐसा माननेवाला मूढ़ है। उसे आत्मामें अतीन्द्रिय आनंदकी शक्तिकी खबर नहीं है। ऐसा मानते हैं। मूढमें सब बड़े मूढ़ है। मूढमें भी छोटे-बड़े अपनी पर्याय अनुसार होते हैं न ! कोई ज्यादा मूढ़ हो तो कोई थोड़ा मूढ हो ! समझमें आया ?

परकी शक्तिका सत्त्व देखकर, उस शक्तिसे मेरे ज्ञानमें शक्ति आई ऐसा माननेवाला परको ही अपना मानता है और उसके आकारसे हुआ ज्ञान उतनी ही ज्ञानपर्याय—ऐसा माननेवाला भी एक अंशको ही पूरा तत्त्व मानता है। पूरा शक्तिका पिंड भगवान है उसे श्रद्धामें, ज्ञानमें लेता नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि हो जाता है, उसमें मिथ्याबुद्धि हो जाता है। उसका नाम महान पाप-पाखंड है। समझमें आया ? दूसरेकी मददसे मेरेमें शक्ति आई ऐसा माननेवाला भी अपनी आत्मशक्तिको मानता नहीं। भाई !

लड्डु खानेसे शरीरमें शक्ति आती है न ! और उस शक्तिसे आत्माका बल कितना बढ़ता है कि नहीं। अच्छेसे खाना खाये, केसरवाला दूध ले, बदामवाला दूध ले.... समझमें आया ? मूसलीपाक, सालमपाक ! उसकी वजहसे आत्मामें कुछ ताकात आती होगी या नहीं ? खाता कौन है ? वह तो कहते हैं कि ज्ञानकी पर्यायमें उन शक्तियोंका रूप जाननेमें आता है, फिर भी अज्ञानी ऐसा मानता है कि इस शक्तिकी वजहसे मेरेमें शक्ति आई ! उसकी वजहसे मेरेमें बोलनेकी शक्ति आई, नहीं तो मेरेमें शक्ति नहीं थी।

परकी शक्तिके कारण मेरेमें शक्ति आती है ऐसा माननेवालेको अपनी शक्तिकी दृष्टि नहीं है। समझमें आया ? एक समयकी पर्यायकी शक्ति भी अपनेसे है। ऐसा न मानकरके परसे मेरेमें शक्ति आयी (ऐसा माननेवाला अज्ञानी है)। बोलनेकी जरा भी शक्ति न हो... ऐसा होता होगा कि नहीं कि ब्राह्मीसे ज्ञानमें तीव्रता होती होगी या नहीं ? क्या कहते हैं ? ब्राह्मी कहते हैं न ! वह तेल सिरमें लगानेसे दिमाग बढ़ता है। क्या ब्राह्मी तेलकी वजहसे बुद्धि बढ़ती होगी ? समझमें आया ?

श्रोता :—होती है न !

पूज्य गुरुदेवश्री :—बिलकुल नहीं होती। वह तो उसकी पर्यायका उस प्रकारका क्षयोपशम होना हो तो वह आनेसे होता है। ब्राह्मी तेलसे बुद्धिका विकास होता है, ऐसा माननेवनाला मूढ़ है ऐसा कहते हैं। उसको तो यहाँ लिया ही नहीं है। यहाँ तो ज्ञानकी पर्यायमें उस शक्तिका ज्ञान हुआ–पर पदार्थकी शक्तिका ज्ञान हुआ और स्व-शक्तिका ज्ञान पर्यायमें रह गया। शक्ति तो पूरी रह गई लेकिन उसका ज्ञान भी रह गया; और उस शक्तिके आदरसे परिणमित ज्ञान जितना ही आत्मा माने, वह भी मिथ्यादृष्टि असत्यबुद्धि–पापबुद्धि है। समझमें आया ? उसके तत्त्वका जितना सत्त्व है उतना न मानकर उसे परके कारण माना वह अपने भावकी शक्तिको नहीं जानता। समझमें आया ? आहाहा...! **'ऐसा है एकान्तवादी...'**

'उसके प्रति स्याद्वादी समाधान करता है कि ज्ञानमात्र जीववस्तु समस्त ज्ञेयशक्तिको जानती है...' ज्ञानमात्र भगवान आत्मा सब शक्तियोंके गुणोंको, उस पदार्थोंके गुणोंको, दूसरे पदार्थके गुणोंको ज्ञान-पर्याय जानती तो है...पर्यायमें गुणका ज्ञान नहीं आता कि इसका यह गुण है, इसका यह गुण है, इसका यह गुण है, इसका यह गुण है, इसका कड़वा है, इसका हरा हैं, इसका पीला है, यह खट्टा है, यह मीठा है। समझमें आया ? ऐसे ज्ञानकी पर्याय **'जीववस्तु समस्त ज्ञेयशक्तिको जानती है ऐसा सहज है, लेकिन अपनी ज्ञानशक्तिसे अस्तिरूप है।'** अपने ज्ञानगुणकी सत्तासे अस्तित्व है, परके कारण अस्तित्व नहीं है। समझमें आया ? ध्रुव स्वरूपमेंसे ज्ञानका परिणमन आता है और वह शक्तिका प्रवाह है ऐसा न मानकर ज्ञानका प्रवाह परशक्तिको जानने जितना है, उतना प्रवाह ही मानता है वह पर्यायको मानता है, वस्तुको मानता नहीं। समझमें आया ?

'पशुः नश्यति एव' यहाँ तक तो उसका उपोद्घात किया। ऐसा कहना है ऐसा इसमें कहा। **'पशुः' 'एकान्तवादी' 'नश्यति' 'वस्तुकी सत्ताको साधनेसे भ्रष्ट है....'**

भगवान आत्मा अनंत आनंद केवलज्ञानकी शक्तिका रस है। एक समयकी आकृतिमें अपना (अस्तित्व) माननेवालेकी दृष्टि शक्ति तरफ रहती नहीं। इसलिए श्रद्धामें शक्तिका नाश मानता है। समझमें आया ? मेरेमें अनंत ज्ञान, दर्शन, आनंदका स्वभाव है ऐसी शक्तिके उपर प्रतीति होनी चाहिये कि जो प्रतीति अज्ञानीको रहती नहीं, परकी प्रतीति रहती है। समझमें आया ?

उसमें आता है न, इन्द्रियको बहुत पुष्ट करुं तो ज्ञान होगा। नहीं आता ? क्या आता है ? 'मोक्षमार्ग प्रकाशक'में आता है न ! कि मेरा ज्ञान केसे विकसित होवे ? इन्द्रियोंकी खूब पुष्टि करुं, यह करुं तो मेरा ज्ञान विकसित होवे, मुझे विशेष जानने मिलेगा। उसकी वजहसे ज्ञान विकसित हो, ऐसा राग रहित होकर आत्माकी शक्तिकी प्रतीत करने पर जो ज्ञानका अंश खीलता है उस श्रुतज्ञानकी पर्यायमें भी सर्व लोकालोक जाननेकी ताकात है। समझमें आया ?

उस शक्तिवान भगवान आत्माको जाननेसे, उसकी शक्तिको स्पर्श करके जो ज्ञानका अंश आया (उस अंशमें), जितना केवली जानते हैं उतना-लोकालोकको जाननेकी शक्ति की ताकात है। परोक्ष (जानता है) लेकिन परको पृथक्‌रूपसे जाने ऐसी ताकत है। ऐसी ताकतको अज्ञानी मानता नहीं है। समझमें आया ? जितने निमित्तोंका संबंध हुआ, ज्यादा हुआ तो ज्ञानकी शक्ति ज्यादा विकसित हुई (ऐसा अज्ञानी मानता है), लेकिन एक ही द्रव्यकी महाशक्तिको एकबार स्पर्श करे तो वह महाशक्ति खीले ऐसी श्रद्धा और ज्ञानकी प्रतीत उसे नहीं है। समझमें आया ? एकान्तवादी पशु समान है, ऐसा कहते हैं।

'वस्तुकी सत्ता साधनेसे भ्रष्ट है...' भगवान आत्मा जिसकी शक्तिके सत्त्वकी प्रतीत करनेपर पर्यायमें सत्‌का बड़ा प्रवाह बहे ऐसी शक्तिकी सत्ताको नाश कर देता है। (अज्ञानी) परकी पर्यायबुद्धिमें ही अटका हुआ है। समझमें आया ? भाषा गंभीर ! **'निश्चयसे....'** ऐसा अज्ञानी मानता है, ऐसा हो जाता है ऐसा कहते हैं। **'कैसा है एकान्तवादी ? बहिः वस्तुषु नित्यं विश्रान्तः 'समस्त ज्ञेय वस्तुकी अनेक शक्तिकी आकृतिरूप परिणमि है ज्ञानपर्याय...'** देखा, पाठ तो **'बहिः वस्तुषु'** है। भाई ! वह बहिर् वस्तु हो गई। ज्ञानकी पर्याय परद्रव्यके गुणोंको जाननेरूप परिणमी उस दशाको बहिर् वस्तु कहनेमें आता है। आहाहा...! समझमें आया ? भाषा ही ऐसी करी है। देखो, **'बहिः वस्तुषु'** अर्थात् आत्माके अलावा समस्त ज्ञेयवस्तुकी अनेक शक्ति अर्थात् गुण, उसकी आकृतिरूप परिणमी, जैसा ज्ञेय है उसरूप जाननेकी पर्याय परिणमि ऐसी पर्याय... **'उसमें' 'नित्यं विश्रान्तः' 'सदायविश्रान्त है अर्थात् पर्यायमात्रको जानती है ज्ञानवस्तु}ऐसा निश्चय जिसका ऐसी है।'**

भाषा तो ऐसी है कि परवस्तुको अपनी सत्ता मानता है वह बात तो यहाँ की ही नहीं है। लेकिन परवस्तुके गुणोंकी जैसी शक्ति और स्वभाव है उस प्रकारसे परिणत ज्ञान-पर्याय वह 'बहिः' है। वह 'बहिः' ज्ञानकी पर्याय भी 'बहिः' है। समझमें आया ? उसे ही संपूर्ण तत्त्व मानता है वह जीव मिथ्यादृष्टि है। ओहो...! भाई ! यह सब मुंबईमें कहाँ ? आत्मा है, लेकिन वहाँ मुंबईमें फँस गये हैं। समझमें आया ? आहाहा...! कैसी भाषा है ! 'बहिः वस्तुषु' कोई कहता है कि भाई ! बहिर् वस्तुकी शक्तिमें अपनी शक्ति मानी है; वह तो ठीक लेकिन यहाँ तो बहिर् वस्तुकी शक्तिके गुण-गुणकी शक्तिरूप जो ज्ञान परिणमित करता है, सिर्फ बहिराकार शक्तिरूप परिणमित ज्ञानको ही बाह्यवस्तु कहते हैं। समझमें आया ?

अंतरमें चिदानंद भगवान ज्ञान और आनंदका कंद है उसके आकारसे, उसके लक्षसे-ध्येयरूप जो ज्ञान परिणमित हुआ है उसे स्ववस्तु कहते हैं। आहाहा...! समझमें आया ? अभी तो यहाँ बाहरके निमित्तरूप साधन जितने ज्यादा हो उतनी मेरी शक्ति प्रगट हो (ऐसा अज्ञानी मानता है)। वज्रवृषभनाराच संहनन हो तो केवलज्ञान प्रगट हो ! अब ऐसा आया ! समझमें आया ? वज्रवृषभनाराच संहनन हो, वह शक्ति मजबूत हो (तो केवलज्ञान प्रगट हो ऐसा मानता है)। पक्षीको भी उड़ना हो तो मूंगके ढेर पर बैठा हुआ उड़ सकेगा क्या ? नीचे अगर मजबूत जमीन हो तो उड़ पायेगा। वह उड़नेकी शक्ति मजबूत (जमीन)की वजहसे आयी है ऐसा अज्ञानी मानता है। ऐसे ही आत्माकी ज्ञानकी पर्याय प्रगट होती है वह संहननकी मजबूतीके कारण प्रगट होती है। बाहुबलीजी बारह-बारह महिने तक ध्यानमें खडे रहे। शरीरकी मजबूती हो तो ऐसी ध्यानकी पर्याय प्रगट हो सके ! वह अपनी पर्यायकी ताकात नहीं है। शरीरकी वजहसे क्या है ? वह तो सब व्यवहारकी भाषा बोलनेमें आती है। समझमें आया ? शरीर मजबूत हो तो केवलज्ञान हो वह तो झूठ है, वह तो मिथ्यादृष्टि है; लेकिन शरीरकी मजबूतीके आकाररूप ज्ञान परिणमा उतना ही आत्माको माने तो वह मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है। भाई ! आहाहा...!

कहते हैं कि उसके कारण तो शक्ति नहीं है लेकिन उस शक्तिरूपसे उसमें जो गुण है, परमाणुमें, शक्करमें, गुड़में यह सब शक्तियाँ हैं न अलग प्रकारकी ! समझमें आता है कि नहीं ? आटेमें, दवाईसे, कोई कोई दवाईकी कैसी कैसी शक्ति होती है ! इस शक्तिसे ऐसा हो गया, इस इन्जेक्शनसे तुरंत खून धुमने लगा.... ऐसी शक्तियाँ उसमें स्वयंसे है। ग्लुकोझके कारण यहाँ शक्ति आयी है ऐसा तो नहीं है लेकिन उस शक्तिका ज्ञान जिस पर्यायमें हुआ कि यह शक्ति.... उस आकारसे जो ज्ञान परिणमित हुआ उतनी (पर्यायके)

उपर जिसका लक्ष गया–ध्येय गया है वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है ऐसा कहते हैं। तेरी पर्यायकी मूढ़ता तेरे कारण है। परके कारण नहीं।

कहते हैं न.... अभी आया था न....शराब पीनेसे ऐसा होता है। ऐसा लिखते हैं कि शराब पीनेसे ऐसा होता है। अरे भगवन् ! ऐसी बात तो कहीं (दूर) रह गई, बापू ! परद्रव्य ज्ञानकी पर्यायको छूता ही नहीं है। समझमें आया ? उस समय अपने ज्ञानकी पर्यायकी मूढ़ होनेकी योग्यतासे ही हुआ है, शराबके कारण नहीं, मादक द्रव्यके कारण नहीं। देखो, कोई बहुत पीड़ित–दुःखी हो तो उसे केफ़ देते हैं तो ऐसे पड़ा रहता है। उसकी पर्यायमें मूढ़ होनेकी ही लायकात है, परद्रव्यके कारण नहीं। आहाहा...! गंभीर बात है, भाई ! समझमें आया ? (परमाणुकी) शक्ति तो देखो ! पहले आकाशमें जाते हैं और फिर गुब्बारा लेकर नीचे उतरते है। कोई ऐसी बाते कर रहा था। वह शक्ति तो परमाणुकी पर्याय है। उस शक्तिके कारण मेरेमें शक्ति आयी। मेरे ज्ञानमें विचिक्षणता आयी (–ऐसा माननेवाला) मूढ़ है। समझमें आया ?

श्रोता :—सब डिग्री मिलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :—वही तो बता रहे है न ! यह क्या कह रहे हैं ? सोनोग्राफी की थी न ! लेकिन वह तो उसकी शक्ति थी, उसकी वजहसे ज्ञान हुआ ऐसा नहीं है और तेरी ज्ञान-पर्यायने उस शक्तिका ज्ञान किया उतना तू नहीं है। संपूर्ण तीनकाल, तीनलोकको जाने ऐसी एक समयकी ताकात है और संपूर्ण द्रव्यकी तो उससे अनंती ताकत है। एक समयकी पर्याय तीनकाल, तीनलोकको परका लक्ष किये बिना जाने ऐसी उसकी ताकत है। ऐसे आत्मद्रव्यको, उसकी शक्तिको और उस शक्ति तरफ झुकी हुई पर्यायकी इतनी ताकत है उसे अज्ञानी मानता नहीं है। समझमें आया ?

बादाम-पिस्ताको नोकर्म कहा है न ! ब्रह्मचर्य हो तो बादाम-पिस्ता खाता है...नोकर्म कहा है। अरे ! मतिज्ञानमें नोकर्म कहा है–कुछ नहीं लिखा। वही कहते हैं कि जब यहाँ (कार्य) हुआ तब कौन निमित्त था उसका ज्ञान कराया है। समझमें आया ? विद्यार्थी पढ़ते हैं तब बनाते हैं न–केसरका दूध, बादाम आदि डालकर पीलाते हैं, जिससे दिमाग ठंडा रहता है और विद्या आती है। दिमाग कोई बेचता है जो खरीद शके ? वह तो बात नहीं करी यहाँ, वह तो महामूढ़ जीव है। परद्रव्यकी पर्यायकी शक्तिसे मेरी पर्याय प्रगट हुई, वह तो महामूढ़ है। वह तो दो (द्रव्यों)के साथ एकत्व किया है। वह तो दो द्रव्योंके साथ एकत्वबुद्धि है, उसकी यहाँ बात नहीं की। यहाँ तो कहा है कि उसके जीवोंके

(आकार)रूप जो ज्ञान-पर्यायका परिणमन हुआ कि इसमें ऐसा गुण है, ऐसा गुण है– उसरूप परिणमन हुआ उतनी पर्यायको भी आत्मा माने वह जीव मूढ़ और अज्ञानी है ऐसा कहनेमें आया है।

अब यह वकिलातका याद आ गया। कहते हैं कि हुशियार हो तो यह वकिलात पढ़ सके। वह ज्ञानकला वकिलातकी किताबोंसे प्रगट हुई होगी या नहीं ? पढ़े बिना हो ? आहाहा...! कहते हैं कि वह सब शक्ति यहाँसे आयी उसकी तो बात ही नहीं, लेकिन उस ज्ञेयकी शक्तिके आधारसे यहाँ ज्ञान हुआ कि पुस्तकमें यह नियम है, इसका यह नियम है, इसका यह है ऐसा यहाँ ज्ञान हुआ, तो वह ज्ञातापनेका परिणमन परज्ञेयाकारकी शक्तिरूपसे ज्ञानका परिणमन हुआ है, स्वज्ञानकी शक्तिरूपसे परिणमन नहीं हुआ। उसे आत्मा मानना–उसे जीव माननेवालेको मिथ्यादृष्टि अज्ञानी कहते हैं। आहाहा...! गंभीर बात, भाई !

श्रोता :—भिन्न करनेके लिए इतनी सूक्ष्मतासे विचारना पडे ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—इतना ज्यादा कहाँ आया ? एक शक्तिका पिंड पूरा द्रव्य है और उसके अवलंबनसे हुई पर्यायकी शक्ति उसके स्वयंके कारण है। बस, इतनीसी बात है। भिन्न-भिन्न दृष्टांत देनेसे उसे समझमें आता है कि कहना क्या चाहते हैं ! समझमें आया ? भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न पदार्थकी शक्तिका ज्ञान हुआ, शक्ति इसके कारण है–उस शक्तिके कारण प्रगट हुई (ऐसा माने) वह तो दो द्रव्योंकी एकता–वह तो दो पदार्थकी एकताबुद्धि हुई। वह तो मूढ़ जीव है। आहाहा...! समझमें आया ? बादामका दूध पीकरके मेरा ज्ञान खील गया ! यह तो मूढ़ है। उसकी बात तो यहाँ करते ही नहीं है ऐसा कहते हैं।

श्रोता :—आपका उपदेश सुनकर ज्ञान विकसित हो जाय न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—वह सुनकर (ज्ञानका) विकास हो जाये वह बात भी गलत है। उस शब्दके आकारसे ज्ञान परिणमित हुआ है वह स्वयंकी योग्यतासे। उस शब्दके आकारसे परिणमन हुआ है वह ज्ञान-पर्याय स्वयंसे हुई है, उसके कारणसे हुई है वह बात अज्ञान है। ज्ञानशक्तिका तत्त्व संपूर्ण है। उसमें उसकी प्रतीत और उसकी दृष्टिमेंसे ज्ञान आना चाहिये। उसे ज्ञान और आत्मा कहनेमें आता है। आहाहा...! समझमें आया ? बहुत सूक्ष्म, भाई !

ऐसी बातें करनी और फिर भी ऐसी प्रतिमा और मंदिर बनाते हैं, कोई मेल नहीं

है ऐसा कोई कहता था। भाई ! वो तो उसके अपने समयमें शुभराग होता है, लक्ष होता है वह ज्ञानपर्याय जाने, लेकिन उतना पर्याय ही आत्मा है, ऐसा नहीं है। उसका लक्ष सिर्फ उसके उपर नहीं है। चैतन्यमूर्ति ज्ञाताके लक्षसे परिणमित हुआ ज्ञान उसके शुभरागको जाने और पर जो वस्तु है उसको जाननेरूप परिणमित होवे ऐसा पर्यायका धर्म है। भाई ! सूक्ष्म बात ! और वह ज्ञानकी पर्याय स्वलक्षसे स्वयंसे परिणमित हुई उसमें शुभरागका ज्ञान हुआ और जो निमित्तका ज्ञान हुआ वह उस समयकी पर्यायका धर्म है ऐसा जाने नहीं तो उसे पर्यायकी ताकतकी भी खबर नहीं। निमित्तको ही हटाना चाहे कि यह नहीं...यह नहीं...यह नहीं... लेकिन उस समय वही निमित्त और वही रागका ज्ञान वहाँ परिणमित होना चाहिये। परके आकारसे ज्ञान होता है लेकिन स्व आकारके लक्षमें परका ज्ञान हो ऐसी पर्याय सहितके त्रिकाली आत्माको आत्मा कहते हैं। आहाहा...! समझमें आया ? व्यवहारका ज्ञान हुआ कहा जाता है और स्वके आश्रयसे हुआ वह निश्चय और व्यवहार दोनों इकठ्ठे हुये। आहाहा...! बहुत सूक्ष्म बात, भाई !

'बहिः वस्तु' 'समस्त ज्ञेय वस्तुकी अनेक शक्ति' परमें भी अनंत गुण है न ! उसकी आकृति अर्थात् उसके भावरूपसे जैसा उसका स्वभाव है ऐसा ही ज्ञान यहाँ अपने कारणसे ही ज्ञान-पर्याय परिणमित हो **'उसमें सदा विश्रांत है...'** उसमें स्थिर हो गया। आहाहा...! बस...बस... ऐसी ज्ञान-पर्यायमें जिसका विश्राम अर्थात् दृष्टि हुई है, वहीं जिसका आरामस्थान है, वहीं जो समाप्त होता है, वही जिसकी मूर्ति मानी है वह मिथ्यादृष्टि है। **'ज्ञानवस्तु—ऐसा है निश्चय जिसका ऐसा है।'** वह पूर्ण आत्मा है ऐसा माननेवाला मूढ़ और अज्ञानी है। आहाहा...!

अपना अनंत शक्ति-स्वभाव, एक एक गुणका स्वभाव उसे वह मानता नहीं। इतनी शक्तियोंसे हुई पर्याय या तो उसके आकारसे परिणमित हुआ ज्ञान, ऐसी वस्तुको माने वह ज्ञानपदार्थको-त्रिकाल पदार्थ मानता नहीं है। समझमें आया ? फरक कितना पड़ता है ? बहिःलक्ष और स्वलक्ष-इतना ही फर्क पड़ता है। अरे...! लोगोंने तकरार कहाँ की है ! अभी तो बाह्यमें ऐसा होता है और धर्ममें ऐसा होता है...शुभाशुभभावसे तो धर्म नहीं लेकिन शुभभावका, यह शुभ है ऐसा ज्ञान परिणमित हुआ उतना ही वह धर्म नहीं है। जिसमें शक्ति सत्त्व पड़ा है, खदान-महा अनंत गुणकी, शक्तिकी खदान भगवान, उसमें दृष्टि करनेपर जो पर्याय परिणमित हो उस पर्यायको धर्म कहनेमें आता है। आहाहा...! समझमें आया ? अब वाद-विवादसे इसका पार आये ऐसा नहीं है। कितना लिखा है और कितनी बाते ! **'किस कारणसे ऐसा है ?'** अब कहते हैं कि किस कारणसे अज्ञानी ऐसा मान रहा है ? उसका

कारण बताते है : **'परभावभावकलनात्'** 'ज्ञेयकी शक्तिकी आकृतिरूप है ज्ञानकी पर्याय' **'परभावभावकलनात्'**की व्याख्या भी यही। व्याख्या भी देखो ! भाई ! टीकाकारने गजबकी टीका की है। कहते हैं कि **'परभावभावकलनात्'** यह ज्ञेय शक्तिके गुण उसके जो भाव उसकी आकृतिरूप। समझमें आया ? ज्ञानकी पर्याय। उसका नाम **'परभावभावकलनात्'** **'धारण किया है...'** उसने यह निश्चय धारण किया है।

'ज्ञानवस्तुका अस्तिपना}ऐसे झुठे अभिप्रायके कारण' आहाहा...! कुछ समझमें आया ? **'परभावभावकलनात्'** उसकी परिभाषा यह कि इस जगतमें जितने अनंत पदार्थके गुण-भाव है ऐसे **'परभावभावकलनात्'** उसकी वर्तमान ज्ञान-पर्यायमें उसके आकारसे ज्ञानका परिणमन हुआ वह पर्याय परभाव, वह **'भावकलनात्'** **'परभाव'** बस इतना। अब उसमें **'भावकलनात्'** **'अवधारण किया है ज्ञानवस्तु'** मेरा आत्मा इतना है ऐसा जिसने माना है वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझमें आया ? फिरसे, **'परभाव'** इतना बस। **'परभाव'**की परिभाषा क्या है ?—कि जो अनंत पदार्थ है उसके गुण-शक्ति है उसका जो ज्ञानका परिणमन हुआ उसका नाम **'परभाव'** भाई ! ओहोहो...! **'परभाव'** किसे कहना ?-कि जो अनंत...अनंत गुणरूप ज्ञेय है उसकी शक्तिको जाननेरूप ज्ञानकी पर्याय परिणमित हुई उस ज्ञानकी पर्यायको परभाव कहनेमें आता है। आहाहा...! आहाहा...! उसने जो मूल रखा है उसकी बात है। समझमें आया ?

स्वभाव तो अनंत गुणोंका पिंड प्रभु है। ऐसा जो स्वभाव उसकी तो उसने नास्ति करी। एक समयकी दशामें जो अनंत ज्ञेयोंके गुणरूपसे जाननेरूप परिणमित हुआ। उसके गुणके कारण परिणमित हुआ ऐसा तो नहीं। समझमें आया ? परभावकी शक्तिका कारण-उस गुणोंके कारण यह पर्याय हुई ऐसा तो नहीं, लेकिन उस परभावकी शक्तिका ज्ञेयपना...यहाँ ज्ञानकी पर्यायमें उतना आकृतिरूप ज्ञानका परिणमन हुआ उसे **'परभाव'** कहनेमें आता है। वहाँ कभी सुना नहीं होगा। पुस्तक आया है कि नहीं वहाँ ? ऐसे सूक्ष्म अर्थ है इसमें। आहाहा...! भाई !

'परभाव'की यह परिभाषा है। भगवान आत्मा अनंत...अनंत...स्वभावका पिंड वह स्वभाव और एक समयमें एक ही पर्यायमें अनंत शक्तिपनेके कारण परिणमन नही हुआ; लेकिन ज्ञानका पर्याय परज्ञेयको जाननेरूप परिणमित हुआ, उतना जो परकारनपने परिणमा ऐसी ज्ञान-पर्यायको परभाव कहनेमें आता है। ऐसे परभावमें मेरा स्वभाव है ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा...! यहाँ तो अभी यह मेरे...यह मेरे...यह मेरे... पत्नी मेरी, बेटा मेरा, धूल मेरी, भाई ! आहाहा...! कहते हैं कि प्रभु ! तेरा भाव तो अनंत है न !

अनंत...अनंत...भावका पिंड प्रभु ऐसा स्वभाव है उसे न मानकर एक समयकी पर्यायमें ऐसी अनंत शक्तियोंको जाननेरूप (ज्ञानपर्याय) परिणमित हुई वह तो परभाव है, परभाव है, वह स्वभाव नहीं है। भाई ! यह शास्त्रका आधार देकर वह लोग कहते हैं कि 'राजमलजी' झूठे हैं, उनको समझ नहीं है। अरे भाई ! सुनना !

बापू ! यह वस्तु ऐसी है कि ऐसे एक समयका भगवन् ! आहाहा...! अनंता अनंता एक एक गुणका स्वभाव-शक्ति ऐसा संपूर्ण तत्त्व है। ऐसे स्वभावको स्वभावरूप-अस्तिरूप न मानकर एक समयकी पर्यायमें परके गुणरूप आकृतिकी शक्तिको लिया, परकी अनंत शक्तियोंको समझमें लिया। ज्ञान परिणमित हुआ वह स्वयं, इतने ही ज्ञानको परभाव कहनेमें आता है। आहाहा...! समझमें आया ? यह पुण्य-पापके भाव तो परभाव है। आहाहा...! अरे भगवन् ! भाई ! उसने कभी सुना ही नहीं होगा। भाई ! समझमें आया ? भाई ! क्या कहा ?

यह शरीर और पत्नी आपके नहीं है ऐसा कहते हैं। उनके ज्ञानकी शक्तियाँ आपको खयालमें आये तो वह उनके ज्ञानके कारण आपकी पर्याय हुई ऐसा नहीं है। भाई ! घरका काम अच्छेसे संभाल लिया और मुझे ऐसा है और वैसा है। वह शक्ति उसमें थी उसका ही ज्ञान हुआ, उतना ज्ञान वह आत्माका है (ऐसा जाननेवालेने) परभावको आत्मा माना है ऐसा कहते हैं। यह तो दृष्टांत दिया है, अनुकूल होता है न ! यहाँ तो कहते हैं कि 'पत्नी' आयी तो पैसे हुये ऐसे लोग बातें करते हैं। (पत्नीका) नाम 'कंचन' और लाखों रूपये आये। पहले साधारण स्थिति हो गई थी, वापस पैसे हो गये, ऐसे लोग बाते करते हैं। समझमें आया ? अरे...अरे...! गजब बात, भाई ! भगवन् ! तेरी महिमा अपरंपार है !

अरे...! तेरे एक समयकी शक्तिके सामर्थ्यकी क्या बात करनी ! एक समयका एक गुणका सामर्थ्य, ऐसे अनंत गुणके सामर्थ्यकी क्या बात करनी ! ऐसा भगवान ध्रुव चिदानंद महाशक्तिका सागर ! ऐसी शक्तिको स्वभावरूप न मानकर एक समयकी पर्यायमें परशक्तिके आकाररूप परिणमित ज्ञानको अपना मानना, वह परभावको अपना आत्मा मानता है। आहाहा...! भाई ! सत्य बात है। टीकाकार भी गज़ब है ! आचार्यको जो कहना है वही हृदय खोलकर बात की है। यहाँ तो अभी शुभराग मेरा...! वह तो कहीं दूर मिथ्यात्वमें गया। क्योंकि वह तो तत्त्व ही दूसरा है। यहाँ तो अपनी ज्ञान-पर्यायमें परशक्तिके गुणरूप ज्ञान अपनेसे परिणमित हुआ वह भी परभाव है। समझमें आया ? पूरा तत्त्व ही महान है और वह भी उसका एक समयका पर्याय स्वके अनंत गुणके आकाररूप परिणमित होना चाहिये वह भी नहीं आया। समझमें आया ? भगवान अनंत शक्तिका पिंड प्रभु, जिसके

लक्षसे, आश्रयसे, श्रद्धासे, प्रतीतसे जो पर्याय परिणमित हो वह तो आयी ही नहीं। पर्याय नहीं आई। वस्तु तो नहीं आई, (लेकिन) पर्याय भी नहीं आयी। भाई ! आहाहा...!

कहते हैं, वह परभाव अर्थात् ज्ञानकी पर्याय परके आकारसे हुई वही ! **'परभावकलनात्'** अर्थात् अपना भाव उसमें है ऐसा माना है। **'भावकलनात्'** ज्ञानकी पर्यायमें अनंत गुणोंका, परद्रव्यकी शक्तिका ज्ञान अपनेरूप परिणमित हुआ वह ज्ञान पर्याय परभाव है। **'भावकलनात्'** उसमें मेरा आत्मा है, वह स्वभाव मैं हूँ, वह मेरा स्वरूप है, ऐसा भावका अभ्यास जिसे हुआ है उसको एकांतवादी मिथ्यादृष्टि कहते हैं। कहो, समझमें आया कि नहीं इसमें ? भाई ! वहाँ कभी सुना नहीं होगा। भगवान जाने क्या होगा ? बहारमें तकरारमें पड़े हैं अभी तो। आहाहा...! अकालमृत्यु और काल-फंस गये हैं। आहाहा...! समझमें आया ?

कहते हैं कि भगवानकी पूर्ण केवल ज्ञानकी पर्याय और केवल वीर्यकी पर्याय लो न, भाई ! सुनो ! भगवानका अनंत वीर्य और अनंत ज्ञान वह परज्ञेय है। उससे मुझे ज्ञान हुआ ऐसा तो नहीं, लेकिन ज्ञानकी पर्याय वह परके ज्ञेयकी शक्तिरूप अपनी पर्यायमें परिणमित हुआ कि ऐसा उसका ज्ञान है, उस पर्यायको परभाव कहनेमें आता है। आहाहा...! समझमें आया ? रेकोर्डिंग होनेके लिए यह सब (अंतरसे) नीकल रहा है। **'अवधारण किया है...'** **'भावकलनात्'** अर्थात् उतना जिसने आत्माका निर्णय किया है। ऐसे झूठे अभिप्रायके कारण एकान्तवादी वहाँ विश्राम कर रहा है, उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं। अब आगे सही क्या है वह कहेंगे।

(श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❀ भाई तुझे सुख चाहिये न! तो सुख कहाँ है? निमित्तमें, रागमें या एक समयकी विकास पर्याय है उसमें सुख है? उसमें दृष्टि देनेसे तो दुःख उत्पन्न होता है; और मोक्षपर्यायमें आनन्द तो है लेकिन उसमें आनन्द भरा नहीं है, आनन्दकी खान नहीं है। त्रैकालिक आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दकी खान है, इसलिये वह सर्व तत्त्वमें सार है। २७६. —द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर - पर्यायदृष्टि विनश्वर

३७ श्री प्रवचनसार, गाथा—३८-३९, प्रवचन नं. ३७, दि. १२-२-१९७९

('प्रवचनसार', ३८वीं गाथा चल रही है)। जो छः द्रव्योंकी पर्यायें उत्पन्न हुई नहीं **'और जो उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं'** (अर्थात्) भूतकालकी (पर्यायें) उत्पन्न होकर नष्ट हो गई है। **'वे (पर्यायें) वास्तवमें अविद्यमान होने पर भी...** वास्तवमें वर्तमानकी अपेक्षासे तो अविद्यमान है। आहाहा...! तीनकाल(की) भूत-भविष्यकी पर्यायें-अवस्थाएँ वर्तमान अविद्यमान होने पर भी, है न? **'ज्ञानके प्रति नियत होनेसे'** आहाहा...! ज्ञानकी पर्यायमें तो नियत हैं, निश्चित हैं। (वर्तमानकी) अपेक्षासे भूत और भविष्यकी पर्यायें असद्भूत हैं किन्तु ज्ञानकी अपेक्षासे प्रत्यक्ष-सद्भूत है। आहाहा...! सूक्ष्म बातें बहुत।

यह केवलज्ञानकी पर्यायका ऐसा स्वभाव (है) कि, भविष्यकी पर्याय हुई नहीं, भूतकी-गतकालकी होकर नष्ट हो गई, उस अपेक्षासे असद्भूत हैं। तथापि ज्ञानके प्रति निश्चित हुई है। ज्ञान उन्हें प्रत्यक्ष-सद्भूतरूप जानता है। आहाहा...! ज्ञानमें तीनकालकी पर्यायें अंदरमें नियत-निश्चयसे ज्ञात है। ज्ञानका प्रत्यक्ष स्वभाव है। आहाहा...! यह आपके 'क्रमबद्ध'के बारेमें आ गया।

द्रव्यकी जो पर्याय है वह उस समय वास्तवमें उत्पन्न होनेवाली है। और भूतकालकी बीत गई वह भी, जिस समय थी उसी समय थी (और) इस समय बीत गई। भविष्यमें भी जिस समय होनेवाली है उस समय होगी। वह (वर्तमानमें) उत्पन्न नहीं। वे सभी क्रमबद्धपर्याय हैं। एकके बाद एक, जो होनेका समय है उसी तरह होगा। वैसे भगवानके ज्ञानमें प्रत्यक्ष ज्ञात है, वैसा कहते हैं।

अब, कोई ऐसा कहे कि पर्यायको हम बदल सकते हैं, पुरुषार्थके द्वारा टेढ़ी-मेढ़ी कर सकते हैं, तो उसको केवलज्ञानका (विश्वास) नहीं रहता, आहाहा...! केवलज्ञानको ही उसने जाना नहीं। समझमें आया? (जिस समय जो पर्याय) होनेवाली है वह वहाँ होती है, बस ! भले ही निमित्त न हो। निमित्तने की नहीं और निमित्तके द्वारा हुई है, वैसा कहनेमें आये वह तो निमित्तका ज्ञान करानेके लिये है। ऐसी बातें हैं, किन्तु लोगोंको अभ्यास कहाँ (है) आहाहा...!

वह यहाँ कहते हैं–भूत और भविष्यकी छः द्रव्यों(की पर्यायें)–परमाणुकी

अनंतकाल पश्चात् होनेवाली पर्याय वे अभी तो अविद्यमान हैं, परंतु ज्ञानके लिए तो नियत-निश्चित है। आहाहा...! (अर्थात्) ज्ञान तो उन्हें प्रत्यक्ष जानता है। आगे कभी जानेगा, वैसा नहीं। सूक्ष्म बात, भाई ! यहाँपर तो ज्ञानस्वभावके पर्यायधर्मको सिद्ध करते हैं। आहाहा...! उसमें एक समयका ज्ञानपर्याय–पूर्ण केवलज्ञान (भूत और भविष्यकी पर्यायें) अविद्यमान होनेपर भी यहाँ तो असद्भूतका ज्ञान हो जाता है। असद्भूतका ज्ञान हो जाता है यह नियत-निश्चय होता है। (पर्याय) होगी तब (ज्ञान) होगा, वैसे नहीं। आहाहा...! है ?

'ज्ञानमें निश्चित-स्थिर लगी हुई होनेसे, ज्ञानमें सीधी ज्ञात होनेसे)' देखा ? होगा तब (ज्ञात होगा) वैसे नहीं, अभी सीधी ज्ञात है, आहाहा...! भूत और भविष्य, गतकालकी और भविष्यकालकी पर्यायें वर्तमानमें नहीं हैं, इस अपेक्षासे उन्हें असद्भूत कहा परंतु ज्ञानकी पर्यायमें सर्वज्ञ परमात्माको प्रत्यक्ष वर्तमान सीधी ज्ञात हैं। आहाहा...! समझमें आया ? आहाहा...! ऐसा वस्तुका स्वरूप (है)। ऐसा सम्यग्दृष्टि मानता है।

अज्ञानी तो (ऐसा मानता हैं कि) उसको मैं ऐसा कर दूँ, परका ऐसे कर दूँ और परसे मुझमें कुछ हो, मैं ऐसे करूँ तो वैसे हो, ऐसा न करूँ तो वैसा न हो, यह प्रश्न ही वस्तुमें नहीं है। (यहाँपर कहते हैं), इस ज्ञानमें सीधी ज्ञात हैं। **'ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई'** है ? 'ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई' अक्ष अर्थात् आत्मामें भूत और भविष्यकी पर्यायें प्रत्यक्ष वर्तती हुई। आत्मामें या आत्माके ज्ञानमें यह भूत और भविष्यकी पर्याय वर्तमान प्रत्यक्ष वर्तती (हुई वैसे कहते हैं)। आहाहा...! कल यहाँतक आया था।

(अब आगे कहते हैं) **'पाषाण स्तंभमें उत्कीर्ण'** जैसे पाषाणस्तंभ हो (उसमें) गतकालके **'भरत और बाहुबली'** हो गये हैं, उन्हें स्तंभमें चित्रित किया हो। **'बाहुबलीजी और भरत'** ऐसे पाषाणमें चित्रित किये हो–वे भूत(कालके)। भावी(के) 'श्रेणिकराजा भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं, उन्हें चित्रित किया हो। गतकालके 'भरत-बाहुबलीजी और भविष्यके श्रेणिकराजा' आदि। वे चित्रित हो तो एक समयमें वैसे प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। समझमें आता है कुछ ? सूक्ष्म स्वभाव भाई! ऐसी बात है। अभी तो यह सब गड़बड़ हो गई है।

'भाई'ने क्रमबद्ध(पर्याय पुस्तक) नीकाला है न ! बहुत अच्छा नीकाला है–लेख लिखा है। पंडितोंको चेलेन्ज किया है कि इसमें क्या है यह आप सोचो, पता तो लगे। आहाहा...! बड़ा लेख लिखा है।

भगवानने जाना है उसके अनुसार यहाँ (पर्याय) होती है और इससे जाना इसलिए

(वहाँ पर्याय) होती है, वैसे भी नहीं। वहाँ तो होनेके कालमें अपने कारण होती है, निमित्तके कारण नहीं। आहाहा...! भगवानके ज्ञानमें ज्ञात है इसलिए वहाँ होता है, वैसे भी नहीं। यह निमित्त है इसलिए उससे होता है, वैसे भी नहीं। आहाहा...! ऐसा सूक्ष्म है।

ज्ञायकस्वभावको सिद्ध करता है। भगवान आत्माका ज्ञायकस्वभाव है, भाई ! आहाहा...! इस ज्ञायकस्वभावकी ज्ञायक और सर्वज्ञपर्याय प्रगट होनेपर यह तो सब एक समयमें जानता है। (कोई ऐसा) कहे कि, भविष्यका निश्चित कहाँ है, किसकी (पर्याय) कैसे होगी ? (तो कहते हैं कि) निश्चित है। 'श्रेणिकराजा भविष्यमें तीर्थंकर होंगे, यह निश्चित है। ब्रह्मदत्त (चक्रवर्ती) भविष्यमें सातवीं नरकमें ३३ सागर रहेगा, यह निश्चित है। आहाहा...! भूतकालमें '**भरत और बाहुबली**' हो गये, वे बराबर हुये। परंतु वह तो हो गई (वह) उस कालमें होनेवाली थी उसी कालमें हुई। परंतु (जो हुई) नहीं (वह) उसी कालमें होगी यह कैसे ? तब तो नियत हो जायेगा। नियत ही है। जिस द्रव्यकी जिस समयकी जो पर्याय होनेवाली (उसमें) इन्द्र, नरेन्द्र और गणधर आदि भी हेर-फेर कर सकते नहीं। आहाहा...!

वह यहाँ कहते हैं '**पाषाण स्तंभमें उत्कीर्ण भूत**' भूत अर्थात् गतकालके '**भरत और बाहुबली**' और '**भावी देवों**' अर्थात् श्रेणिकराजा आदि '**(तीर्थंकरदेवोंकी) भाँति अपने स्वरूपको अकंपतया**' पाषाणमें उत्कीर्ण भूत और भावी वर्तमान प्रत्यक्ष दिखाई दे वैसे, '**अपने स्वरूपको अकंपतया**' जगतमें जितने अनंत ज्ञेय हैं (और) उनकी भूत और भविष्यकी पर्यायें हैं वे सभी 'अपने स्वरूपको अकंपतया (ज्ञानको) अर्पित करती हुई' (अर्थात्) वे ज्ञेय जो हैं वे अकंपतया ज्ञानमें वर्तते हैं।

भाई ! आज तो एक विचार आया था, परिणम्यपरिणामकत्वशक्ति है न ? आत्मामें एक 'परिणम्यपरिणामकत्व' नामक गुण है। आहाहा...! जगतके जो पदार्थोंकी द्रव्य-गुण आदिकी पर्यायें हैं वे ज्ञेयाकारको ग्रहती है और अपने ज्ञानाकारको परके ज्ञानमें प्रमेय अनुसार ग्रहती है। क्या कहा यह ? गुण है न ? पंद्रहवाँ है। ३७ शक्ति हैं न (उसमें) पंद्रहवाँ है। जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, सर्वदर्शीत्व, सर्वज्ञत्व, स्वच्छत्व, प्रकाश, असंकुचितविकासत्व, अकार्यकारणत्व, परिणम्यपरिणामकत्व। पंद्रहवीं शक्ति है। आत्मामें एक परिणम्यपरिणामकत्व नामक गुण है। यानी कि ज्ञेयोंमें समय समयमें जो कुछ परिणाम-आकार होते हैं उन्हें ज्ञान जानता है, आहाहा...! और अपने जो ज्ञानाकार हैं वे सामनेवाले केवलज्ञानादि पर्यायमें वे ज्ञानाकार ग्रहण होते हैं। परका प्रमेय करे और परके ज्ञानमें वह (स्वयं) प्रमेयत्व होता है। यह तो सूक्ष्म बातें बहुत, बापू ! आहाहा...! समझमें आया ?

पंद्रहवाँ गुण है न ! 'परिणम्यपरिणामकत्व' यह परिणम्यपरिणामकत्व अर्थात् ज्ञेयाकारको ग्रहण करता है और ज्ञानाकारको ग्रहण कराता है। दूसरेके ज्ञानमें ज्ञानाकार (ग्रहण कराते हैं) उसके हिसाबसे तो (दूसरे जीवके हिसाबसे तो) यहाँ ज्ञेयत्व है न ! परंतु यहाँ ज्ञानाकार जैसी अपनी अवस्था है वैसा उसमें प्रमेयरूप होता है–ज्ञात होता है। और परका प्रमेयपना अपनेमें प्रमाण होता है, आहाहा...! क्या कहा यह ?

तीनकाल, तीनलोककी जितनी पर्यायें हैं वे सभी ज्ञेय अनुसार केवलज्ञानकी पर्यायमें अर्पित हो जाती है, आहाहा...! है ? **'अकंपतया (ज्ञानको) अर्पित करती हुई (वे पर्यायें) विद्यमान ही हैं।'** देखा ? आहाहा...! बहुत अलौकिक बातें हैं, बापू ! जैसा तैसा मानना वह कोई बात नहीं। आहाहा...! ज्ञानकी पर्याय जितने ज्ञेय-पर्याय हैं वे सभी एक समयमें यहाँपर ज्ञानमें अकंपतया (स्वयंको) अर्पित करती हैं। जैसे कि तीनोंकाल(का) सबकुछ एकदम स्थिर हो वैसा अकंपतया अर्पित होता है। गतकालकी पर्याय, भविष्यकी (पर्याय) और वर्तमान(की) सर्व (पर्याय) वैसे जैसे स्थिर हों, इसप्रकार अर्पित होती हैं। आहाहा...! ऐसा है। अपनी भी जो पूर्णज्ञानकी पर्याय है (और) अनंतगुणोंकी पर्यायें हैं वे भी परके ज्ञानमें ज्ञेयरूप अकंपतया वर्तती है। आहाहा...!

ऐसा जहाँ स्वरूप है और क्रमबद्ध (यदि) न माने जब तो वह वस्तुकी स्थिति ही मानता नहीं। और वस्तुकी स्थितिको मानता नहीं तो केवलज्ञानको भी मानता नहीं। सूक्ष्म बात है। भाई ! आहाहा...! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा...आहाहा...! साक्षात् दिव्यध्वनि महाविदेहमें वर्तती है। यहाँ वही वाणी है। वहाँ 'कुंदकुंदाचार्य' गये थे, आठ दिन रहे थे (और वहाँसे) यह लाये हैं। भव्यजनोंके–लायक जीवोंके लिये लाये हैं। आहाहा...!

भाई ! तू ज्ञान है न ! तू आत्मा है न ! आत्मा अर्थात् ज्ञान, यह ज्ञान जगतकी चीजोंकी पर्यायको–गतकालकी और भविष्यकी सर्व (पर्यायोंको) अविद्यमान है वैसे जानता है न ! आहाहा...! असद्भूत है और अविद्यमान है–(वैसा कहा तो) दोनों गलत नहीं होगा ? अब कोई वैसा कहता है। भूत और भविष्य अविद्यमान है, वैसा कहा। तथापि ज्ञानमें (तो) विद्यमान ही है। बापू ! तुझे खबर नहीं, भाई ! ज्ञानस्वरूपमें तो वह प्रत्यक्ष विद्यमान ही है। आहा...! वैसा ज्ञानका स्वभाव है। आहाहा...! प्रभु ! तेरा स्वभाव ही सर्वज्ञस्वभावी है। यह सर्वज्ञस्वरूपी सर्वज्ञ पर्याय प्रगट होती है उसमें तीनकालकी पर्यायें अकंपतया अर्थात् ऐसे कंपित हो (वैसे नहीं परंतु) स्थिर बिंब जैसे पड़ा है। आहाहा...!

आहाहा...! ऐसी बात है भाई ! जैनदर्शनको समझना, मानना यह कोई अलौकिक बात है। और जिसे यह ज्ञानमें यथार्थरूप बैठा उसे भवका अंत आ गया। आहाहा...! उसे

केवलज्ञान निश्चितरूपसे होगा। उसके क्रममें उसे केवलज्ञान आयेगा। आहाहा...! और उस क्रममें (जो) केवलज्ञान आयेगा वह भी दूसरेके ज्ञानमें अकंपतया-ज्ञेयरूप वहाँ अर्पित हो चुका है। इस जगतमें तीनकाल है तो तीनकालको जाननेवाले तीनकालमें किसी समय न हो वैसा हो नहीं सकता। क्या कहा यह ? तीनकालकी जो वस्तु ज्ञेय हैं तब उसे जाननेवाला (यानी कि) तीनकालको जाननेवाला तीनकालमें किसी समय न हो, वैसा (बनता) नहीं। भूतकालमें भी केवली हो गये, वर्तमानमें हैं और भविष्यमें (भी होंगे)। केवलीयोंका विरह कभी होता नहीं। आहाहा...! तीनकाल और तीनलोक ऐसा दो ज्ञेयस्वरूप है तो उन तीनकालको एक समयमें जानेवालोंका इस जगतमें कभी भी विरह नहीं हो सकता। आहाहा...! समझमें आया ? आहाहा...!

भगवान 'महावीर'का जीव सिंह (के भवमें) था, (तब) सिंह इस तरह हिरनको (मारकर खाता था)। (दो) मुनि उपरसे उतरे (और कहा) 'अरे सिंह ! तू तो आत्मा (है)। तीर्थंकर द्रव्य (हो), दसवें भवमें 'महावीर' होगा। यह निश्चित हो गया था। आहाहा...! सर्वज्ञ परमेश्वरने मुनियोंको कहा है। भाषा कैसी होगी मुनियोंकी ? आहाहा...! आकाशमें गमन करते थे, (वहाँ) ऊपरसे उतरे (और) सिंहके समीप आये। सिंहको ऐसा लगा कि, मेरे पास कोई जानवर या मनुष्य आये, नजदीकमें आये वैसे भाग जाते हैं और ये दूर से ऊपरसे मेरे समीप नीचे आये ! (ऐसा देखता है वहाँ) एकदम वृत्तिमें फर्क पड़ गया, यह क्या ? ओहोहो...! यह क्या है ? किन्तु यह मेरे समीप कोई अनजान आ जाय तो भाग जाय और यह तो ऊपरसे (नीचे आये) ऐसे तिरछे (जमीन ऊपरसे) समीप आये तो भी भागे (तो) ये तो ऊपरसे (जा रहे थे) जहाँ मेरी नजर न जाये, मेरी छलांग न पहुँचे (और ये नीचे आ गये) आहाहा...! वे मुनि आये और ऐसे हाथ किया... कैसी भाषा होगी मुनिओंकी ? वे तिर्यंचरूपमें किस प्रकार भाषाको समझे होंगे ? आहाहा...! कैसी सिंहकी योग्यता ! आहा ! संयोग कैसा मिलता है ? वह बराबर भाषासे भाषा समझा। अरे प्रभु ! तू तो दसवें भवमें 'तीर्थंकर महावीर' होगा। यह क्या ? आहाहा...! (यहाँ पर) है न हमारे चित्र ? आहाहा...! (यह) निश्चित हो चुका था। आहाहा...!

(सिंहकी) आँखमेंसे आँसू बह निकलते हैं। अरे यह क्या ? वैसे अंदर धारा चल रही है। वैसे अंदर विचारधारामें चढ़ते... आहाहा...! कर्मकी धारा हट जाती है और सम्यग्दर्शन पाता है। बापू ! यह क्या वस्तु है, भाई ! सम्यग्दर्शन !! ऐसे हिरन एक तरफ पड़ा है...अंदर खाया होगा कि क्या ? किन्तु अंदरमें (ऐसा होता है कि) क्या कहते हैं ये प्रभु ? तू तीर्थंकरका जीव है। दसवें भवमें 'महावीर होगा। प्रभु ! तू 'वीर-महावीर'

(होनेवाला है) आहाहा...! भाषा किस तरह समझे होंगे ? किस देशके मुनि ? किस देशकी भाषा ? कहाँ यह जंगलका सिंह ? आहाहा...! एक निमित्त-नैमित्तिक मेल मिल जाता है न ! आहाहा...! उसके समझनेकी लियाकत (थी वह) इस तरह समझता है। आहाहा...! पश्चात्ताप करते करते आँसूकी धारा बह निकलती है। और अंतर स्वभावके सन्मुख जाता है। आहाहा...! वहाँ आगे सम्यग्दर्शन होता है। महावीर भगवानका आत्मा दसवें भवमें सिंहकी पर्यायमें सम्यग्दर्शन पाता है। आहाहा...! उस क्रमकी पर्यायमें यह जाननेवाला था। भगवानके ज्ञानमें था। था कि नहीं ? तब तो मुनिने कहा : अरे सिंह ! भगवान तुझे इस तरह कहते हैं। प्रभुने मुझसे कहा है। आहाहा...! 'तू अब इस स्थितिमें है और तू तो भगवान तीर्थंकर होनेवाला हे। आहाहा...! वह (सिंह) अंदर ज्ञानस्वरूपी प्रभु है वहाँ मग्न हो जाता है। आहाहा...!

एक (और बात भी) आती है न ? ऋषभदेव भगवानको आहार दिया था तब नेवला आदि चार प्राणी थे, चार जानवर (थे)। और (आहारदानका) इसप्रकार प्रमोद किया और (फिर) मरकर जुगलिया हुये। भोगभूमिके जुगलिया। ऐसेमें मुनि आते हैं और इसप्रकार उपदेश देते हैं। नेवला आदि चार प्राणी हैं। हालमें (नेवला स्वरूप) नहीं है, हाल जुगलिया (स्वरूप है)। पूर्वमें नेवला (आदि) थे। (मुनिराज) कहते हैं। 'अरे आत्माओं ! तुम्हारी काललब्धि पक गई (है)।' (इस तरह) मुनि कहते हैं। गजब बात है। आहाहा...! छद्मस्थ मुनि उसे देखकर कहते हैं। (सामने है) जुगलिया भोगभूमिके मनुष्य। इसके पूर्व तिर्यंच थे। चार थे न ? चार थे-बंदर, नेवला (आदि थे)। कथा बहुत याद नहीं (किन्तु) भाव अंदर याद है। (मुनिराज कहते हैं) 'अरे....आत्माओं ! तुम्हारी काललब्धि पक गई है। तुम सम्यग्दर्शन (प्रगट) करो।' आहाहा...! वहाँ वे इसप्रकार अंदरमें उतर जाते हैं। और समकित प्राप्त करते हैं। भोगभूमि ! वहा बहन-भाई(रूप) जन्म लेते हैं (और) आगे पति-पत्नी होते हैं। आहाहा...! किन्तु उसकी काललब्धि पक गई। वैसा छद्मस्थ संतोंने कहा। आहाहा...! प्रभु ! उसकी (यह) पर्याय होनेवाली है यह आपने कैसे जान लिया ? 'प्रभु ! काललब्धि तुम्हारी पकी ! आप अब अंदर दृष्टि करो। आपको सम्यग्दर्शन होनेका काल आ गया !' आहाहा...! यह भी नियतक्रममें था। आहाहा...! यह वीतरागमार्ग तो देखो। आहाहा...!

ये तिर्यंच ! भगवानको दूसरोंने आहार दिया वहाँ वे सिर्फ एक तरफ बैठे थे। (उनको ऐसे भाव हुये कि) 'धन्य अवतार। ये लोग आहार दे रहे हैं।' ऐसे भावमें भोगभूमिके जीव हुये। जुगलिया हुये। पल्योपमका आयुष्य। पल्योपम अर्थात् असंख्य अरब वर्ष ! आहाहा...! कथामें भी भविष्यमें यह होगा ऐसी बातें रखी हैं। यह बदलनेवाला है ? आहाहा...! कुछ

कथाओंमें लिखा है कि, यह तीन भवमें मोक्ष जायेगा, कोई पंद्रह भवमें मोक्ष जायेगा। आहाहा...! यह जिस ज्ञानमें ज्ञात है और उस क्रममें तब उसी तरह होनेवाला है। आहाहा...! उसे कौन बदले ? आहाहा...! यह दुनियासे अलग जाति है, बापू ! आहाहा...!

(यहाँपर कहते हैं) **'भूत और भावी देवोंकी (तीर्थंकरदेवोंकी) भांति'** देव अर्थात् तीर्थंकर आदि। **'अपने स्वरूपको अकंपतया (ज्ञानको) अर्पित करती हुई (वे पर्यायें) विद्यमान ही हैं।'** आहाहा...! असद्भूतको भी वर्तमान भूतार्थकी तरह जानता है। विद्यमान ही है उसे तो, ज्ञानमें विद्यमान ही है इसप्रकार ! आहाहा...! यह ज्ञानका अचिंत्य चिंतामणि रत्नका स्वभाव और ज्ञेयोंका इस तरह होना वह उसे अर्पित करनेका स्वभाव ! आहाहा...! बापू ! उसकी श्रद्धा करना यह बहुत कठिन बात है। आहाहा...!

भूत और भविष्यके तीर्थंकर 'आदिश्वर भगवान–आदि हुये उनको इस तरह स्तंभमें चित्रित किया हो (और) भविष्यमें 'श्रेणिक (राजा) तीर्थंकर होनेवाले हैं आहाहा...! उन्हें इस तरह पाषाणमें चित्रित किया हो। हम एक बड़े शहरमें गये थे न ? वहाँ बनाया है। एक गृहस्थने स्तंभ बनाया है न ! नदी आदि सब बनाया है न ! वहाँ देखने गये थे। लाखों खर्चकर बनाया है। सारे देशमें घूमे हैं। कौनसा गाँव (वह याद नहीं आता)। सारा इसप्रकार चित्रित किया है सब–इस तरह नदियाँ व स्तंभोमें तीर्थंकर और बहुत बड़ा चित्र बनाया है। देखा है। कौनसा गाँव है याद है किसीको ? (जिसने बनाया है) वे स्वयं ही दिखाने ले गये थे। बड़ा मकान जबरदस्त। भूत-भविष्यके तीर्थंकरोंके चित्र सब बनाये हैं, सब नदियाँ बनाई हैं। गाँव कौनसा कहा है वह ? 'पोरबंदर'। भूत, भविष्यके तीर्थंकर और दूसरा सब इस तरह वर्तमानवत् दिखाई दे वैसा बड़ा (बनाया है)।

यहाँ तो कहते हैं कि, पाषणमें उत्कीर्ण भूत, भविष्यके तीर्थंकरोंकी भांति दूसरे सर्व ज्ञेय अपना स्वरूप (ज्ञानको) अर्पित करती हुई (वे पर्यायें) विद्यमान ही हैं। गजब बात है। एक ओर कहते हैं कि अविद्यमान हैं, वास्तवमें अविद्यमान हैं। उसकी अपेक्षासे वे अविद्यमान है, परंतु ज्ञानकी अपेक्षासे विद्यमान हैं, आहाहा...! यह तो कोई बात है ! गजब बात है ! बापू ! तेरा चैतन्य (स्वरूप) (और उसका) ज्ञानस्वभाव (उसकी) अचिंत्यता...! आहाहा...! उसे तू पहचान ! उसे जान ! और उसका अनुभव कर। ऐसा कहते हैं। आहाहा...! समझमें आया ? एक ही गाथामें (वैसा कहा) **'वास्तवमें अविद्यमान होने पर भी'** भाषा इसप्रकार है–वास्तवमें नहीं, आहाहा...! परंतु ज्ञान प्रत्यक्ष विद्यमान ही है। 'है', आहाहा...! ऐसा कोई ज्ञानका स्वभाव (है)। प्रभु ! तेरा स्वभाव ऐसा है। आहाहा...! कि जो अविद्यमान को भी ज्ञानमें प्रत्यक्ष करता है, इसप्रकार तेरे ज्ञानमें प्रत्यक्ष है। आहाहा...!

एक ज्ञानगुणका भी ऐसा स्वभाव ! आहाहा...! वैसे अनंत...अनंत... गुणोंका कोई अलौकिक स्वभाव (है), आहाहा...! ऐसा चैतन्यद्रव्य कोई चमत्कारी वस्तु है। अरे ! चैतन्य क्या जड़ भी ऐसी कोई चमत्कारी वस्तु है। जड़में जड़रूप अनुसार (पर्यायें) क्रम-क्रमसे आयी है, आहाहा...! परंतु यह जड़ उसे जानता नहीं। उसकी पर्याय क्रमिक हुई, होनेवाली होगी। उन परमाणुमात्रकी पर्याय क्रमिक होती है। प्रत्येक परमाणु भिन्न है उसकी पर्याय स्वतंत्र उसमें होती है, ऐसे (दूसरे परमाणुकी) वजहसे नहीं। अपनी पर्याय अंदर भिन्न स्वतंत्र है। वह समय-समयकी पर्याय परमाणुमें क्रमबद्ध अपनेसे होती है। यह स्कंध जुड़ा हुआ है इसलिए (होता है वैसे) नहीं। आहाहा...! **'ऐसे परमाणुकी भी भूत और भविष्यकी पर्याय वर्तमानकी अपेक्षासे, ज्ञेयकी अपेक्षासे अविद्यमान हैं। परंतु ज्ञानकी अपेक्षासे विद्यमान हैं।** यह क्या कहते हैं ? आहाहा...! (ज्ञानको) ज्ञेय अर्पित हो गया। ज्ञेयमें भी प्रमेयपना है न ! कहा न ! प्रमेयपना कहो या ज्ञेयपना (दोनों एकार्थी हैं)। दिखाई देने योग्य उसका स्वभाव है वह जाननेवालेमें अर्पित हो गया है, प्रमेय हो गया है। आहाहा...!

श्रोता :— ज्ञेयमें विद्यमान गुण तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— (परंतु पर्याय) विद्यमान नहीं। इसी बात पर ही विरोध है न ! वैसा कहते हैं कि, उसकी शक्तिमें विद्यमान है न ! (परंतु) वैसा नहीं। मालूम है सब, यह प्रश्न कोई नया नहीं। यहाँ तो (वैसा कहना है कि) वर्तमानमें नहीं है उसे यहाँपर प्रत्यक्ष विद्यमान कर दिखाता है। ऐसा ही कोई ज्ञानका स्वभाव (है) ! ऐसी चीज है, बापू ! आत्मा अर्थात् क्या ?

यह आत्मा एक समयकी पर्यायमें ऐसा अनंत...अनंत... जानते हुये भी वैसी-वैसी अनंत पर्यायें भले ही हो, तथापि दव्य तो परिपूर्ण शुद्ध है वह है। ये (पर्यायें) होती हैं सो कोई विस्मय नहीं। भाई ! क्या कहा यह ? जिसमेंसे केवलज्ञानकी पर्याय प्रगट हुई तथापि वह वस्तु तो पूर्ण है। ऐसी-ऐसी अनंत पर्यायें होंगी तब भी वस्तु तो प्रत्येक समय पूर्ण है। यह तो कोई बात है, बापू ! वस्तुका स्वभाव कोई अचिंत्य है, भाई ! आहाहा...! समझमें आया ?

प्रभु! आत्मा अनंतगुणका पिंड है। उसमेंसे पर्याय प्रगट हुई, केवल(ज्ञानकी पर्याय) प्रगट हुई। आहाहा...! तो भी वह पूर्ण है। और निगोदके भवमें अक्षरका अनंतवाँ भाग विकसित है, तो भी द्रव्य तो पूर्ण है। यह क्या कहते हैं ? किसी भी समय हो द्रव्य तो पूर्ण ही है। जरासी भी गुणमें हीनता नहीं आयी। यह (हीनता) पर्यायमें है, वस्तु पूर्ण है।

यह तो अद्‌भुत है, बापू ! वीतराग सर्वज्ञने देखे हुये तत्त्वों और उन्होंने कही वे अलौकिक बातें (हैं), बापू !

भगवान तू कौन है। आहाहा...! तेरे एक गुणकी पूर्ण पर्याय प्रगट हो या अपूर्ण प्रगट हो परंतु वस्तु तो पूर्णरूप पूर्ण ही है। यह तो क्या बात है ? यह किस प्रकार है ? समझमें आया ? आहाहा...! एक समयमें तीनकाल तीनलोककी पर्यायें अर्पित हो जाय इतना ज्ञान तेरा प्रगट हुआ है। वह पर्याय प्रगट हुई और वैसे तो द्रव्यमेंसे ही आई है, फिर भी द्रव्यमें परिपूर्णता है। इतनी बड़ी पर्याय आई इसलिए दव्यमें कुछ हीनता हो गई है (वैसा नहीं)। क्या है यह तो ? समझमें आया ?

जिस तरह वह पर्याय अविद्यमान है तथापि ज्ञानके प्रति विद्यमान है, आहाहा...! इसप्रकार एक समयमें तीनकाल तीनलोकको पर्याय जाने उतनी प्रगट हो गई तथापि वस्तु है यह तो पूर्ण (ही है) घट-बढ़ उसमें हुई नहीं। आहाहा...! प्रभु ! ऐसा तेरा स्वभाव ! आहाहा...! उसने सुना नहीं। आहाहा...! इसप्रकार गम्य-अगम्य जैसा लगे।

(यहाँ पर कहते हैं) वहाँ (पर्यायें) असद्‌भूत हैं, वास्तवमें शब्द तो वैसा है। है न ? पाठ है न संस्कृतमें ? मूल पाठमें है और संस्कृतमें भी (है)। **'किलासद्‌भूता'** संस्कृतका मूल पाठ है न ! मूल गाथामें और टीकामें है। मूल गाथामें हैं, देखिये। **'ते होंति असब्भूदा पज्जाया णाणपच्चक्खा'** आहाहा...! ये तो संतोंकी बातें। वे दिगम्बर मुनिगण तो केवलज्ञानके केड़ायत हैं। आहाहा...! अल्पकालमें केवलज्ञान होनेवाला है। आहाहा...!

श्रोता :— प्रगट अपेक्षासे विद्यमान है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— प्रगट नहीं है इसलिए अविद्यमान है। परंतु ज्ञानमें प्रगट, विद्यमान है। यह क्या ? आहाहा...! बापू ! प्रभु ! यह कोई ऐसे ही स्वभावकी बातें हैं, बापू ! आहाहा...!

एक परमाणुके भी इतने अनंतगुण हैं। जितने आकाशके अनंतगुण हैं, इतने ही आत्मामें हैं और इतने ही एक परमाणुमें हैं। इसे क्षेत्रकी आवश्यकता नहीं कि क्षेत्र बड़ा हो तो अनंत (गुण रह सके)। आहाहा...! ऐसी ही कोई स्वाभाविक वस्तु है। इस तरह भगवान आत्माको केवलज्ञानकी पर्यायमें (दूसरे पदार्थोंकी पर्यायें) असद्‌भूत होनेपर भी यहाँ विद्यमानके अनुसार प्रत्यक्ष है, आहाहा...! प्रत्यक्ष है इसलिए विद्यमान है, इस तरह (है)। प्रत्यक्ष किसे कहें ? समझें आया ? आहाहा...! पौना घंटा हुआ। गजब बात हैं, भाई !

उसकी गंभीरताकी कोई सीमा नहीं। यह तो 'प्रवचनसार', 'समयसार' परमागम हैं।

इसकी गंभीरता इसकी गहराईकी कोई सीमा नहीं। शब्दोंमें तो शब्दोंके भाव हैं परंतु वे शब्द जिसे बताते हैं... आहाहा...! यह चीज कोई अलौकिक है। आहाहा...!

श्रोता :— अनुभवकी बात तर्कसे पकड़में आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— तर्कसे ख्यालमें आये इतना। परंतु सच्चा निर्णय अनुभके बिना होता नहीं। पहलेसे ख्यालमें वैसा आये, नयसे, प्रमाणसे, निक्षेपसे (वैसा) आता है न ? तथापि यह विकल्पसे निर्णय है। ('समयसार'की) ७३वीं गाथामें आता है न भाई ! पहले विकल्पसे निर्णय (किया) परंतु यह (विकल्प द्वारा हुआ) निर्णय सत्य निर्णय नहीं। अंतर ज्ञानस्वरूप प्रभु (है) इसके अंतरमें जाकर जो अनुभवका निर्णय होता है, वैसा निर्णय विकल्पसे नहीं होता। 'अनुभव रत्न चिंतामणि, अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्षनो, अनुभव मोक्षस्वरूप' आहाहा...! मोक्षका मार्ग और मोक्षस्वरूप, कोई अचिंत्य बातें हैं, बापू ! आहाहा...! 'प्रवचनसार'में भी कहा है न ? 'मोक्षतत्त्व'। मोक्षमार्ग (प्रगट) हुआ है उसे 'मोक्षतत्त्व' कहा है। 'प्रवचनसार' अंतिम पाँच गाथा (में आता है)। आहाहा...! क्या कहते हैं, बापू ! निर्विकल्प स्वभाव ही कोई अलौकिक है ! इसका जहाँ पता लगा, उड़ गये (इसके) भव उड़ गये। भव होते नहीं। आहाहा...! यह ३८ गाथा पूरी हुई। इस दो पंक्तिमें इतना हुआ। ऐसा है।

भगवान तेरा स्वभाव कोई अलौकिक है। स्वभावकी बात कोई सामन्य तर्कसे नहीं बैठेगी। वैसे तो 'सर्वविशुद्धज्ञान (अधिकारमें)' आता है न ! 'स्पष्ट तर्कणासे वस्तु सिद्ध हो सकती है।' वह 'छेदन'का पूछा था न ! भाषा तो इस तरह भी आये–कर्म को छेदे। 'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकारमें'से या है न ! 'छेदे'...जिसप्रकार बंधनको जानते हुये भी बंधनको छेदता नहीं...आत्माको बंधन है और शुद्ध होकर बंधनको छेदता नहीं...! भाषा तो कैसी आये ? छेदन किसकी अपेक्षासे ? यह छेदन हो गया और नाश हो गया, इस अपेक्षासे छेदन कहनेमें आता है। बाकी आत्मा तो 'छेदन' का नाममात्र कर्ता है ! यह आया है ? ('समयसारकी) ३८ गाथा। ये तो अलौकिक बातें हैं, बापू ! आहाहा...! रागका छेद करनेवाला अर्थात् नाश करनेवाला–वह भी आत्मामें नाममात्र है, परमार्थसे (निश्चयसे) वह नहीं। आहाहा...! क्या इसकी शैली !! आहाहा...! भाई ! मार्ग गंभीर है। आहाहा...! अब ३९ गाथा।

'अब इन्हीं अविद्यमान पर्यायोंकी ज्ञानप्रत्यक्षताको दृढ़ करते हैं ' और दृढ करते हैं। है ? अविद्यमानपना (स्वीकारते) हैं तथापि पर्यायके ज्ञानमें प्रत्यक्षपना दृढ़ करते हैं। यह तो अलौकिक बातें हैं, बापू ! आहाहा...!

जदि पच्चक्खमजादं पज्जायं पलयिदं च णाणस्स।
ण हवदि वा तं णाणं दिव्वं ति हि के परूवेंति॥३९॥

नीचे (हरिगीत)

ज्ञाने अजात-विनष्ट पर्यायो तणी प्रत्यक्षता।
नव होय जो, तो ज्ञानने ए 'दिव्य' कोण कहे भला?॥३९॥

'**अजात**' (अर्थात्) अनुत्पन्न। '**विनष्ट**' (अर्थात्) पूर्वमें हुआ है वह। आहाहा...! एक-एक तत्त्व भी ऐसा अलौकिक है। यह केवलज्ञान तो 'मोक्षतत्त्व'की बात है। आहाहा...! 'मोक्ष'में तो ऐसा अर्थ आता है कि दुःखसे मुक्त हुआ। 'मोक्ष' वैसा शब्द है न? परंतु वह भी नाममात्रसे कथन है। आहाहा...!

टीका :— '**जिसने अस्तित्वका अनुभव नहीं किया**' (अर्थात्) भविष्यकी पर्याय। भविष्यकी पर्याय विद्यमान थी इस तरह अस्तित्वका अनुभव किया नहीं। भविष्यकी पर्याय(का) अस्तित्व हुआ ही नहीं। यह तो 'प्रवचनसार' है। भगवान तीनलोकके नाथकी दिव्यध्वनि। इसे 'दिव्यध्वनि' कहो या 'प्रवचन' कहो (दोनों एकार्थ है) 'प्र' अर्थात् दिव्य वचन। इसका सार-दिव्यध्वनिका सार। साक्षात् भगवान (विराजमान हैं) आहाहा...!

'**जिसेने अस्तित्वका अनुभव नहीं किया**' किसने? भविष्यकी पर्यायने। भविष्यकी पर्याय अबतक अस्तित्वरूप हुई नहीं। '**और जिसने अस्तित्वका अनुभव कर लिया है**' (अर्थात्) गतकालकी (पर्यायें)। गतकालकी पर्यायें अस्तित्व-सत्रूप हो गई है, अनुभव कर लिया है। आहाहा...! गाथाएँ तो गाथाएँ हैं न! 'अमृतचंद्राचार्य'ने अमृत उँडेला है।

'**जिसने अस्तित्वका अनुभव नहीं किया**' (अर्थात्) हुई नहीं। और जिसका अस्तित्व हो गया है। हो गया है '**ऐसी (अनुत्पन्न और नष्ट)**' (अर्थात्) उत्पन्न नहीं हुये हो और विलय हो चुके हो। ऐसी '**पर्यायमात्रको**' आहाहा...! ऐसी पर्यायमात्रको '**यदि ज्ञान अपनी निर्विघ्न विकसित, अखंडित प्रतापयुक्त!**' आहाहा...! जिसके ज्ञानकी पर्यायका अखंड प्रताप है। 'प्रभुत्वशक्ति' है न? प्रभुत्वशक्ति आती है न? स्वतंत्ररूप जिनका अखंड प्रताप शोभित हो रहा है। आहाहा...! केवलज्ञान भी प्रभुत्वरूप है। इसकी पर्यायमें भी प्रभुत्वरूप है। आहाहा...! ज्ञानकी पर्याय, हाँ...! यह ज्ञानकी पर्याय निर्विघ्न विकसित (है)। (अर्थात्) बिना विघ्नकी अपनेसे विकसित। आहाहा...! जिस प्रकार लाख पंखुड़ीका कमल खिलता है इसप्रकार अनंत...अनंत...गुण(रूपी) पंखुड़ीका पिंड प्रभु पर्यायमें खिल उठता (है)। आहाहा...!

'अखंडित प्रतापयुक्त प्रभुशक्तिके (महा सामर्थ्य) द्वारा' आहाहा...!। जो पर्यायें अनंत आत्मामें या जड़में अबतक हुई नहीं और हो गई–वह विलीन हो गई, इसे अपनी निर्विघ्न विकसित (पर्याय जान लेती है), (ऐसी) विकसित (अर्थात्) प्रगट पर्याय(का) अखंडित प्रताप है। जिसका प्रताप तीनकालमें कोई खंड नहीं कर सकता। ऐसी प्रभुत्वशक्ति द्वारा। आहाहा...! **'बलात् अत्यंत आक्रमित करे'** आहाहा...!

वो 'कर्ता' आता है न ? (श्री 'राजमलजी पांडे'ने) 'कलश टीका'में **'बलजोरी'**से कर्ता होता है ऐसा अर्थ लिखा है। वस्तु स्वभाव रागका कर्ता नहीं है। परंतु बलजोरीसे (अर्थात्) उल्टा होकर कर्ता होता है। 'कलशटीका'में **'कर्तृत्व'**का ऐसा अर्थ किया है।

जिसप्रकार उल्टा बलजोरीसे कर्ता होता है वैसे (यहाँपर) अपनी बलजोरीसे आहाहा...! **'अत्यंत आक्रमित करे'** अर्थात् पर्यायको (-प्राप्त करे)। आहाहा...! **'तथा वे पर्यायें अपने स्वरूपसर्वस्वको अक्रमसे अर्पित करे'** वे पर्यायें अपने स्वरूपसर्वस्वको वर्तमान अर्पित करे। आहाहा...! (यानी कि) (एक ही) साथ ज्ञानमें ज्ञात हों। आहाहा...! भूतकालकी बीती हुई और भविष्यकी हुई नहीं, अस्तित्वमें आई नहीं व अस्तित्वका अनुभव नहीं हुआ, वे पर्यायें अपने स्वरूपसर्वस्वको अक्रमसे अर्पित करती (हैं)। (अक्रमसे अर्पित करती हैं अर्थात्) पहले वर्तमानमें ज्ञात हो और आगे भविष्यका ज्ञात हो, भूतका पहले ज्ञात हो....वैसे नहीं। इन पर्यायोंका ऐसा स्वभाव है। आहाहा...!

पहले भूतकी पर्याय ज्ञात हो और आगे भविष्यकी (ज्ञात हो) ऐसा इसप्रकार पर्यायोंका वैसा स्वभाव नहीं। आहाहा...!

'इसप्रकार उन्हें अपने प्रति नियत न करे (–अपनेमें निश्चित न करे, प्रत्यक्ष न जाने) आहाहा...! 'तो उस ज्ञानकी दिव्यता क्या है?' उस ज्ञानकी दिव्यता...! अलौकिकता...! विस्मयता...! है। आहाहा...! **'वे पर्यायें अपने स्वरूपसर्वस्वको अक्रमसे अर्पित करें (एक ही साथ ज्ञानमें ज्ञात हों) इसप्रकार उन्हें अपने प्रति नियत न करे (अपनेमें निश्चित न करे, प्रत्यक्ष न जाने), तो उस ज्ञानकी दिव्यता क्या है?'** आहाहा...!

'इससे (यह कहा गया है कि) पराकाष्ठाको प्राप्त ज्ञानके लिये यह सब योग्य है'। पराकाष्ठाको (अर्थात्) अंतिमसे अंतिम ज्ञानकी उत्कृष्ट अवस्था हो गई उसे सब योग्य है। अनुत्पन्न और हो गई उन्हें भी वर्तमान प्रत्यक्ष जानता है वैसा ही कोई ज्ञानका स्वभाव है, (वैसा कहना है)। विशेष कहेंगे .... (श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव !)

ॐ

श्री परमात्मने नमः

गुरु कहान : दृष्टि महान

अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के द्रव्यदृष्टिप्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

(भाग २)

१

श्री नियमसार, गाथा ४२, प्रवचन - ४५
दिनांक - ०८-०४-१९६६

यह नियमसार, मोक्षशास्त्र है, मोक्षमार्ग का शास्त्र है। मोक्षमार्ग कहाँ से प्रगट होता है? ऐसा शुद्धभाव क्या है, उसका यह वर्णन है। आत्मा के शुद्धभाव में से प्रगट होता है। शुद्धभाव त्रिकाल कारणपरमात्मा महाचैतन्य रत्न ध्रुव अपना महान निधान पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द अकेला अविनाशी आनन्दरस, ऐसा जो आत्मतत्त्व है, उसमें से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसके आश्रय से, उसमें से, उसके आधार से प्रगट होते हैं। कहो, समझ में आया? यह कहा ऊपर। देखो न!

नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूप कारणपरमात्मस्वरूप जीव... बात यह है कि इसने अपना चैतन्य महानिधान रत्न दृष्टि में, विश्वास में अनन्त काल में नहीं लिया। समझ में आया? अपना महानिधान अनन्त अविनाशी चैतन्यरस... उसे विश्वास में, अन्तर प्रतीति में अनन्त काल में नहीं लिया। उसे खोकर, क्षण-क्षण में रागी हूँ, द्वेषी हूँ, पुण्यवाला, पापवाला, शरीरवाला, इस सत्तावाला इस सत्तावाला-ऐसा मानकर अपने स्वरूप के निधान को लुटाकर, और पर को माँगने में भिखारी हो रहा है। समझ में आया? जहाँ से मिलता है, वह चैतन्यरत्न

कौन है ?-उसकी इसे खबर नहीं है। जहाँ नहीं मिलता, वहाँ इसने जावा (झपट्टे) मारे हैं। जावा आया न, अपनी गुजराती काठियावाड़ी भाषा। जावा समझते हो ?

अपना एक समय में परमेश्वरपद ऐसा का ऐसा पड़ा है। जैसे डिब्बी में रत्न पड़ा हो, वह पड़ (ढ़क्कन) उघाड़े तो ऐसा का ऐसा पड़ा है। वैसे राग और पुण्य और ये मेरे—ऐसी मान्यता के पड़ में चैतन्यरत्न तो ऐसा का ऐसा पड़ा है। उस पड़ को खोले तो है, ऐसा है। यह इसका पहला मुख्य कर्तव्य है। उस पर इसका लक्ष्य अनादि से नहीं है। यह किया और यह छोड़ा और यह क्रिया और दान, व्रत, भक्ति, पूजा और यह और वह, ऐसी की ऐसी जो कृत्रिम रागदशा और या संयोगी सत्ता, उसमें अपनापना मानकर अपना पूरा चैतन्यनिधान स्वयं लुटा दिया है। समझ में आया ? इसके लिये यहाँ बात करते हैं।

भाई ! तेरा तो नित्य शुद्ध चिदानन्द कारणपरमात्मा-स्वरूपी जीव (स्वरूप) है। समझ में आया ? शरीर के एक रजकण की जरा-सी कुछ अनुकूलता हो, वहाँ कहता है-मुझे कुछ ठीक मिला। जरा-सी प्रतिकूलता (आवे, तो कहता है) मेरा गया ! हैरान, हैरान मूढ़ होकर, परमात्मा का छिपा रखकर स्वयं पामरता को महिमा दी है। समझ में आया ? पुण्य-पाप के भाव, उनके बन्धन और उनके फल-यह सब पामरता है; यह कहीं वस्तु का स्वरूप नहीं है। पोपटभाई ! ऐसे जहाँ जरा-सा कुछ ठीक शरीर या वाणी या कर्म अच्छे बँधें या भाव ठीक हो शुभ या यह हुआ और यह हुआ... आहाहा ! महान चैतन्यसत्ता का रत्न, हीरा, इसने अपनी श्रद्धा पर में रखी और स्व को लुटा दिया है। कहो, बराबर है ? जुगराजजी ! आहा !

कहते हैं कि भगवान ! तू तो ऐसा है न कि जहाँ तेरी नजर पड़े, वहाँ निधान पूरा चैतन्य पड़ा है। ऐसा का ऐसा पड़ा है। यह राग मैं, यह शरीर मैं, यह योनि मैं, यह कुल मैं, यह निरोगता मैं, ये पैसे (मेरे)-ऐसी मान्यता की आड़ में भगवान पूरा स्वयं अपने को भूल गया है। कहो, ज्ञानचन्दजी ! आहाहा !

कहते हैं, तू तो नित्य शुद्ध चिदानन्द है न, प्रभु ! असली स्वभाव से, कायमी असली मींज तेरा, असली मींज तेरा चिदानन्द शुद्ध है न ! वह तो शुद्ध और ज्ञानानन्द की मींज चैतन्य है। ये प्रकार जितने वर्णन करते हैं, उससे विवेक कर कि ये मेरे नहीं हैं, तो इस विवेकरूपी वृक्ष के फल, अनन्त आनन्द का फल आवे, ऐसा वह विवेक है, उसकी यहाँ बात चलती है। समझ में आया ?

नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूप कारणपरमात्म... अपना स्वभाव ही अनन्त आनन्द और अनन्त शुद्ध और बेहद स्वच्छता, पूरा परमेश्वरस्वरूप ही स्वयं आत्मा है। भगवान, पर्याय में

परमेश्वर हुए, यह (आत्मा) वस्तु से परमेश्वर है। गुप्त और प्रगट का ही अन्तर दिखता है; बाकी कोई अन्तर नहीं है। समझ में आया? यह गुप्त चैतन्य भगवान ऐसा है। है तीसरी लाईन? **नित्य शुद्ध...** शाश्वत् पवित्र, शाश्वत् पवित्र, चिदानन्द, वह पवित्र क्या?-कि ज्ञान और आनन्द तेरा रूप है। ज्ञान और सुख तेरा सागर स्वभाव है, सुखसागर तेरा स्वभाव है।

ऐसा **कारणपरमात्मा...** अर्थात् पूरा वस्तु का स्वरूप। जिसमें से कार्य (अर्थात्) केवलज्ञान के फल पकें, ऐसा जो स्वभाव, उसे इन सब भेदों से विवेक करना (कि) यह नहीं, यह नहीं और यह (मैं हूँ)। ऐसा जो भेदज्ञान, ऐसा जो विवेक का वृक्ष, उसके फल में केवलज्ञान और सिद्धपद का फल पके। समझ में आया? यहाँ मोक्षमार्ग और मोक्ष, दो कहना है न? आहाहा! समझ में आया?

(यह बात) इसने सुनी नहीं। '**श्रुत परिचित अनुभूता**' यह करना, कुछ राग करना और यह करना, ऐसा ही इसने सुना है, ऐसा शास्त्र में कहा है। **श्रुतयरिचतानुभूता सर्वस्थापि कामभोगबन्ध कथा॥** (समयसार, गाथा-४) काम-भोग शब्द से (आशय) मात्र विषय, ऐसा नहीं। अपना शुद्ध आनन्दघन नित्य, ध्रुव आनन्दस्वभाव का विषय छोड़कर, जितना परविषय के शब्द, रूप, गन्ध, रस, स्पर्श, उस पर विषय की वाणी का करना, यह करना, राग करना, यह पुण्य करना, यह पाप करना या यह भोगना, (इस प्रकार) यह पुण्य-पाप के विकल्प को करना और भोगना, यह बात इसने अनन्त काल से सुनी है। समझ में आया? यह इसके परिचय में आ गयी है, यह इसके-अनुभव में-वेदन में भी जहर के वेदन में यह बात इसे आ गयी है, परन्तु भगवान आत्मा '**एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स**' (समयसार, गाथा-४) परमात्मा अखण्डानन्द प्रभु, जहाँ दृष्टि से पूरी दौलत दिखायी दे, ऐसा परमात्मा मैं ही स्वयं हूँ, ऐसी पर से भिन्न की दृष्टि इसने कभी की नहीं। दृष्टि की भूल से भगवान छिपा रहा है। समझ में आया? अब यह कीमत न हो और यह किया और यह करना और यह करना... परन्तु क्या करे? यह (आत्मा) तो ज्ञान, दर्शन और आनन्द का स्वभाव है, वह करे क्या? समझ में आया? क्या शुभ-अशुभभाव को करे? विकार को करे? वह स्वभाव में है? इस शरीर का करे? देश का करे? किसका करे यह? उपदेश का करे? करे क्या यह? आहाहा!

तेरी सत्ता में जो सत्ता अर्थात् अस्तित्व में तो शुद्ध चिदानन्दस्वरूप अस्तित्व में है। उस पर सावधानी करके दृष्टि कर, ज्ञान कर और स्थिर हो, यह तेरा करना है, यह कर्तव्य है। यह तो पहले आ गया न? **णियमेण य जं कज्जं...** समझ में आया? तेरी सत्ता/अस्तित्व के अतिरिक्त पुण्य-पाप, शरीर, वाणी, मन पूरा, उसमें तेरा अस्तित्व जिसमें नहीं, उसका तू किस प्रकार कर सकेगा? समझ में आया?

तेरे अस्तित्व में पुण्य-पाप का भाव भी नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं, परद्रव्य-रजकण नहीं। ये सब परपदार्थ तेरे चैतन्य के महानिधान में कुछ है नहीं। अब नहीं, उसे तू क्या करेगा? बनायेगा मेरे (अपने)? अनन्त काल से परमाणु को अपनेरूप मानता है, परन्तु एक परमाणु इसका कभी हुआ है? शरीर मेरा, रजकण मेरे, यह मेरे... परन्तु कब कहाँ तेरा हुआ, कह? अनन्त काल से पुण्य और पाप के विकल्प हैं, वे मेरे हैं (-ऐसा) माना है। हुए हैं कभी इसके? तन्मय हो गये हैं गुण में? ज्ञान, दर्शन, चैतन्यतत्त्व में वे राग-द्वेष एकमेक हो गये हैं? समझ में आया?

यह तो चैतन्यरस, अनाकुल आनन्द का अविनाशी सागर आत्मा है। इस आत्मा को द्रव्यकर्म और भावकर्म नहीं है। आहाहा! नहीं है, उन्हें (अपने) मानता है तो अपनी सम्पदा को लुटाता है-ऐसा कहते हैं। आहाहा! वे नहीं हैं; इसलिए विभाव परिणति का अभाव होने से। भगवान आत्मा में विभाव अर्थात् विकारी परिणति / पर्याय का अभाव है। यहाँ कहा न? द्रव्यकर्म और भावकर्म के ग्रहणयोग्य, निमित्त ग्रहनेयोग्य, ऐसी विभाव परिणति-विकारी दशा, जिससे भावकर्म हो और द्रव्यकर्म में निमित्त हो, ऐसी विभाव / विकारी परिणति का, प्रभु! तुझमें अभाव है। तेरा भाव यह—ऊपर कहा वह—है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म (बात है), परन्तु ऐसा वीतरागमार्ग ऐसा नोंच डाला है। परम वीतराग परमेश्वर का मार्ग लोगों ने इस प्रकार से अन्य मार्ग को वीतराग मार्ग बना दिया है। ऐ... मोहनभाई! आहाहा

तीन लोक का नाथ आत्मा परमात्मा निर्वाण नाथ-ऐसा कहकर अनुभवप्रकाश (ग्रन्थ) में बुलाया है। निर्वाणनाथ, आहा..हा..! आगे आयेगा। मोक्षस्वरूप पूर्णानन्द, यह ऐसा आत्मा का निर्वाण-मोक्ष का नाथ वर्तमान मोक्षस्वरूप का नाथ है। पर्याय में प्रगट हो, वह अलग बात है। आहाहा!

भगवान! तेरे चैतन्य हीरा की क्या कीमत करना!! सर्वज्ञ भी उसकी कीमत (महिमा) की बात पूरी वाणी में नहीं कह सके-ऐसा चैतन्य भगवान पूर्णानन्द शुद्ध—ऐसा प्रभु (है), उसमें विभाव-विकार पर्याय का अभाव है। विकारी पर्याय की सत्ता / अस्तित्व पर्याय में—अंश में है; स्वभाव में अस्तित्व नहीं, मौजूदगी नहीं; इसलिए उसे जन्म नहीं—भगवान आत्मा जन्मता ही नहीं। आहाहा! जन्म, उस राग की परिणति और उसका कर्म ग्रहण इतना पर्यायभाव चैतन्यसत्ता में नहीं है; पर्याय में है, सत्ता में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? उसके कारण आत्मा को जन्म ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

दृष्टि जहाँ चैतन्य के महास्वभाव पर पड़ी, ऐसा भगवान चैतन्य महारत्न, उसमें विकार

की पर्याय का अभाव है, तो विकार से ग्राह्य कर्म... उस विकार की परिणति से ग्राह्य क्या? द्रव्यकर्म—भावकर्म ग्रहण के योग्य, वापस। ऐई! भाषा देखो न! भावकर्म वस्तु में कहाँ है? खड़ा करता है। इसलिए ग्रहण के योग्य विकार परिणति का ही उसमें अभाव है। आहाहा! क्या कहते हैं? समझ में आया? इस भगवान आत्मा वस्तु में विकारी पुण्य-पाप के भाव को पकड़ना, ऐसी विकारी परिणति का ही चैतन्य में अभाव है। आहाहा! समझ में आया?

पुण्य-पाप की वृत्तियों को पकड़ना, उन्हें पकड़ना कि 'यह मेरी'-ऐसा चैतन्य सत्ता में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा इसकी अन्तर्मुख दृष्टि में आवे, तब यह सब अस्तित्व अन्तर में नहीं है-ऐसा भासित हो, तब इसे पर है, उसका ज्ञान रहे (कि) मेरी सत्ता में वह है नहीं। इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! उसने सत्यदर्शन किया और सत्यज्ञान किया। क्योंकि परम सत् में वह (पर, विकार) नहीं है और अंश में है, वह इसमें (स्वभाव में) नहीं है-ऐसी दृष्टि की, तब इसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ। समझ में आया? पीछे स्थिरता और उसमें पीछे। वह भी जितना इसमें नहीं, ऐसे दर्शन ज्ञान किये, उतना साथ में स्थिर भी हुआ है। आहाहा! गजब बात, भाई! ऐ.. छगनभाई! नये लोगों को ऐसा समझ में आता है या नहीं? कभी आवे सुनने (फिर कहे) अब यह क्या कहते हैं? लो!

भाई! यह तो परम सत्य परमेश्वर ने-त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ देवाधिदेव ने समवसरण में धर्मसभा में सौ इन्द्रों की उपस्थिति में, पूरे लोक के स्वामी, अर्द्ध देवलोक के स्वामी, दक्षिण के शकेन्द्र, उत्तर के ईशानेन्द्र ऐसे-ऐसे चौसठ, सौ इन्द्रों की उपस्थिति में भगवान की-वीतराग की ध्वनि ऐसी आयी थी।

भाई! तू चैतन्य शुद्ध रत्न है न, प्रभु! तेरी प्रभुता में यह विकार, विकल्प और जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव को पकड़ना-ऐसा भाव तेरे स्वभाव में नहीं है। आहाहा! यह मुद्दे की रकम की बात (होवे) नहीं और ऊपर के पत्ते तोड़ने की बातें (करे), यह किये प्रौषध और यह की सामायिक और... किसकी सामायिक और प्रौषध? तुझे आये कहाँ से? अभी सम्यग्दर्शन में चैतन्यरत्न पर से निराला ऐसा (है, ऐसा भान आया नहीं), जिसमें स्थिरता से शान्ति होती है, अर्थात् चारित्र होता है, उस चीज़ की दृष्टि की नहीं, दृष्टि में दौलत को देखी नहीं। दौलत देखे तो वहाँ खोदने का मन हो। खोदने का समझे न? निकालना।

इसी तरह भगवान आत्मा एक सैकेण्ड के असंख्यभाग में विकारी अवस्था की पर्याय में अस्ति है, हों! विकार की-उदयभाव की अस्ति है। वस्तु के स्वभाव में उसे ग्रहने की वस्तु

के स्वभाव में योग्यता ही नहीं। ऐसा शुद्ध चैतन्यरत्न, उसे अन्दर दृष्टि में लेना और यह (विकार) मुझमें नहीं है-ऐसा विवेक करने का नाम मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! लूट लिया, कहते हैं। एक तो कुगुरु ने लूटा। स्वयं लुटाया है और उसमें इसे ऐसे मिले कि तेरा ऐसा होगा, हों! इससे ऐसा होगा। ऐ.. जुगलराजजी! आहाहा! अब ऐसा होगा, पाँच लाख खर्च कर न, कल्याण हो जाएगा! मन्दिर बना तो कल्याण हो जाएगा! यह दया, दान कर तो कल्याण हो जाएगा! मार डाला, गला पकड़कर नरक में इकट्ठे ले गया; चल, हम जाते हैं, तू भी वहाँ चल। समझ में आया?

जहाँ सम्यक् चैतन्यरत्न की दृष्टि नहीं और जहाँ विकार से धर्म मनाया है, उस मिथ्यादृष्टि के फल में परम्परा से निगोद है। समझ में आया? आहाहा! और समयग्दर्शन के फल में परम्परा से केवलज्ञान है। आहाहा! इस प्रकार अन्तर (में) जिसे स्वयं की ही कीमत न पड़े, अब वह कीमत न पड़े (महिमा न आवे), वह दमहीन किसी को (महिमा) दे ही। आहाहा!

जन्म नहीं, जरा नहीं। भगवान आत्मा चैतन्य हीरा, उसमें वृद्धावस्था कैसी? वृद्धावस्था तो शरीर की है। परन्तु वृद्धावस्था को मैं ग्रहूँ, ऐसी योग्यता इसमें (आत्मा में) नहीं है। आहाहा! वृद्धावस्था मुझे, मुझे-ऐसी योग्यता ही उसमें नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा चैतन्यरत्न शुद्ध भगवान परमात्मा स्वयं (है), उसे दृष्टि में लेने से उसमें यह जरा और मरण है नहीं। मरण नहीं। भावकर्म को पकड़ने की योग्यता (अर्थात्) ग्रहण के योग्य वह है, इसका अभाव है। उसे मरण नहीं, उसे यह रोग नहीं। कहो, जयचन्दभाई! हाय.. हाय..! वहाँ पकड़ा गये हैं।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने ऐसा आत्मा देखा, वैसा तू आत्मा (है-ऐसा) उनने भी तुझे देखा। उनने तुझे देखा कि तू तो शुद्ध आनन्दकन्द आत्मा है। वह तू आत्मा है, ऐसे आत्मा में तू देख; भगवान ने देखा, वैसा तू देख कि उस आत्मा में रोग नहीं। आहाहा! शोर मचाता है न? समझ में आया? वह तो धूल की दशा में रोग है। यह धूल ही उसमें नहीं है, फिर आत्मा में रोग कहाँ से आया? समझ में आया? यहाँ तक तो कल आया था। इतना थोड़ा अधिक स्पष्ट किया।

अब (कहते हैं), उसमें शोक नहीं है। समझ में आया? यह दु:ख-शोक हो। लड़का मर जाए, लक्ष्मी चली जाए, उसमें सुविधा हो, वह चली जाए! पहले से असुविधा हो, उसे दिक्कत नहीं, परन्तु सुविधा हो और (वह) जाए। मूर्ख है या नहीं? सुविधा थी कब तुझे? ऐ.. मूलचन्दभाई! भाई! तुम बातें करो, परन्तु वह आये, वह समाये, परन्तु जाए, वह समाये नहीं।

बनिये ऐसी बातें करते हैं। चिमनभाई! धूल में भी अनुभव नहीं, सुन न! बापू! कठिनाई, दिक्कत आयी हो, उसे खबर पड़े। कठिनाई भी स्वरूप में ही नहीं, आवे कहाँ से? किसने कहा तुझसे ऐसा? स्वरूप में दिक्कत छूती नहीं; स्वरूप-भगवान आत्मा को कठिनाई स्पर्श नहीं करती। कहाँ से आयी तुझे कठिनाई? समझ में आया? माना है। है क्या? कहाँ थी? भ्रमणा से माना है कि मैं रोगी और मैं यह। वह तो जड़ में है, तुझे क्या? तुझमें है वह?

श्रोता : वह भ्रमणा रखनी या निकाल डालनी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसलिए बात चलती है? समझ में आया? आहाहा! अरे! अपना राजा छोड़कर सभी बातें (की)। स्वयं परमात्मा की दृष्टि छोड़कर, उसका माहात्म्य छोड़कर, उसकी महिमा छोड़कर; यह रोग मुझे और यह निरोगता मुझे और मैं सधन हूँ और मैं निर्धन हूँ... मैं वकील हूँ और मैं पण्डित हूँ और मैं मूर्ख हूँ और मैं व्यापारी हूँ.. मूढ़ है। यह एक भी नहीं है, सुन न!

श्रोता : मूढ़ नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वरूप में नहीं। मूढ़ ने माना है, मूढ़ हूँ-ऐसा माना है। उसकी ग्रहण की शक्ति अन्दर में नहीं है। अद्धर का अद्धर लटकाया है। आहाहा! क्यों ज्ञानचन्दजी! बैंक के मैनेजर कहलाते हैं, इसके ऐसे कहलाते हैं.. दो-दो हजार का वेतन। कहाँ गया? कोठारी आया या नहीं? नहीं आया? खुशालभाई नहीं आये। समझ में आया? अरे! अरे! परन्तु मार डाला, कुचल डाला इसे! दस हजार का जहाँ वेतन और बीस हजार का वेतन महीने में (आता हो)।

श्रोता : किसे...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे। (स्वयं) स्वरूप के भान में नहीं; यह मेरे और मुझे हुआ (-ऐसी मान्यता में) इसने मारकर कुचल डाला। चैतन्य परमेश्वर को रागदोली दिया। क्या कहा? शब्द आया नहीं बराबर? रागदोल्यो!-यह काठियावाड़ी भाषा है। ऐई! भगवान को विकार में रागदोल्यो। बहुत बढ़िया मेसूर चार शेर घी पिलाया हुआ ऐसा जालीवाला हो, वह लड़का दस्त किया हो और उसे छुआकर खाये, ऐसा। इसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रस, उसकी दृष्टि छोड़कर और यह विकल्प और राग, और शोक को मेरा (मानना), यह विष्ठा को छुआता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। उस विष्ठा में आत्मा को रगदोली (गन्दा कर देना) डाला। आहाहा! आहाहा! बात सुनना कठिन पड़े।

भगवान! तू तो भगवान है। यहाँ तो परमेश्वर बुलाते हैं। समझ में आया? परमेश्वर बुलाते हैं कि सीखना हो तो मेरे पास आ। तू भगवान है। भगवान ऐसा सिखाते हैं। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ सौ इन्द्र के पूजनीय प्रभु कहते हैं, बाल-गोपाल, शरीर, स्त्री-परिवार, शरीर को मत देख। अन्दर भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ (बिराजमान है), उसे विकार की वृत्ति और शोक-बोक है नहीं। 'यह शोक मुझे है'-ऐसा करके चैतन्य के रत्न को तू विष्ठा में मत गन्दा मत कर। आहाहा! इसने आत्मा के माहात्म्य के गीत सुने नहीं। यह वह कौन है ? समझ में आया ?

एक बड़ा राजा आया हो और इसे कीमत (महिमा) करना न आवे तो क्या (हो) ? लो! समझ में आया ? भावसिंहजी एक जगह गये थे न ? किसी ने रोटी और दही दिया। वह मानो कि साधारण मनुष्य है। (इन्होंने जाकर कहा कि) मुझे खाना है। उसे खबर नहीं कि यह दरबार है। उन्होंने वस्त्र ऐसे (साधारण) पहिने हुए थे। रोटी और दही दिया। (तब दरबार ने कहा) तुम किसी समय मेरे देश में आना। तुम कौन हो ? कि मैं गाँव का दरबार हूँ। हैं। अरे! आप पहले बोले नहीं। आपको जैसे-तैसे बैठाया। यह रोटी और दही बेचारे गरीब व्यक्ति के यहाँ होवे न ? दही का गोरडुँ भरा हो। जंगल में शिकार में जाते न! (दरबार) बहुत प्रसन्न हुए, (फिर कहा), मेरे गाँव में आना। फिर गाँव में आया, तब आदर दिया था। परन्तु पहले तो पहिचाना नहीं कि यह भावनगर दरबार हैं।

इसी प्रकार यह भावनगर दरबार चैतन्य भाव का नगर है आत्मा भगवान। इसे पहिचाने बिना ये पुण्य और पाप और शोक में रगदोली दिया! यह मैं.. यह मैं.. यह मैं.. श्रद्धा के विश्वास में विपरीत में मार डाला चैतन्य के जीवन को। समझ में आया ? दृष्टि से मोक्ष है और दृष्टि से निगोद-दो बात है। आहाहा! (यहाँ) कहते हैं कि भगवान आत्मा में शोक नहीं है। प्रभु! शोक कहाँ से आया ? जिसका चैतन्यरत्न चमकते ज्ञान-दर्शन और आनन्द से तेज मारते रत्न जैसे किरणें हैं। समझ में आया ? वहाँ कोयले का कण कहाँ से आया ? भगवान! ऐसे रत्न एक साधारण होवे ऐसे हजार पासा का, पासा में ऐसे कान्ति मारता (हो), उसमें यह कोयले का कण कहाँ से आया ? समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त गुण के पासा से शोभता-ओपता प्रभु है। अनन्त गुण के पासा से शोभित ऐसे आत्मा को शोक नहीं है। यह समझ में आया ? इसमें कोयले का कण आया कहाँ से ? पोपटभाई! हम तो भाई दु:खी। कहीं डाली नजर पहुँचती नहीं और ऐसी बातें करे। छह महीने से हैरान होते हैं। कोई और चार वर्ष से (बोलता है)। कितने वर्ष हुए ? साढ़े तीन वर्ष।

एक महिला थी, साढ़े तीन वर्ष से बेचारी ऐसे उल्टी पड़ी है। बहुत रोग-पीड़ा है। अरे! महाराज! (वहाँ) गये थे। पोरबन्दर (संवत्) १९८७ की बात है। सीधे सोया ही नहीं जाये।

ऐसे पीड़ा... पीड़ा.. पेट में कुछ होगा। साढ़े तीन वर्ष से बहुत पीड़ा। हाय.. हाय.. हम पीड़ित हैं, मर जायेंगे। यहाँ भगवान कहते हैं कि पीड़ा तो तेरे स्वरूप में गन्ध में भी नहीं है। यह भी तू कहाँ से लाया ? उस हीरा में कोयला नहीं होता। समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा के पूर में पड़ा हुआ तत्त्व, कहते हैं कि उसे शोक-बोक है नहीं। पर्याय में शोक है, तथापि वस्तु में नहीं है, ऐसे अस्ति-नास्ति करनी है।

अब **चार गति के जीवों के कुल तथा योनि के भेद जीव में नहीं है...** यह चौरासी लाख उत्पन्न (उत्पत्ति के) स्थान। चौरासी लाख योनि कहते हैं न ? उत्पत्ति स्थान-जीव की उत्पत्ति स्थान चौरासी लाख प्रकार के हैं और उसमें उत्पन्न हुए शरीर के आकृति के कुल एक सौ साढ़े सत्तानवें लाख करोड़ हैं। जैसे कि छाँड है न, छाँड़ ? उसमें जीव उत्पन्न होते हैं न जीव ? यह छाँड़ है न छाँड़ ? छाँड़ समझते हो ? गोबर, गोबर। थोड़ा-थोड़ा अभ्यास तुम यहाँ आकर (करो)। छाँड़ अर्थात् गोबर... छाँड़ है न ? उस छाँड़ को उत्पत्ति स्थान कहा जाता है और उसी-उसी में उत्पत्ति स्थान के बहुत भंग होते हैं।

एक सेकेण्ड के बाद उसके वर्ण, गन्ध, रस बदल जाते हैं, एक सेकेण्ड के बाद बदल जाते हैं, सेकेण्ड के बाद बदल जाते हैं। वे जितने उत्पत्ति के स्थान में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श बदलते हैं, उतने योनिस्थान कहने में आते हैं और उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के आकारवाले जो पोरा, जीवांत, लट, उत्पन्न होती है, उसे कुल कहने में आता है। ये सब योनि और कुल भगवान आत्मा में है नहीं। चौरासी लाख की योनि (जीव को) ?- कि नहीं। भगवान आत्मा में कहाँ है ! भाई ! चौरासी लाख में जन्मा है न ? ऐई ! सुन न ! वह तो एक समय की पर्याय की योग्यता से वह की वह सब बात है। वस्तु के स्वरूप में योनि में उत्पन्न स्थान वे आत्मा में है नहीं। आहाहा !

यह तो केवलज्ञान की उत्पत्ति का स्थान है। भगवान तो केवलज्ञान की सिद्धपद के पवित्रता की पर्याय का उत्पत्ति स्थान है। यह कुल की, योनि की उत्पत्ति स्थान भगवान आत्मा में नहीं है। आहाहा ! जीवों के कुल... कुल समझे ? कुल अर्थात् यह नहीं, हों ! बाप, दादा की यह बात नहीं है। कुल अर्थात् जो पानी आदि दुर्गन्धित हों, उसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श बदले, वे बदलते जायें वैसे-वैसे उसकी उपजने की योनि बदलती जाती है। ऐसे-ऐसे दुनिया में चौरासी लाख योनि के स्थान भगवान ने देखे हैं। उसमें जो जीवांत उत्पन्न होती है भिन्न-भिन्न आकारवाले पोरा, जीवांत,... ऐसी आकृति के कुल के उपजें, उसे कुल कहा जाता है। उस कुल की जाति एक सौ साढ़े सत्तानवें लाख करोड़ है। देखो !

पृथ्वीकायिक जीवों के बाईस लाख करोड़ कुल हैं... पृथ्वी है न, पृथ्वी, एकेन्द्रिय जीव है। है अवश्य, ऐसा सिद्ध करते हैं, हों! पर्याय में पृथ्वीकाय के जीव, वे उपजने की योग्यता उसकी पर्याय में है, वस्तु के स्वभाव में नहीं। देखो! यह बात सर्वज्ञ भगवान ने देखी हुई वह बात कहते जाते हैं। ऐसे अन्यमति लोग बात करे, चौरासी लाख, परन्तु चौरासी लाख क्या? इसकी उन्हें खबर नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं, पृथ्वी के जीव होते हैं न? एक कण में पृथ्वी (होती है), वह सचेत खारी हो, संचल है,... एक कण में असंख्य जीव हैं, उन असंख्य जीवों में उनके जीव के शरीर के आकार से उपजे उसे कुल कहा जाता है। पृथ्वी के ऐसे बाईस लाख करोड़ कुल हैं।

अप्कायिक जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं;... पानी की बूँद है न? एक बूँद पानी में जीव उपजने के सात लाख करोड़ कुल हैं। उनके जीव की योग्यता के कारण। **तेजकायिक जीवों के तीन लाख करोड़ कुल हैं;...** सर्वत्र करोड़ लेना। करोड़ लेना, करोड़। अग्नि के इतने तीन लाख (करोड़ कुल हैं) अग्नि के जीव हैं और तीन लाख (करोड़) उपजने के स्थान हैं। वस्तु द्रव्य चैतन्यरत्न में वह है नहीं। आहाहा! पर्याय के अंश में है, वस्तुदृष्टि में नहीं, चैतन्य शुद्धभाव, भगवान शुद्धभाव में वे उत्पत्ति स्थान है ही नहीं। कहाँ उपजे? समझ में आया?

वायुकायिक जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं;... वायु, यह हवा होती है न? वे सब जीव हैं। **वनस्पतिकायिक जीवों के अट्ठाईस लाख करोड़ कुल हैं;...** वनस्पति है न यह? समझ में आया? **द्वीन्द्रिय जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं;...** दो इन्द्रिय है न? लट। उसे उपजने के यह गोबर, सड़ा हुआ दूध,... सड़ा हुआ होवे न, उसमें उपजे। यह उसके प्रकार हैं। जीव उपजे उसके कुल हैं।

त्रिन्द्रिय जीवों के आठ लाख करोड़ कुल हैं; चतुरिन्द्रिय जीवों के नौ लाख करोड़ कुल हैं; पंचेन्द्रिय जीवों में जलचर जीवों के साढ़े बारह लाख करोड़ कुल हैं; खेचर जीवों के बारह लाख करोड़ कुल हैं; चार पैरवाले... (गाय-भैंस) **जीवों के दस लाख करोड़ कुल हैं; सर्पादिक पेट से चलनेवाले जीवों के नौ लाख करोड़ कुल हैं; नारकों के पच्चीस लाख करोड़ कुल हैं;...** नारकी हैं असंख्य परन्तु उनके कुल की जाति के शरीर के आकार के इतने प्रकार हैं। **मनुष्यों के बारह लाख करोड़ कुल हैं और देवों के छब्बीस लाख करोड़ कुल हैं। कुल मिलकर एक सौ साढ़े सत्तानवें लाख करोड़ (१९७५०००,०००,०००,००) कुल हैं।** ये आत्मा में नहीं हैं। हाय.. हाय..! गजब बात। समझ में आया?

अब योनि। **पृथ्वीकायिक जीवों के सात लाख योनिमुख हैं;...** पृथ्वी के जीव जिस स्थान में उपजे, उनके रंग, गन्ध, रस, स्पर्श की योग्यता की समानता हो, उसे एक योनि; फेरफार उसकी दूसरी योनि। ऐसे-ऐसे पृथ्वी के सात लाख योनि अर्थात् उपजने के स्थान हैं। वे भगवान आत्मा में नहीं हैं। आहाहा! यह कुल की बात नहीं। हों! कि यह पारेख के कुल में जन्मा, दोशी के कुल में जन्मा या अमुक के कुल में (जन्मा)। वह कुल तो है ही नहीं, वह तो व्यर्थ की कल्पना दी है कि यह अमुक कुल का है और दोशी का है और...

अप्कायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं;..... पानी के जीव हैं न, वे उपजने के स्थान इतने हैं। वैसे अग्नि के सात लाख योनि अर्थात् उपजने के स्थान हैं। वैसे वायु के। इन नित्यनिगोदी जीवों के सात लाख उपजने के स्थान हैं। नित्य निगोद जो कभी निकले नहीं उन्हें उसमें उपजने के सात लाख योनि स्थान हैं। **चतुर्गति (चार गति में परिभ्रमण करनेवाले, अर्थात् इतर) निगोदी जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; वनस्पतिकायिक जीवों के दस लाख योनि मुख हैं;...** वनस्पति प्रत्येक (अर्थात्) यह पीपल, नीम। **द्वीन्द्रिय जीवों के दो लाख योनि मुख हैं;...** लट उत्पन्न होने के (स्थान)।

त्रीन्द्रिय जीवों के दो लाख योनि मुख हैं; चतुरिन्द्रिय जीवों के दो लाख योनि मुख हैं; देवों के चार लाख योनि मुख हैं; नारकों के चार लाख योनि मुख हैं; तिर्यंच जीवों के चार लाख योनि मुख हैं; मनुष्यों के चौदह लाख योनि मुख हैं। (कुल मिलाकर ८४,००,००० योनि मुख हैं।) यह जीववस्तु चिदानन्द भगवान में ये कुछ हैं नहीं। एक समय की पर्याय में इतनी योग्यता उस जीव ने कभी ग्रही नहीं। पर्याय में इतना है। जीव ने कभी अन्दर द्रव्यस्वभाव में प्रवेश किया नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे कुल और योनिस्थान भगवान आत्मा नित्य शुद्ध चिदानन्दस्वरूप में नहीं है। ऐसा जो शुद्धभाव वह अन्तर में दृष्टि में लेने योग्य है कि जिससे उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान हो, जिससे उसके फल में उसे मुक्ति हो। समझ में आया?

चौदह जीव के स्थान हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त है। लोक में सूक्ष्म जीव है। पूरे लोक में भगवान ने सूक्ष्म देखे हैं। **सूक्ष्म एकेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त;...** किसी को पूरी पर्याप्ति न बँधी (हो), वह जानने की बात है। **स्थूल एकेन्द्रिय, पर्याप्त...** यह स्थूल है। यह बाहर पृथ्वी आदि दिखती है वह। **द्वीन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; त्रीन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; चतुरिन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; असंज्ञी पंचेन्द्रिय,...** मनरहित **पर्याप्त और अपर्याप्त; संज्ञी**

पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त—ऐसे भेदोंवाले चौदह जीवस्थान हैं। जीव के ऐसे प्रकार हैं, वे जीव चैतन्य धातु में नहीं हैं। ऐसे सब प्रकार पर्याय के अंश में योग्यता है परन्तु वस्तु द्रव्यस्वभाव चिदानन्द मूर्ति आनन्दकन्द में वे हैं नहीं। जीव के स्थान जीव में नहीं हैं।

श्रोता : गुणस्थान जीव के कहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे जीव के कहे वह पर्यायनय से, व्यवहारनय से। समझ में आया? व्यवहारनय से पर्याय में हैं। एक-एक समय की अवस्था है, बस! इतनी बात, हों! वस्तु में, त्रिकाल में नहीं है। जिसमें नहीं, उसकी दृष्टि करने का नाम सम्यग्दर्शन है। है, उसकी दृष्टि तो अनादि से है, वह तो पर्यायबुद्धि कहते हैं। समझ में आया? ऐसी बात! जैनदर्शन में वीतराग में ऐसा मार्ग! रात्रिभोजन न करना हो, कन्दमूल न खाना, यह न खाना, ऐसी बात हो। ऐ.. चन्दुभाई! भगवान! सुन तो सही, बापू! यह खाये कौन और पीये कौन? यहाँ तो भगवान वीतराग मार्ग में एक तत्त्व की पर्याय दूसरे तत्त्व कर सके, यह तीन काल में नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार से अर्थात् वह तो बोलनेयोग्य है। करे कौन व्यवहार से? समझ में आया?

यह चौदह जीव के स्थान जीव में नहीं हैं। प्रकार पड़े न? भेद पड़े न? यह दो इन्द्रिय और तीन इन्द्रिय और चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। एक समय की अवस्था की योग्यता में भले हो; वस्तुस्वभाव में उनका प्रवेश नहीं है। एक समय का भगवान ऊपर कहा था न? नित्य शुद्ध चिदानन्दरूप कारण प्रभु भगवान आत्मा सिद्धपद की पर्याय का कारण-सिद्धपद की पर्याय का कारण आत्मा, वह ऐसों का कारण नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं, देखो! कारण नहीं हो सकता, कहते हैं। ओहोहो! समझ में आया?

संज्ञी और असंज्ञी। हम संज्ञी हैं, वह कहे कि संज्ञी हैं, इसलिए हमें केवलज्ञान होने की योग्यता है। संज्ञी के कारण नहीं, संज्ञीपना वह जीव के स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा! यह आत्मा है, उसमें से केवलज्ञान होता है। संज्ञीपना है, इसलिए होता है, मन है, इसलिए होता है (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? आहाहा! कली-कली खोलकर रख दी है। भाई! तू भगवान है, बापू! तेरा भगवान महिमावन्त पदार्थ में जीव के ऐसे चौदह प्रकार पड़े न, समय के, वे वस्तु में कहाँ हैं; वे तो पर्याय में-अवस्था में खड़े किये हुए भाव हैं। नहीं थे में से खड़े किये हैं।

संज्ञी तो हुए हैं और इसलिए संज्ञीपना अपने को मोक्ष में कारण होगा, धर्म प्राप्त करने का कारण होगा! - कि नहीं; धर्म प्राप्त करने का कारण यह स्वयं आत्मा होता है। ऐसे भेद धर्म के कारण में नहीं होते, ऐसा कहते हैं।

श्रोता : दूसरी जगह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी जगह हो। व्यवहार कहे नहीं ? निमित्त से कहे। ऐसा वहाँ था, वहाँ आगे उससे बुद्धि हटाकर स्वभाव में आया है। उस समय बुद्धि कहाँ से हटायी है, यह बताने को बात करते हैं। आहाहा! यह तो कटोकटी का खेल हो न, जब व्यक्ति को नहीं होता, देना हो और ऐसे (प्रसंग) हों तो कटोकटी के खेल में मनुष्य को जहर पीने का मन हो जाता है, लो! अरे! इज्जत कैसे रहे ? इज्जत कैसे रहे ? ऐसे बेचारा झपट्टे मारता है, हों!

ऐसे यहाँ कहते हैं, बापू! ऐसा चैतन्यरत्न, उसमें कटोकटी के खेल में तू ऐसा मानेगा (तो) तूने जहर पीने का प्याला पीया। छूटने के मार्ग का रास्ता यह नहीं है, मैं तो चैतन्यरत्न हूँ। समझ में आया ? आहाहा! यह तो जरा कुछ हो तो (कहे) मैं ऐसा हुआ, मैं ऐसा हुआ। इसकी मूढ़ता भी दो माप की। अनुभव प्रकाश में कहा है न ? भाई! यदि अविद्या अकेली होती, तब तो अविद्या का जोर नहीं चलता, भाई! ऐसा कहा। अविद्या अर्थात्, अविद्या अर्थात् कर्म आदि, हों! अकेली कर्म आदि चीज़ हो तो उसका जोर इतना नहीं। कि अविद्या... परन्तु यह तो तू स्वयं शुद्ध में भी बड़ा और अशुद्ध में भी बड़ा। विपरीतता में भी बड़ा और सुलटाई में भी तू बड़ा है। अकेला आवरण होता न तो उसकी शक्ति इतनी नहीं होती कि आत्मा को निमित्त होने में ढाँक दे। परन्तु तुझमें अशुद्ध शक्ति भी बड़ी। पर्याय में उल्टा पड़ा इतना मान, जिसमें नहीं उसे तू मान। आहाहा! समझ में आया ?

जिसकी सत्ता में, अस्तित्व में राग नहीं, विकल्प नहीं, योनि नहीं, अवतार नहीं, कुल नहीं, पर्याप्त-अपर्याप्त नहीं। नहीं है, उसे माने, वह तेरी भ्रमणा है। समझ में आया ? जाननेयोग्य है, जाननेयोग्य है। जाननेयोग्य तो ज्ञान का विषय है। स्व-पर को जाने अर्थात् जानने का विषय हो गया। समझ में आया ?

क्षण में तोड़कर केवल (ज्ञान) ले!! केवलज्ञान का कन्द है। वहाँ कहाँ इसे काल माँगता है ? अन्दर नजर कटाक्ष किया, (वहाँ) एकदम ऐसा किया हलहल ज्योति चैतन्य केवलज्ञान (प्रगट हुआ)। लकड़हारे का केवली एक समय में! कहो, समझ में आया ? परन्तु इसे भरोसा नहीं आता कि मैं इतना हूँ। नजर जहाँ डाले वहाँ बड़ा है, उसकी खबर नहीं। ऐसी श्रद्धा करने की दरकार भी नहीं करता। यह किया और छोड़ा और लिया और दिया, धर्म के नाम पर क्रियाकाण्ड में उलझ गया। निवृत्त नहीं, वह पाप में उलझा। कमाना और भोग, खाना-पीना, इसमें (उलझ गया)। निवृत्त हुआ, तब वापस इसमें उलझा-यह किया और यह किया,

यह किया। यह करना, करना जो स्वरूप में राग का (करना)। नहीं है, उसे यही चालू करना, करना। समझ में आया?

श्रोता : यह उलझना नहीं चाहता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उलझना नहीं चाहता था (ऐसा) नहीं है। अपने आप से सुलझा है, यह उत्साह करके उलझा है। समझ में आया? आहाहा! अनुभव प्रकाश में दृष्टान्त दिया है। एक पत्थर पुरुष के आकार से बड़ा पत्थर था। इसलिए वहाँ जाकर कहे, तू क्यों यहाँ खड़ा है? अन्धेरा था। ऐसे छूने गया तो गिरा। भाईसाहब मैं पराजित हुआ, उठ। परन्तु कहाँ उठे। वह तो पत्थर था। जहाँ उजाला हुआ, वहाँ (खबर पड़ी कि) यह तो पत्थर था। इसी प्रकार ऐसी की ऐसी मूर्खता अनन्त काल से की है। जड़ के साथ लड़ाई की, भाईसाहब, भाग भाईसाहब। ऐई! शरीर तू हैरान करता है, हों! रोग तू हैरान करता है, हों! निर्धनता तू हैरान करती है, हों! परन्तु वह तो जड़ है। जड़ हैरान करे नहीं और सुखी भी करे नहीं। कहाँ से लगाई है तूने यह? फिर जहाँ खबर पड़ी की मैं तो चैतन्य हूँ, यह तो सब जड़ हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

अब चौदह मार्गणास्थान नहीं है, भगवान को, ऐसा कहा, देखा? है न अन्त में? ये सब भगवान परमात्मा... वह गोम्मटसार में व्यवहारनय से बात की है। व्यवहारनय से जीव ने गति और है न? देखो! **गति...** ये चार गति अपने आ गया है। नारकत्व और उसमें आ गया था न? पहले ही आ गया था। ये चार गति की पर्याय की योग्यता द्रव्यस्वरूप में नहीं है। वह पर्यायदृष्टि छोड़कर वस्तुदृष्टि करनेयोग्य है। उसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है। गति में चार गति ही जीव में नहीं है। आहाहा! गति होवे तो छूटे कहाँ से? एक पर्याय में खड़ा किया हुआ विकल्प वस्तु में नहीं है। गति आत्मा को मोक्ष का कारण नहीं है। मनुष्यगति मोक्ष का कारण नहीं है। अरे.. अरे..! मनुष्य भव मिला हो तो.. नहीं, नहीं। वह कारण प्रभु भगवान है, वह मोक्ष का कारण है, मनुष्यगति (मोक्ष का कारण) है नहीं। आहाहा!

इन्द्रिय... परन्तु यह कोड़ी-कोड़ी का भिखारी जहाँ हो, वहाँ यह था न तो ठीक है, यह हो तो ठीक है। मनुष्यगति हो न तो मुझे धर्म हो। भिखारी है। जहाँ चैतन्य चक्रवर्ती पड़ा है, वह कुछ माँगता नहीं यह, उसे इसकी जरूरत नहीं है। ऐसे चक्रवर्ती चैतन्य के भान बिना यह गति हो तो ठीक पड़े, ऐसा हो तो ठीक पड़े, पर्याप्त हो तो ठीक पड़े! कोड़ी-कोड़ी का भिखारी! चक्रवर्ती का राज मेरे घर में है, वह भूल गया। समझ में आया?

छह खण्ड का चक्रवर्ती। आता है न? हरिषेण का क्या आता है? हरिषेण अकेला जाता

है न? उसकी माँ का वह डालने (जाता है)। उसे खबर है कि मैं चक्रवर्ती होनेवाला हूँ, चक्रवर्ती होनेवाला हूँ। भले अभी अकेला हूँ। समझ में आया? आती है न वह कथा, नहीं (आती)? चक्रवर्ती होनेवाला हूँ, छह खण्ड का स्वामी होनेवाला हूँ। मेरी माँ के वीतराग के जैनरथ को पहले चलानेवाला हूँ। भगवान का रथ पहले चलेगा। (माँ की) सौत कहे, मेरा चलेगा, यह कहे कि मेरी माँ का चलेगा। बाहर में भी इतना पुण्य। यह चक्रवर्ती पद भगवान आत्मा है। मेरा आनन्दकन्द का शुद्ध चैतन्य का रथ चलेगा। राग के रथ और गति के रथ मेरे पास हैं नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? ऐ... पोपटभाई! आहाहा!

सुना सब... मानो फूटे कान। नहीं आता? कथा सुनकर फूटे कान, तो भी न आया ब्रह्मज्ञान। सब विपरीत बातें सुनी सब। आहाहा! ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो। श्रीमद् ने कहा है, हों! प्रतिदिन तुम छह काय के जीव और ऐसे और (वैसे बात करते हो परन्तु) वह समकित की बात तो लाओ। महाराज! वह तो बात करो कुछ। यह श्रीमद ने कहा है। अब यह तो तुमने बहुत बात की, हों! बहुत वर्ष हुए हमें। पचास-पचास वर्ष से सुनते आये हैं। छह काय की दया पालो और अमुक, अमुक। अब समकित का कुछ करो न! उसे (आत्मा का) भान नहीं होता, क्या करे बेचारा? जो मूल चीज़ है, जिससे निहाल होने का रास्ता, वह तो पहले बताओ। यह तो ठीक किया। यह छोड़ा और यह तो कुछ शुभभाव में हो, ठीक। यह तो सुना अब छोड़ों न, आज समकित की बात तो करो। पोपटभाई!

यह अमरचन्दभाई कहते थे, हों! लालभाई के पिता। समकित कैसा होगा? परन्तु जवाब कुछ दे नहीं। क्या होगा इसमें? समकित सब ऐसा-ऐसा कहते हैं, समकित चीज़ तो कुछ दूसरी होनी चाहिए। आहाहा! यह गति आत्मा में नहीं है, यह इन्द्रिय नहीं है, पाँच इन्द्रिय की खण्ड-खण्ड की योग्यता भाव, वह भी पर्याय के हैं, द्रव्य में नहीं। जहाँ नहीं, वहाँ नजर डालने से सम्यग्दर्शन होता है। इन्द्रिय के खण्ड-खण्ड पर नजर डालने से एकत्वबुद्धि होती है। यह मैं इतना (माने) तो मिथ्यात्व होता है। पंचेन्द्रियपना हो तो ज्ञान पावे। पंचेन्द्रिय होवे तो ऐसा होवे। अरे! सुन न अब। पंचेन्द्रिय यह जड़ तो आत्मा में नहीं परन्तु पंचेन्द्रिय का जानने का जो खण्ड-खण्ड उपयोग है, वह भी द्रव्य में नहीं है। आहाहा!

पूर्व के पुण्य किये हों, मनुष्यदेह मिले, कान मिले, सुनने का मिले तो धर्म होता है या नहीं? यहाँ कहते हैं कि नहीं। यह भगवान आत्मा कारणपरमात्मा है तो धर्म होता है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। यह होने से धर्म होता है। यह (मनुष्यदेह) होने से होता है, यह वस्तु में है नहीं। आहाहा! शोर मचाते हैं। ऐ... सोनगढ़ अरे! सुन न अब। सोने को जंग नहीं होती। सुन,

सोनगढ़ है यह। ऐई! यह कहते हैं ऐई! सोनगढ़। अब सुन न! सोनगढ़ के नेता ऐसा करते हैं, ऐसी बिचारे बात करते हैं। कोई सोनगढ़ का नेता भी नहीं, कोई नहीं, सुन न अब।

श्रोता : कड़वी भाषा प्रयोग करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कड़वी भाषा कौन प्रयोग करे?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! तू कहाँ है? कितना है? जहाँ तू जितना है, वहाँ इन्द्रियाँ नहीं और जहाँ इन्द्रियाँ हैं, वहाँ तू पूरा स्वरूप आत्मा है ही नहीं वहाँ। आहाहा! गजब बात, भाई! आहाहा! इन पंचेन्द्रियों के योग्यता ज्ञान के क्षयोपशम की खण्ड-खण्ड, वहाँ तू नहीं और जहाँ तू है, वहाँ वे नहीं। बाहर की तो इन्द्रियाँ तो कहीं रह गयीं। समझ में आया? कहो, पूनमचन्दजी! क्या करना? सब इनके साथ लड़ाई करते हैं, हों! भगवान! यह महाकठिनता से सुनने को मिला अब रहने दे। लक्ष्मी टीका करने आती है तो मुँह धोने दे पहले। अरे! मुँह नहीं (धोया जाता) टीका तो आयेगा। वह चली जायेगी। मैं मुँह धोकर आऊँ अच्छा लगेगा। वहाँ वह (लक्ष्मी) चली गयी। लो, अब। कहाँ थी? वह तो गयी। यह काल गया।

इसी प्रकार इस समय आत्मा को समझने का काल है। उस समय तू इस बात को ऐसे नहीं होता, ऐसे नहीं होता (ऐसा) नकार मत कर, भाई! आहाहा! दिन फिरा है तेरा, कहते हैं। उस राजा का नहीं आता? 'राह' नाम का बड़ा राजा था। उसके चारण होते हैं। वह जब गद्दी पर बैठता है, तब उसकी महिलाएँ उसे ऐसे टीका करे, तिलक करे तब गद्दी पर बैठे। उसमें सास-बहू थी और वह गया वहाँ टीका कराने। बहू थी जवान रूपवान बहुत। ऐसे टीका करने गया तो राजा मोहित हुआ। टीका न करने दे। क्योंकि टीका करने दे तो लड़की हो जाये। ऐसे (चेहरा) फिरावे। वे लोग भद्रिक बहुत होते हैं। भद्रिक, सरल, सज्जन। रूपवान शरीर आदि परपुरुष नहीं हो, प्राण जाये तो भी परपुरुष नहीं। देखो न! वह यशोदा कैसी? यशना। सिद्धार्थ राजा कहे, रानी बनाऊँ, राजा बोलना नहीं। यह तेरा स्वामी आता है। टोकरा उठाये। राजा कहे, रानी बनाऊँ, बोलना नहीं, बोलना नहीं। यह बात हम नहीं सुनेंगे। आहाहा! लौकिक नीति के लोग ऐसे। समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ भगवान आत्मा में कहते हैं कि तू रागवाला, तुझे पंचेन्द्रिय से लाभ हो, ऐसा बोलना नहीं। वह स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? आहाहा! मर गये, हों! फिर अन्त में राजा ने पीछे मनुष्य भेजा। वह वश में नहीं हुए तो मार डाला। मर गया परन्तु वश में नहीं हुआ। समझ में आया? वह टीका करने गया और इनकार किया। माँ, सासु को माँ कहते हैं

न ? इस (राजा) राह मुँह फेरता है। वह तो बेचारी निर्दोष महिला, हों! उसे खबर नहीं कि यह क्या है ? ऐसे मुँह फिराता है, माँ! बहिन! इस राजा के दिन फिरे हैं। हम लड़कियाँ जैसी, हम टीका करते हैं, प्रजा की लड़कियाँ हैं। उस पर इसकी नियत बिगड़ी ? इसके दिन फिरे हैं। इसे राज नहीं रहेगा। समझ में आया ?

इसी प्रकार आत्मा की बात जब सत् सुनने को मिलती है, (तब ऐसा कहे) अभी यह नहीं। तेरे दिन फिरे हैं, यह नहीं मिलेगी। आहाहा! समझ में आया ? राज नहीं रहेगा, नहीं रहेगा। राज उड़ गया, उड़ गया राज। ऐसा काल, ऐसी बात तुझे परमात्मस्वरूप हो भगवान, तुझे सुनने को मिले और इनकार करता है, मनुष्यपना नहीं रहेगा। निगोद में जाकर हैरान हो जायेगा। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, यह इन्द्रिय नहीं। आहाहा! वे कहें, है न। परन्तु किसने इनकार किया ? सुन न! वह तो पाँच इन्द्रिय की योग्यता की एक समय की पर्याय है। एक समय की पर्याय-अवस्था वस्तु में वह नहीं है। वस्तु अतीन्द्रिय भगवान है। अतीन्द्रिय भगवान आत्मा की अन्तर्दृष्टि करने का नाम सम्यग्दर्शन है और इन्द्रिय पर तुझे दृष्टि (की) इतना हूँ, इतना हूँ, इतना मैं हूँ। समझ में आया ?

लींबड़ी दरबार को भाई! था न क्या कहलाता है उनका ? तुम्हारे पास गाँव नहीं था ? 'बलाला' उसमें दो खेत होंगे। राज मिला। दस लाख का तालुका, दस लाख का तालुका मिला न ? पहले नौकर थे। वीरजीभाई कहे, नौकर थे। उस नौकर को दस लाख का राज मिला। पश्चात उसे... जमीन थी, छोड़ दी। इसी प्रकार एक समय की पर्याय पंचेन्द्रिय की योग्यता वह तू ?-कि मैं नहीं। पहले मैंने माना था। मेरा खेत बड़ा है। मैं तो अनइन्द्रिय भगवान पूर्णानन्द स्वरूप हूँ, वह मेरा खेत और वह मेरा धाम है। पंचेन्द्रिय मुझमें है नहीं। ऐसी स्वरूप की दृष्टि करना और पर्याय है, उसे जानने में रखना, आदरने में नहीं। इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। (***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२

श्री पंचास्तिकाय, गाथा-८, प्रवचन-१३
दिनांक २८.११.१९६९

पंचास्तिकाय, षट्द्रव्य। अस्तिकाय है न? अस्तिकाय। अस्ति है। बहुत प्रदेशोंवाले पाँच तत्त्व है, पाँच द्रव्य हैं। यहाँ क्या कहते हैं? यह आत्मा है या परमाणु है। उसका तीन लक्षण स्वरूप है। प्रत्येक पदार्थ का त्रि-लक्षण (अर्थात्) उत्पाद, वह भी है, व्यय है, ध्रुव है। त्रि-लक्षण स्वरूप है। ये त्रि-लक्षण स्वरूप से नहीं। एक-एक लक्षण की अपेक्षा से है तीन लक्षण स्वरूप नहीं। ऐसी बात है। समझ में आया?

जिस स्वरूप से उत्पाद है... इस आत्मा में एक समय की पर्याय में जो उत्पादरूप है, उस प्रकार से एक उत्पाद एक ही लक्षण है। यहाँ तो छहों द्रव्यों की बात है। एक समय की ज्ञान की पर्याय है, अनन्त गुण की जो एक समय की पर्याय है, वह उत्पाद है; वह उत्पादरूप से ही है; वह कहीं व्यय और ध्रुव-लक्षणरूप नहीं है। समझ में आया? वह उत्पाद एक ही लक्षण है।

जिस स्वरूप से व्यय है... पहले समय की अवस्था का व्यय है, जिस स्वरूप से अभाव है-व्यय है, **उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से व्यय एक ही लक्षण है...** समझ में आया? जैसे कि आत्मा में अनन्त गुण की एक समय की जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह उत्पन्न लक्षण से उत्पन्न स्वरूप ही है; व्यय लक्षणवाला स्वरूप वहाँ नहीं है। समझ में आया? अर्थात्?-कि एक समय में यहाँ आत्मा में ज्ञान की पर्याय में... यह तो अनन्त पर्यायों को साथ में लेना है। बाद में अनन्त पर्याय में पर्याय अलग निकालेंगे। यहाँ तो एक समय में अनन्त पर्यायें हैं, वह उत्पादलक्षण पर्याय से है। है अनन्त एक साथ। परमाणु में भी एक पॉईन्ट / रजकण है, उसमें भी एक समय में अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें जो उत्पन्न होती है, वे उत्पाद लक्षणवाली है। पूरा लो तो तीन लक्षणवाली है, परन्तु एक-एक लो तो एक लक्षणवाली है। इसलिए तीन लक्षणवाली, एक लक्षणवाली है। तीन लक्षणवाली महासत्ता, वही एक लक्षणवाली अवान्तरसत्ता है। समझ में आया?

जो आत्मा में एक समय की ज्ञानपर्याय उत्पन्न हुई, एक उत्पन्न है, तो उसमें वास्तव में

ज्ञान की पर्याय उपजी, वह अनन्त सिद्धों को तीन काल, तीन लोक के द्रव्य को सिद्ध की पर्याय को, सिद्ध के द्रव्य के, अनन्त परमाणु रूपी द्रव्य को, उसके गुण को उसकी पर्याय को एक समय की ज्ञानपर्याय-उत्पाद उन्हें जान लेती है। ***यह दूसरी चीज़ है, इसलिए उत्पाद है, दूसरी ध्रुव चीज़ है, इसलिए उत्पाद है अथवा स्वयं ध्रुव है, इसलिए उत्पाद है-ऐसा नहीं है। समझ में आया?***

एक समय की ज्ञान की उत्पादरूप पर्याय (हो), जिसमें अनन्त परमेश्वर एक समय की पर्याय में समा गये हैं। अनन्त सिद्ध, अनन्त केवली अर्थात् सिद्ध या केवली अथवा लाखों केवली, अनन्त जीव जो 'ज्ञ' स्वभाव से ध्रुव हैं और परमाणु जो ध्रुव स्वभाव से नित्य है, उन सबको ज्ञान की एक समय की पर्याय उत्पाद, वह अपने उत्पादरूप ही है। समझ में आया? ***इतनी सामर्थ्यवाली एक पर्याय उत्पन्न होती है, लो! उसे व्यय की अपेक्षा नहीं, उसे ध्रुव की अपेक्षा नहीं। समझ में आया? कहते हैं कि यह उत्पाद है, वह उत्पादस्वरूप से ही है और पूर्व की अवस्था का व्यय है, वह व्ययस्वरूप से है। उत्पाद के कारण व्यय है अथवा व्यय के कारण उत्पाद है-ऐसा नहीं है। समझ में आया?***

और जिस स्वरूप से ध्रौव्य है... ज्ञान का जो ध्रुवपना और अनन्त गुण का जो ध्रुवपना है, ध्रुवपना; वह ध्रुवपना, ध्रुवपने के कारण है। उसके ध्रुवपने में-भगवान आत्मा के ध्रुवपने में एक में अनन्त परमेश्वर, अनन्त द्रव्य एक समय की पर्याय में उत्पादरूप हुए। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायें, अनन्त-अनन्त पर्यायें, अनन्त परमेश्वर की एक समय की पर्याय में अनन्त परमेश्वर, उस अनन्त पर्याय में अनन्तगुणा परमेश्वर, वे सब पर्याय का अन्दर ध्रुवपना देखो तो ध्रुव, ध्रुव के कारण है; उत्पाद के कारण भी नहीं। पर के कारण तो नहीं... समझ में आया? वह ज्ञान की पर्याय का उत्पाद, उत्पाद के कारण अर्थात् पर के कारण तो नहीं... आहाहा! क्या सत्ता की सिद्धि करते हैं! देखा? समझ में आया? एक समय की ज्ञान की पर्याय उत्पादरूप से उत्पाद है, वह पर के कारण तो नहीं, परन्तु ध्रुव के कारण (भी) नहीं है। समझ में आया? ओहोहो!

कहते हैं, अन्दर भगवान महा समुद्र ध्रुव है। समझ में आया? ध्रुव में महाभगवान अनन्त विराजते हैं। अनन्त परमेश्वर एक पर्याय में, ऐसी अनन्त पर्याय के परमेश्वर वे उसके एक ज्ञानगुण में हैं। यहाँ तो सब गुणों का ध्रुवपना ऐसा उसका सामर्थ्य एक ज्ञान में, ऐसा दर्शन में, ऐसा आनन्द में, ऐसा ध्रुवपना जो है, उस ध्रुवपने का स्वरूप उसमें एक लक्षण से सिद्ध है। उत्पाद के और व्यय के कारण से ध्रुव है - ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

कितना ज्ञान महासागर है आत्मा! ध्रुव का ज्ञान महासागर!! अनन्त केवली उस

उत्पादरूप वर्तते हैं। उनके उत्पाद का ज्ञान अपने कारण से अपना ज्ञान हुआ, ऐसा जो उत्पाद, ऐसे-ऐसे अनन्त उत्पादरूप ध्रुव जो है, उत्पाद की अपेक्षा रखता नहीं। अन्तर भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव समुद्र अनन्त-अनन्त परमेश्वर को तो एक पर्याय पी गयी! ऐसी अनन्त-अनन्त पर्यायों को एक ध्रुव पी गया!! आहाहा! समझ में आया? ऐसा अनन्त गुण का साहिबा आत्मा महासत्ता है। अभी तीन होकर (महासत्ता), हों! उसमें एक अवान्तरसत्ता का अन्तर्भेद तीन में से एक पड़ा न ध्रुव का! तीन होकर महासत्ता! त्रिलक्षणी महासत्ता है। वह अत्रिलक्षणी अर्थात् एक लक्षणी महासत्ता उसरूप नहीं। अवान्तरसत्तारूप महासत्ता नहीं। समझ में आया?

ऐसा परमेश्वर का परमेश्वर जानने की अपेक्षा से, हों! दूसरे का परमेश्वर नहीं। एक समय में अनन्त परमेश्वर का अस्तित्व एक समय में जाना, वह अपनी पर्याय का उत्पाद अपने से हुआ है। परमेश्वर हैं, इसलिए हुआ है-ऐसा नहीं। समझ में आया? समवसरण में त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर बिराजते हैं और ज्ञानी का लक्ष्य वहाँ गया, इसलिए उसकी पर्याय का उत्पाद हुआ, सामने चीज़ है, इसलिए (उत्पाद हुआ)-ऐसा नहीं है। समझ में आया? उस ज्ञान की पर्याय का उत्पाद अपने से, अपने कारण, महासत्ता जो तीन की गिनी है, उसमें की अवान्तरसत्ता अपने से उत्पन्न हुई है। आहाहा! और उस उत्पाद की अवान्तरसत्ता ध्रुव की अपेक्षा नहीं रखती। पर की अपेक्षा तो है ही नहीं कि भगवान थे, इसलिए यह ज्ञान की पर्याय हुई-(ऐसा तो है ही नहीं)। उसका उत्पाद उसमें है, इसका उत्पाद यहाँ का इसमें है। अस्तित्व है न यहाँ। समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा है(-ऐसा) कभी सुना नहीं होगा। इसलिए आत्मा को पामर कर डाला। राग का कर्ता। अरे! ऐसा ज्ञान का महासमुद्र, वह राग का कर्ता हो सकता नहीं। समझ में आया? वह राग का जाननेवाला, एक समय की पर्याय में रागादि, पूरी दुनिया का जानने का एक समय की पर्याय का सामर्थ्य है। उस ज्ञान की पर्याय का उत्पाद, राग है और पर है; इसलिए होता है-ऐसा नहीं है। समझ में आया? अर्थात् वह विकल्प और व्यवहार है, इसलिए उस क्षण यहाँ ज्ञान की उत्पत्ति होती है, ऐसा नहीं है। दूसरे क्षण में यहाँ राग की उत्पत्ति है, इसलिए दूसरे क्षण में उसके कारण से ज्ञान की पर्याय हुई (-ऐसा नहीं है), वह तो व्यय लक्षण व्यय में गया। अरे! ज्ञान की पर्याय जो पहले समय में थी, वह व्यय लक्षण तो व्यय में गया और नयी जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह अपनी स्वतन्त्र पर्याय ज्ञान के उत्पादलक्षण से सिद्ध हुई है। समझ में आया?

यहाँ तो अब कहते हैं कि उत्पादलक्षण से उत्पाद है; व्ययलक्षण से व्यय है और ध्रुव

–लक्षण से ध्रुव है। तीन लक्षणवाली जो पूरी महासत्ता गिनने में आयी है, उसमें अन्तर्भेद एक लक्षणवाला है, इन तीन में उसका अभाव है। तीन में एक लक्षण का अभाव है और एक लक्षण में तीन का अभाव है। अस्ति–नास्ति। महासत्ता में अवान्तरसत्ता का अभाव; अवान्तरसत्ता में महा (सत्ता) का अभाव। गजब बात! समझ में आया? परवस्तु का तो अभाव है, परन्तु अपनी एक–एक अवस्था में–अवान्तर भेद में अपना दूसरा भेद है, वह इसमें नहीं। ऐसा एक–एक अस्तित्व का लक्षण स्वतन्त्र उत्पाद का, व्यय का और ध्रुव का है। आहाहा!

ऐसा ज्ञानस्वभाव ध्रुव.. अरे! यहाँ तो अनन्त गुण का ध्रुवपना लेना है, क्योंकि अनन्त गुण को यहाँ तीन लक्षण में ध्रुव को एक लक्षण गिना है। पश्चात् फिर ध्रुव को महासत्ता गिनकर उसके गुण के अन्तर्भेद को अवान्तरसत्ता गिनते हैं। समझ में आया? ध्रुव एक आत्मा का है, वह महासत्ता है और उसके अन्दर में एक–एक गुण का अन्तर्भेद है, वह अवान्तरसत्ता है। समझ में आया?

यहाँ तो तीन लक्षण में से एक लक्षण पूरा भिन्न करना है, परन्तु यहाँ तो वापस एक ध्रुव में लो तो ध्रुव एक जिस लक्षण में है, उसमें जो ध्रुव जो महासत्तारूप से है, वह अनन्त पर्यायों में पर्याय... महासत्तारूप से अनन्त पर्यायों का पिण्ड जो ध्रुव है, उसका एक–एक गुणभेद ग्रहो; एक ज्ञानगुण–जिसमें अनन्त पर्यायें समा गयी हैं, अनन्त परमेश्वर को जाने, तीन काल–तीन लोक को जाने, इससे अनन्त गुणा हो तो जाने, ऐसा भगवान आत्मा के ज्ञान की एक समय की पर्याय का सामर्थ्य है। ***ऐसा सामर्थ्यवाले को ऐसा मानना कि यह राग था, इसलिए ऐसी सामर्थ्य पर्याय उत्पन्न हुई; पामर राग था, (वह गया, इसलिए) प्रभुता उत्पन्न हुई... यहाँ तो कहते हैं कि ध्रुव था, इसलिए पर्याय उत्पन्न हुई–ऐसा भी नहीं है ले सुन!*** आहाहा! क्या परन्तु समुद्र वर्णन किया है न बड़ा!! चैतन्यरत्न... हें!

हाँ... जहाँ हो, वहाँ आता है न? बनारसीदास में आता है। आहाहा! एक जरा मनन तो–विचार तो करे कि यह मैं कितना हूँ? जिसके अनन्त–अनन्त गुण एक–एक द्रव्य के, सिद्ध के; वैसा द्रव्य, उसके अनन्त गुण; कितने गुण हैं? कि तीन काल के समय से अनन्तगुणे गुण हैं। तीन काल के समय से एक द्रव्य के अनन्तगुणे गुण।

आकाश के प्रदेश अनन्त है, तीन काल से भी इस आकाश के प्रदेश अनन्तगुणे हैं। उससे भी एक द्रव्य के अनन्तगुणे गुण हैं; ऐसे अनन्त गुणे जो एक–एक द्रव्य के गुण हैं और उनकी पर्याय, उनके अनन्त गुण का एकरूप–ऐसे अनन्त द्रव्य एक ज्ञान की पर्याय में जान

लिये हैं। एक समय की पर्याय उत्पादरूप हुई, उसने जाना। वे हैं, इसलिए जाना है-ऐसा नहीं है। ध्रुव है, इसलिए जाना है-ऐसा नहीं है। समझ में आया? अथवा पूर्व की अवस्था का व्यय हुआ, इसलिए यह उत्पाद में जाना है-ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? वजुभाई! गजब भाई!

इसका अस्तित्व ही इतना है। अस्तिरूप से एक समय की जो अनन्त गुण की पर्याय, उसका अस्तित्व इतना सत्त्व है। आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त परमेश्वर को एक समय में जाने, ऐसे ज्ञान को राग का काम सौंपना कि यह राग करे, वह दया, दान, व्रत का राग करे... परन्तु राग तो साथ में होता है, भाई! समझ में आया? क्या कहा? साधक (दशा) में राग तो साथ में होता है, (ज्ञान और राग) दोनों साथ में होते हैं। उत्पाद, उत्पादरूप से है तो राग का उत्पाद है, यहाँ ज्ञान का उत्पाद है। एक समय का उत्पाद दोनों साथ में है। अब इसे ऐसा कहना कि यह राग का उत्पाद है, राग है, इसलिए यहाँ (ज्ञान का) उत्पाद होता है, तो कहते हैं कि ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

किस प्रकार से अस्तित्व को सिद्ध किया है? ऐसा है, वह सिद्ध किया है न! यहाँ कहाँ इसे कल्पना से सिद्ध किया है। आहा! द्रव्यानुयोग तत्त्वज्ञान का विषय महासमर्थ है, गम्भीर है। श्रीमद् में आता है न? द्रव्यानुयोग गम्भीर है, शुक्लध्यान का रहस्य है। आहाहा! समझ में आया? ओहो! भगवान की वाणी दिव्यध्वनि और भगवान, इन सबको एक समय में ज्ञान की पर्याय जाने। वह दिव्यध्वनि है; इसलिए पर्याय का अस्तित्व है-ऐसा नहीं है। समझ में आया? भगवान को तो, किसी को तो आठ वर्ष में केवलज्ञान होवे और दिव्यध्वनि निकले। आठ वर्ष से कोटिपूर्व तक। समवसरण में दिव्यध्वनि.. उसे जो ज्ञानगुण का उत्पाद है, वह उत्पादलक्षण से है, ऐसा सिद्ध करते हैं। वह वाणी है और यह है; इसलिए उत्पाद हुआ है (-ऐसा नहीं है)। आहाहा! देखो न, एक बात! वस्तु की स्थिति ही ऐसी है, उसकी खबर नहीं होती और दृष्टि में विपरीतता तथा जैसा स्वभाव है, उसका अनादर (हो) और इसे धर्म होवे (-ऐसा नहीं है)। व्रत पालन कर मर जाए, अपवास कर-करके सूख जाए तो मिथ्यात्व का पाप हो। ऐई! जेठाभाई! यह अभी तक यही किया है न सब? आहाहा!

बापू! तुझे खबर नहीं। तेरे अस्तित्व में, एक-एक समय के अस्तित्व में कितना सामर्थ्य है! अरे! व्यय के अस्तित्व में भी, उत्पाद के कारण नहीं-ऐसा अभावरूप होने का सामर्थ्य है; और ध्रुव को ध्रुवरूप रहने का महासामर्थ्य है, ध्रुव महाप्रभु है। समझ में आया? उत्पाद द्वारा ध्रुव को देखे भले, परन्तु ध्रुव, उत्पाद के कारण से नहीं है। समझ में आया? थोड़ा

सूक्ष्म पड़े, परन्तु है कुछ-इसका ध्यान में तो रखना चाहिए या नहीं? महासत्ता की खान की बातें चलती है। समझ में आया?

अस्तिकाय सिद्ध करते हैं। आहाहा! असंख्य प्रदेशी भगवान, वह काय। उसमें जो अनन्त गुण (और) पर्याय। उत्पाद, उत्पाद के कारण से-लक्षण से सिद्ध है। ध्रुव, ध्रुव के लक्षण से सिद्ध है। तीन लक्षणवाली महासत्ता; उसमें एक लक्षणवाली अवान्तरसत्ता का तीन में अभाव है। एक लक्षणवाली सत्ता में तीन लक्षण का अभाव है। उत्पाद में-पर्याय में ध्रुव का अभाव है; उस उत्पाद में व्यय का अभाव है; व्यय में उत्पाद का अभाव है; ध्रुव में उत्पाद का अभाव है और ध्रुव में व्यय का अभाव है। ऐसी वस्तु सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखकर इस प्रकार से कही है। इससे दूसरे प्रकार से कहे तो वह परमेश्वर को पहिचानता नहीं और द्रव्य को जानता नहीं, विपरीत दृष्टि को घोंटता है। समझ में आया?

राग की मन्दता, कषाय के परिणाम, व्रत, नियम आदि के हों तो उनसे आगे जाया जा सकता है, ऐसा अस्तित्व का स्वरूप नहीं है-ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! क्यों? कि आत्मा में जब एक समय में ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, श्रद्धा की उत्पन्न हुई, उस समय अभी राग की भी उत्पन्न हुई है। वह उत्पन्न लक्षण से उत्पाद है, बस! वह उत्पाद, राग का उत्पाद ज्ञान की पर्याय को उपजावे (-ऐसा नहीं है)। वे दोनों स्वयं तो उपजे हैं, उसमें उपजावे किसे? आहाहा! समझ में आया? अथवा पूर्व की मन्दराग की, मन्दकषाय की पर्याय है, व्रत-नियम आदि के भाव हैं, इसलिए उसे अन्दर आत्मा को पहुँचाते हैं-(ऐसा नहीं है)। (क्योंकि) वह व्यय तो व्यय हो गयी है। व्यय हो गयी, वह उत्पाद में तो आती नहीं, अतः व्यय हुई, वह उत्पाद को करे-यह तो है नहीं। अभी भारी गड़बड़ है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, उत्पाद है, वह ध्रुव है, इसलिए उत्पाद है-ऐसा भी नहीं है। आहाहा! देखो न भाई! यह पर्याय का एक समय का स्वतन्त्र (अस्तित्व सिद्ध करते हैं)। सत् सत् है न? सत् को कोई हेतु नहीं होता। एक समय की भगवान आत्मा की पर्याय ज्ञान, दर्शन, शान्ति, आनन्द इत्यादि या रागादि (है) परन्तु वह उत्पाद, उत्पाद से है; उत्पाद, पर से तो नहीं और उस राग का उत्पाद है, वह कर्म से नहीं; उस राग का उत्पाद है, वह ज्ञान से नहीं; राग का उत्पाद है, उस समय में ज्ञान का उत्पाद राग के कारण नहीं। इसमें आवे क्या? कल तुम नहीं थे। यह सब यहाँ पूछने का था कल। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? इसमें भगवान घोंटा जाता है।

ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अनन्त-अनन्त शान्ति और आनन्द की-

अनाकुल की खान ऐसा जो ध्रुव। आहाहा! महासमुद्र चैतन्य रत्नाकर ध्रुव है, वह ध्रुव अपने लक्षण से ही लक्षित है। उत्पाद से ज्ञात हो ध्रुव; ध्रुव कहीं ध्रुव से ज्ञात नहीं होता परन्तु उत्पाद से ज्ञात होता है परन्तु ध्रुव, ध्रुव के कारण रहा हुआ है; उत्पाद के कारण ध्रुव रहा है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह मूल तो तत्त्व का अस्तित्व और उसकी सत्ता किस प्रकार है, उसकी खबर नहीं, इसलिए यह सब गड़बड़ी उठी है। सम्प्रदाय के नाम से यह धर्म है और यह धर्म है। अधर्म है, वह धर्म है। ऐई! भगवान की भक्ति और व्रत का भाव, वह विकल्प है, वह विकल्प है, वह अधर्मभाव की उत्पत्ति है। अरे! गजब बात है।

मुमुक्षु : सम्प्रदाय को धर्म मान लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मान लिया। दृष्टि पूरी तत्त्व भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द साहेब बड़ा है, आनन्दकन्द का नाथ है, अनन्त परमेश्वर जिसने गर्भ में रखे हैं। अरे! उसकी क्या खबर। पूरी दुनिया तीन काल तीन लोक से अनन्तगुने सिद्ध हों, अनन्तगुणा काल हो तो उसकी एक समय की पर्याय में जान सके, ऐसी ताकतवाला प्रभु है। वह राग के कारण नहीं। वे इतने संयोग हैं, इसलिए नहीं, आहाहा! समझ में आया? बाबूभाई! समझ में आया या नहीं?

अरे! जहाँ निधान भगवान विराजता है, वहाँ नजर तो कर, कहते हैं। अनन्त परमेश्वर जिसके पेट में-गर्भ में पड़े हैं। उसके ध्रुव में पुण्य-पाप जरा भी नहीं हैं। वह तो उत्पाद में गया। वह उत्पाद में कहा पहला। पुण्य का विकल्प उठा, उस क्षण में धर्मी को ज्ञान की पर्याय भी उत्पन्न हुई तो वह तो एक समय में दो हुए हैं। तो उसको व्यवहार कहना और इसे निश्चय कहना परन्तु व्यवहार है, इसलिए निश्चय है, ऐसा नहीं है। राग है, इसलिए ज्ञान का उत्पाद है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो अन्तिम ध्रुव आया न? कहते हैं। **जिस स्वरूप से ध्रौव्य है, उसका (उस स्वरूप का) उस प्रकार से ध्रौव्य एक ही लक्षण है...** परमाणु है परमाणु, यह परमाणु सूक्ष्म पॉईन्ट, उसमें भी अनन्त पर्यायें जो होती हैं, अनन्त गुण की रंग की अवस्था, रंग की अवस्था (होती है)। एक समय में अनन्त गुण की रंग की अवस्था है, वह उत्पाद, उत्पाद के कारण हैं। रंग गुण है; इसलिए नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परमाणु में निमित्त आया, इसलिए रंग आया, यह तो है ही नहीं, परन्तु रंगगुण ध्रुव पड़ा है, इसलिए रंग की पर्याय अनन्त गुणे वर्णरूप परिणमी है, ऐसा नहीं है। अरे! जगत को सुनने को मिलता नहीं। ऐसा तत्त्व है और ऐसा वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया?

यहाँ तो... ऐई! वह पण्डित आया था न? (वह कहता था), दिखता है, अग्नि आयी तो पानी गर्म हुआ। भाई! क्या तुमने कहा? अग्नि अग्नि में है, पानी पानी में है। पानी की अवस्था का अस्तित्व पानी की अवस्था में है। अग्नि की अस्तित्व की अवस्था अग्नि में है। उसके कारण यहाँ गर्म हुआ, यह तूने कैसे किस प्रकार माना? समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि अग्नि का जो उत्पाद, उस क्षण का है, उसके उत्पादरूप उसमें ही है और पानी का जो उष्णपने का उत्पाद है, वह स्वयं उत्पाद, उत्पाद के कारण है; अग्नि के कारण उष्ण की पर्याय उत्पन्न हुई है, ऐसा नहीं है। उत्पन्न उसके कारण (तो हुई) नहीं परन्तु ध्रुव में स्पर्शगुण है, इसलिए उष्ण पर्याय उत्पन्न हुई है, (ऐसा भी नहीं है)। आहाहा! अकेली वीतरागता! अकेली ज्ञायकता है! ऐसा कैसे? यह ज्ञान में प्रश्न ही नहीं। होने ही रूप से इस प्रकार से वस्तु है, उसमें फिर ऐसा कैसे, इस प्रश्न को अवकाश नहीं है। समझ में आया?

यह बड़े-बड़े पण्डितों को विवाद उठता है, लो! उस समय भाई ने प्रश्न किया था। धीरुभाई के भाई ने। उसने पूछा, होनेवाला होगा, वह होगा तो फिर पुरुषार्थ कहाँ रहा? यह सबको व्यवधान है। धीरुभाई को पूछा और धीरुभाई ने कहा परन्तु तू नहीं समझे अभी। होनेवाला होगा, वह होगा। ***बापू! होनेवाला होगा, वह होगा अर्थात् उत्पाद। समझ में आया? होनेवाला होगा, वह होगा, इस उत्पाद का ज्ञान कौन करे? यह ज्ञान जाने। ज्ञान का उत्पाद कैसे हो? स्वयं के कारण ज्ञान का उत्पाद हो। समझ में आया? यह होनेवाला होगा, (वह) होगा, इसका निर्णय ज्ञायकभाव पर जाता है। ज्ञायकभाव हूँ, अकेला जाननेवाला हूँ अर्थात् जिस समय की मुझमें पर्याय होनी है, वह होनी है; जड़ में जिस समय (होनी है) वह होनी है, उसे मैं जाननेवाला हूँ, यह जाननेवाले का निर्णय किया, ज्ञानस्वरूप से ज्ञायक भगवान हूँ, ऐसा निर्णय किया तो होनेवाला वह होगा का जाननेवाला रहा। इसका नाम पुरुषार्थ है। आहाहा!*** क्या हो? ऐसी गड़बड़ चढ़े न! यह सूक्ष्म बात है, हों! पूछते थे, बेचारे प्रेम से पूछते थे, हों! (मैंने पूछा), धीरुभाई को पूछा नहीं? (तो उसने कहा) कि धीरुभाई ने मुझे कहा कि परन्तु तू नहीं समझेगा अभी। धीरुभाई की बात सत्य। धीरूभाई चतुर व्यक्ति है और उसे अभ्यास है न! आहाहा! उसने कहा, भाई! ऐसा है, बापू! हों! मार्ग ऐसा है। आया था, घूमकर यहाँ आया था न? कहा, ऐसा मार्ग है, एकदम जँचे ऐसा नहीं है। होनेवाला होगा वह होगा, अर्थात् क्या? उसे जाना किसने? होना होगा वह होगा, इसका ज्ञान किया हो, तब होना होगा वह होगा। तब होना होगा वह होगा किसमें? - कि द्रव्य में। तो द्रव्य का ज्ञान किया हो तो होना होगा वह होगा, उसका जाननेवाला रहे। उसके बिना ज्ञान हुआ कहाँ

से ? होनेवाला होगा वह होगा का ज्ञान कहाँ से हुआ ? आहाहा ! समझ में आया ? देखो ! वीतराग का मार्ग दुनिया के साथ कुछ मेल खाये ऐसा नहीं है। समझ में आया ? वस्तु की स्वरूप की स्थिति ही ऐसी है।

कहते हैं कि भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप जो चिदानन्द अनादि-अनन्त ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. जिसमें अनन्त परमेश्वर के परमेश्वर के पर्याय के पिण्डरूप ध्रुवपना पड़ा है। आहाहा ! जिसका / ध्रुव का ज्ञान, वह पर्याय से भी अधिक है और पूरी दुनिया से अधिक अर्थात् भिन्न है। समझ में आया या नहीं ? '....' सब चीज़ से भिन्न, ज्ञानस्वभाव से अधिक। अधिक अर्थात् पर से भिन्न, ऐसा जान। '...' ज्ञान भगवान आत्मा जाननहार प्रज्ञाब्रह्म चैतन्यबिम्ब वह राग और पर से अत्यन्त भिन्न अर्थात् अत्यन्त पृथक् है।

ऐसा अन्तर्ज्ञान करे उसे सम्यग्दर्शन धर्म की पहली शुरुआत होती है। पश्चात् उसे चारित्र होता है, स्वरूप में स्थिर हो, तब चारित्र। ये व्रत-ब्रत के विकल्प आवें, वे चारित्र-फारित्र नहीं हैं। चारित्र अर्थात् चरना। चरना, वह स्वरूप में हो, उसमें चरे या राग में चरे। समझ में आया ? आहाहा ! यह हंस मोती को चरे ! यह हंस दाने को नहीं खाये। समझ में आया ? मानसरोवर का हंस मोती खाता है, भूखा रहे परन्तु ज्वार नहीं खाता। आहाहा ! इसी प्रकार भगवान आत्मा तो शुद्ध ज्ञान और आनन्द के चारे को चरनेवाला आत्मा है। वह राग को चरे और राग को खावे, वह आत्मा नहीं है। वह हंस नहीं है, वह हंस नहीं है। समझ में आया ? भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, उस आनन्द के चारे को चरे अर्थात् रमे, उसका नाम चारित्र है। (आत्मा) आनन्द का चारा खाये। राग का भूसा खायेगा ? आहाहा !

कहते हैं **ध्रौव्य है उसका (-उस स्वरूप का) उस प्रकार से ध्रौव्य एक ही लक्षण है इसलिए वस्तु के...** अब पूरी वस्तु ली। **उत्पन्न होनेवाले, नष्ट होनेवाले और ध्रुव रहनेवाले स्वरूपों में से प्रत्येक को त्रिलक्षण का अभाव होने से...** पूरे द्रव्य की अपेक्षा से तीन लक्षण हैं। यह पूरी चीज के कारण तीन लक्षण हैं, परन्तु प्रत्येक को एक-एक को तीन लक्षण का अभाव है। आहाहा ! अस्ति और नास्ति ! अनेकान्त ! यह वीतराग का अनेकान्त देखो ! आहाहा ! यह (अज्ञानी) तो खिचड़ा (करता है) ऐसा भी होता है और ऐसा भी होता है। निमित्त से होता है और उपादान से होता है, राग से धर्म होता है और वीतरागपर्याय से धर्म होता है। अरे ! यह तो खिचड़ा-मिथ्यात्व भाव है। समझ में आया ?

कहते हैं कि **ध्रुव रहनेवाले स्वरूपों में से प्रत्येक को त्रिलक्षण का अभाव होने से**

त्रिलक्षणा (सत्ता) को... त्रिलक्षण सत्ता को। एक-एक आत्मा, एक-एक परमाणु उनके तीन लक्षण अस्तित्व को **त्रिलक्षण को अत्रिलक्षणपना है...** महासत्ता की अपेक्षा से तीन और अन्तर्भेद की अपेक्षा से एक लक्षणपना है। अर्थात् तीन लक्षणपना उसमें नहीं है। समझ में आया? ध्रुव में कहीं तीनों लक्षण आ जायें? उत्पाद में तीनों आ जायें? व्यय में तीनों आ जायें? पूरे द्रव्य की अपेक्षा से तीन हुए। एक-एक में तीन नहीं आते, इसलिए एक महासत्ता में तीन है, तब एक-एक में अवान्तरसत्ता का उसमें अभाव है। गजब सूक्ष्म, भाई!

यह तो वीतराग तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ भगवान यह 'महावीर महावीर' तो बहुत करते हैं सब। महावीर की देशना, महावीर की देशना... आता है न वर्धमान देशना? हेमचन्द्राचार्य का। अन्दर सब गप्प मारी है। महावीर की देशना आती है एक पुस्तक हेमचन्द्राचार्य की। कुछ ठिकाना नहीं होता। लोगों को खबर नहीं होती और कहनेवाले की जरा क्षयोपशम की दशा विशेष देखे... आचार्य हो, इसलिए लगे कि... आहाहा! क्या रोचक ज्ञान इनका! क्या रोचक कथन! मिथ्यात्व का रोचक है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **अत्रिलक्षणपना है (अर्थात् जो सामान्य-विशेषात्मक सत्ता...)** अर्थात् महासत्ता और अवान्तरसत्ता, यह सब होकर जो सत्ता, ऐसी जो **(महासत्तारूप होने से त्रिलक्षणा है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से...)** वह महासत्ता, वह भी एक सत्तारूप से है। तीनों भी एकरूप हैं। **(अवान्तरसत्तारूप भी होने से अत्रिलक्षणा भी है)।** ओहोहो! समझ में आया? समझ में आता है? उसके अन्तर्भेद में भी है न अवान्तरसत्ता? कहते हैं। महासत्ता है, उसके अन्तर्भेद अवान्तरसत्ता, वही स्वयं अवान्तरसत्ता है। ऐसा कहते हैं। दो बोल हुए न? तीसरा, तीसरा आया न?

(३) एक वस्तु की स्वरूपसत्ता अन्य वस्तु की स्वरूपसत्ता नहीं है... एक-एक आत्मा की, एक-एक परमाणु की जो स्वरूपसत्ता है, वह अन्य वस्तु की स्वरूपसत्ता नहीं है। **इसलिए एक (सत्ता) को अनेकपना है...** जो एक ऐसा कहा है सब होकर एक है, सब होकर एक है, ऐसा कहा था परन्तु उसमें एक-एक स्वरूप की सत्ता वह दूसरी स्वरूप सत्तारूप से नहीं है। इसलिए वह एक कही थी, वही अनेक है। समझ में आया? वेदान्त कहता है वैसा नहीं, हों! सब होकर आत्मा एक है, ऐसा नहीं। आहाहा! वह तो वस्तु एक ही कहता है। यह तो अस्तित्व की अपेक्षा से सब एक है। उसकी अपेक्षा से एक-एक स्वरूप की सत्ता भिन्न-भिन्न है; इसलिए महासत्तारूप से एक है, वही अवान्तरसत्तारूप से अनेक है। समझ में आया? ऐसा तो पढ़ने में भी कठिन नहीं आता होगा, नहीं? पढ़ने में क्या आवे?

यह तो भगवान होने का मार्ग है ! परमेश्वर होने का मार्ग है ! स्वयं परमेश्वरस्वरूप ही है। महाचैतन्य प्रभु है, वह भाषा ऐसी बोले परन्तु वह किस प्रकार है ? समझे न ? ....उसे बोले चैतन्य महाप्रभु... महाप्रभु यहाँ बैठते थे। बैठे कहाँ महाप्रभु ? महाप्रभु तो महाप्रभु में है। समझ में आया ? आहाहा ! वहाँ धूल भी नहीं, सुन न ! महाप्रभु तो यहाँ अन्दर में है। बाहर में कहाँ था ? और दूसरा महापरमेश्वर त्रिलोकनाथ, वह समवसरण में बैठे हों तो उसमें तुझे क्या ? तुझे क्या ? तेरा अस्तित्व उनके कारण है ? और उनका अस्तित्व तेरे कारण है ? तेरे श्रद्धा और ज्ञान की पर्याय की उत्पत्ति वे हैं तो है ? आहाहा ! समझ में आया ? लो ! बहुत वेदना, वह सम्यग्दर्शन का कारण, भगवान का दर्शन, वह सम्यग्दर्शन का कारण; देव की महाऋद्धि देखे तो... अब सुन न, वह तो निमित्त का (कथन) है। निमित्त कौन था, उसका कथन है। ऐ.. भीखाभाई ! इसमें चर्चा किसके साथ करना ? ऐसा नहीं, किसके साथ इसमें मेल खाये किस प्रकार खाये ? पूरा पूर्व-पश्चिम का अन्तर है।

ऐ.. क्रियाकाण्ड को उत्थापते हैं। भाई ! बड़ी पुस्तक बनायी है न ? चन्द्रशेखर। प्रेमविजय के शिष्य। उसके गुरु की पुस्तक बनायी। क्रिया का नाश करते हैं, लाख-लाख नाश करते हैं, सुन न ! क्रियाकाण्ड का विकल्प है, वह विकार है और विकार वह आत्मा नहीं तथा आत्मा का अस्तित्व उसमें नहीं। समझे ? आस्रवतत्त्व में आत्मा का अस्तित्व है ? आहाहा ! देखो ! चन्द्रशेखर ऐसा लिखता है, इसलिए अपने मन्दिरमार्गीयों को वह पढ़ने योग्य है, पढ़ो.. अरे ! भगवान ! तुझे खबर नहीं, बापू ! तेरी सम्पदा और तेरी ऋद्धि कितनी बढ़ी है, इसकी तुझे खबर नहीं है। महाप्रभु चैतन्य भगवान, वह राग के क्रियाकाण्ड से प्राप्त हो, वह पामर की... समझ में आया ? क्या कहलाता है ? तुम्हारी भाषा भूल जाते हैं। किसी की सिफारिश.. सिफारिश.. सिफारिश। यहाँ राग की पहुँच काम न आवे, कहते हैं। ऐई ! जयन्तीभाई ! विकल्प तो अन्धा है। यह व्यवहार जितना दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प है, वह तो अन्धा है, जड़ है, अचेतन है; वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। अचेतन अर्थात् उसमें चैतन्य का कण नहीं है। आहाहा ! भारी कठिन काम। यह तो अचेतन कहा है भगवान ने उसे तो। राग के भाग को अचेतन कहा है। दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प उठते हैं, वे अचेतन हैं। उनमें चैतन्य भगवान ज्ञान का पुंज प्रभु का कण उसमें कहाँ राग में है ? वह राग तो अन्धा है। अन्धे से जगे ? कोई अन्धा कर नहीं सकता धूल भी वह। ऐ.. भीखाभाई ! आहाहा !

कहते हैं, वस्तु की एक-एक सत्ता अवान्तर से दूसरी रूप की सत्तारूप से नहीं है। 'है' है अपेक्षा से सबको एकरूप कहा परन्तु एक में अनेक होकर एक है न ? अनेक होकर एक

है न? अनेक अपेक्षा से अवान्तरसत्ता एक की अपेक्षा से नास्ति और अनेक की अपेक्षा से एकपना भी नास्ति।

(अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'एक' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'अनेक' भी है।) लो! ओहोहो! बहुत समाहित किया है, हों! थोड़ी भाषा में। यह पढ़े तो कुछ समझ में नहीं आवे, बहुत पढ़ जाये। अब अध्यात्म की बात चली है न बाहर? पढ़ो अपने। (फिर) निकाले, उसकी दृष्टि हो, वैसा निकाला करे। आहाहा! भगवान महावीर ने दीक्षा ली, तब इन्द्र ने वस्त्र दिया। अरे! भगवान को वस्त्र नहीं होता। मुनि को वस्त्र नहीं होता, भगवान को कौन दे? यह तो कल्पित उठायी हुई मिथ्या बात है। मुनि नग्न-दिगम्बर हों, उन्हें वस्त्र का धागा नहीं हो सकता। ऐसा मुनिपना होता है, उन्हें अन्तर में तीन कषाय का अभाव होता है। समझ में आया?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : देना पड़ा। हमारी दीक्षा में गाया था, भरत वैरागी.। 'देवों ने दीक्षा ओघा मोहपत्ती, जैनशासन के राजीभरतेश्वर, भयो रे भूपत वैरागी।' हमारी दीक्षा हुई थी न! ५६ वर्ष हुए, ५६ वर्ष होंगे। उतारा में गाया था। मगसिर शुक्ल ९ की दीक्षा थी और लोग बहुत आये थे। दीक्षा के बाद गाया, 'भरतेश्वर भूपत भयो रे वैरागी...' फिर गाया यह अन्दर। केवलज्ञान हुआ परन्तु जब तक ओघो और मुँहपत्ती नहीं दिये, तब तक कोई वन्दन नहीं करे। ऐसी बातें कुकर्म है न! ऐई! छगनभाई! सुना है या नहीं?

इसी प्रकार भगवान ने दीक्षा ली, तब इन्द्र ने वस्त्र दिया था। किसलिए दिया? कन्धे पर रखने को। परन्तु यह किस प्रकार का न्याय? ओढ़ने के लिये नहीं और कन्धे पर रखा। यही गप्प मारी है न एकदम! और फिर वापस एक ब्राह्मण आया तो उसे आधा फाड़कर दिया। यह उन्होंने करुणा की। कुकर्म करते हैं। वीतराग को दूसरे को देने का भाव! समझ में आया? उसे वस्तु के गुण के अस्तित्व की खबर नहीं है। मुनि वीतरागदशा जहाँ प्रगट हुई, उसे वस्त्र का टुकड़ा कैसा? और वह वस्त्र रखे और दूसरे को दे... अरे! अत्यन्त विपरीत मान्यता के सब लक्षण हैं। आहाहा! जेठाभाई!

अब कहते हैं **सर्वपदार्थस्थित...** है न? सर्वपदार्थस्थित, एक पदार्थस्थित। **(४) प्रतिनिश्चित (-व्यक्तिगत निश्चित) पदार्थ में स्थित सत्ताओं द्वारा ही पदार्थों का प्रतिनिश्चितपना (-भिन्न-भिन्न निश्चित व्यक्तित्व) होता है...** प्रत्येक वस्तु अपनी-अपनी

सत्ता में होने से अनेकरूप से प्रत्येक का भिन्न-भिन्नपना है। **इसलिए सर्वपदार्थस्थित (सत्ता) (सर्व पदार्थ में रहा हुआ अस्तित्व) को एकपदार्थस्थितपना है।** समझ में आया? एकपदार्थस्थितपना है। महासत्ता वह एक की अपेक्षा से एक पदार्थ सिद्ध है। ओहोहो! वीतरागता किसे कहना? मुनिपना किसे कहना? ऐसे शाम-सबेरे प्रतिक्रमण में बोले। कुसाधु को साधु नहीं, असंजमम परिणामी... किया है न? भगवानभाई! ये सब पहाड़े बहुत किये थे हमने वहाँ। अबहूं परिणामी, आतपतमं परिणामी अकल्प को छोड़ देता हूँ, कल्प को अंगीकार करता हूँ। श्वेताम्बर के साधु को हो, श्वेताम्बर के साधु को होता है और श्रावक को। स्थानकवासी में दोनों को होता है। ....अज्ञान को छोड़ता हूँ, परन्तु ज्ञान किसे कहना और अज्ञान किसे कहना, इसका भान नहीं होता। ज्ञान छोड़ दिया है। ...मिथ्यात्व को छोड़ा है परन्तु मिथ्यात्व कहना किसे यह खबर नहीं होती। क्या छोड़े? धूल। शाम-सबेरे झूठ बोलता है। भगवान की साक्षी में झूठ बोलता है।

यहाँ कहते हैं, सब पदार्थों में भी एक-एक पदार्थ भिन्न-भिन्न स्थित है। सर्व पदार्थ स्थित की अपेक्षा से वही वस्तु एक-एक है, वह अवान्तरसत्तारूप से वह है। महासत्ता महाविश्वरूप है सब, वह एकरूप है, एक की अपेक्षा से। जो सब रूप है, वह एक रूप भी है। **(अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'सर्वपदार्थस्थित' है, वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'एकपदार्थस्थित' भी है।)** समझ में आया? लो! ये चार बोल हुए।

(५) प्रतिनिश्चित एक-एक रूपवाली सत्ताओं द्वारा ही वस्तुओं का प्रतिनिश्चित एक-एकरूप होता है। समझ में आया? यह रूप आया। विश्वरूप, विश्वरूप अर्थात् सब रूप। सब होकर सब। उसमें एक-एक रूप, वह एकरूप है। विश्वरूप की अपेक्षा से एकरूप असत्ता है और एक सत्ता की अपेक्षा से विश्वरूप असत्ता है। **(अर्थात् जो सामान्यविशेषात्मक सत्ता...)** सामान्य अर्थात् महासत्ता, विशेष अर्थात् अवान्तरसत्ता। सब होकर सत्ता ऐसी **(महासत्तारूप होने से 'सविश्वरूप' है...)** सब, समस्तरूप। विश्व अर्थात् समस्त, समस्तरूप है।

(वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'एकरूप' भी है)। महासत्ता के अन्तर्भेद में एक-एक द्रव्य है, वह एकरूप भी है। एक यह अलग और एकरूप अलग। एक यह वह महासत्ता को लागू पड़ता है और एकरूप अवान्तरसत्ता को लागू पड़ता है। समझ में आया? थोड़ा-थोड़ा पढ़कर विचार करना चाहिए। समझ में आया? यह तो अध्यात्मशास्त्र है।

वस्तु की स्थिति को बतलानेवाला है। है, है-ऐसा तो कहते हैं परन्तु है, वह किस प्रकार से है, ऐसा जो जैसा है, वैसा न समझे और न माने तो उसकी विपरीत दृष्टि जाती नहीं है।

अब **(६) प्रत्येक पर्याय में स्थित (व्यक्तिगत भिन्न-भिन्न) सत्ताओं द्वारा ही प्रतिनिश्चित एक-एक पर्यायों का अनन्तपना होता है...** आहाहा! एक द्रव्य है आत्मा, उसकी अनन्त पर्याय है। वे अनन्त पर्याय महासत्ता। ऐई! एक भगवान आत्मा, उसके अनन्त गुण। एक द्रव्य है महासत्ता, उन गुण के अन्तर्भेद की अपेक्षा से अवान्तरसत्ता। अब गुण की एक समय की अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें प्रत्येक जीव में हैं। अब वे अनन्त पर्यायें एक समय की, उन्हें महासत्ता कहा, तब उनको-एक-एक को अवान्तरसत्ता कहा। समझ में आया?

आत्मा में अनन्त पर्यायें हैं। वे अनन्त पर्यायें एक साथ अनन्त गुण की हैं, इस अपेक्षा से महाअस्तिरूप है। उनकी एक-एक ज्ञान की पर्याय, एक ज्ञान की पर्याय अवान्तरसत्ता है। इतनी एक समय की पर्याय, अनन्त परमेश्वर को जाने, ऐसी एक पर्याय है, तथापि वह अवान्तर अन्तर्भेद है। महासत्ता की अपेक्षा से एक समय की पर्याय ध्रुव को जाने, गुण को जाने, परमेश्वर को जाने, तीन काल को जाने, तीन लोक को जाने, तथापि अनन्त पर्यायें जो अनन्त गुण की हैं, उनमें की एक समय की पर्याय है अवान्तर अन्तर्भेद भिन्न है। वह अवान्तरसत्ता है तो अनन्त पर्यायें हैं, ऐसा नहीं है। अनन्त पर्यायें हैं तो एक अवान्तर पर्याय की सत्ता है, ऐसा नहीं है। गजब ऐसा... समझ में आया?

परमाणु में एक समय में अनन्त गुणों की अनन्त पर्याय महासत्ता। पश्चात् एक गुण की हरी पर्याय है, दो गुण, चार गुण, वह अवान्तरसत्ता है। तो कहते हैं, दूसरी अनन्त पर्यायें हैं, इसलिए यह हरी पर्याय है, ऐसा नहीं है। हरी पर्याय अवान्तर है, इसलिए सब पर्यायें हैं, ऐसा नहीं है। ओहोहो!

ज्ञान की एक पर्याय अवान्तरसत्तारूप से, दूसरी श्रद्धा की एक पर्याय अवान्तरसत्तारूप से, तीसरी आनन्द की पर्याय अवान्तरसत्तारूप से—ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायें! एक में इतना सामर्थ्य है, ऐसा ही एक दूसरी पर्याय में श्रद्धा में भी इतना सामर्थ्य है। समझ में आया?

ज्ञान में एक समय में अनन्त परमेश्वर को जानने का सामर्थ्य है, वह स्वतन्त्र अवान्तरसत्ता है और दूसरी श्रद्धापर्याय में भी इतने सब आत्मा को और पूर्ण आत्मा को श्रद्धे, ऐसी सामर्थ्यता, वह इस ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य है, इसलिए श्रद्धा की पर्याय का सामर्थ्य है-ऐसा नहीं है। समझ में आया? पुराने व्यक्ति को बहुत सूक्ष्म लगे। पहले तो एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीन

इन्द्रिय... जाओ! हो गया.. अप्पाणं वोसरे करके आत्मा को छोड़ दिया। कुछ भान नहीं होता। क्या है अप्पाणं और क्या है तस्सुतरी... कुछ नहीं मिलता। ऐसा का ऐसा चला जाता है।

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा में अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें हैं। अनन्त है, वह सामान्य हैं। एक-एक पर्याय है, वह स्वतन्त्र है। सब है, इसलिए एक है, ऐसा नहीं है और एक ज्ञान की, श्रद्धा की ऐसी पर्याय है, इतने बड़े द्रव्य को, गुण को, तीन काल के परमेश्वर को श्रद्धे, ऐसी एक समय की पर्याय है; इसलिए ज्ञान की पर्याय का ज्ञानपना है, ऐसा नहीं है। चारित्र की पर्याय इतनी बड़ी एक समय की है कि यह पूर्ण द्रव्य और पूर्ण गुण में एकाग्र होकर स्थिरता (हुई)। इतना सामर्थ्य है उसका, स्थिरता का इतना सामर्थ्य है, तथापि वह सामर्थ्य श्रद्धा की पर्याय और ज्ञान की पर्याय के कारण नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

(६) प्रत्येक पर्याय में स्थित (व्यक्तिगत भिन्न-भिन्न) सत्ताओं द्वारा ही प्रतिनिश्चित एक-एक पर्यायों का अनन्तपना होता है... एक-एक होवे तो अनन्त होता है, ऐसा कहते हैं। एक-एक होवे तो अनन्त होवे न! या सीधे अनन्त मिले। इसलिए अनन्त पर्यायमय (सत्ता) को एकपर्यायमयपना है, इसलिए अनन्त का एकपना है। **इसलिए अनन्त पर्यायमय (सत्ता) को एकपर्यायमयपना है (अर्थात् जो सामान्य-विशेषात्मक सत्ता महासत्तारूप होने से 'अनन्तपर्यायमय' है वही यहाँ कही हुई अवान्तरसत्तारूप भी होने से 'एकपर्यायमय' भी है।)** इस प्रकार अवान्तरपर्यायसत्ता, वह महासत्ता नहीं है; महासत्ता, वह एक समय की पर्यायरूप नहीं है। ऐसा अस्ति-नास्ति का अनेकान्तपना वस्तु के स्वभाव में विराजमान है। ऐसा जो समझण समझे, उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुए बिना नहीं रहता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

३

श्री नियमसार, गाथा २५ से २७, प्रवचन - २९
दिनांक ३१-०३-१९७१

२५ गाथा हो गयी। नियमसार, अजीव अधिकार। कारणपरमाणु और कार्यपरमाणु, जघन्य परमाणु और उत्कृष्ट परमाणु—ऐसे चार का वर्णन किया है। कारणपरमाणु वह कि जो स्कन्ध है, उसका कारण है; इसलिए उसे कारणपरमाणु कहा। उसी कारणपरमाणु को दोनों लागू पड़ते हैं। ऐसा है न, पाठ में? **वही परमाणु...** ऐसा। जो परमाणु है, यह रजकण, पाईन्ट, ऐसा एक वस्तु का स्वभाव। भले छाटा है परन्तु द्रव्य है। स्वभाव को किसी क्षेत्र की विशालता की आवश्यकता नहीं है। एक परमाणु ऐसा स्वभाव है कि जो स्कन्ध का कारण होता है, उसी परमाणु में एक गुण आदि स्निग्धता हो तो बन्ध के अयोग्य है। उसी परमाणु को जघन्य परमाणु कहा जाता है। एक, दो, तीन आदि हों, दो-तीन, चार आदि, दो और दो चार या तीन और दो पाँच, वह आदि हो तो उसे-परमाणु को बन्ध के योग्य के कारण उत्कृष्ट कहा जाता है। वह के वही परमाणु को देखो! यह एक वस्तु का - जड़ का स्वत: स्वभाव। उसे तो कुछ खबर भी नहीं। खबर तो आत्मा को है कि ऐसा इसमें होता है। ऐसा परमाणु है। स्कन्ध का अन्तिम टुकड़ा। टुकड़े करते-करते बाकी रह जाये, उसे कार्यपरमाणु कहते हैं। ये चार प्रकार हुए। है तुम्हारे यहाँ उसमें?

मुमुक्षु : श्वेताम्बर में कहाँ से होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? क्यों कहाँ से होगा? **इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्-कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार में (१६५वीं तथा १६६वीं गाथा द्वारा) कहा है कि —**

णिद्धा वा लुक्खा वा अणुपरिणामा समा व विसमा वा।
समदो दुराधिगा जदि वज्झन्ति हि आदिपरिहीणा॥१६५॥

णिद्धत्तणेण दुगुणो चदुगुणणिद्धेण बन्धमणुभवदि।
लुक्खेण वा तिगुणिदो अणु बज्झदि पंचगुणजुत्तो॥१६६॥

इस ओर है, ५६ पृष्ठ। इसका अर्थ। **परमाणु के-परिणाम...** परमाणु जो एक रजकण, पाईण्ट है, उसके परिणाम अर्थात् पर्याय **स्निग्ध हों या रूक्ष हों,..** स्निग्ध हो या रूक्ष हो। **सम अंशवाले हों या विषम अंशवाले हों,...** दो अंशवाले, चार वाले, छह वाले हों या तीन, पाँच और सात वाले हों। **यदि समान की अपेक्षा दो अधिक अंशवाले हों,...** दो और दो चार; तीन और दो पाँच; सात और दो नौ; आठ और दो, दस। इस प्रकार दो अधिकवाले हों तो **तो बँधते हैं;...** एक में नहीं बँधते। एक अंश परमाणु बन्ध के योग्य नहीं है।

इसी प्रकार आत्मा में भी अन्तिम गुण, अवगुण का जो अन्ति अंश है, वह उसके बन्ध का कारण नहीं है। समझ में आया? यह क्या कहा? मोह का, राग का, अन्तिम अंश है, वह स्वयं अपने बन्ध का कारण नहीं है। दूसरे के बन्ध का कारण हो। राग का अंश राग को बाँधे, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? हीराभाई!

यहाँ जैसे परमाणु में एक स्निग्धता या एक रूक्षता की पर्याय है, वह बन्ध के योग्य है नहीं। इसी प्रकार आत्मा में भी जो क्रोध, मान, माया, दर्शनमोह, दर्शन में समकितमोह का भी उसका अन्तिम अंश है लो न, तो समकितमोह का अंश भी दर्शनमोह को नहीं बाँधता। अन्तिम अंश है न? इसी प्रकार रागादि का अन्तिम अंश है, वह उसके रागादि को नहीं बाँधता। वह राग का अंश छह कर्म का बन्धन भले हो। ऐसा ही वस्तु का स्वत: स्वभाव है। आहा..हा..! यह गाथा कही। दूसरी गाथा। यह नहीं दूसरी गाथा। इसी और इसी की दूसरी।

स्निग्धरूप से दो अंशवाला परमाणु, चार अंशवाले स्निग्ध (अथवा रूक्ष) परमाणु के साथ बन्ध का अनुभव करता है... देखा, अनुभव करता है शब्द है। उसे अनुभव करना है कहाँ? परन्तु होता है—अनुसरण कर होता है। समझ में आया? **अथवा रूक्षता से तीन अंशवाला परमाणु,...** यह तो दृष्टान्त दिये हैं, हों! रूक्ष तीन वाला और यह तो स्निग्धता भी तीन वाला, पाँच वाला हो तो वह बन्ध का पाता है। **परमाणु, पाँच अंशवाले के साथ जुड़ा हुआ बँधता है।'** क्या कहा पण्डितजी! तीन रूक्षवाला, पाँच रूक्षवाले के साथ बँधता है तो दृष्टान्त। परन्तु तीन स्निग्धतावाला, पाँच स्निग्धतावाले के साथ बँधता है। दो और दो चार वाला, तीन और दो पाँच वाला, ऐसे रूक्ष या स्निग्ध चाहे जो हों, तद्नुसार बँधते हैं। एक नहीं बँधता। एकड़े एक, बगड़े बे। एक अंशवाला नहीं बँधता। दो अंशवाला बँधता है। देखो, पुद्गल का भी ऐसा स्वभाव है। एक नहीं बँधता।

और (२५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक द्वारा पुद्गल की उपेक्षा करके शुद्ध आत्मा की भावना करते हैं):-

स्कन्धैस्तैः षट्प्रकारैः किं चतुर्भिरणुभिर्मम।
आत्मान-मक्षयं शुद्धं भावयामि मुहुर्मुहुः।।३९।।

(श्लोकार्थ :—) उन छह प्रकार के स्कन्धों या चार प्रकार के अणुओं के साथ मुझे क्या है ?... पर चीज़ है। मैं तो उसका जाननेवाला हूँ। वह भी मुझमें रहकर मेरे से जाननेवाला हूँ। आहा..हा..! **मैं तो अक्षय शुद्ध आत्मा को पुनः पुनः भाता हूँ।** मुझे आनन्द का प्रयोजन है तो मेरा आनन्द आत्मा सच्चिदानन्द है। उस आनन्द के अक्षयसुख। अक्षय शुद्ध आत्मा को मैं पुनः पुनः भाता हूँ। मेरा आनन्द का प्रयोजन है तो आनन्द तो मेरे पास है। ऐसे अक्षय-क्षय न हो, ऐसा शुद्ध आत्मा, द्रव्यस्वभाव परिपूर्ण, उसे मैं भाता हूँ। भाता हूँ, इसका अर्थ क्या हुआ ? **पुनः पुनः भाता हूँ।** ऐसा पाठ है, लो। **भावयामि** और चिन्तयामि। विकल्प है यह ?

मुमुक्षु : एकाग्रता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकाग्रता की बात ली है। प्रत्येक अर्थ में फेरफार। शुद्ध आत्मा अक्षय, त्रिकाल ध्रुवस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, उसमें मैं एकाग्रता करता हूँ। मेरा तो यह काम है। परमाणु के प्रकार चार हो तो हो। मुझे उसके साथ प्रयोजन नहीं है। आहा..हा..! मेरा भगवान अनन्त आनन्द और अनन्त स्वच्छता, शान्ति, स्थिरता इत्यादि शक्तियों से अक्षय शुद्ध आत्मा है। ऐसे आत्मा को मैं अन्तर्मुख होकर **पुनः पुनः भाता हूँ।** बारम्बार उसमें एकाग्रता करता हूँ। यह करना है। आहा..हा..!

देखो! यह सारांश कहा। अजीव जाननेयोग्य है परन्तु जानकर उसके ऊपर से लक्ष्य छोड़कर स्वरूप का ध्यान, स्वरूप की भावना करनी है। समझ में आया ?

२६, परमाणु का विशेष कथन।

अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इंदियग्गेज्झं।
अविभागी जं दव्वं परमाणू तं वियाणीहि।।२६।।

आचार्य कहते हैं,

जो आदि में भी आप है मध्यान्त में भी आप ही।
अविभाग, इन्द्रिय ग्राह्य नहिं, परमाणु सत् जानो वही॥२६॥

आहा..हा..! इस परमाणु में भी छोटा क्षेत्र अनन्त गुण में असंख्यवें भाग का, तथापि जीव के अनन्त गुण की जितनी संख्या है, उतने गुण उसमें हैं। यह तो कैसे (जँचे)! जितने

जीव के गुण की संख्या है, उतने ही गुण की संख्या (परमाणु में है)। भले उसमें चैतन्य न हो, परन्तु जड़ की पर्याय-गुण की संख्या उतनी ही अनन्त उसमें है। क्या कहा ? लो, दो बार कहा तो भी ? हीरा में ऐसा कहते होंगे ? एक आत्मा में जितने गुण हैं, उतने ही गुण परमाणु के-जड़ के हैं। वे नहीं परन्तु उतने। क्या कहा ? पण्डितजी ! जितने एक आत्मा में अनन्त गुण की संख्या, उतने ही गुण एक परमाणु में है। वैसे नहीं परन्तु उतने - संख्या से उतने ही हैं। क्या कहा ? पण्डितजी !

मुमुक्षु : एक आत्मा में, परमाणु में जितने गुण हैं उतनी संख्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : उतनी संख्या से। वे गुण नहीं। आत्मा में तो ज्ञान, आनन्द आदि है। समझ में आया ? आहा..हा.. ! यह (आत्मा) तो असंख्य प्रदेशी, वह (परमाणु) एक प्रदेशी। वस्तुस्वभाव है, वह वस्तुस्वभाव है। ऐसा माहात्म्य आने पर वह तेरा स्वभाव, तेरा स्वभाव असंख्यप्रदेशी क्षेत्र है, उसके गुण स्वभाव की चौड़ाई असंख्य प्रदेशी है। उस परमाणु के गुण की तो एक प्रदेशी चौड़ाई है। तेरे गुण की असंख्य प्रदेशी चौड़ाई है। ऐसा अन्तरस्वभाव। अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द पड़ा है, उसका आश्रय कर, उसकी भावना कर। बस, यह करना है। कर-करके, पढ़-पढ़कर, सब जानकर भी यह करना है। सुखी होना होवे तो (यह करना है)।

(गाथा) २६ की ***टीका :*** **— यह, परमाणु का विशेष कथन है। जिस प्रकार सहज परम पारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले...** क्या कहते हैं ? देखो ! आत्मा का त्रिकाल सहज स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले, उसके कथन का और उसके भाव का आश्रय करनेवाले, **सहज निश्चयनय की अपेक्षा से,...** भगवान आत्मा स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव की जिसमें विवक्षा करनी है। जिसमें उदय की, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की (अपेक्षा) नहीं। त्रिकाली ज्ञायकभाव, परमस्वभावभाव, वह जिसमें कहना है, ऐसा सहज निश्चयनय। स्वाभाविक निश्चयनय। देखो ! उस **निश्चयनय की अपेक्षा से,...** भगवान नित्य है। वह नित्य से कभी च्युत नहीं हुआ। परमपारिणामिकभाव स्वभाव से कभी च्युत हुआ ही नहीं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

(नित्य) और अनित्य निगोद से लेकर सिद्धक्षेत्र पर्यन्त विद्यमान जीवों का... निगोद से लेकर यह सब पर्याय है न ? वह सिद्ध तक। **जीवों का निजस्वरूप से अच्युतपना कहा गया है;...** उस निगोद से लेकर सिद्ध की पर्याय तक में, सब उसके द्रव्य जो परमस्वभावभाव हैं, उनसे कभी च्युत नहीं हुए। आहा..हा.. ! समझ में आया ? फिर से। हमारे सेठी ! फिर फिर से कहते हैं न ! फिर।

जो यह आत्मा नित्य वस्तु है। कैसी? स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव का कथन करनेवाला जो नय, उस नय की अपेक्षा से आत्मा त्रिकाली नित्य.. नित्य.. नित्य.. ध्रुव है। अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, प्रभुता ऐसी शक्तियों से भरपूर सहज तत्त्व पारिणामिकस्वभाव से नित्य है। वह आत्मा, इस अपेक्षा से सहज पारिणामिकभाव की – निश्चयनय की अपेक्षा से निगोद से लेकर सिद्ध तक की जो पर्यायवाले हैं, वे जीव भी ऐसे नित्य त्रिकाल हैं। वे नित्य से कभी च्युत नहीं हुए। आहा..हा..! वस्तु के स्वभाव की कथन करने की दिगम्बर सन्तों की शैली (अन्यत्र) कहीं है नहीं।

मुमुक्षु : अलौकिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकिक वस्तुस्वभाव वर्णन करते हैं। आहा..हा..! ऐसी बात सुनने को दूसरे सम्प्रदाय में मिले, ऐसा नहीं है। ऐसी यह चीज़ है। क्योंकि वहाँ है नहीं। यह तो था, उसमें से आया है। समझ में आया? क्या कहते हैं?

परमाणु की व्याख्या करते हुए (कहते हैं) जैसे परमाणु स्वयं अपने से आदि, मध्य और अन्त है; वैसे आत्मा भी वस्तुस्वभाव से परमस्वभाव निश्चय से, निश्चयनय की अपेक्षा से वह स्वयं अपने से कभी च्युत हुआ नहीं। स्वयं ही अपनी आदि में, स्वयं ही अपने मध्य में, स्वयं ही अपने अन्त में वह वस्तु ध्रुव है, वह ऐसी की ऐसी है। समझ में आया?

(नित्य) और अनित्य निगोद से लेकर... पर्याय की बात है न? **सिद्धक्षेत्र पर्यन्त...** उस सिद्ध की पर्याय में भी, परमस्वभावभाव जो ध्रुव है, वह पर्याय में आया नहीं। वह ध्रुवरूप से च्युत हुआ नहीं। आहा..हा..! वह चैतन्य महाहीरा, उसकी कीमत क्या? जिसका मूल्यांकन करने से अपनी बुद्धि में मूल्यवाला हो जाता है। अमूल्य रहता नहीं। ऐसी यह चीज़ है। आहा..हा..! भगवान आत्मा परम सहज परमपारिणामिकभाव, सहज स्वाभाविक परमपारिणामिक (भाव), जिसे किसी पर्याय की, उदय की अपेक्षा नहीं, ऐसा जो स्वभाव है। ऐसा सहज निश्चय परमपारिणामिकभाव को कहनेवाला ऐसा सहज और निश्चय, ऐसा। ऐसा जो आत्मा; जैसे परमाणु की आदि, मध्य और अन्त में स्वयं ही है। वैसे आत्मा के परमपारिणामिकभाव में–नित्यता में स्वयं ही कायम है। उसमें से कभी हटा नहीं। आहा..हा..! **निजस्वरूप से अच्युतपना कहा गया है;...** किस नय से?

मुमुक्षु : व्यवहारनय से।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह निश्चय आया।

सहज परम पारिणामिकभाव की विवक्षा का आश्रय करनेवाले... इसे कहने का

आश्रय करनेवाला ऐसा निश्चयनय, उसकी अपेक्षा से वह स्वयं नित्य है। अनन्त जीव, पर्याय में निगोद हो या पर्याय में त्रस हो या पर्याय में सिद्ध हो, तथापि उन जीवों का निज स्वरूप से अच्युतपना निश्चय से, नित्य से अच्युत है, ऐसा कहने में आया है। आहा..हा..! देखो तो एक टीका! समझ में आया? कहते हैं कि ***निगोद की पर्यायें, सातवीं नरक के नारकी की पर्याय हो, अन्तिम ग्रैवेयक के मिथ्यादृष्टि की पर्याय हो, या क्षायिक समकिती की पर्याय हो या सिद्ध की पर्याय हो, आहा..हा..! जिसमें अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति प्रगट हुई है, ऐसी पर्याय हो, तथापि वस्तु जो नित्य है, उसमें से कभी च्युत नहीं हुई। आहा..हा..!*** समझ में आया?

उन रहे हुए जीवों का... वापिस बहुत अधिक अनन्त जीव हैं न? एक जीव नहीं। अनन्त आत्मायें हैं। निगोद से लेकर सिद्ध। वहाँ तक लिया न? निगोद के अनन्त आत्मायें और सिद्ध के अनन्त आत्मायें और बीच के साधक और बाधक, ऐसे अनन्त आत्मायें। समझ में आया? अक्षर के अनन्तवें भाग की ज्ञान की पर्याय निगोद को खुली हुई बाकी है और केवलज्ञान की पर्याय पूर्ण विकसित है और बीच में साधक जीव को मोक्षमार्ग की पर्याय खुली हुई है और मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय आदि में सब आ गये। उनकी पर्याय में तीव्र मिथ्यात्व, गृहीत मिथ्यात्व की पर्याय परिणमित हुई है या सिद्ध अनन्त केवलज्ञानरूप हुए हैं। आहा..हा..! तथापि वे जीव अपने नित्य ध्रुवस्वरूप से कभी च्युत नहीं हुए हैं। आहा..हा..! समझ में आया? पण्डितजी! वाह! दो लाईन में तो कितना समा दिया है!!

परमाणु जैसे अजीव पदार्थ को रहने के लिये किसी की आवश्यकता नहीं। वह स्वयं ही अपने से है। स्वयं स्वयं से आदि में, मध्य में और अन्त में है। इसी प्रकार भगवान आत्मा निगोद से लेकर सिद्ध तक सब आ गये बीच में? बाघ और भालू, माँस के भक्षण करनेवाले की पर्याय। पर्याय उनकी है। बाकी माँस दूसरी भिन्न (पर्याय है)। ऐसी पर्याय में भी; सिद्ध की पर्याय में भी; तीव्र गृहीतमिथ्यात्व की पर्याय में भी... समझ में आया? आहा..हा..! वस्तु नित्य ध्रुव तो स्वयं से कभी हटी ही नहीं है, कभी वह पर्याय में आयी नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? कहो, यह बात थी? देखो! बात है परमाणु की, उसमें आत्मा डाला।

उसी प्रकार पंचम भाव की अपेक्षा से... देखो! **परमाणुद्रव्य का परमस्वभाव होने से,...** पंचम भाव की अपेक्षा से, हों! **परमाणुद्रव्य का परमस्वभाव होने से, परमाणु स्वयं ही अपनी परिणति...** परिणति शब्द से यहाँ पर्याय नहीं लेना। क्योंकि यहाँ पंचम भाव की- त्रिकाल की अपेक्षा है। समझ में आया? परमाणु का जो त्रिकाली पंचम भाव है, उसकी यहाँ

बात है। नहीं तो उसकी पर्याय, वह पारिणामिकभाव की पर्याय है, परन्तु यहाँ वह सिद्ध नहीं करना है। पाठ में तो आदि स्वयं वस्तु है, परमाणु सूक्ष्म, वह स्वयं अपनी आदि, स्वयं स्वयं का मध्य और स्वयं स्वयं का अन्त। समय कहने के लिये, दूसरा कुछ भेद है नहीं।

उसी प्रकार पंचम भाव की अपेक्षा से... यह किसका पंचम भाव? परमाणु का। **परमाणुद्रव्य का परमस्वभाव होने से,...** देखो! फिर ऐसा लिया न वहाँ? उसका परमस्वभाव है इसलिए द्रव्य लिया। **परमाणु स्वयं ही अपनी परिणति का आदि है,...** अर्थात् कि परमाणु स्वयं अपने भाव की आदि है, ऐसा। परिणति शब्द से यहाँ पर्याय नहीं, परन्तु उसका भाव। समझ में आया? **स्वयं ही अपनी परिणति का मध्य है...** अर्थात् स्वयं ही अपने स्वभाव का भी स्वयं ही मध्य है। वस्तु ध्रुव... ध्रुव... द्रव्य। आहा..हा..! **और स्वयं ही अपना अन्त भी है (अर्थात्, आदि में भी स्वयं ही,...)** ऐसा लिया है। देखो! साराँश। परिणति में यहाँ पंचम भाव है न यहाँ तो? और परमस्वभाव लिया है न? पंचम भाव में परमस्वभाव साथ में न लेकर बाद में लिया। अर्थात् वह द्रव्य ही सिद्ध करना है यहाँ तो। वस्तु परमाणु द्रव्य। आहा..हा..! अतीन्द्रिय वस्तु एक परमाणु, एक आकाश के प्रदेश में ऐसे अनन्त परमाणु के अनन्त स्कन्ध समाहित होते हैं, ऐसा एक परमाणु ऐसा है, कहते हैं। आहा..हा..! जिसकी आदि, अन्त और मध्य में वस्तु स्वयं ही है, बस। कहो, समझ में आया? स्वयं ही है।

(कभी भी निजस्वरूप से च्युत नहीं है)। क्या कहा? वह परमाणु जो द्रव्य है, वह कभी स्निग्धता-रूक्षता की पर्याय में नहीं आता। एक स्निग्ध गुण हो, दो हो या तीन हो; बन्धयोग्य हो या बन्ध के अयोग्य हो। वस्तु द्रव्य जो है, वस्तु पंचम भाववाला तत्त्व, वह कभी पर्याय में नहीं आता। ओहो..हो..! नहीं तो उसकी परमाणु की जो पर्याय है, वह तो पारिणामिकभाव की ही पर्याय है, क्योंकि उसे कोई उदय या ऐसा कुछ है नहीं। परन्तु वह वस्तु जो त्रिकाल पंचम भाव है, वस्तु शक्ति, भाव-शक्ति। अरे! देखो तो सही! वस्तु छोटी-बड़ी, ऐसा नहीं देखना। उसका स्वभाव (देखना)। अरे! ऐसे परमाणु का ऐसा स्वभाव है कि एक गुण की स्निग्धता हो, अनन्त गुण की स्निग्धता हो, एक गुण की रूक्षता हो, अनन्त गुण की रूक्षता हो। भारीरूप परिणमित हुआ हो या हल्केरूप परिणमित हुआ हो, तथापि परमाणु तो वह का वही है। वह भारी-हल्के में आया नहीं। समझ में आया? कहो, प्रकाशदासजी!! कभी आया था? तीन वर्ष में कभी सुना था? आहा..हा..!

(कभी भी निजस्वरूप से च्युत नहीं है)। अर्थात्? पंचम भाववाला अजीव परमाणु तत्त्व कभी अपनी पर्याय में नहीं आया। दुर्गन्ध पर्याय हो या सुगन्ध हो; स्निग्धता हो या रूक्षता

की हो; शीत की हो या गर्म की हो या भारी की हो या हल्की की हो। परमाणु में भारी पर्याय होती है ? है परमाणु की। भारी और हल्की पर्याय हुई है। देखो विशिष्टता! इसमें हल्की-भारी हुई है। परमाणु एक की, हों! और उसमें भिन्न है, तथापि उस हल्की-भारी की पर्याय में वह पंचम भाव का द्रव्य नहीं आया। आहा..हा..! देखो न! कितना लॉजिक है या नहीं यह सब ? कि तुम्हारा वकालात का लॉजिक होगा अकेला ? वस्तुविज्ञान है। यह वस्तुविज्ञान है। आहा..हा..!

इसमें परमाणु भारी है या ऐसा का ऐसा रहा है ? यह देखो इतने स्कन्ध में आने पर बदलता है या नहीं इतना ? पर्याय स्कन्ध में आया तब होकर। पर के कारण हुई है ? वह भी खोटी बात है। स्कन्ध में आया इसलिए परमाणु धारी हुई पर्यायरूप परिणमित हुआ है, यह मिथ्या बात है और भारी रूप पर्याय परिणमे तथापि द्रव्य उसमें पर्याय में आया है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? वजुभाई! भाई! यह अभी पढ़ना हुआ। उस बार नहीं पड़ा था-पाँच वर्ष पहले यह अजीव का छोड़ दिया था। अजीव, व्यवहार और अन्तिम उपयोग, ये तीन छोड़ दिये थे। इस समय कहें, सब समान पढ़ना।

मुमुक्षु : क्या कहा ? महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले वाँचन किया था, तब अधिकार छोड़ दिया था। यह व्यवहार अधिकार है न ? तो छोड़ दिया था। व्यवहार का अधिकार, यह अधिकार और अन्तिम उपयोग का (शुद्धोपयोग) अधिकार है। इस समय धारावाही लिया है। अच्छा किया, लो, हमारे वजुभाई कहते हैं।

मुमुक्षु : महाराज! व्यवहार तो निश्चय को बताता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर ऐसा है। व्यवहार निश्चय को बताता है। समझ में आया ? आहा..हा..! ऐसा न मानना कि यह फिर परमाणु की ऐसी व्याख्या क्या ? इस व्याख्या में भगवान समाहित हो जाता है। कहते हैं कि ऐसे परमाणु उसकी चाहे जो पर्यायरूप हुआ हो, भारी-हल्का। क्या कहलाता है फिर ? दो, चार स्निग्धता-रूक्षता तो है। शीत-उष्ण तो उसमें आया ? कठोर और कोमल। कठोर और कोमल पर्याय, भारी और हल्की पर्याय। वह स्थूल में होती है। परमाणु में होती है। उस समय में भी वह परमाणु उसमें नहीं आया, द्रव्य उसमें नहीं आया। ***आहा..हा..! पर्याय पर्यायरूप से हुई, द्रव्य पर्यायरूप से आया नहीं।***

मुमुक्षु : द्रव्य पर्यायरूप से आ जाये तो द्रव्य का नाश हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाश हो जाये। परन्तु आता ही नहीं। दो अंश भिन्न हैं। आहा..हा..!

समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान आत्मा निगोद से लेकर कितने जीव लिये हैं ? एक शरीर में अनन्त जीव, एक अंगुल के असंख्य भाग में, शकरकन्द में, आलू में असंख्य शरीर, एक शरीर में अनन्त जीव, सिद्ध की अपेक्षा अनन्त गुने (जीव)। उन सबकी पर्याय भले अभव्य की पर्याय हो, कहते हैं। आहा..हा..! गृहीतमिथ्यात्व के तीव्र रूप से कषाय खाने के कारखाने लगाकर (बैठा हो), भाव में, हों! यह तो भाव की पर्याय। गाय और भैंस रखते हैं न ऐसे ? ऊपर पड़े एकदम। उस ओर अलग और इस ओर अलग। ऐसे मिथ्यात्व की जो तीव्र कषाय की अवस्था है, उसमें भी द्रव्य तो नित्य है। वह द्रव्य उसमें आया नहीं। समझ में आया ? और जो सिद्धरूप से परिणमे.. आहा..हा..! उस पर्यायरूप भी द्रव्य तो आया नहीं, कहते हैं। अहो! ऐसा का ऐसा है, कहते हैं। उसमें भेद या खण्ड कुछ है नहीं। आहा..हा..! ऐसा भगवान आत्मा, उसके अन्तर में एकाग्रता कर, वह तेरे कल्याण का मार्ग है। आहा..हा..! यह तो सब बातें करके मर गया, यह व्रत और यह तप। हैरान.. हैरान.. (हो गया)। काय-क्लेश। समझ में आया ?

सहजानन्द प्रभु! सहजपरमपारिणामिकभाव को कहनेवाले ऐसे सहज निश्चयनय से वह तो ऐसा का ऐसा है। **जो ऐसा होने से,...** वह परमाणु **इन्द्रियज्ञानगोचर न होने से,...** इन्द्रियज्ञानगोचर नहीं है। **और पवन, अग्नि इत्यादि द्वारा नाश को प्राप्त न होने से, अविभागी है, उसे हे शिष्य! तू परमाणु जान।** उसे तू परमाणु जान। आहा..हा..! योगसार में तो कहा है कि छह द्रव्य को प्रयत्न से जान। ऐसी गाथा आती है। छह द्रव्य का व्यवहार ज्ञान भी तू प्रयत्न से जान।

अब २६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं -

अप्यात्मनि स्थितिं बुद्ध्वा पुद्गलस्य जडात्मनः।
सिद्धास्ते किं न तिष्ठन्ति स्वस्वरूपे चिदात्मनि।।४०।।

(श्लोकार्थ :—) जड़ात्मक पुद्गल की स्थिति स्वयं में (पुद्गल में ही) जानकर... जब परमाणु भी ऐसा जड़ अपने में रहता है.. आहा..हा..! ऐसा कहते हैं। जिसे कुछ भान नहीं, जिसमें ज्ञान नहीं, ऐसा परमाणु भी स्वयं अपने में द्रव्यरूप से कायम रहता है। **(अर्थात्, जड़स्वरूप पुद्गल, पुद्गल के निज स्वरूप में ही रहते हैं—ऐसा जानकर), वे सिद्धभगवन्त, अपने चैतन्यात्मक स्वरूप में क्यों नहीं रहेंगे ?** जब परमाणु भी ऐसे द्रव्यस्वरूप में त्रिकाल रहता है तो सिद्धस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा... सिद्ध भगवन्तों की व्याख्या भाषा ली है, परन्तु समस्त आत्माओं की बात है। अरे! यह आत्मा अपने द्रव्य में क्यों नहीं रहेगा ? द्रव्य तो ऐसा का ऐसा रहता है, वहाँ क्यों नहीं जाये ? आहा..हा..! समझ में आया ? गजब बात, भाई!

दिगम्बर सन्तों की कथनी! जड़ की हो तो भी अलग, चैतन्य की अलग, बातें अलग, भाई! लोग मानते हैं कि यह सम्प्रदाय है। वाड़ा है, ऐसा नहीं भगवान! यह तो वस्तु की स्थिति की मर्यादा की बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आपने स्पष्टीकरण करके बताया, नहीं तो हमें कौन बताता?

पूज्य गुरुदेवश्री : ***आहा..हा..! भगवान! जब परमाणु अपनी जड़ की स्थिति में से च्युत नहीं होता तो द्रव्यस्वभाव ऐसा भगवान अपने में अपने से कैसे हटे? और वहाँ दृष्टि लगाकर उसमें रहे? ऐसा कहते हैं। वापस पर्याय में, हों! ऐसा स्वरूप है, वह हटा नहीं। ऐसा जिसे ज्ञान होता है, वह उसमें रहता है। रहा है ही। प्रत्येक का रहा है।*** समझ में आया? आहा..हा..! कहते हैं कि जड़स्वरूप पुद्गल जब अपनी जाति में रहता है, तो यह भगवान स्वयं द्रव्यस्वभाव जैसा है, उसमें क्यों न रहे अब? पर्याय से क्यों न रहे, ऐसा कहते हैं, हों! समझ में आया? इसकी ज्ञान की पर्याय में ऐसा आवे कि यह तो ऐसा का ऐसा है, तब इसने ऐसा का ऐसा है, जाना कहलाये। पोपटभाई! आहा..हा..!

पोपट है, वह नलिनी को पकड़कर ऐसे (उल्टा) हो गया। उसमें उड़ने की शक्ति तो है परन्तु ऐसा हो गया है; इसलिए मानो में उल्टा हूँ (ऐसा मानता है)। ऐसे छोड़े तो एकदम उड़ जाये, भले ऐसे नीचे सिर हो। अरे! ऐसा तेरा स्वभाव। परमाणु ने जब नित्यपना छोड़ा नहीं तो तेरा नित्य आनन्दकन्द प्रभु क्यों स्वयं को छोड़े? ऐसी दृष्टि कैसे न करे? और ऐसी स्थिरता क्यों न करे? ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहा..हा..! ऐई! जेठालालभाई!

वह परमाणु नित्य है। ऐसा का ऐसा रहा है। ऐसा उसे उसकी पर्याय को खबर नहीं। परमाणु की पर्याय को खबर है? उसकी पर्याय की इसे (जीव को) खबर है कि परमाणु ऐसा का ऐसा नित्य रहा है। इस प्रकार जब परमाणु ऐसा उसमें रहता है और पर्याय में आता नहीं, तो मैं एक द्रव्यस्वभाव त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु, मैं कैसे पर्याय में आऊँ? ऐसा मानते हुए पर्याय को द्रव्य में स्थिर करता है। समझ में आया? वाडीभाई! ऐसी लहर है दिगम्बर सन्तों की। आहा..हा..! ये मुनि हैं, इसलिए इनकी टीका मान्य नहीं, ऐसा (कुछ लोग) कहते हैं। अरे! भगवान! यह तू क्या करता है? भाई! तुझे खबर नहीं। आहा..हा..! इनने कहाँ लेकर छोड़ा, देखो तो सही! बात परमाणु की करते हैं और बात यहाँ कर डाली। भाई! परमाणु की आदि-अन्त में स्वयं है। उसे कोई अपेक्षा की आवश्यकता नहीं है। उसे तो खबर भी नहीं कि आदि-मध्य में मैं का मैं हूँ या नहीं। उसके जाननेवाले की पर्याय में ऐसा आया कि यह तो ऐसा का ऐसा है। यह जाननेवाले की पर्याय, यह आत्मा ऐसा का ऐसा है, उसमें क्यों न स्थिर हो?

ऐसा कहते हैं। हीराभाई!

(स्वरूप में ही रहते हैं — ऐसा जानकर)... जानकर कहा है न? **विहाण** था न? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं **विहाण,** ऐसा था न? विशेष जान! परन्तु वापस इस जानने का प्रयोजन क्या? कि परमाणु ऐसा है... जिसने जिस ज्ञान की दशा ने... एक-एक परमाणु ऐसे कितने? आत्मा की संख्या अपेक्षा अनन्तगुने। ऐसे परमाणु भी द्रव्य से ऐसे के ऐसे रहते हैं। ऐसी ही वस्तु की स्थिति है। इसकी तो उसे खबर नहीं। उसकी खबर करनेवाला यह ज्ञान, उसे जैसे द्रव्य को ऐसा का ऐसा है, ऐसा रहता है, ऐसा जानता है, तो तू भी ऐसा का ऐसा सहज पारिणामिकभाव से है। उसमें क्यों न स्थिर हो? उसमें क्यों न जाये? आहा..हा..! ऐ.. हीराभाई! ऊँचा किया है ऐसा।

अरे सिद्धभगवन्त। वे सिद्धभगवान ही यह आत्मा है। निश्चय से सिद्धभगवान ही है न। वस्तु स्वयं सिद्ध ही है। शुद्ध ध्रुव। वह **अपने चैतन्यात्मक...** चैतन्यरूप **स्वरूप में क्यों नहीं रहेंगे?** आहा..हा..! जब जिसके ज्ञान में ऐसा आया कि परमाणु द्रव्य, अनन्त-अनन्त जड़, जिन्हें कुछ ज्ञान नहीं, जिनकी कुछ खबर नहीं, हम जगत के तत्त्व है या नहीं, ऐसी भी जिन्हें खबर नहीं। आहा..हा..! ऐसे तत्त्वों का, ऐसा का ऐसा द्रव्य रहता है-ऐसा जाननेवाला भगवान,... वे अनन्त परमाणु द्रव्यरूप से तो ऐसे के ऐसे हैं। पर्याय में आये नहीं। ऐसा जाननेवाला पर्याय ज्ञान की, वह तेरा द्रव्य भी ऐसा का ऐसा है; बाहर आया नहीं—ऐसा स्वरूप सन्मुख निर्णय करके क्यों स्थिर न हो? आहा..!

(श्वेताम्बर के) ३२-४५ (सूत्र) पढ़ो तो यह मिले, ऐसा नहीं है। एक-एक लाईन में... आहा..हा..! यह दिगम्बर धर्म अर्थात् आत्मधर्म। छोटाभाई कहते थे कि अब यह दिगम्बर धर्म बाहर आया। नहीं तो छिप गया था। छोटाभाई कदोल रहते हैं न (वे कहते थे)। दिगम्बर धर्म कुछ गिनती में नहीं था। बाहर में श्वेताम्बर-श्वेताम्बर। अहमदाबाद में और सर्वत्र भाई दो-तीन दिन पहले कहते थे। भाई कहते थे छोटाभाई। अरे! दिगम्बर धर्म अर्थात् ऐसा आत्मा का सनातन स्वरूप। वह कोई पक्ष और वाड़ा नहीं है।

मुमुक्षु : समझानेवाला नहीं था, इसलिए कहाँ से बाहर आये?

पूज्य गुरुदेवश्री : जिस समय हो, ऐसा आवे न। कहो, समझ में आया? आहा..हा..! गजब बात, भाई! कारणपरमाणु, कार्यपरमाणु... निकालकर फिर डाला कि वह परमाणुद्रव्य, पर्याय में नहीं आया, हों! एक गुणरूप परिणमे... भाई! गजब बात है। वस्तु की स्थिति तो प्रसिद्ध करने की पद्धति अलौकिक है। ओहो..हो..! जब परमाणु जैसे जड़ भी चाहे जितनी

भारी-हल्की, स्निग्धता-रूक्षतारूप द्रव्य नहीं होता। ओहो..हो..! तो ऐसा द्रव्य, भगवान आत्मा का द्रव्य, वह संसार की पर्यायरूप कैसे आवे और कैसे जाये? कैसे हो? इसलिए इसकी दृष्टि द्रव्य में जाने पर, वह सिद्धरूप परिणमने की योग्यता अन्दर हो जाये, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लो, यह ४०वाँ श्लोक हुआ। २७वीं गाथा!

एयरसरूवगंधं दोफासं तं हवे सहावगुणं।
विहावगुणमिदि भणिदं जिणसमये सव्वपयडत्तं।।२७।।

गुण-गुण शब्द प्रयोग किया है, हों! तथापि यह पर्याय है।

दो स्पर्श इक रस गंध वर्ण स्वभावगुणमय है वही।
सर्वाक्षगम्य विभावगुणमय को प्रगट जिनवर कही॥२७॥

टीका : — **यह, स्वभावपुद्गल के स्वरूप का कथन है। चरपरा, कड़वा, कषायला, खट्टा और मीठा - इन पाँच रसों में का एक रस;....** परमाणु में होता है। समझ में आया? क्योंकि परमाणु का गुण रस है, वह तो त्रिकाल है। यह तो पर्यायें हैं, ये पर्यायें हैं। खट्टी-मीठी यह पर्याय है, गुण नहीं। क्या कहा? पण्डितजी! पर्याय है यह तो, रस गुण है। यह खट्टा-मीठा रस, यह तो पर्याय है। यह रस गुण भी पर्याय में आया नहीं।

सफेद, पीला, हरा, लाल और काला — इन (पाँच) वर्णों में का एक वर्ण;... है। वर्णों में से। वर्ण अर्थात् यह गुण का नहीं। वर्ण गुण तो त्रिकाली है, उसकी यह पर्याय है। यहाँ पर्याय को गुण कहने में आता है। आहाहा! तथापि यह काली, लाल, आदि पर्याय में द्रव्य नहीं आया। नित्य रस से भरपूर तत्त्व ऐसी पर्यायरूप नहीं आता। आहा..हा..! यह वीतराग का विज्ञान ही अलग प्रकार का है। यह पहले अजीव का पढ़ा नहीं था न। अब कहते हैं यह पढ़ो।

सुगन्ध और दुर्गन्ध में की एक गंध;... सुगन्ध-दुर्गन्ध तो पर्याय है। गन्ध नाम का गुण त्रिकाल है। आहा..हा..! अरे! परमाणु का गुण, ध्रुव भी जहाँ पर्याय में नहीं आता। द्रव्य, पर्याय में नहीं आता, इसका अर्थ कि द्रव्य के अनन्त गुण, पर्याय में नहीं आते। आहा..हा..! वीतराग के कथन वीतरागभाव की प्रसिद्धि करते हैं। आहा..हा..! भगवान! चाहे जिस पर्यायरूप तेरी दशा हो, उसे न देख, ऐसा कहते हैं। तेरा त्रिकाल तत्त्व, पर्याय में नहीं आया, उसे देख। यह ऐसा आता है न? देखो न! चौदह मार्गणा में, भाई! मार्गणा न देख, मार्गणा, वह जीवद्रव्य में नहीं है। आहा..हा..! तू भव्य-अभव्य—ऐसा न देख। आहा..हा..!

मुमुक्षु : द्रव्य तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य को देखा तो यह (बात) पूरी हो गयी। आहा..हा..! चौदह मार्गणा में आता है न? गति-जाति मार्गणा आती है न? वह जीव में नहीं है, ऐसा आयेगा। जीव अधिकार में। जीव में नहीं। तब वह जीव नहीं? कि नहीं। यह पर्याय जीव, वह व्यवहार जीव। आहा..हा..! गजब बात, भाई! केवलज्ञान में जीव आया नहीं। एक अंश में पूरा अंशी नहीं आता, उसमें नहीं समाता। आहा..हा..! ज्ञान और आनन्द गुण का तत्त्व-सत्व प्रभु, उसकी पर्याय में नहीं आता। ऐसे ये परमाणु ऐसे रंग-रस में नहीं आते, पर्याय में है। आहा..हा..!

कठोर, कोमल, भारी, हलका,... देखो अब आया। **हलका, शीत, उष्ण, स्निग्ध (चिकना) और रूक्ष (रूखा) — इन आठ स्पर्शों में से अन्तिम चार स्पर्शों में के अविरुद्ध दो स्पर्श;...** एक परमाणु में लेना है न? एक परमाणु में दो अविरुद्ध दो स्पर्श। शीत हो तो उष्ण नहीं हो और उष्ण हो तो शीत नहीं हो। उष्ण, चिकना, शीत नहीं। **यह, जिनों के मत में...** ओहो..हो..! वीतराग भगवान के अभिप्राय में **परमाणु के स्वभावगुण हैं।** ये परमाणु द्रव्य की स्वभाव पर्यायें हैं। **विभावपुद्गल, विभावगुणात्मक होता है।** दो परमाणु से लेकर अनन्त परमाणु स्कन्ध, वह विभावगुण है। देखो! विभावगुण अर्थात् विभावपर्याय।

यह द्वि-अणुकादिस्कन्धरूप विभावपुद्गल के विभावगुण, सकल इन्द्रियसमूह द्वारा ग्राह्य (जानने में आनेयोग्य) है... वह परमाणु इन्द्रियग्राह्य नहीं कहा था। यह पर्याय इन्द्रियग्राह्य है। **विभावपुद्गल के विभावगुण, सकल इन्द्रियसमूह द्वारा ग्राह्य (जानने में आनेयोग्य) है — ऐसा (इस गाथा का) अर्थ है।** आहा..हा..!

इस प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री पंचास्तिकायसमय में (८१वीं गाथा द्वारा) कहा है कि — लो, यह कल कहा था वह।

'एयरसवण्णगंधं दोफासं सद्दकारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि॥'

लो, एक यह स्कन्ध है, अंगुली का पिण्ड। इसमें एक-एक रजकण, अपने स्वचतुष्टय से रहा हुआ है। नित्य, पर्याय में तो आया नहीं, परन्तु पर्याय यहाँ दूसरे को स्पर्शित नहीं है, ऐसा कहते हैं। एक रस की पर्यायवाला परमाणु, एक रंग की पर्यायवाला परमाणु, एक गन्धवाला परमाणु और दो स्पर्शवाला परमाणु। **शब्द का कारण है;...** परन्तु स्वयं **अशब्द है...** परमाणु स्वयं अशब्द है। एक रजकण इसमें चाहे जो, वह उसमें शब्द नहीं है परन्तु शब्द का कारण है। **स्कन्ध के भीतर हो, तथापि...** आहा..हा..! देखो तो सही! ये रजकण देह में हों। उसमें-

स्कन्ध में हों, स्कन्ध में (हों) तो भी वह, **तथापि द्रव्य है (अर्थात्, सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)।** शुद्ध का अर्थ अकेला। वापस है तो विभाव ऊपर परिणमित हुआ, भाई! यह शुद्ध डाल दिया।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; परन्तु तथापि वह बन्ध पर्यायवाला कहा। पर्यायवाला भी... ऐसा है। पर्यायवाला कहा न। **परमाणु, शब्द का कारण है; अशब्द है और स्कन्ध के भीतर हो, तथापि द्रव्य है...** ऐसी पर्यायवाला। **(सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)।** वस्तुरूप से गिनो तो शुद्धद्रव्य है। पर्यायरूप से गिनो तो पर के सम्बन्धरहित भिन्न चीज़ है। समझ में आया? कहो, इतने में एक रहा हुआ है, परन्तु वह अपने स्वचतुष्टय में है। आहा..हा..! ऐसा ज्ञान सर्वज्ञ के अतिरिक्त और वह भी उनके ज्ञानगम्य हो सके, इस प्रकार से... समझ में आया? एक-एक परमाणु के स्कन्ध में होने पर भी **(सदैव सर्व से भिन्न, शुद्ध एक द्रव्य है)।** लो, आहा..हा..!

और मार्गप्रकाश में (श्लोक द्वारा) कहा है कि — देखो, शब्द का कारण है। कौन? एक परमाणु, हों! शब्द का कारण आत्मा है, ऐसा नहीं। यह होंठ शब्द का कारण हैं, ऐसा नहीं। शब्द का कारण परमाणु है। आहा..हा..! आत्मा, शब्द का कारण नहीं। शब्द की उत्पत्ति आत्मा है, इसलिए होती है, ऐसा नहीं। आहा..हा..! भाई! गजब बात है।

मुमुक्षु : होंठ चले तो हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : होंठ है, वह वर्गणा दूसरी है - आहारवर्गणा है। यह (शब्द) शब्दवर्गणा है। आहारवर्गणा से शब्दवर्गणा की उत्पत्ति नहीं है। आहा..हा..! भारी कठिन काम जगत को। अभी बाहर परद्रव्य का कर्ता न माने तो दिगम्बर जैन नहीं, ऐसा कहते हैं। अरर! क्या किया तूने भगवान? अरे! अकेला व्यवहार से भिन्न है, इतना ख्याल में लेना तुझे कठिन पड़ता है। ***आत्मा, शरीर में होने पर भी शरीर से अत्यन्त भिन्न है। राग के साथ दिखने पर भी राग से अत्यन्त भिन्न है और पर्यायवाला दिखने पर भी द्रव्य, पर्याय से भिन्न है। ऐसी दृष्टि किये बिना इसे सम्यग्दर्शन नहीं होगा। कहो, समझ में आया?*** लो, विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

४

श्री परमात्मप्रकाश, गाथा ५८, प्रवचन १३९
दिनांक २१-११-१९७६

परमात्मप्रकाश, ५८ गाथा। **आगे ऐसा कहते हैं कि निर्मल सम्यक्त्वधारी जीवों का मरण भी सुखकारी है,...** गाथा में लेंगे। गाथा में निजदर्शन अभिमुख लेंगे। इसका अर्थ कि समकितसहित। जिस प्राणी को आत्मदर्शन है, आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्णस्वरूप सत् है, उसका अनुभव होकर जो अनुभूति होकर रुचि होती है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शनसहित मरण को प्राप्त होता है, मर जाता है, देह छूट जाए तो भी वह सुखकारी है। **उनका मरना अच्छा है, सम्यक्त्व के बिना पुण्य का उदय भी अच्छा नहीं है**- आहाहा! समकित बिना-आत्मदर्शन, शुद्धचैतन्यघन की जिसे अनुभूति से प्रतीति नहीं, उस जीव के बड़ा पुण्य हो तो भी वह पुण्य उसे नरक में ले जाएगा। समझ में आया? एक बार पुण्य से कदाचित् राजपद मिले, परन्तु फिर नरक-निगोद में जाएगा। इस प्रकार, सम्यग्दर्शन का इतना माहात्म्य है। वह कहते हैं। (गाथा) ५८।

वर णिय-दंसण-अहिमुहउ मरणु वि जीव लहेसि।
मा णि-दंसण-विम्मुहउ पुण्णु वि जीव करेसि॥५८॥

आहाहा! बहुत मर्म की बात, जैनदर्शन का रहस्य है। आहा! **हे जीव! जो अपने सम्यग्दर्शन के सन्मुख होकर...** सन्मुख का अर्थ यहाँ सहित है। सातवें अध्याय (मोक्षमार्गप्रकाशक) में मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्व के सन्मुख कहा है, वह नहीं। आहाहा! जिसे आत्मदर्शन, आत्मज्ञान, आत्मा जो वस्तु पूर्ण परमात्मस्वरूप है, उसके सन्मुख होकर जो अनुभव में प्रतीति हो, अनुभूति होकर, आत्मा की अनुभूति होकर... जैसा है, वैसा अनुभव होकर रुचि हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! उस सम्यग्दर्शनसहित मरण भी अच्छा है। मरणसहित देह छूट जाए तो भी अच्छा है।

परन्तु जो जीव, अपने सम्यग्दर्शन से विमुख... आहाहा! जो मात्र पुण्य-दया, दान, व्रत की क्रिया में मग्न है। जिसे भगवान आत्मा निजस्वरूप की अन्तर्मुख दृष्टि का अभाव है। आहाहा! भगवान शुद्ध चैतन्य ज्ञायकभाव, अनन्त ज्ञानस्वभावभाव। पर्याय में अल्पज्ञता है,

परन्तु वस्तु है, वह अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन आदि से भरपूर वस्तु है। आहाहा! उसका इसे भावभासन होना चाहिए-ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह चीज़ यह है-ऐसा इसे ज्ञान में भासन होना चाहिए। आहाहा! इस सम्यग्दर्शनसहित देह छूट जाए, मरण हो तो भी वह अच्छा है। वह स्वर्ग में जायेगा और वहाँ से मनुष्यपना प्राप्त कर मोक्ष जायेगा। आहाहा! और उससे विमुख है (अर्थात्) स्वरूप की दृष्टि का भान नहीं, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, ईश्वरता, प्रभुता-ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप द्रव्य वस्तु की दृष्टि का जिसे अभाव है, ऐसे सम्यग्दर्शन का जिसे अभाव है.. आहाहा! वह पुण्य भी करे—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि पुण्य करे तो भी अच्छा नहीं है। भभूतमलजी!

श्रोता : क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करना, क्या? अन्दर दृष्टि करनी, यह करना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्दर परमात्मस्वरूप विराजता है, तेरा स्वरूप ही परमात्मस्वरूप है। उसके सन्मुख होकर, अनुभव करके दृष्टि करना, यह करना है; बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

श्रोता : परन्तु यह तो बहुत कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन माना है। वस्तु तो अपना निज घर है। अन्दर पड़ी है। है, उसके पास जाना है, उसमें क्या कठिन है? कठिन मान लिया है और पुरुषार्थ किया नहीं। आहाहा! सहजात्मस्वरूप स्वाभाविक आत्मस्वरूप जो अनादि महासत्ता चैतन्य की, आनन्द की महासत्ता अस्तिरूप भगवान है, उसका इसने सन्मुख होकर विश्वास नहीं किया। बाकी सब शास्त्र का जानपना किया, व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे, दान करे। कहो, भभूतमलजी! इन्होंने आठ लाख का दान किया था। मन्दिर, मन्दिर (बनाया), बैंगलोर (में)। उसमें क्या है? राग मन्द हो तो पुण्य है। आहाहा! ऐसी बात है।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का जहाँ स्वीकार नहीं है, चैतन्य महाप्रभु अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द का कन्द है। आहाहा! एक बार हमने कहा नहीं था? शक्करिया का। शक्करिया, शक्करिया समझ में आता है? शक्करकन्द। शक्करकन्द नहीं होता? उसकी ऊपर की लाल छाल है, उसके अलावा देखो तो पूरा शक्करकन्द-शक्कर की मीठास का पिण्ड है। आहाहा! इसी प्रकार यहाँ आत्मा की पर्याय में जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि होते हैं, वे छिलका / छाल है। जैसे छाल के पीछे शक्करकन्द है; शक्कर, शक्कर अर्थात् मिश्री, शक्कर की मिठास का पिण्ड है। आहा! अरे! इसने कभी प्रयत्न कहाँ (किया है)? इसकी दरकार कहाँ (की है)?

भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। लो! सेठ का आया सागर। वह सागर है, कहते हैं। आहाहा! वह अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द और अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान का भान-अन्तर्दृष्टि होने पर जो सम्यग्दर्शन हो... आहाहा! यह कहते हैं कि भले देह छूट जाए, मरण (के समय) बाहर में कोई शरण न हो, तो भी वह मरण अच्छा है। समकिती का देह छूटना भी अच्छा है और सम्यग्दर्शनरहित यह पुण्य करे, अथवा पूर्व के पुण्य का बड़ा उदय (हो), अरबों कमाता हो, बाल-बच्चे (अच्छे) हों, दुकानें चलती हों, दस-दस, बीस-बीस दुकान (हों)... आहाहा! कहते हैं कि इस सम्यग्दर्शन के बिना पुण्य भी करे तो भी अच्छा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर पूर्णानन्द का नाथ विराजता है। उसका जिसे स्वीकार नहीं और एक समय की पर्याय और राग-पुण्य के भाव का स्वीकार है, वह मिथ्यादृष्टि भले पुण्य करे (तो भी) अच्छा नहीं है, क्योंकि उस पुण्य के फल में कोई स्वर्ग आदि जाएगा या राजा (होगा), वहाँ से मरकर नरक में जाएगा। आहाहा! आचार्यों ने करुणा करके, अज्ञानी के उद्धार का मार्ग क्या है, वह कहा है। आहा! समझ में आया?

प्रथम में प्रथम इसे सम्यग्दर्शन करना।

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;
तोरि सकल जगदंद-फंद, निज आतम ध्याओ।

द्वैतपना छोड़कर (अर्थात्) यह द्रव्य है और यह पर्याय दो है, यह बात भी लक्ष्य छोड़कर। आहाहा! 'निज आतम उर ध्याओ।' निज आतम (ध्याओ)। भगवान (ध्याओ, ऐसा) नहीं। निज आतम उर ध्याओ। ध्यान का विषय निज आत्मा को बिना। आहाहा! ऐसा जो सम्यग्दर्शन, उससे रहित पुण्य भी करे, भले व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे, लाखों-करोड़ों रुपये का दान करे, धर्मशालाएँ बनावे.. लो! और सेठ का याद आया। सेठ ने वहाँ धर्मशाला बनायी है न सागर में? वहाँ हम थे न! उद्घाटन हुआ न? तुम्हारी धर्मशाला। तीन लाख की धर्मशाला बनायी। यह कहते हैं कि सब पुण्य है, राग की मन्दता है, परन्तु वह पुण्य, सम्यग्दर्शन के बिना (परिभ्रमण का कारण है)। आहाहा! सम्यग्दर्शन नहीं तो उस पुण्य से तो स्वर्ग आदि, राजादि (पदवी) मिलेगी। अभी कहेंगे। यह तो अभी ५८वीं चलती है न?

(गाथा) ६० में कहेंगे। पुण्य से वैभव—यह बाहर की धूल मिलेगी। अरबों रुपये! प्रारब्ध के तक। अब अरबों तक गया है, पहले तो प्रारब्ध था। सौ करोड़ का अरब और सौ अरब का खरब; खरब, निखर्ब, महापद्म... हमारे समय में १८ बोल, प्रारब्ध तक थे। सौ अरब

का खरब, सौ खरब का निखर्व, खरब, निखर्ब, महापद्म.. १८वाँ बोल है। यह कहते हैं कि अरबों रुपये दिन की आमदनी करता हो तो भी क्या? इस सम्यग्दर्शन के बिना पुण्य से उसे मद चढ़ेगा, अभिमान होगा। स्वभाव की दृष्टि का अधिकपना भासित नहीं हुआ, इससे उसे पुण्य की अधिकता भासित होगी। आहाहा! उसे मद चढ़ेगा। गाथा ६०वीं में कहेंगे। है न ६०वीं? देखो, ६०वीं!

पुण्णेण होइ विहवो... अपने यह चलती है ५८ (वीं)। इसकी ६०। है? ६०, ६० **पुण्णेण होइ विहवो...** अज्ञानी को पुण्य से तो वैभव-बाहर की धूल मिलेगी। आहाहा! और वैभव से मदो-उस वैभव से उसे मद चढ़ेगा। यहाँ तो यह (बात है)। नागा बादशाह हैं दिगम्बर। उन्हें जगत की कुछ पड़ी नहीं है। बादशाह, नागा बादशाह, कहते हैं न-बादशाह से आघा। आहाहा! कहते हैं कि पुण्य से वैभव, और वैभव से मद और मद से मति भ्रष्ट होगी। आहाहा! **मइ-मोहेण य पावं** उस मति-मोह से पाप करके **ता पुण्णं अम्ह मा होउ** आचार्य कहते हैं कि ऐसा पुण्य हमको मत होओ। नीचे अर्थ में है। है भाई! भभूतभाई! नीचे।

पुण्य से घर में धन होता है,... नीचे अर्थ है। पुण्य से, पुण्य से धन (मिलता है), हों! तुम्हारे पुरुषार्थ से नहीं। आहाहा! है भाई? है? शोभालालजी! ६०वीं गाथा। है? **पुण्य से घर में धन होता है, और धन से अभिमान,...** होता है। हम अरबोंपति, हम करोड़ोंपति, हमारी दुकान ऐसे चलती है, पाँच सौ-पाँच सौ लोग काम करते हैं। आहाहा! हमारे पोपटभाई है न? इन पोपटभाई के साला थे। (उनके पास) दो अरब और चालीस करोड़ (थे)। ये पोपटभाई बैठे हैं, इनका साला 'शान्तिलाल खुशाल', दो अरब चालीस करोड़। उनकी बहिन है इनके घर में। दो लड़कियाँ हैं न ब्रह्मचारी? फिर एक बार पोपटभाई ने इनके साला को कहा। पैसा बहुत दो अरब चालीस करोड़। (तो इन्होंने कहा) परन्तु अब किसलिए इतना सब करते हो? पैसा बहुत। ये पोपटभाई, इनकी दो लड़कियाँ अपने यहाँ बाल ब्रह्मचारी हैं, ६४ (बहिनों) में... आहाहा! फिर जवाब देता है। पैसे का अभिमान चढ़ गया, जवाब देता है, क्या हम कमाने के लिये यह करते हैं? हजारों लोगों का पोषण होता है; इसलिए यह धन्धा करते हैं। ऐ.. सेठ! ऐसा जवाब देता है। ये पोपटभाई! हजारों लोग (काम करे) क्योंकि बड़ा गृहस्थ व्यक्ति। चालीस लाख के तो बँगले हैं। दस-दस लाख के दो हैं। साठ-साठ के तीन तो बँगले हैं। आहा! धूल में भी नहीं कुछ। वह पाँच मिनिट में मर गया, लो! हार्टफेल। यह तो मद चढ़ा-ऐसा बताते हैं। अभिमान हो जाए कि हम तो किसी का पोषण करते हैं। मिल के मालिक ऐसा मानते हैं कि इस मिल में हजारों लोगों का (भरण) पोषण होता है न! तेरी ममता के कारण करता है, यह मानता नहीं। आहाहा!

श्रोता : परोपकार बताया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, करते हैं। धूल भी नहीं; तेरी ममता है। सुन न! मतिभ्रष्ट होकर मद चढ़ता है, कहते हैं। है? **बुद्धि के भ्रम होने से...** देखो! बुद्धि भ्रम होता है। धन से अभिमान और अभिमान से बुद्धिभ्रम। **बुद्धि भ्रम होने से (अविवेक से) पाप होता है, इसलिए ऐसा पुण्य हमारे न होवे।** भाई! भभूतमलजी! है गाथा? आहाहा!

यह परमात्मप्रकाश है। भगवान परमात्मस्वरूप! एक समय की वर्तमान पर्याय में अल्पज्ञता होने पर भी, उसकी वस्तु है, वह तो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, ज्ञायकभाव से परिपूर्ण है। उसकी सन्मुख के अनुभव की प्रतीति बिना ऐसा पुण्य हमको न होओ। आहाहा! सम्यग्दर्शन के बिना का पुण्य है, वह हमको न होओ। बाद में कहेंगे, सम्यग्दर्शन हो, वहाँ पुण्य हो, परन्तु वह पुण्य उसे नरक में नहीं ले जाएगा; वह पुण्य स्वर्ग में ले जाएगा, वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जाएगा। समझ में आया? आहाहा!

श्रीमद् राजचन्द्र लो! गृहस्थदशा में थे, जवाहरात का धन्धा (था)। लाखों का बड़ा धन्धा (था), परन्तु अन्दर में भान था, सम्यग्दर्शन (था)। देह छूटकर स्वर्ग में गये हैं, परन्तु वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जाएँगे। समझ में आया? आहा! स्वयं लिखते हैं, 'शेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे', अभी अस्थिरता का राग बाकी रहता है, परन्तु 'इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे।' भभूतमलजी! आहा! गृहस्थाश्रम में सम्यग्दर्शन है, आत्मा का भान है। आहाहा! 'अशेष कर्म का (भोग है)' अभी राग बाकी है, वह मिटता नहीं, हमारा पुरुषार्थ कम है। 'इससे देह एक धारकर..' देह धारण करना पड़ेगा। स्वर्ग के अलावा, हों! स्वर्ग का देह तो एक धर्मशाला है, बाद में मनुष्य का देह (पायेंगे)। 'अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे..' आहाहा! 'इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे।' हमारे स्वदेश आत्मधाम में हम प्रविष्ठ हो जाएँगे। आहाहा! और मिथ्यादृष्टि क्रियाकाण्ड, पंच महाव्रत आदि पालन कर अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक जाता है, परन्तु वापस वहाँ से मरकर मनुष्य, वहाँ से मरकर पशु और मरकर नरक तथा निगोद में (जाता है)। आहाहा! समझ में आया? ऐसा समकित का माहात्म्य है और ऐसी मिथ्यात्व की नीचता-हलकापना है। आहाहा!

श्रोता : वेदनीयकर्म तो केवली को भी वेदना पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई वेदते नहीं। केवली क्या वेदे? - केवली तो अनन्त आनन्द वेदते हैं। जरा असाता का उदय है, वे तो अनन्तवें भाग के रजकण हैं। महासमुद्र भरा हो, उसमें एक जरा इतनी चिमटी (भर) राख दिखायी दे? वैसे अन्दर में जरा रजकण प्रतिकूल थोड़े हों, परन्तु उन्हें वेदते नहीं; वेदन तो अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन है।

केवली को क्षुधा नहीं होती, तृषा नहीं होती, रोग नहीं होता। श्वेताम्बर मानते हैं, वह एकदम विपरीत-उल्टा है। समझ में आया? महावीर भगवान को छह महीने रोग रहा। और आहार लेने गये... लाया तब खाया... सब कल्पनाएँ हैं। ऐ.. शान्तिभाई! ये सब उनके यहाँ प्रमुख थे। जहाँ-तहाँ बैठे और फिर बातें करे, उसको पुष्टि देते। अब बदल गये। अरे रे! हमारी जिन्दगी मुफ्त में चली गयी। शान्तिभाई वहाँ कलकत्ता में करते? तुम तो दिल्ली है? दिल्ली। बैंगलोर, बैंगलोर। यह तो कलकत्ता में। भाई! आहा!

अरे रे! बापू! जिसे आत्मदर्शन वस्तु क्या चीज़ है, उसकी जिसे खबर भी नहीं, वह व्रत, तप, भक्ति और पूजा करे, कहते हैं कि उसके पुण्यफल में कभी राज आदि, स्वर्ग आदि मिले, पश्चात् तो नरक-निगोद में जाएगा। आहाहा! यह कहते हैं, देखो! हमें ऐसा पुण्य न हो। आहाहा! मुनि को खबर है कि हम यहाँ से स्वर्ग में जानेवाले हैं। पंचम काल के मुनि हैं, उनका मोक्ष तो नहीं, खबर है; परन्तु यह पुण्य हमारे सम्यग्दर्शन सहित हेयबुद्धि से आता है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा के सुख के आदर में यह पुण्य का भाव हेय और दु:खरूप लगता है। उसमें पुण्य आता अवश्य है। उसके फलरूप से स्वर्ग आदि होंगे। वहाँ से अन्तिम भव हमारा मनुष्य का हो या वहाँ भले राज में उत्पन्न हो, परन्तु हम मुनिपना लेकर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। आहाहा! लोगों को कीमत (नहीं)-सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी कीमत नहीं। आहाहा! बाहर का त्याग, व्रत, तप और यह लंघन करे न, उसकी... आहाहा! उसकी महिमा (करते हैं)। इसने इतने उपवास किये और इसने इतना किया न... देखो न! यहाँ है न? क्या कहलाता है? उपधान किया है। माला पहिचाननेवाले हैं। पालीताणा। सवा सौ लोग (एकत्रित हुए)। अरे रे! उपधान करते हैं न?

श्रोता : उसमें समकित का उपचार किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका उपचार समकित का? श्वेताम्बर में ऐसा आता है। दीक्षा दे, उसे द्रव्य समकित का उपचार करे। समकित का उपचार होता होगा? आहाहा!

यहाँ आचार्य कहते हैं। ५८ (गाथा) चलती है न? **भावार्थ - निर्दोष निज परमात्म की अनुभूति की रुचिरूप...** आहाहा! भगवान आत्मा कैसा है? पवित्र निर्दोष है। आहाहा! पुण्य और पाप के दोष भी उस वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! वापस निर्दोष निज परमात्मा, हों! तीर्थंकर केवली हो गये, वे तो उनके परमात्मा। आहाहा! निर्दोष पवित्र निज आत्मा परमात्मा। यहाँ परमात्मप्रकाश है न? **निज परमात्म की अनुभूति...** आहाहा! अन्तर आत्मा पूर्णानन्द प्रभु को यहाँ परमात्मा कहा। आहाहा! परम स्वरूप से विराजमान भगवान

परमात्मा है। आहाहा! निज परमात्मा की अनुभूति–इस परमात्मा का अनुभव होकर। देखा! जो चीज़ है, उसे अनुसर कर दशा हुई। आहाहा! उसकी रुचिरूप, उसकी रुचि।

तीन गुप्तिमयी जो निश्चयचारित्र उससे अविनाभावी... यह साथ में इतना रागरहित चारित्र होता है न! **(तन्मयी) जो वीतरागनिश्चयसम्यक्त्व...** आहाहा! **वीतरागनिश्चय –समकित उसके सन्मुख हुआ है। हे जीव!...** उस समकितसहित हुआ, ऐसा हे जीव! आहाहा! निज परमात्मा के सन्मुख हुई जो दृष्टि। आहाहा! उस समकित से सहित हुआ, ऐसा **हे जीव! जो तू मरण भी पावे,...** आहाहा! **तो दोष नहीं,...** तो भी दोष नहीं है। क्योंकि स्वर्ग में जाएगा, वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जाएगा। आहाहा!

श्रेणिक राजा सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए। राज था, हजारों रानियाँ थीं। आहाहा! परन्तु क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त हुए। आहाहा! और जरा शुभ विकल्प आया तो तीर्थंकरगोत्र बाँधा, तो समकित सहित जो थे। आहाहा! परन्तु पहले नरक का आयुष्य बँध गया था। मुनि की अशातना की थी, उसमें सातवें नरक का आयुष्य बँध गया। वे यहाँ समकित प्राप्त हुए, तैंतीस सागर का आयुष्य तोड़ डाला; चौरासी हजार वर्ष का रहा। क्योंकि घी, शक्कर और आटा का जो लड्डू बना हो, वह कहीं उस लड्डू में से घी निकालकर नयी रोटी नहीं होती। आटा निकलकर रोटी नहीं होती। घी निकलकर पूड़ी (नहीं होती)। वह तो खाना ही पड़ेगा। इसी प्रकार एक बार आयुष्य बँध गया हो (तो) उसकी स्थिति घटती है। समकित प्राप्त करने पर स्थिति घट गयी। ३३ सागर की (स्थिति) बाँधी थी, वह चौरासी (हजार वर्ष में) रह गयी। आहाहा!

सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए। हजारों रानियाँ थी, सब परिवार बड़ा राज (था)। आहाहा! और भगवान के समवसरण में तीर्थंकरगोत्र बाँधा। आहाहा! फिर अभी नरक में गये हैं, परन्तु वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहाहा! जिनका जन्म होगा तो तीन लोक में जरा साता की खलबलाहट हो जाएगी। साता.. साता.. सात.. (हो जाएगी)। यह सुख की साता; वह (अतीन्द्रिय) सुख नहीं। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दर्शन का माहात्म्य!!

जिन्हें राग छूटा नहीं, व्रत नहीं, तप नहीं, चारित्र नहीं परन्तु एक आत्मा का अनुभव और दृष्टि (हुए हैं)। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में जो रुचि हुई है, वह ऐसी रुचि है... आहाहा! कि उसमें पूर्णानन्द का स्वीकार है। आहा! उन्हें जरा सम्यक्त्व से पहले आयुष्य बँध गया (तो) नरक में गये हैं। चौरासी हजार (वर्ष की) स्थिति में (गये हैं)। ढाई हजार वर्ष हुए। अभी साढ़े इक्यासी (हजार वर्ष) बाकी हैं। पहले नरक में हैं। आहाहा! यहाँ अरबोंपति सब बादशाही सेवन करते हों, वह वहाँ नरक में पड़ा है, परन्तु वहाँ से (निकलकर) तीर्थंकर होंगे।

वेदना है, जितना राग है, उतना वेदन है। जितना राग गया, उतना सुख है। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का राग गया है, उतना सुख है। शेष दूसरे तीन कषाय हैं, उतना अभी (दु:ख है)। आहाहा! यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। वे तीर्थंकर, तीन लोक के नाथ; नरक में से आने से पहले उनकी माता के पास आकर इन्द्र छह महीने पहले तो उनका गर्भ साफ करेंगे। आहाहा! यह सम्यग्दर्शनसहित पुण्य का फल है। आहाहा! अज्ञानी का-सम्यग्दर्शनसहित का-पुण्य, भोग में आसक्ति करके मरकर चला जानेवाला है। आहाहा! समझ में आया?

जो तू मरण भी पावे, तो दोष नहीं, और उस सम्यक्त्व के बिना... विमुख शब्द है न? उसमें सन्मुख है, परन्तु सन्मुख अर्थात् सहित और विमुख अर्थात् रहित। **सम्यक्त्व के बिना मिथ्यात्व अवस्था में...** देखो! आहाहा! अभी जिसकी श्रद्धा ही विपरीत है। पुण्य से धर्म होगा, व्रत करते-करते कल्याण होगा, यह पुण्यभाव करते-करते आगे बढ़ा जाएगा—ऐसी जिसे मिथ्या श्रद्धा है.. आहाहा! उपदेश में भी यह कहे, यह व्रत और तप और यह करो (तो) तुम्हारा कल्याण होगा! वह मिथ्या श्रद्धा है। आहाहा!

अरे! चौरासी के अवतार में, बापू! एक-एक योनि में इसने सम्यक्त्व के बिना अनन्त अवतार किये हैं। यह मिथ्यात्व का प्रताप है। आहाहा! समकित का प्रताप यह है, जिसे कोई वर्तमान निर्धनता हो, नरक हो, तिर्यंच में अवतरा हो। लो न समकिती है। तिर्यंच में अभी असंख्य तिर्यंच समकिती हैं। आहाहा! तो भी यहाँ से स्वर्ग में जायेंगे, वहाँ से मनुष्य होकर कितने ही मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! और इस सम्यक्त्व के बिना पुण्य बाँधा हो, वह भले राजा आदि हो, वह पशु है और यह राजा मनुष्य है परन्तु वह मरकर भोग की वांछा में मिथ्यात्व में पुण्य बाँधा है। उस इच्छा के प्रेम में, पुण्य के प्रेम में उसके फल में उसका प्रेम (उसे) छूटता नहीं है। आहाहा!

मिथ्यादृष्टि जीव **पुण्य भी करे तो अच्छा नहीं है।** है? आहाहा! जिसे दृष्टि में मिथ्यात्व है, वह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा करे परन्तु वह अच्छा नहीं है, ऐसा कहते हैं। ऐसी बातें, बापू! यह तो किसी दिन ऐसी बात (आवे)। यह तो जगत का इतना भाग्य है कि ऐसी वस्तु रह गयी। आहाहा! समझ में आया? आहा! कहते हैं, मिथ्यादृष्टि पुण्य करे तो भी अच्छा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

श्रोता : अवांछक वृत्ति से करे तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि को अवांछक वृत्ति होती ही नहीं। दृष्टि मिथ्यात्व है;

इसलिए वहाँ राग की ही भावना है। सम्यक्त्वी को अवांछक वृत्ति से होता है। यह आयेगा थोड़ा, देखो!

जो सम्यक्त्वरहित मिथ्यादृष्टि जीव पुण्यसहित हैं, तो भी पापी ही कहे हैं... है? अरे! सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन क्या चीज़ है, इसकी मूल की बात की खबर नहीं होती और ऊपर के सब वृक्ष, पत्ते तोड़े! बड़ी इमली हो और इमली का वृक्ष। लाखों पत्ते तोड़े परन्तु फिर मूल तो सुरक्षित है। पन्द्रह दिन में वापस अंकुरित हो जायेगा। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि यह व्रत करे और तप करे और ऊपर के पत्ते तोड़े परन्तु मिथ्यात्व का मूल तो वहाँ सुरक्षित है। आहाहा! ऐसा उपदेश ही कम हो गया। भभूतमलजी! इसने सुना हो न बहुत। आहाहा! अरे रे! इसका उन्हें विरोध करना है। अरे! भगवान! आहाहा!

श्रोता : चरणानुयोग की शैली क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : चरणानुयोग के उपदेश में क्या है? चरणानुयोग का सार तो वीतरागता है। व्रत आदि का ज्ञान करावे परन्तु सार तो उसका वीतरागता है। चरणानुयोग का व्यवहार करे, वह कहीं धर्म है? यह कहते हैं न कि चरणानुयोगप्रमाण हम आचरण करते हैं; इसलिए हम साधु हैं। चरणानुयोग का व्यवहार है, वह साधुपना है ही नहीं। उसे तो चरणानुयोग का आचरण जिसे सम्यग्दर्शन और वीतरागभाव सहित है, उसे ऐसा भाव आता है, ऐसा उसे चरणानुयोग बताता है। आहाहा! दूसरा क्या हो? अरे! निराधार अशरण शरण है। भगवान चिदानन्द अन्दर शरण है। उसे शोधता नहीं, खोजता नहीं और यह करूँ और यह करूँ और यह करूँ... आहाहा! कहते हैं कि वह पापी ही है।

मिथ्यादृष्टि जीव पुण्यसहित है तो भी पापी ही कहे हैं। आहाहा! गोम्मटसार में तो मिथ्यादृष्टि को अशुभभाव ही कहा है, शुभभाव कहा नहीं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को शुभभाव कहा है। आहाहा! **पापी है तथा जो सम्यक्त्वसहित हैं, वे पहले भव में उपार्जन किये हुए पाप के फल से दुःख दरिद्र भोगते हैं...** आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित है और वर्तमान में दरिद्र है। पच्चीस रुपये कमाना (हों तो भी) नहीं कमा सकता। है? दरिद्र है और दुःख (भोगता है), बाहर की प्रतिकूलता का पार नहीं। शरीर में रोग हो, स्त्री मिले नहीं, पुरुष सेवा करनेवाले का नौकर न हो, मनुष्य न हो, पैसा न हो, आहाहा! वह दुःखी हो तो भी... आहाहा! **पुण्याधिकारी ही कहे हैं।** है? पुण्य का अधिकारी है। वह मरकर स्वर्ग जानेवाले हैं। यहाँ भले दरिद्री हों, तुम बड़े सेठ करोड़पति दिखायी दो और वह गरीब व्यक्ति हो, रोटियों के लिये मुश्किल से पच्चीस रुपये महीने मिलते हों! आहाहा! पति-पत्नी दो हों, वस्त्र जीर्ण

(हों), गरीब व्यक्ति (हों) परन्तु वह पुण्य का अधिकारी है। आहाहा! उसका पुण्य ऐसा होगा कि उसे स्वर्ग (मिलेगा अथवा) बड़ा राजा होगा। समझ में आया?

वर्तमान में दुःख और दरिद्र भोगता है। आहाहा! रहने का मकान मिलता नहीं, काँटे की बाड़ करके घास का पुला डालकर झोपड़ी में रहना पड़ता हो। ऐई! कुबा कहते हैं न कुबा? घास का बनाते हैं न? अन्दर रहे। बेचारा गरीब व्यक्ति हो परन्तु समकिती है तो वह पुण्य का अधिकारी है। आहाहा! और चालीस-चालीस लाख के बंगले में सोते हों परन्तु वे सब मिथ्यादृष्टि पाप के अधिकारी हैं। आहाहा!

अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द सम्पन्न प्रभु है। आहाहा! उसकी दृष्टि होना, वह तो अलौकिक वस्तु है। दृष्टि भले पर्याय है, परन्तु उसका विषय है, वह तो परमात्मा का है। आहाहा! पूर्ण परमात्मा, वह दृष्टि का विषय है। आहाहा! अब ऐसा उपदेश। भभूतमलजी! यह सब पुण्य की क्रिया की भभूत लगा दे। इसे तो अब प्रेम है न! यह तो वस्तु अलग है, बापू! जरा सा बैठे नहीं तह में परन्तु बैठाना चाहिए इसे। आहाहा!

श्रोता : दृष्टि, दृष्टि को नहीं परन्तु परमात्मा को पकड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा है। दृष्टि पर्याय है, वह पर्याय को नहीं पकड़ती, परमात्मा को (पकड़ती है)। आहाहा! भाई! यह बातें नहीं; यह तो वीतराग के मार्ग के रहस्य हैं। आहा! भले दुनिया माने, न माने। आहाहा!

दरिद्र भोगते हैं तो भी पुण्याधिकारी ही कहे हैं। शास्त्र में उन्हें पुण्याधिकारी कहा है। **इसलिए जो सम्यक्त्वसहित हैं, उनका मरना भी अच्छा। मरकर ऊपर को जावेंगे...** मरकर स्वर्ग में जायेंगे, वैमानिकदेव होंगे। आहाहा! सम्यग्दृष्टि (मनुष्य) मरकर मनुष्य नहीं होता तथा भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष में नहीं जाता, नरक और तिर्यंच में नहीं जाता। आयुष्य नहीं बँधा हो, उसकी बात है। समझ में आया? आहाहा! **ऊपर को जावेंगे..** वैमानिकदेव (होंगे)। आहाहा!

श्रीमद् राजचन्द्र, लो! स्वर्ग में हैं, वैमानिक में हैं। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जायेंगे। उनके कितने ही भक्त ऐसा कहते हैं (कि वे) महाविदेह में गये हैं। (परन्तु) महाविदेह में तो मिथ्यादृष्टि जाता है। क्या करता है तू यह? मनुष्य मरकर मनुष्य तो मिथ्यादृष्टि होता है। समकिती मनुष्य में जाये? इसलिए यहाँ ऊपर जाता है, ऐसा कहा है। ऐसे नहीं जाता। ***आहाहा! लोगों को राग के प्रेम में, सत्य क्या है, सिद्धान्त कहाँ टूटता है, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!***

श्रोता : विदेहक्षेत्र में तो भगवान विराजते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान विराजे तो क्या है ? विदेह में अनन्त बार गया है और मनुष्य मरकर मनुष्य होवे तो मिथ्यादृष्टि होता है; समकिती मनुष्य मरकर मनुष्य नहीं होता, समकिती नारकी भी मरकर मनुष्य ही होता है, तिर्यंच नहीं होता। देव मरकर समकिती मनुष्य होता है, तिर्यंच नहीं होता। मनुष्य मरकर स्वर्ग में ही जाता है, वह भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष, नरक, तिर्यंच में नहीं जाता। आहाहा!

श्रोता : यह तो सब अभी क्रमसर हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमसर ही है। क्रमसर की दृष्टि कहाँ है इसकी ? क्रमसर के माननेवाले की दृष्टि कहाँ है ? उसे क्रमसर बैठा है। बातें की है इसने क्रमसर की ? समझ में आया ? ऐसा क्रमसर होता है, उसकी दृष्टि कहाँ है ? परमात्मा भगवान पर दृष्टि है, उसे यह क्रमसर आ गया है। ऐसी बात है, बापू! दुनिया के साथ मेल नहीं खाता। आहाहा!

समकित बिना महाव्रत पालन करे, अट्ठाईस मूलगुण पाले तो भी अभी पापी है, कहते हैं। आहाहा! समकितसहित दरिद्र हो, निर्धन हो, वांढो हो, वांढा समझते हो ? स्त्री बिना। कोई स्त्री देता न हो। आहाहा! आँखों से काणा हो, एकाध आँख हो और दूसरी आँख न हो तथा समकित हो। कोई कन्या भी न दे परन्तु है पुण्य का अधिकारी। वह बड़ा देव होनेवाला है। समझ में आया ? और समकित बिना के सब पुण्य के थोथा खाते हैं... ऐ.. देवानुप्रिया! उसे वहाँ सब पुण्य का है। किराया उपजता है। अकेला है तो भी किराया खाता है। किराया खाया जाता होगा ? राग, राग (खाता है)। आहाहा!

यहाँ आचार्य कहते हैं। श्लोक बहुत सरस है। भभूतमलजी! आहा! जो **सम्यक्त्व से रहित है, उनका पुण्यकर्म भी प्रशंसा के योग्य नहीं है।** है ? जो समकितरहित है, उसका पुण्यकर्म अर्थात् पूर्व का पुण्य और वर्तमान शुभभाव, वह प्रशंसायोग्य नहीं है। **वे पुण्य के उदय से क्षुद्र (नीच) देव...** आहाहा! **तथा क्षुद्र मनुष्य होके...** मिथ्यादृष्टि पुण्य करेगा तो हल्का गरीब मनुष्य में अवतरित होगा। आहाहा! **संसार वन में भटकेंगे।** जो मिथ्यादृष्टि जीव पुण्य करता (है) परन्तु प्रशंसायोग्य नहीं है क्योंकि उससे नीच देव और क्षुद्र मनुष्य होकर संसार वन में भटकेगा।

यदि पूर्व के पुण्य को यहाँ भोगते हैं तो तुच्छ फल भोग के नरक निगोद में पड़ेंगे। आहाहा! अरबोंपति, करोड़ोंपति पुण्य के फल को भोगते हैं परन्तु सम्यग्दर्शनरहित के वह पुण्य हैं। आहाहा! **तुच्छ फल भोग के नरक निगोद में पड़ेंगे।** आहाहा! समकिती यहाँ दरिद्र होगा तो (भी) वह स्वर्ग का बड़ा देव होगा और वह पुण्यवन्त प्राणी इसमें (मिथ्यात्व में)

होगा, वह मरकर नरक और निगोद में जायेगा। आहाहा! ऐसे तो अनन्त भव किये, भाई! आहाहा! इसे जरा थोड़ा बाहर का अनुकूल मिले, वहाँ इसे अधिकाई (आकर) आकर्षण हो जाता है। शरीर, पैसा, यह स्त्री, पुत्र कहीं ठीक मिले, वहाँ आकर्षित हो जाता है। वे तो धूल के पिण्ड है। आहाहा! रूपवान शरीर हो, भाषा मीठी हो, स्त्री करोड़पति की लड़की आयी हो तो ओहोहो! क्या हम हैं! क्या तुम हो? पापी हो, सुन न! आहाहा! हमारी माँ दीवान की बहिन थी, हमारी ऐसी माता थी, हमारे पिता ऐसे थे, परन्तु तुझे क्या है परन्तु? आहाहा!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वयं होगा और स्वयं निकलेगा अर्थात् उसे स्वयं को खाली हो गया। स्वयं निकल गया। इसे ऐसा कि ऐसे तो मरकर सब रहनेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। यहाँ रहने का भी निकलनेवाला है, यह कहते हैं, वह रहे तो मैं तो निकल गया। मैं निकला। अब वापस आनेवाला नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बातें भारी, भाई! है?

इसलिए मिथ्यादृष्टियों का पुण्य भी भला नहीं है... क्योंकि उसमें अन्दर पुण्यभाव की उसे रुचि है। समकिती को पुण्यभाव की रुचि नहीं, उसे उसके प्रति हेयबुद्धि, जहरबुद्धि है। आहाहा! उसकी आनन्दबुद्धि तो भगवान में है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि की सुखबुद्धि तो भगवान में है, आत्मा में है, पुण्य में तो दु:खबुद्धि है। अज्ञानी को आत्मा में सुखबुद्धि नहीं, उसे पुण्य में सुखबुद्धि है। आहाहा! पहले ४९ गाथा में पीछे कहा था। अज्ञानी पुण्य को उपादेय मानता है, उसे आत्मा हेय हो जाता है। आत्मा हेय (होता है)। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, शुभभाव को जो उपादेय मानता है, उसे आत्मा हेय हो जाता है और जो आत्मा को उपादेय मानता है, उसे पुण्य हेय हो जाता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू! दुनिया के साथ तो बहुत मुश्किल पड़े। आहाहा!

श्रोता : एक मोक्ष की वांछा करता है और एक पुण्यफल की इच्छा करता है, दोनों में कौन अच्छा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष की इच्छा करे, वह इच्छा तो साधारण है। वह इच्छा भी छोड़नेयोग्य है, ऐसा मानते हैं। वह आती है, ऐसा आता है। **'समाहिबोहि लाभं'** आता है। आहाहा!

श्रोता : पर से जुदा एकत्व की उपलब्धि केवल सुलभ ना।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुलभ ना अर्थात्? अनन्त काल में मिली नहीं, इसलिए सुलभ ना, परन्तु मिल सकती नहीं, ऐसा इसका अर्थ नहीं है। क्या कहा? (मिल नहीं सकती) ऐसा नहीं है। अन्दर पुरुषार्थ की उग्रता से मिले, ऐसा है। अनन्त काल में नहीं मिली, इसलिए सुलभ

नहीं है, ऐसा। परन्तु वस्तु स्वयं है, सहज है, सत् है, सत् से भरपूर है, सत् वह सरल है, सत् वह सर्वत्र है, सत् वह (सुगम है)। आहाहा! (सत् की) प्राप्ति सरल है, यह श्रीमद् कहते हैं, यह श्रीमद् के वाक्य हैं। सत् सत् है, सरल है, सर्वत्र है, उसकी प्राप्ति सुलभ है परन्तु उसके समझानेवाले गुरु मिलना दुर्लभ है, ऐसा वहाँ कहा है। आहाहा! समझ में आया?

'नजरने आलसे रे में नयने न निरख्या हरि।' नर का नारायण होने की ताकत है। जन का (से) जैन होने की ताकत है। नर का नारायण होने की ताकत है। जन है, उसे जिन होने की ताकत है। आहाहा! समझ में आया? जन है, वह नरक और निगोद के योग्य नहीं है। वह तो जिन (होने) के योग्य है। आहाहा! समझ में आया? यह तो पर्याय में अज्ञानभाव खड़ा करता है, इससे नरक-निगोद है। वस्तु जिनपना है। जन, वह जिनपना है, वह तो जिनपने के योग्य है। आहाहा! भाई! यह तो दुनिया से अलग प्रकार है, बापू! यह दुनिया की बाहर की चमक और उसमें महत्ता माने! आहाहा! समझ में आया?

मिथ्यादृष्टियों का पुण्य भी भला नहीं है। निदानबन्ध पुण्य से भवान्तर में भोगों को पाकर... देखो! मिथ्यादृष्टि है न? उसे दृष्टि में निदान ही पड़ा है, पुण्य की इच्छा ही है। **पुण्य से भवान्तर में भोगों को पाकर पीछे नरक में जावेंगे...** आहाहा! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। छह खण्ड का राज, छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक! आहाहा! जब निदान किया, तब तो समकित पहले था। समकिती चक्रवर्ती हो सकता है। मिथ्यादृष्टि को निदान में चक्रवर्तीपना नहीं होता। आहाहा! सम्यग्दृष्टि था, उसमें निदान करके दृष्टि मिथ्या हो गयी। उसे चक्रवर्तीपना हो, मिथ्यादृष्टि को कभी सम्यक्त्व प्राप्त हुआ नहीं, उसे चक्रवर्ती पद हो सकता ही नहीं। वासुदेव, चक्रवर्ती सब समकित पाये हुए। वे निदान में (मिथ्यादृष्टि) हुए हैं। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : निदान के समय सम्यक्त्व चला जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : शल्य आया न? निदान, माया, मिथ्यात्व। आहाहा! मार्ग बहुत (सूक्ष्म), बापू! जन्म-मरण रहित का मार्ग है यहाँ तो.. आहाहा!

अभी तो यह बात ही सुनना कठिन हो गयी और बात बाहर आयी, वहाँ लोगों को ऐ.. ऐसा है और वैसा है और अमुक है... सम्यग्ज्ञानदीपिका की बात हमारे सिर पर डाली। कहो, वाममार्गी है, कहते हैं। सम्यग्ज्ञानदीपिका में ऐसा कहा, स्त्री पर को भोगे, तथापि बाहर में न आवे, यह बात सहन नहीं हुई उन्हें। वह तो धर्मदास क्षुल्लक का कथन है। ८७ वर्ष पहले की

पुस्तक है। अभी कल तक चौपानिया में आया था। उन्हें पूछो कि यह क्या है ? परन्तु किसका लिखा हुआ है ? आहाहा! क्या हो ? जगत को इस प्रकार की पात्रता कम हो, वहाँ ऐसा होता है। आहाहा!

अभी तो लोगों को अब जिज्ञासा हुई है। सत्य क्या है वह सुनना... आहाहा! प्रेम से सत्य को सुनते हैं, रुचि से ऐसा कहते हैं कि मार्ग तो यह बराबर है। आहाहा! यह विरुद्ध नहीं चलता, बापू! यहाँ तीन लोक के नाथ परमात्मा के पन्थ में यह विरुद्ध नहीं चलता। आहा! वह तो लोक का पुण्य कम है, नहीं तो कोई इन्द्र-देव आकर विरोध करे। ऐसा मार्ग है परन्तु अब लोगों का पुण्य न हो तो (नहीं होता)। ऋषभदेव भगवान के समय चार हजार साधु हुए। नहीं ? वेष बदलकर दूसरा करने लगे। देव ने आकर ऐसा कहा कि दण्ड करेंगे। वेष बदल डालो, दूसरा वेष लो। नग्नपने में दूसरा (गलत आचरण) करोगे तो नहीं चलेगा। आहा! इतना लोगों का भाग्य! देव ने आकर रोका। आहाहा! (अभी) इतना पुण्य कम है।

श्रीमद् राजचन्द्र जैसे समकिती वैमानिक में गये हैं... सोगानी जैसे, निहालचन्द्रभाई जैसे (स्वर्ग में गये हैं)। द्रव्यदृष्टिप्रकाश आया है ? कैसा ? ठीक! वहाँ दिया था ? सोगानी का द्रव्यदृष्टिप्रकाश है न ? स्वर्ग में गये हैं। वैमानिक स्वर्ग। आहाहा! होता है न।

निदानबन्ध पुण्य से भवान्तर में भोगों को पाकर पीछे नरक में जावेंगे। सम्यग्दृष्टि प्रथम मिथ्यात्व अवस्था में किये हुए पापों के फल से दुःख भोगते हैं... दुःख अर्थात् प्रतिकूलता आती है। **लेकिन अब सम्यक्त्व मिला है, इसलिए सदा सुखी ही होवेंगे।** आहाहा! सम्यग्दर्शन में आत्मा का सुख है। आहाहा! **आयु के अन्त में नरक से निकलकर मनुष्य होकर...** आहाहा! देखो! **ऊर्ध्वगति ही पावेंगे।** श्रेणिक राजा आदि। आहाहा! समकिती नरक में पड़े हैं, परन्तु वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जायेंगे या स्वर्ग में जायेंगे और पीछे मोक्ष जायेंगे। **मिथ्यादृष्टि जो पुण्य के उदय से देव भी हुए हैं तो भी देवलोक से आकर एकेन्द्रिय होवेंगे।** आहाहा! दूसरे देवलोक तक (से आकर) एकेन्द्रिय होते हैं। **ऐसा दूसरी जगह भी वरम इत्यादि श्लोक से कहा है कि सम्यक्त्वसहित नरक में रहना ही अच्छा...** योगसार में है। **और सम्यक्त्वरहित का स्वर्ग में निवास भी शोभा नहीं देता।** इतना सम्यग्दर्शन का माहात्म्य है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

५

श्री समयसार, गाथा ५८ से ६०, प्रवचन १३३
दिनांक ११-११-१९७८

क्या कहते हैं ? **(अब यहाँ प्रश्न होता है कि) इस प्रकार तो व्यवहारनय और निश्चयनय का विरोध आता है; अविरोध कैसे कहा जा सकता है ? इसका उत्तर दृष्टान्त द्वारा तीन गाथाओं में कहते हैं—**

पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी।
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई।।५८।।

तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहिं ववहारदो उत्तो।।५९।।

गंधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति।।६०।।

देखा लुटाते पंथ में को, 'पंथ ये लुटात है'—
जनगण कहे व्यवहार से, नहिं पंथ को लुटात है॥५८॥

त्यों वर्ण देखा जीव में इन कर्म अरु नोकर्म का।
जिनवर कहे व्यवहार से, 'यह वर्ण है इस जीव का'॥५९॥

त्यों गंध, रस, रूप, स्पर्श, तन, संस्थान इत्यादिक सबैं।
भूतार्थदृष्टा पुरुष ने, व्यवहारनय से वर्णये॥६०॥

टीका : लो, **जैसे व्यवहारीजन, मार्ग में जाते हुए किसी सार्थ (संघ) को लुटता हुआ देखकर, संघ की मार्ग में स्थिति होने से उसका उपचार करके,...** आहाहा ! हमारे तो यह अनुभव हुआ है । 'गारियाधार' से 'उमराला' जाते हुए एक 'पांदरड़ा' आता है । उसकी बड़ी नहर आती है, वह लुटाऊ नहीं कहलाती है, भाई ! इतनी गहरी है, है बड़ी नहर परन्तु इतनी गहरी है और फिर ऐसे गहरे से चढ़ने का है, इसलिए बीच में कोई चोर आकर लूटे तो आसपास के लोगों को कुछ पता नहीं पड़ता । आहा...हा... ! ऐसा 'पांदरड़ा' है । 'गारियाधार'

से 'उमराला' जाते हुए (आता है)। हमारे साथ दूसरे थे। मेरी तो छोटी उम्र, और गाड़ा में बैठकर गये थे। दूसरे (लोग) देखने के लिये उतर गये। (पूछा) कैसे है?-कि यह मार्ग लुटता है। लुटाऊ मार्ग है। इसलिये अपने गाड़ा एकदम हाँको, और हम नीचे उतर जाते हैं तथा सामने देखते हैं। यह तो बनी हुई बात है। बहुत वर्ष की, ७५ वर्ष पहले की बात है। यह मार्ग लुटता है, ऐसा कहते हैं। यह मार्ग लुटाऊ है-ऐसा बोलते थे। क्योंकि वहाँ आगे गहरा-गहरा है। ऐसे रास्ता ऊँचा हो, इसलिए गहरा-गहरा (हो), इसलिए वहाँ चोर लूटे तो कोई बाहर में ठेठ तक आवे, तब तक पता नहीं पड़ता। लुटाऊ मार्ग है (कहे परन्तु) मार्ग लुटाऊ नहीं है। आहाहा!

देखो तो सही दृष्टान्त! उपचार करके यह मार्ग लुटता है - ऐसा कहते हैं। **तथापि निश्चय से देखा जाये तो, जो आकाश के अमुक भागस्वरूप है...** आकाश के अमुक भागस्वरूप मार्ग है। **वह मार्ग तो कुछ नहीं लुटता;...** मार्ग कहीं लुटता नहीं है। आहाहा! **इसी प्रकार भगवान अरहन्तदेव,...** सर्वज्ञ परमेश्वर, **जीव में बन्धपर्याय से स्थिति...** एक समय की बन्धपर्याय की स्थिति देखकर। आहाहा! एक समय में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, कर्म का सम्बन्ध-ऐसा एक समय है। भगवान तो त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु है। आहाहा! उसमें ये परमाणु आदि, बन्ध आदि, भेद आदि एक समय में रहनेवाले हैं। आहाहा!

जीव में बन्धपर्याय से स्थिति को प्राप्त... आहाहा! **कर्म और नोकर्म का वर्ण देखकर,...** वर्ण से लिया है न? वर्ण, गन्ध से लिया है न? इसलिए? कर्म-नोकर्म की वर्ण की बन्धपर्याय की जीव में स्थिति एक समय होने से **उसका उपचार करके,...** यह तो गति करते हुए, परिणमन करते.. करते.. करते.. आये हैं। आहा..हा..! यह आत्मा के स्वभाव में, पर्याय में गति करते एक समय (के लिये) आये हैं। परन्तु एक समय की स्थिति देखकर ये आत्मा के हैं-ऐसा कहने में आता है, वह तो व्यवहार है। आहाहा! आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक कहा न! नियमसार... चार भाव हैं, वे आवरणसंयुक्त हैं-ऐसा कहा। आहाहा! ऐ... देवानुप्रिया! तुम्हारा सब इसमें आया है या नहीं? क्षायिकभाव, उपशमभाव, केवलज्ञान, केवलदर्शन, यह क्षायिकभाव है। उन्हें वहाँ 'आवरणसंयुक्त' कहा - ऐसा टीका में पाठ है-आवरणसंयुक्त। अर्थात् इन्हें कर्म के निमित्त के अभाव की अपेक्षा आती है न! आहाहा! इसलिए उसे आवरणसंयुक्त गिनकर, उस भाव की भावना न करनी (-ऐसा कहा है)। आहाहा! पंचम स्वभावभाव, ध्रुवभाव, ध्रुवभाव ऐसा। आहाहा! उसकी भावना (करनी)। उसकी भावना है उपशम, क्षयोपशमभाव, परन्तु पंचम (भाव की) भावना (भाना), इस भावना की भावना नहीं। आहाहा! आहाहा! क्षायिक, क्षयोपशम आदि पर्याय है परन्तु उसकी

भावना नहीं। आहा! यह तो एक क्षणिक अवस्था है। केवलज्ञान, केवलदर्शन भी... आहाहा! त्रिकाली भगवान के समक्ष एक समयमात्र स्थिति को प्राप्त है।

आहाहा! मार्ग में लुटते देखकर मार्ग लुटता है। लुटता है तो उपचार है। इसी प्रकार स्वयमेव गति, स्थिति,... उसका क्षायिकपना, क्षयोपशमपना वहाँ आया है... आहाहा! उसे आत्मा का कहना, वह तो व्यवहार उपचार है। आहाहा! गजब बात है।

जीव में एक समय की स्थिति, बन्धपर्याय की स्थिति की अपेक्षा से देखें तो वह उपचार करके कहा है। '**जीव का यह वर्ण है**'... जीव के गुणस्थान हैं। आहाहा! वहाँ एक समय की पर्याय की स्थिति है। अबन्धस्वरूप भगवान आत्मा तो त्रिकाल ऐसा का ऐसा ध्रुव प्रवाह चला आता है, उसमें एक समय की ये पर्याय की अवस्थायें जो दिखती हैं, वे वास्तव में तो यह स्वयं अवस्थायें उस समय में आने की योग्यता से सब हुई है। रागादि ये सब। आहाहा! भगवान ज्ञायकस्वरूप के ऊपर यह तो ऐसे गति करते-करते उनकी स्थिति-प्रमाण आये हैं परन्तु एक समय का सम्बन्ध देखकर... आहाहा! जीव के (वर्ण है ऐसा कहा)। बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! पर का तो कर नहीं सकता परन्तु क्षायिक भाव की भावना करनी नहीं, कहते हैं। आहाहा! गजब बात है।

पर का कर नहीं सकता, राग करता नहीं परन्तु क्षायिकभाव की पर्याय की भावना जीव नहीं करता। आहाहा! वह तो त्रिकाली ज्ञायकभाव भगवान अभेदस्वरूप है। यह तो यहाँ भेद को उपाधि कहा न? और उसमें भी आया है न? '**परपरिणतिमुज्झत् खण्डयद्भेदवादा**' (समयसार) ४७ श्लोक। आहाहा! '**परपरिणतिमुज्झत्** परन्तु **खण्डयद्भेदवादा**' उसे भी छोड़ दिया। आहाहा! कर्ताकर्म (अधिकार में है)। कर्ता-कर्म, परपरिणति। आहा! एक समय की स्थिति देखकर (इसके हैं ऐसा कहने में आता है)। है तो वे स्वयं मार्ग में चलते चलते अन्दर आये हैं, उनके मार्ग से, हों! आहाहा! परन्तु एक समय की स्थिति की अवधि देखकर, इसके हैं, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा!

यह सब सम्बन्ध जो शरीर, वाणी, कर्म, भेद, गुणस्थान... आहाहा! ये तो पलटते... पलटते... पलटते... इनके समय में समय की स्थिति उनके कारण ऐसे आये हैं परन्तु आत्मा की बन्धस्थिति की एक समय में स्थिति पाते देखकर (जीव के कहे हैं)। है तो उसके आहा! भेद, गुणस्थान हैं तो उसके-अजीव के। आहा! परन्तु भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति परमस्वभावभाव में तो ये नहीं, परन्तु उसकी पर्याय में एक समय की अवधि देखकर... आहा! व्यवहार से उसके हैं, ऐसा कहा है। हैं तो उसके (अजीव के)। इसके (जीव के) नहीं। ***आहाहा! राग,***

द्वेष, पुण्य, पाप, गुणस्थान, जीवस्थान, मार्गणास्थान, वे हैं तो उसके (अजीव के)। आहाहा! क्या शैली! भगवान तीन लोक का नाथ चैतन्य परमस्वभावभाव,... वह है तो इसका, परन्तु यहाँ एक समय की बन्ध की पर्याय की स्थिति का सम्बन्ध देखकर इसके हैं, ऐसा व्यवहार से कहा। आहाहा! ऐसी बात है प्रभु! ओहोहो!

श्रोता : आज तो आप बहुत सूक्ष्म बात फरमाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ऐसी बात ही यह सादी भाषा में तो आती है। आहाहा!

संघ लुटता है, उसमें मार्ग लुटता है, यह कहना, वह तो उपचार है। इसी तरह इस जगत की सभी चीज़ें अजीव हैं। उनके कारण यहाँ उस प्रकार के भाव को प्राप्त होती है। आहाहा! परन्तु आत्मा को बन्ध की एक समय की स्थिति देखकर सम्बन्ध (कहा)। आहाहा! है तो भेद, भेद का; राग, राग का; कर्म, कर्म का; संहनन, संहनन का। आहाहा! परन्तु एक समय की ऐसी स्थिति देखकर (जीव का कहा है)।

प्रभु तीन लोक का नाथ ज्ञायकस्वभाव की एक समय की पर्याय में सम्बन्ध देखकर उसके हैं (ऐसा कहा)। हैं तो उसके, परन्तु इसके हैं - ऐसा एक समय की स्थिति देखकर कहने में आता है। आहाहा! गजब काम किया है न! यह टीका! अब वह कहता है कि टीका करके दुरुह किया। भगवान! भाई! ऐसा रहने दे भाई! ऐसे अवसर में तू ऐसे अभिमान में मत जा! आहाहा!

भावलिंगी सन्त ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू तो त्रिकाली ध्रुव परमपारिणामिकस्वभावभाव तत्त्व है। ***आहाहा! अरे रे! वास्तव में तो यह क्षायिकभाव और क्षयोपशमभाव की भी पर्याय है उसकी... आहाहा! परन्तु एक समय की स्थिति की अपेक्षा गिनकर व्यवहार से इसका (जीव का) कहा। गजब काम किया है न! प्रभु!*** भगवान आत्मा अभेदस्वरूप, अभेदस्वरूप है। जिसमें पर्याय का भी भेद नहीं। आहाहा! परन्तु वह भेद एक समय की स्थिति देखकर (जीव का कहा है)। है तो भेद भेद का; है तो राग राग का; है वर्ण वर्ण का; है गुणस्थान गुणस्थान का - अजीव का। आहाहा!

भगवान चैतन्यस्वरूप परमानन्द की मूर्ति प्रभु अभेदवस्तु में एक समय के भेद को देखकर-है तो भेद भेद का; गुणस्थान, गुणस्थान का, परन्तु यहाँ एक समय का ऐसा सम्बन्ध देखकर-जीव का व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! क्या हो? आहाहा! जिसे क्षायिकभाव भी आवरणवाला कहा क्योंकि उसमें निमित्त की अपेक्षा आती है। भगवान का स्वभाव है, उसमें किसी निमित्त की अपेक्षा का और भाव या अभाव ऐसा कुछ

है नहीं – ऐसा ज्ञायकभाव, पंचमभाव, परमात्मभाव है। आहाहा! उसे एक क्षायिकभाव को भी आवरणवाला गिनकर... आहाहा! वह आत्मा में नहीं है। आहाहा! आया है न इसमें? **'क्षायिकभाव ठाणा'** क्षायिकभाव के केवलज्ञान आदि प्रकार आत्मा में नहीं हैं। आहाहा! परन्तु एक समय की क्षायिक आदि, क्षयोपशम की पर्याय का त्रिकाल के साथ एक समय का सम्बन्ध देखकर... आहाहा! बन्धपर्याय का सम्बन्ध देखकर, अबन्धस्वभावी भगवान में यह एक समय की स्थिति देखकर, इसके हैं – ऐसा व्यवहार से कहा है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

'जीव का यह वर्ण है' ऐसा व्यवहार से प्रगट करते हैं, तथापि निश्चय से, सदा ही जिसका अमूर्त स्वभाव है... भगवान आत्मा का तो त्रिकाली अमूर्त स्वभाव है। अमूर्त (स्वभाव) तो धर्मास्तिकाय में (भी) है परन्तु **उपयोगगुण के द्वारा अन्य द्रव्यों से अधिक है...** आहाहा! जानन-देखन स्वभाव से... आहाहा! इन सब भेद आदि से अधिक अर्थात् भिन्न है। आहाहा! **उपयोगगुण के द्वारा अन्य द्रव्यों से अधिक है...** ये सब अन्य द्रव्य कहने में आये हैं। आहाहा! नियमसार में तो क्षायिकभाव को भी परद्रव्य कहा है। आहाहा! त्रिकाली भगवान परमात्मस्वरूप ऐसा का ऐसा बिराजमान है। आहाहा! उसके अन्दर में पर्याय की एक समय की स्थिति देखकर, वह क्षायिकभाव जीव का है – ऐसा व्यवहार से कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। ओहोहो! क्या जिनेश्वर त्रिलोकनाथ की वाणी! और सन्तों ने... आहाहा! जगत को पंचम काल के प्राणी के समक्ष प्रसिद्ध किया है।

प्रभु! तू तो ज्ञायकस्वभाव से भरपूर ऐसा अखण्डानन्द प्रभु है न! उसमें एक समय की ये सब दशायें, क्षायिक-क्षयोपशमदशा भी एक समय की अवस्था है। आहाहा! एक समय की अवस्था का त्रिकाली में सम्बन्ध देखकर वह जीव का है – ऐसा कहा है। है नहीं इसका। आहाहा!

राग और द्वेष तो विकारीदशा है; कर्म और संहनन और संस्थान तो जड़ की दशा है परन्तु अन्दर में कर्म के निमित्त के अभाव से होनेवाली निवृत्तदशा... आहाहा! उसे भी परद्रव्य के भाव गिनकर, आत्मा में वह नहीं... तब उसे (जीव का) क्यों कहा?—कि एक समय की (स्थिति देखकर कहा)। एक ही समय (रहती है)। भगवान तो त्रिकाली प्रभु है, उसमें एक समय की स्थिति देखकर इसके हैं – ऐसा व्यवहार से कहा है। आहाहा! निश्चय से इसके नहीं। आहा! देखो! यह तीन लोक के नाथ की वाणी! आहाहा! यह दिगम्बर सन्तों की वाणी! आहा! गजब काम किया है! काम तो कर गये परन्तु जगत् को समझाने की शैली (भी गजब!) आहाहा!

जो विकल्प आया, उसका कर्ता नहीं और उस काल में जो क्षयोपशम की पर्याय हुई है, वह मुझमें नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि को, अभेद की दृष्टि होने पर भी पर्याय में क्षयोपशम की पर्याय हो, राग हो, (वह) है तो पर का, कहते हैं। आहाहा! भगवान! तेरी महिमा का पार नहीं, प्रभु! तू अन्दर कौन है? साक्षात् भगवान स्वरूप है!! आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु है! भाई! आहाहा! शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का भण्डार परमात्मा है। उसे यह पर्यायवालाऔर ...वाला कहना, वह तो एक समय की स्थिति इसमें देखकर कहा जाता है। आहाहा! नहीं तो वह पर्याय और रागादि सब अजीव कहे गये हैं, त्रिकाली जीव की अपेक्षा से। आहाहा! और वह भी अनुभूति के काल में कहा न! जब अखण्ड-अभेद चीज़ ऐसे जानने में आयी, ऐसे जब अनुभव हुआ, तब अनुभूति से यह सब बात भिन्न रह जाती है। आहाहा! यह समयसार! अजोड़ चक्षु है!!

श्रोता : कथंचित् वक्तव्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित वक्तव्य और कथंचित् अवक्तव्य। यह वक्तव्य कहना भी एक उपचार से है। आहाहा! वाणी के काल में वाणी निकलती है, उसमें जीव का निमित्त देखकर; निमित्त देखकर अर्थात् उसका कोई कर्तव्य नहीं। आहाहा! बहुत अलौकिक बात है प्रभु! ***ओहोहो! यहाँ तो अभेद चीज़ की दृष्टि में भेद है, वह भी पर का है-अजीव का है, पुद्गल के परिणाम हैं। आहाहा! गजब काम किया है न, नाथ! यहाँ जाना, बापू! यहाँ तक। आहाहा! यह कोई अपूर्व अनन्त पुरुषार्थ है! आहाहा!*** शास्त्र से कोई काम पार न पड़े, शास्त्र के पठन से भी यह पार न पड़े। आहाहा!

त्रिकाली चीज़ भगवान आत्मा ध्रुव (है)। उसमें, ये स्थिति प्राप्त जगत के पदार्थ तो पर हैं, परन्तु एक समय की स्थिति का सम्बन्ध देखकर... आहाहा! व्यवहार से (इसके कहे गये हैं)। त्रिकाली में तो है नहीं, निश्चय से तो है नहीं परन्तु यह स्वयं परिणमन करते-करते एक समय की मुद्दतवाले ऐसे साथ में दिखायी दिये, इससे व्यवहार से उन्हें जीव का कहा। आहाहा! ऐसा है, भाई! यह कोई शास्त्र के पठन से यह मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! अलौकिक बात है! आहाहा! यह दिगम्बर दर्शन, वह जगत में कहीं है नहीं। यह वस्तु का स्वभाव है, वह दिगम्बर दर्शन है। आहा! क्योंकि जो त्रिकाली वस्तु है, उसमें एक समय की स्थितिवाली (वह चीज़ है), वे हुए हैं तो उनके कारण परन्तु यहाँ एक समय की स्थिति देखकर व्यवहार कहे। आहाहा! अभूतार्थनय से कहे। आहाहा! भगवान आत्मा भूतार्थ प्रभु! आहाहा! भगवान का विरह पड़ा परन्तु विरह भुलावे, ऐसी यह बात है!! आहाहा! क्या शैली! क्या प्रवाह! इनकी वाणी के प्रवाह का प्रपात! आहा!

कहते हैं, प्रभु! एक बार शान्ति से सुन, भाई! तू तो अभेदस्वरूप है, वह तू है, परन्तु ये सब शरीर, वाणी, मन, भेद, गुणस्थान आदि हैं, वे हैं तो सब अजीव; वे हैं तो सब पुद्गल के परिणाम। आहाहा! अखण्डानन्द प्रभु त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की अपेक्षा से तो वे सब अजीव हैं। आहाहा! वास्तव में तो क्षायिक और क्षयोपशमभाव पर्याय है, वह त्रिकाली की अपेक्षा से अजीव है। व्यवहार जीव हुआ न! इसलिए निश्चय से अजीव। आहाहा! वाह, प्रभु वाह! क्या इनकी शैली!! आहाहा! है तो इसके परिणमते इसके काल में वे अजीव, उसमें हैं वे तो; परन्तु यहाँ भगवान त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप प्रभु को एक समय का ऐसा सम्बन्ध है न? एक समय की स्थिति से वहाँ टिका है न? एक समय, इतनी अपेक्षा से उसे व्यवहार है। आहाहा!

श्रोता : पंचास्तिकाय में इन्हें संयोग-वियोग कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्बन्ध है न इतना! एक समय रहता है न! क्षयोपशमभाव, भेदभाव भी एक समय पर्याय में रहते हैं। त्रिकाल में नहीं, इसलिए निश्चय से (नहीं) परन्तु एक समय ऐसा सम्बन्ध है, इतना गिनकर व्यवहार से इसके कहे हैं। आहाहा! अरे! ऐसा तत्त्व सुनने को नहीं मिलता, आहाहा! और बाहर आया तो इसका विरोध करते हैं, प्रभु! परन्तु क्या हो? भाई! आहाहा! दुनिया को ऐसे व्यवहार से होता है (ऐसा कहे) तो उसे मजा आये। अरे प्रभु! आहाहा! व्यवहार— ***यह क्षायिकभाव है, वह व्यवहार है। आहाहा! पर्यायमात्र व्यवहार है, भाई! इस व्यवहार से निश्चय हो, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा!***

भगवान पंचम भाव की भावना... पाठ तो ऐसा लिया है न? भाई! क्षायिक, उपशम, आदि चार भाव आवरणसंयुक्त होने से जीव के नहीं हैं। फिर कहा कि इसलिए... आहा! पंचम भाव की भावना से मोक्ष प्राप्त करते हैं, चार भाव से मोक्ष प्राप्त नहीं करते। आहाहा! मोक्ष की पर्याय, मोक्ष की पर्याय से प्राप्त नहीं करते। आहाहा! यह तो पंचम भाव जो भगवान ज्ञायक प्रभु वीतरागमूर्ति एकरूप अभेद वस्तु की भावना—पंचम भाव की भावना! भावना है तो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक परन्तु भावना उसकी (स्वभाव की)। भावना की भावना नहीं! आहाहा! ऐसी बातें हैं।

एक ओर कहते हैं कि ये चार भाव जीव के नहीं। दूसरी ओर कहते हैं कि पंचम भाव की भावना से मुक्ति होती है। यह भावना है तो क्षयोपशम, उपशम परन्तु इसकी (त्रिकाली की) भावना है; पर्याय की भावना नहीं। ***आहाहा! अरे रे! जिन्दगी जाती है, शरीर चला जाता है, गति बदल जाती है। उसमें यह बात नहीं समझे तो... बापू! ये सब करोड़पति और अरबोंपति, बापू! मरकर कहाँ जायेंगे? आहाहा! आहाहा! जिन्हें ऐसा सुनने को नहीं मिलता... आहाहा! उन्हें समझने का कहाँ रहा? आहाहा!***

यहाँ कहते हैं कि पंथ का (दृष्टान्त) देकर गजब बात की है! आहाहा! लुटता है वह (संघ), परन्तु पंथ लुटता है - ऐसा उपचार से (कहा है)। क्योंकि उस पंथ में संघ की एक समय की स्थिति है न? आहा! इसी प्रकार ये सब भाव—जितना २९ बोल का घूरा कहा है न, वे सब हैं तो अजीव के, भेदभाव हैं, वे अजीव हैं। अरे रे! जीवद्रव्य नहीं, इस अपेक्षा से अजीव। एक समय की पर्याय है, वह जीवद्रव्य नहीं। पूरा जीवद्रव्य नहीं, इससे एक समय की पर्याय को भी जीवद्रव्य नहीं, अजीव है - ऐसा कहा। दूसरी भाषा से उसे परद्रव्य कहा। आहाहा!

यह स्वयं तो भगवान अमूर्त है और **उपयोगगुण के द्वारा अन्य द्रव्यों से अधिक है...** जानन-देखन जो त्रिकाली स्वभाव भगवान, उसकी वर्तमान अनुभूति होने पर... आहाहा! आहाहा! वे अन्य द्रव्य हैं। आहाहा! गुणस्थान के भेद, लब्धिस्थान के भेद, वे अन्य द्रव्य हैं। गजब करते हैं न! ***आहाहा! क्षायिकभाव भी अन्य द्रव्य है।*** यह द्रव्य नहीं, इसलिए अन्य द्रव्य, ऐसा। त्रिकाली जो ज्ञायकभाव भगवान पूर्णानन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का पूर्ण भण्डार... आहाहा! वह क्षायिकभाव नहीं, इसलिए वह क्षायिकभाव जीवद्रव्य नहीं। आहाहा! परन्तु आत्मा की त्रिकाली चीज़ में एक समय की स्थिति-सम्बन्ध है—ऐसा देखकर व्यवहार से आत्मा का है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! अरे! प्रभु! सन्त और गणधर जो इसके अर्थ करते होंगे... आहाहा! अलौकिक बातें हैं, बापू! आहाहा!

इस जीव का वर्ण नहीं, गन्ध नहीं। है न? **ऐसे जीव का कोई भी वर्ण नहीं है।** गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, रूप नहीं, शरीर, संस्थान, संहनन (नहीं)। यहाँ तक तो ठीक; ये तो पर की पर्याय, यहाँ तक तो पर की पर्याय है। अब **राग, द्वेष, मोह,...** मोह अर्थात् मिथ्यात्व। आहाहा! **प्रत्यय...** अर्थात् आस्रव। **कर्म, नोकर्म...** ये चार कहे, वे भी आत्मा के नहीं। आहाहा! कोई भी मोह, राग, द्वेष जीव के नहीं हैं। आहाहा! ये सब तो अजीव के हैं।

कर्म, नोकर्म, वर्ण, वर्गणा, स्पर्धक,... ये तो जड़ के गये। अब यहाँ तो **अध्यात्म - स्थान,...** जीव के अध्यवसाय के प्रकार, वे जीव में नहीं हैं। आहाहा! एक समय की पर्याय है; इस कारण व्यवहार से इसके कहे हैं, वस्तु में वे नहीं हैं। आहाहा! **अनुभागस्थान,..** वे तो जड़ के हैं। वे (जीव के) नहीं। **योगस्थान,...** कम्पन आदि भी आत्मद्रव्य में नहीं है। कम्पन भले इसकी पर्याय में है, परन्तु द्रव्य में (नहीं)। अजीव में जाता है। **बंधस्थान, उदयस्थान, मार्गणास्थान,...** आहाहा! मार्गणास्थान। समकित और उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक और सब मार्गणास्थान, वे जीव में नहीं हैं। आहाहा! ऐसा कहना कि इसे खोजना हो तो किस स्थिति

में है, इसलिए मार्गणा कही। आहा! परन्तु वह तो पर्याय की मार्गणा कही। आहाहा! भले ज्ञान के पाँच भेद हों, समकित के भेद हों, सब आत्मा में नहीं हैं। अभेद में भेद नहीं है, भेद को तो यहाँ उपाधि में डाल दिया है। आहाहा!

स्थितिबंधस्थान,... कर्म की अवधि। **संक्लेशस्थान,...** अशुभभाव। वह अशुभभाव है तो जड़ का, परन्तु एक समय में ऐसे संक्लेश की पर्याय का सम्बन्ध है, ऐसा देखकर जीव का व्यवहार से कहा। आहाहा! यह गले उतरना, आत्मा में बैठना, हों! आहाहा! **विशुद्धिस्थान,...** शुभराग के प्रकार हैं, वे सब अजीव हैं परन्तु त्रिकाली जीव के साथ एक समय की ऐसी स्थिति-सम्बन्ध देखकर, एक समय की स्थिति देखकर व्यवहार से इसके कहे हैं। आहाहा!

संयमलब्धिस्थान,... आहाहा! एक समय की जो पर्याय निर्मल हुई, एक समय की देखकर इसके है, ऐसा कहा। बाकी वह स्थान जीवद्रव्य का नहीं है। आहाहा! सामने है न पुस्तक? आहाहा! यह **संयमलब्धिस्थान,...** जीव के नहीं, जीवद्रव्य के नहीं परन्तु एक समय की स्थिति देखकर व्यवहार से जीव के कहे गये हैं। आहाहा! वरना वे क्षयोपशम के भाव हैं, तथापि क्षयोपशम भी एक समय की अवधिवाला है। भगवान त्रिकाली के साथ एक समय की अवधि देखकर जीव का कहा है, बाकी जीवद्रव्य का है नहीं। आहाहा!

जीवस्थान... चौदह जीवस्थान—पर्याप्त-अपर्याप्त आया था न? एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म और बादर (ऐसे) चौदह बोल। वे एक समय की स्थिति देखकर इसके (जीव के कहे), बाकी वस्तु में नहीं है। आहाहा! जीवद्रव्य में नहीं, परन्तु एक समय की स्थिति देखकर व्यवहार से इसके कहे हैं। आहाहा! गजब टीका! अमृतचन्द्राचार्य की टीका... आहाहा! अमृत उड़ेला है अकेला!

गुणस्थान... चौदह (गुणस्थान) वे अजीव हैं, अजीव के हैं परन्तु जीव की एक समय की पर्याय (में देखकर इसके हैं ऐसा कहा)। परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ अरिहन्तदेव जिनेश्वर परमात्मा! यह जीव के नहीं परन्तु एक समय की स्थिति देखकर व्यवहार से जीव के कहे हैं। आहाहा! अरिहन्तदेव सर्वज्ञ जिनेश्वर परमात्मा! ...ये जीव के नहीं परन्तु एक समय की स्थिति देखकर व्यवहार से जीव के कहे हैं। आहा! अब यहाँ तो शुभभाव से होता है, शुभभाव से होता है (ऐसा लोग कहते हैं)। लो! आहा! कल भाई आये थे न, मुरैनावाले, वहाँ (ऐसा कहते हैं) शुभभाव कारण है, यह शुभभाव कारण है न? अरे! प्रभु... प्रभु... प्रभु... प्रभु... वह शुभभाव है, अजीव का स्थान है, परन्तु एक समय की ऐसी पर्याय देखकर व्यवहार से कहा, उससे आत्मा का कल्याण होता (-ऐसा नहीं है)। आहाहा! कल्याण तो पर्याय के

आश्रय से नहीं होता। आहा! त्रिकाली पंचमभाव भगवान पूर्णानन्द प्रभु की भावना से कल्याण होता है। भले वह भावना क्षयोपशम, उपशम, क्षायिकरूप हो परन्तु भावना पंचम भाव त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... ज्ञायकभाव... आहाहा! इसके आश्रय से कल्याण होता है। पर्याय के आश्रय से पर्याय में कल्याण नहीं होता। ऐसी बात कहाँ है ? आहाहा!

श्रोता : यह बात सोनगढ़ में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग के घर की बात है प्रभु, हों! आहाहा! दोनों को समझाने की विधि भी कैसी, देखो न! द्रव्य में तो नहीं परन्तु तब उसे व्यवहार से कहना क्यों ? एक समय का ऐसा इतना (सम्बन्ध) है न! आहाहा! इसलिए व्यवहार से कहा। आहाहा! अब ऐसी बात सुने (परन्तु) राजकीय व्यक्ति को बैठे किस प्रकार यह ? भाई कान्तिभाई आये थे, ऐसा कहते थे, मोरारजी देसाई निकलनेवाले हैं। अपने को उन्हें कुछ कहना या नहीं ? कहा—हमारा काम नहीं। अपने आप आवे तो भले आवें। हम यहाँ कहें नहीं कि यहाँ आओ। यह कहाँ मार्ग ? बापू! आहाहा! अरे! जैन के बाड़ा में पड़े, उन्हें सुनना कठिन पड़ता है। आहाहा! कठिन बात, बापू!

यह सब ही (भाव) व्यवहार से अरहन्त भगवान... आहा! स्वयं कहते हैं, ऐसा नहीं कहते... आहाहा! भगवान सर्वज्ञदेव, परमेश्वर जिनेन्द्रदेव ने ऐसा कहा है, कहते हैं। **व्यवहार से अरहन्तभगवान जीव के कहते हैं, तथापि...** ऐसा होने पर भी... आहाहा! **निश्चय से, सदा ही जिसका अमूर्त स्वभाव है...** भगवान का तो अमूर्त स्वभाव है। यह भगवान आत्मा, हों! **और जो उपयोगगुण के द्वारा अन्य से अधिक है...** इस उपयोगगुण द्वारा भेद से भी भिन्न है। आहाहा! जानन-देखन उपयोग द्वारा! वह भले जानन-देखन उपयोग त्रिकाल है परन्तु इसे वर्तमान उपयोग द्वारा इसकी ओर के जुड़ान से... आहाहा! अनुभूति से। **अन्य से अधिक है...** इस भेद से भिन्न है, राग से भिन्न है, द्वेष से भिन्न है, जीवस्थान से भिन्न, मार्गणास्थान से भिन्न है। आहाहा!

ऐसे जीव के वे सब नहीं हैं,... वे जीवद्रव्य के नहीं हैं। आहाहा! वे जीवद्रव्य में नहीं हैं। आहाहा! **क्योंकि इन वर्णादि भावों के और जीव के तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध का अभाव है।** आहाहा! क्या कहते हैं ? राग-द्वेष, गुणस्थान आदि को, जैसे उष्णता और अग्नि को तादात्म्य सम्बन्ध है, वैसे भगवान ज्ञायकस्वभाव को और इन गुणस्थान भेद को तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! एक समय की स्थिति का सम्बन्ध है, वह तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! ऐसे संयमलब्धि के स्थान जो भेद हैं, उन्हें और अभेद को तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! अब यह समयसार, एक व्यक्ति पन्द्रह दिन में पढ़ गया, बापू! भाई! आहाहा!

श्रोता : पढ़ गया न! समझ गया नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ऐसा कहता है, मैं पढ़ गया। क्या पढ़ा? बापू! इसकी एक लाईन, एक गाथा... आहा! भगवान की दिव्यध्वनि का सार है यह! अजोड़ चक्षु है!!

क्योंकि इन वर्णादि... अथवा रंग-गन्ध को तो तादात्म्य सम्बन्ध नहीं, वैसे राग-द्वेष के परिणाम और जीवद्रव्य को तादात्म्य सम्बन्ध नहीं। तत्-सम्बन्ध। परन्तु लब्धिस्थान आदि जो भाव पर्याय में इन्हें, और आत्मा को त्रिकाली तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है, एक समय की पर्याय का अनित्य सम्बन्ध है। आहाहा! **तादात्म्यलक्षण सम्बन्ध का अभाव है।** भगवान ज्ञायकभाव की जो अभेद अनुभूति, उसमें वे नहीं आते। आहाहा! इसलिए उन्हें तादात्म्य सम्बन्ध लक्षण का अभाव है। आहाहा! तादात्म्य सम्बन्ध होवे तो अनुभूति में भी आना चाहिए। आहाहा! आनन्द को और भगवान को तादात्म्य सम्बन्ध है, ज्ञान को और भगवान आत्मा को तादात्म्य सम्बन्ध है कि जिससे अनुभूति में वे ज्ञान और आनन्द आते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह तो ५६ में नहीं कहा? रुई का दृष्टान्त देकर। दृष्टान्त पाठ में नहीं था, टीका में कहा और पाठ में तो ५७ गाथा में आया क्षीर और पानी, दूध और पानी एक जगह रहने पर भी दोनों के भाव भिन्न हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा और यह गुणस्थान आदि और यह लब्धिस्थान आदि एक क्षेत्र में रहने पर भी भाव भिन्न है। आहाहा! अब यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि व्यवहार है—साधक जीव को व्यवहार ही होता है। यह व्यवहार ही होता है? यह व्यवहार तो ज्ञायक का भान होकर, है, उसे जानने के लिये कहा। आहाहा! उसके बदले (ऐसा कहे कि) साधक को व्यवहार ही होता है, निश्चय तो सिद्ध को (होता है)। अरे... प्रभु! क्या किया यह तूने? अरे!

भावार्थ - ये वर्ण से लेकर गुणस्थान पर्यन्त भाव... (उनतीस) **सिद्धान्त में जीव के कहे हैं, वे व्यवहारनय से कहे हैं,...** एक समय की पर्याय का सम्बन्ध देखकर। **निश्चयनय से वे जीव के नहीं हैं,...** द्रव्यस्वभाव में वे नहीं हैं। **क्योंकि जीव तो परमार्थ से उपयोगस्वरूप है।** वह तो ज्ञान-दर्शन के उपयोगस्वरूप है, उसमें भेद कहाँ से आये? आहाहा! उसमें ये गुणस्थान और जीवस्थान और मार्गणास्थान कहाँ से आये? कहते हैं। आहा! गजब टीका की है न। कुन्दकुन्दाचार्य! कुन्दकुन्दाचार्य ने महान, गहन, गम्भीर गाथा (रची है)। इसका टीकाकार ने स्पष्ट किया, तब वे कहते हैं कि 'दुरुह' कर डाला। भगवान.. भगवान.. भगवान..! प्रभु.. प्रभु! तू क्या करता है? भाई! वे आचार्य हैं। समर्थ आचार्य परमेष्ठी हैं। कुन्दकुन्दाचार्य के कथनों को परमेष्ठी ने स्पष्ट किया है, उन्हें ऐसा नहीं कहा जाता। उन्होंने

'दुरुह' कर डाला, प्रभु! ऐसा नहीं कहा जाता। उन्होंने स्पष्ट कर दिया है, ऐसा कहा जाता है। आहा! प्रभु, प्रभु! क्या करता है? भाई! आहाहा! आहाहा! यह दुनिया मान और सम्मान और ऐसा, हा... हो... (करे) बापू! पड़े रहोगे, भाई! आहा! यह शल्य लेकर जो पड़ा है, वह चला जायेगा अन्दर से! आहाहा! दुनिया महिमा करे, दुनिया माने कि आहा... आहा... आहा...! वह कोई साथ नहीं आयेगा वहाँ। आहाहा!

श्रोता : आचार्य ने उपकार माना है कि आप महाविदेह जाकर ऐसा न लाये होते तो हम कहाँ से पाते?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, कहा न! देवसेनाचार्य (ने कहा)। अहो! भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य न गये होते तो हम मुनिपना कैसे पाते? आहाहा! यह शैली... अनुभव और चारित्र तो था परन्तु वहाँ भगवान के पास साक्षात् गये। आहाहा! भले क्षायिक न हुआ परन्तु अप्रतिहत सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो गया। आहाहा! उनके वे सम्यग्दर्शन-ज्ञान से आगे जाकर केवल (ज्ञान) प्राप्त करेंगे।

यह यहाँ कहते हैं, अरहन्तदेवों ने व्यवहार से कहा है। **यहाँ ऐसा जानना कि — पहले व्यवहारनय को असत्यार्थ कहा था...** ग्यारह गाथा में झूठा कहा था। **सो वहाँ ऐसा न समझना कि वह सर्वथा असत्यार्थ है,...** यह पर्याय नहीं ही, गुणस्थान नहीं ही, पर्याय में नहीं ही - ऐसा नहीं जानना। पर्याय असत्यार्थ कही कि वह तो त्रिकाल की अपेक्षा से उसे असत्यार्थ कहकर गौण करके असत्यार्थ कहा। आहाहा! पर्याय में भेद गुणस्थान आदि की पर्याय है। व्यवहार झूठा है, अर्थात् वह तो त्रिकाल की अपेक्षा से उसे झूठा कहा परन्तु वर्तमान की अपेक्षा से व्यवहार है, सत्य है। आहा! है अर्थात् सत्य, हों! आश्रय करनेयोग्य है, यह प्रश्न यहाँ नहीं। आहा!

वहाँ ऐसा नहीं समझना कि सर्वथा झूठा ही है, पर्याय है ही नहीं। गुणस्थान और ये सब पर्याय में है ही नहीं - ऐसा नहीं समझना। **कथंचित् असत्यार्थ जानना; क्योंकि जब एक द्रव्य को भिन्न, पर्यायों से अभेदरूप,...** आहाहा! **उसके असाधारण गुणमात्र को प्रधान करके...** त्रिकाली गुण को मुख्य गिनकर। **कहा जाता है, तब परस्पर द्रव्यों का निमित्तनैमित्तिकभाव...** निमित्तनैमित्तिकभाव रागादि, भेद आदि **तथा निमित्त से होनेवाले पर्यायें - वे सब गौण हो जाते हैं,...** गौण हो जाती है, अभाव हो जाती है - ऐसा नहीं; नहीं - ऐसा नहीं। आहाहा! गौण होकर उन्हें झूठा कहा है। आहाहा!

देखो! वहाँ लिया था न भाई! पर्याय को अभूतार्थ कहा, वह तो गौण करके कहा। ग्यारह (गाथा) में अर्थ लिया था। वह ये ही (अर्थ करनेवाले) पण्डित जयचन्द (हैं)।

आहाहा! वेदान्त की तरह पर्याय नहीं, जीव में नहीं, द्रव्य में (नहीं); इसलिए पर्याय में पर्याय नहीं – ऐसा नहीं है। आहाहा! **पर्यायों से अभेदरूप,...** पर से भिन्न और **उसके असाधारण गुणमात्र...** (अर्थात्) त्रिकाली उपयोग। **प्रधान करके कहा जाता है, तब परस्पर द्रव्यों का निमित्तनैमित्तिकभाव तथा निमित्त से होनेवाले पर्यायें – वे सब गौण हो जाते हैं,...** अभाव हो जाते हैं – ऐसा नहीं; गौण हो जाते हैं। **वे एक अभेदद्रव्य की दृष्टि में वे...** आहाहा! ज्ञायकभाव के अनुभव की अभेददृष्टि में **वे प्रतिभासित नहीं होते,...** यह आ गया न? (३७) कलश आ गया है। **'नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात्।'** अभेद चैतन्यवस्तु का अनुभव होने पर, उसमें—अभेद में वे भेद दिखायी नहीं देते। आहाहा!

इसलिए वे सब उस द्रव्य में नहीं हैं। इस प्रकार कथंचित् निषेध किया जाता है। पर्याय नहीं है – ऐसा नहीं है। अभेद में भेद दिखायी नहीं देता, इस अपेक्षा से उन्हें कथंचित् निषेध किया जाता है। **यदि उन भावों को उस द्रव्य में कहा जाये...** पर्याय अपेक्षा से, पर्याय अपेक्षा से, **तो वह व्यवहारनय से कहा जा सकता है...** आहाहा! गुणस्थान, जीवस्थान, मार्गणा, भेदस्थान व्यवहार से इसमें (जीव में) कहे जाते हैं। यह व्यवहार से.. असत्यार्थ कहा था परन्तु व्यवहार से सत्यार्थ इतनी स्थिति है – ऐसा कहा जाता है। आहाहा! **ऐसा नयविभाग है।** व्यवहार की और निश्चयनय की विभाजन की यह अविरोधता है।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

६

श्री समयसार, गाथा २३ से २५, प्रवचन ८५
दिनांक १३-०९-१९७८

(दशलक्षण धर्म का) आठवाँ दिन है त्याग.... त्याग (धर्म)

जो चयदि मिट्ठभोज्जं, उवयरणं रायदोससंजणयं।
वसदिं ममत्तहेदुं, चायगुणो सो हवे तस्स॥४०१॥

मुनि की व्याख्या है। जिन्हें अपना आत्मा ज्ञानस्वरूपी आनन्द का अन्तर अनुभव हुआ हो, तदुपरान्त स्वरूप में प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया हो, उन मुनि की बात है, उन मुनि को त्यागधर्म है। त्याग की व्याख्या - मुनि को संसार, देह, भोग के ममत्व का त्याग है ही; अब, जिस वस्तु के साथ वर्तमान में काम पड़ता है, वह भोजन। भोजन में इष्ट भोजन को छोड़ते हैं। आहाहा! आत्मा के आनन्द के स्वाद के समक्ष इष्ट भोजन भी छोड़ देते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के... आहाहा! अनुभव और वेदन के समक्ष मुनि, प्रिय भोजन-इष्ट भोजन छोड़ देते हैं, उसका नाम त्याग है।

उपकरण के सम्बन्ध में उसमें राग-द्वेष का त्याग, जो उपकरण मिले हैं उनमें राग - द्वेष का (त्याग)। अनुकूल है — ऐसा नहीं रखते या जिसमें राग हो, और.... आहार, उपकरण, वस्ती, तीन के साथ सम्बन्ध, तीनों में राग का त्याग करते हैं। आहाहा! ममत्व का हेतु बड़ी बस्ती, मकान आदि हो तो आनन्द के स्वाद के आगे उसकी कोई कीमत नहीं है, वह बस्ती छोड़ दे उसका नाम त्यागधर्म कहा जाता है। त्याग अर्थात् यह बाह्य स्त्री, कुटुम्ब, परिवार का त्याग, वह तो है ही। संसार भोग, देह के ममत्व का त्याग तो है ही। उसकी बात है। आहाहा!

बस्ती, भोजन, और उपकरण — तीन के साथ सम्बन्ध है — तीन। तो इनके प्रति ममत्व की वृत्ति का (त्याग करते हैं)। आनन्द का स्वाद लेकर, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद... आहाहा! अनुभव में विशेष सुख का स्वाद आता है तो वह बस्ती छोड़ देते हैं। आहाहा! इसका नाम त्याग है। वह आठवाँ दिन है। आज? बुधवार, बुधवार से।

यहाँ यह गाथा आयी। कहाँ तक आया? अप्रतिबुद्ध... **महा अज्ञान से जिसका हृदय**

स्वयं अपने से ही विमोहित है — ऐसा अप्रतिबुद्ध... है ? पाँचवीं लाइन है। क्या कहते हैं ? जैसे स्फटिक में... स्फटिक निर्मल होने पर भी, संयोग आदि में अथवा जिस चीज में स्फटिक रखा हो, उसकी झाँईं अन्दर पड़ती है। पीतल का बर्तन हो तो उसकी झाँईं पड़ती है, वह उपाधि है; उसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप स्फटिक जैसा है, उसमें राग और पुण्य-पाप के भाव की झाँईं — उपाधि दिखती है। आहाहा! वह अस्वभावभाव है, शुभ-अशुभभाव.... आहाहा! वह अस्वभावभाव है, वह स्वभावभाव रहित है, उसे अपना मानकर अज्ञानी, अस्वभावभाव को अपना मानता है और वेदन करता है। आहाहा! परन्तु अपना आत्मा क्या है — उसका ज्ञानी को ज्ञान है; अज्ञानी को उसका पता नहीं है। आहाहा!

राग है परन्तु राग को जाननेवाला आत्मा भिन्न है — ऐसा ज्ञानी को ज्ञान है, अज्ञानी को पता नहीं। आहाहा! राग है, बहुत सूक्ष्म बात बापू! राग है, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो तो वह शुभराग है, अस्वभावभाव है परन्तु उसे जाननेवाला यह है, ऐसा जानता कौन है ? किसकी सत्ता में यह राग है — ऐसा ज्ञात होता है ? समझ में आया ? ज्ञान की सत्ता में वह राग, ज्ञात होता है। आहाहा! यह स्वभावभाव मैं हूँ — ऐसा अज्ञानी नहीं मानकर, यह दया, दान का विकल्प - राग आया, वह उपाधि है, वह अस्वभावभाव है, वह विभावभाव है... आहाहा! उसे अपना मानता है, अज्ञानी उसे अपना मानता है। है ?

हृदय स्वयं अपने से ही विमोहित है — ऐसा अप्रतिबुद्ध जीव स्व-पर का भेद नहीं करके.... आहाहा! यह राग और स्वभाव भिन्न है — ऐसा दो का भेदज्ञान अज्ञानी नहीं करता। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! **उन अस्वभावभावों को ही....** ये पुण्य-पाप के विकल्प, राग, उससे स्व का भेद नहीं करके, अस्वभावभावों को ही... है ? आहाहा! **(अपना स्वभाव नहीं ऐसे विभावों को ही) अपना करता हुआ....** आहाहा! जानने-देखनेवाला भगवान ये स्वभावभाव से राग भिन्न है, और राग अस्वभावभाव से स्वभाव भिन्न है। आहाहा! ऐसा अनन्त बार मुनिपना लिया, द्रव्यलिङ्गी साधु हुआ परन्तु राग और आत्मा दोनों को एक मानकर, अस्वभावभाव में अपना लाभ मानकर मिथ्यादृष्टि रहा। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा कठिन काम है, भाई!

पुद्गलद्रव्य ही मेरा है.... ***यह रागादि पुद्गलद्रव्य है; वास्तव में आत्मद्रव्य नहीं है। आहाहा! चाहे तो वह शुभराग हो परन्तु वह राग, पुद्गल-जड़ है; चैतन्य नहीं।*** क्योंकि वह राग जानता नहीं है। राग जानता नहीं है; राग, ज्ञान द्वारा जानने में आता है; इसलिए राग पुद्गल

और अचेतन है; भगवान उससे भिन्न हैं। आहाहा! परन्तु उसका इसे पता नहीं है, स्व और पर की भिन्नता का भान नहीं है; इसलिए पर को अपना भाव मानता है। है ? आहाहा! **यह मेरा है; इस प्रकार अनुभव करता है।**

कोष्टक में **(जैसे स्फटिक पाषाण में अनेक प्रकार के वर्णों की निकटता से अनेक वर्णरूपता दिखायी देती है....)** स्फटिक में ऐसा दिखाई देता है। **(स्फटिक का निज श्वेत निर्मल भाव दिखायी नहीं देता....)** आहाहा! स्फटिक जिस बर्तन में रखा हो, उसकी झाँईं दिखायी देती है, उसे अज्ञानी स्फटिक मानते हैं। इसी प्रकार **अज्ञानी को कर्म की उपाधि से आत्मा का शुद्ध स्वभाव आच्छादित हो रहा है....** आहा...हा...! ये पुण्य और पाप के विकल्प का राग — चाहे तो दया का राग हो, चाहे तो भक्ति का राग हो... आहाहा! परन्तु उस राग — अस्वभावभाव को अपना मानकर... आहाहा! **शुद्धस्वभाव आच्छादित हो रहा है....** राग को अपना मानने से, राग को जाननेवाला भगवान ज्ञानस्वरूप आच्छादित-ढँक रहा है। आहाहा! राग की प्रीति के प्रेम में ज्ञानस्वरूपी भगवान ढँक गया है। अरे...अरे...! ऐसी बातें हैं। आहा!

जैसे लाल-पीला आदि बर्तन हो, उसमें स्फटिक रखने से उसमें उसकी उपाधि दिखती है तो उसे निर्मल स्वभाव नहीं दिखता; इसी प्रकार अज्ञानी, अपना चैतन्य ज्ञान-स्वभाव प्रभु है, उसे राग की उपाधि से अपना मानकर, उसे स्वच्छता का ज्ञान नहीं होता, आहाहा! **कर्म की उपाधि से....** अर्थात् रागादि। **आत्मा का शुद्ध स्वभाव आच्छादित हो रहा है....** दिखायी नहीं देता। राग को ही देखनेवाले को... आहाहा! राग को ही जाननेवाला वहाँ ढँक गया, उसे राग ही रह गया, आहाहा! मैं तो राग हूँ — ऐसा अज्ञानी को राग की उपाधि से ज्ञानस्वभाव ढँक गया, तिरोभूत हो गया, दृष्टि में नहीं रहा। आहाहा!

(इसलिए पुद्गलद्रव्य को अपना मानता है...) आहाहा! भगवान ज्ञान-चैतन्य चमत्कार, आनन्दकन्द प्रभु, राग के प्रेम में, अस्वभावभाव की एकत्वबुद्धि में स्वभावभाव ढँक गया तो वह स्वभावभाव दिखायी नहीं देता; अकेला राग ही दिखायी देता है। आहाहा! ऐसी बातें अब! यह समयग्दर्शन होने की रीति है। आहाहा! **ऐसे अज्ञानी को अब समझाया जा रहा है कि....** देखो, यह समयसार अज्ञानी को समझाया जा रहा है। अप्रतिबुद्ध को यह समझाया जा रहा है। आहाहा!

रे दुरात्मन्!... आहाहा! सन्तों की करुणा है, करुणा, हों! आहाहा! प्रभु! तू राग और

पुण्य का जो परिणाम है, वह पुद्गल है, उसे अपना मानता है, हे दुरात्मन! हे दुष्ट आत्मा! आहाहा! सन्तों की करुणा है, अरे...! तू क्या मानता है? भाई! आहाहा! तेरी चीज इस राग के विकल्प से महाचैतन्य चमत्कार भिन्न पड़ी है न! आहाहा! उसे तो तू मानता नहीं, जानता नहीं और जो तेरी चीज में नहीं — ऐसे रागादि पुद्गल को अपना मानता है, दुरात्मन्! तेरी दृष्टि मूढ़ है। आहाहा!

राग में सुखबुद्धि होती है तो आनन्दकन्द का नाथ वहाँ ढँक गया। आहाहा! यह राग के विकल्प में ठीक है, सुख है, मजा है, ऐसा माननेवाले ने राग, पुद्गल है उसे अपना माना। राग से (भिन्न) आनन्दस्वरूप भगवान में आनन्द है, आत्मा आनन्दस्वरूप है — ऐसा हे दुरात्मन्! तूने नहीं माना। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें! अभी तो सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन की बात चलती है। मुनिपना, बापू! यह तो कोई अलौकिक वस्तु है। क्या हो? समझ में आया? यहाँ तो भगवान अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की चमत्कारी वस्तु है, उसे राग की उपाधि में राग को ही अपना मानकर चैतन्य-चमत्कार, राग से भिन्न है, उसे छोड़ देता है। जो स्वभावभाव है, उसे नहीं मानता; अस्वभावभाव है, उसे मानता है। आहाहा!

दूसरे प्रकार से कहें तो यह राग है वह पुद्गल-अजीव है। अजीवभाव में आत्मा रुककर, त्रिकाली ज्ञान-जीवस्वभाव उसे ढँक गया। आहाहा! ऐसी बातें अब, लो! पहले तो 'दया वह सुख की बेलड़ी, दया वह सुख की खान, अनन्त जीव मुक्ति गये....' पहाड़े बोलता है, किसकी दया? आहाहा! पर की दया का भाव तो राग है और राग को देखनेवाला पुद्गल को देखता है। आहाहा! भगवान की भक्ति भी राग है, शास्त्र की भक्ति भी राग है और तू राग को देखता है तो उस पुद्गल को ही तू देखता है, उस अजीव को तू देखता है और अस्वभावभाव है, वही मेरा है — ऐसा तू मानता है। आहाहा! कठिन बात, आहाहा!

श्रोता : राग में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्ण, गन्ध नहीं परन्तु अचेतन है। चैतन्य-चमत्कार ज्ञानस्वरूप भगवान की किरण राग में नहीं है; इस कारण राग को अचेतन और पुद्गल कहा गया है। आहाहा! चाहे तो पंच महाव्रत का राग-विकल्प हो तो भी वह अचेतन है। चैतन्यप्रकाश की मूर्ति भगवान सूर्य की किरण उसमें नहीं है। वह चैतन्यरूपी सूर्य की किरण राग में नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इस कारण राग को अचेतन कहकर पुद्गल कहा है। आहाहा! यह श्रवण में भी जो राग उत्पन्न होता है, वह राग पुद्गल है। आहाहा! क्योंकि चैतन्यस्वभाव का

उसमें अभाव है, आहाहा! ऐसे पुद्गल को अपना मानकर अज्ञानी अपना स्वरूप, राग है — ऐसा मानता है। हे दुरात्मन! आहाहा! सन्तों की कड़क भाषा नहीं (परन्तु) करुणा है। आहाहा!

अरे भगवान! यह दया, दान, व्रत, भक्ति का राग तो पुद्गल है। अरर! यह बात! पंच महाव्रत का विकल्प, राग है, आहाहा! वह पुद्गल है। हे दुरात्मन्! तू पुद्गल को अपना क्यों मानता है? आहाहा! पैसे-बैसे की बात तो कहाँ रह गयी! वह तो धूल कहाँ (रह गयी)। उसे अपनी माने वह तो महामूढ़ है, महामूढ़! आहाहा! यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव कहते हैं, उसे सन्त, आड़तिया होकर जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! वीतरागी दिगम्बर सन्त हैं, आहाहा! आनन्द और आनन्द की वीतराग दशा में झूलते-झूलते सन्तों को करुणा से विकल्प आया। आहाहा!

ऐसे एक ओर 'भगवान आत्मा' ऐसा कहे और यहाँ 'दुरात्मन्' ऐसा कहा। ७२ गाथा में ऐसा कहा कि यह पुण्य और पापभाव प्रभु! अशुचि है, मैल है, नाक की गन्दगी-मैल है, यह मैल है, अचेतन है, जड़ है। भगवान-ऐसा शब्द लिया है। भगवान! तू तो निर्मल आनन्द ज्ञानस्वरूप है न! प्रभु! आहाहा! समझ में आया? यहाँ राग को पुद्गलरूप से गिनकर (अजीव का कहा) और अज्ञानी अपने आत्मा का है — ऐसा मानता है। गिना किसने? ज्ञानियों ने (पुद्गलरूप से) गिनकर... आहाहा! (अज्ञानी) उस राग को अपना मानता है और वह राग करते-करते कल्याण होगा (ऐसा मानता है)। आहाहा! यह पंच महाव्रत पालते-पालते, व्यवहार रत्नत्रय करते-करते (कल्याण मानता है)। पुद्गल करते-करते पुद्गल से चैतन्य जागृत होगा (— ऐसा मानता है)। आहाहा!

हे दुरात्मन्!... आहाहा! क्योंकि राग को अपना मानता है, यह तेरा आत्मा दुरात्मा है। आहाहा! **आत्मघात करनेवाले!....** आत्मघात करनेवाले, आहाहा! यह राग का कण-विकल्प, वृत्ति उत्पन्न हुई — दया, दान, व्रत, भक्ति के राग की वृत्ति को अपनी मानकर आत्मघाती है। तू आत्मा का घात करनेवाला है, प्रभु! आहाहा! ऐसी तो दिगम्बर सन्त करुणा से बात करते हैं। आहाहा! जंगलवासी सन्त, सिद्ध के साथ बातें करनेवाले (हैं, वे) जगत् के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्यदेव भगवान के पास गये थे। संवत् ४९, दो हजार वर्ष पहले (गये थे) भगवान तो विराजमान हैं, अभी पाँच सौ धनुष की देह है। आहाहा! वहाँ आठ दिन रहे और वहाँ श्रुतकेवली के पास चर्चा करके कितना ही समाधान हुआ। यहाँ आये और तत्पश्चात् यह शास्त्र बनाये। आहाहा! तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान। सीम-

अपनी मर्यादा में–आनन्द में–वीतरागस्वभाव में (रहनेवाले), उन सीमन्धर भगवान की पाँच सौ धनुष की देह है, करोड़ पूर्व की आयु है। श्वेताम्बर में चौरासी लाख पूर्व की आयु कहते हैं — ऐसा नहीं है, करोड़ पूर्व की आयु है। श्वेताम्बर ने सब बातें बहुत कल्पित कर डाली है। क्या कहें ? अरेरे !

श्रोता : उन्हें सहारा देनेवाले मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सब अज्ञानी हो तो इकट्ठे मिलते ही है न! आहाहा! करोड़पूर्व की प्रभु की आयु है। समवसरण में विराजमान हैं। आहाहा! वहाँ आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह बनाया, फिर एक हजार वर्ष बाद अमृतचन्द्राचार्यदेव हुए, उनकी यह टीका है। आहाहा!

हे आत्मघाती! आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु है। ऐसे स्वभाववान को नहीं माननेवाला और अस्वभाव राग, पुद्गल है (उसे अपना) माननेवाला आत्मघाती है। तूने आत्मा के शुद्धस्वभाव का अनादर किया है। यह तूने आत्मा का घात किया है। युगलजी! ऐसी बात है। आहाहा! चाहे तो शास्त्र श्रवण का राग हो... आहाहा! शास्त्र कहने का विकल्प हो परन्तु वह राग, पुद्गल है। आहाहा! प्रभु! उसमें चैतन्य के नूर के तेज का प्रवाह नहीं आया। आहाहा! सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र में शुद्ध चैतन्य का प्रवाह आता है। आहाहा! राग और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि भाव या हिंसा, झूठ, चोरी, विषय–भोग, वासना के भाव में भगवान चैतन्य का रस अंश भी नहीं आया। आहाहा! जिसमें अचेतनपना, पुद्गलपना है, उसे प्रभु! तूने अपना माना है तो तू आत्मघाती है, प्रभु! आहाहा!

श्रोता : स्वभाव और अस्वभाव की स्पष्टता अभी होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य। ऐसी (बात है) बापू! भाई, क्या हो ? आहाहा!

निर्मलानन्द चैतन्यस्वरूप स्व–पर प्रकाशक स्वभाव का सागर प्रभु है — ऐसे अपने स्वरूप को नहीं मानकर, उससे विपरीत रागादि जो पुद्गल–अचेतन–जड़ है, उन्हें अपना मानकर वहाँ रुक गया (तो तू) आत्मघाती हुआ। आहाहा! भगवान चैतन्यमूर्ति निर्मलानन्द प्रभु श्रद्धा में आना रह गया। रागादि मैं हूँ यह (श्रद्धा) तूने की। क्रियाकाण्ड में सामायिक और प्रौषध और प्रतिक्रमण करता है, वह राग है, राग है। सामायिक (कैसी) ? समकित दृष्टि बिना सामायिक कैसी ? आहाहा! बहुत कठिन काम, सामायिक करूँ और प्रौषध करूँ और प्रतिक्रमण करूँ, यह सब तो विकल्प–राग है, वह पुद्गल है। उस पुद्गल को अपना माननेवाला

चैतन्य आनन्द के नाथ का घात कर डालता है। वह नहीं, मैं यह हूँ। आहाहा! ऐसी बात है।

आहाहा! सन्तों की करुणा तो देखो! हे दुरात्मन्! राग की वृत्ति उत्पन्न हुई, ज्ञानानन्दस्वभाव में राग नहीं है, वह राग आया कि दया पालूँ और यह करूँ और वह करूँ, वह वृत्ति उपाधि है। आहाहा! वह पुद्गल है, अचेतन है, अजीव है, जड़ है, मैल है, दु:ख है। आहाहा! उसे तू अपना मानता है और भगवान चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु का अनादर करता है तो विद्यमान चीज को तूने अविद्यमान कर डाली और अविद्यमान चीज को तूने विद्यमान कर डाली। रागादि अविद्यमान चीज है, वास्तव में अन्दर नहीं है। समझ में आया? उनका सत्पना तूने स्वीकार किया तो भगवान सत्स्वरूप त्रिकाल का तूने अनादर कर डाला। आहाहा! बहुत कठिन काम! दुनिया को अभी यह मिलना बहुत कठिन! बस! आठ दिन, दस दिन हो आठ अपवास करे, उसमें रात्रिभोजन त्याग करे (तो) ओहोहो! गजब किया! महीने के अपवास (करे) महीने-महीने के अपवास! थे कब उपवास? तेरा लंघन है। वह तो क्रियाकाण्ड का राग मन्द किया हो तो पुण्य है। मान के लिए करे और यह अपवास करेंगे तो.... क्या कहलाता है वह? उच्छामणी करे, आहाहा! फिर पाँच-पच्चीस हजार खर्च करे तो अपना मान रहे.... बहू ने बहुत अच्छी तपस्या की थी (यह भाव) तो पाप है। कदाचित् राग मन्द किया हो तो वह पुण्य है, पुद्गल है, राग है; वह धर्म नहीं। आहाहा!

रे दुरात्मन्! आत्मघात करनेवाले!.... आहाहा! महाप्रभु चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा चैतन्य चमत्कार के अस्तित्व का तो तूने घात कर दिया, प्रभु! आहाहा! और राग को तूने जीवित रखा, वह तेरा जीवन हो गया; पुद्गल में तेरा जीवन हो गया। **जैसे परम अविवेकपूर्वक....** भाषा देखो! **जैसे परम अविवेकपूर्वक खानेवाले हाथी....** हाथी आदि पशु। हाथी को चूरमा देते हैं न? साथ में घास हो, घास; चूरमा के साथ घास हो, वह **हाथी आदि पशु सुन्दर आहार को तृणसहित खा जाते हैं....** आहाहा! वह सुन्दर आहार चूरमा हो, उसे घास के साथ खा जाते हैं परन्तु घास और चूरमा भिन्न है, इसका पता नहीं है। आहाहा! पडसा होता है न? हमारी काठियावाड़ी भाषा है। पडसा समझे? काशीफल, पडसा होता है। इतना-इतना चौड़ा होता है, उसमें चूरमा या रोटी या लड्डू डालकर (दें फिर) खाता है। आहाहा!

परम अविवेकपूर्वक खानेवाले हाथी आदि पशु सुन्दर आहार को तृणसहित खा जाते हैं.... आहाहा! उस तृणसहित चूरमा को खा जाते हैं। **उसी प्रकार खाने के स्वभाव को तू छोड़,....** आहाहा! राग मेरा है — ऐसा अनुभव छोड़। आहाहा! जीव अधिकार है न?

इस राग को अजीव में — पुद्गल में डाल दिया है। आहाहा! यहाँ तो अभी व्यवहाररत्नत्रय अच्छा करे तो निश्चय पाये, पहुँच सके (ऐसा मानते हैं)। अरे...! प्रभु! यह तू क्या करता है? भगवान के विरह में तूने क्या किया? प्रभु! लोक को प्रसन्न रखकर यह तूने क्या किया? लोग प्रसन्न हों कि आहाहा! देखा? व्यवहार से भी निश्चय प्राप्त होता है, एकान्त निश्चय से ही निश्चय प्राप्त होता है — ऐसा नहीं। वे सुननेवाले, आहाहा! सुननेवाले को और कहनेवाले को कुछ पता नहीं होता। आहाहा!

श्रोता : दृष्टान्त दीजिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त कहा न यह! दूसरे को ऐसा कहते हैं — तू यह दया, दान, व्रत के परिणाम करता है तो तेरा कल्याण होगा, इससे तुझे सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! पुद्गल खाते-खाते तुझे आत्मा का आनन्द होगा... जहर खाते-खाते तुझे अमृत की डकार आयेगी! आहाहा! भाई! मार्ग बहुत अलौकिक है! सच्चिदानन्द प्रभु, जिसमें प्रभु में-आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द ठसाठस भरा है, भाई! तुझे पता नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर सागर प्रभु पूरा है, उसे तू नहीं मानकर, राग के स्वाद में तेरी मिठास आ गयी। आहाहा! वह हाथी आदि अविवेकी (प्राणी) घास के साथ चूरमा खाता है, वैसे तू राग के साथ आत्मा का अनुभव करता है परन्तु आत्मा वैसा है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। फिर लोग 'सोनगढ़' का कहते हैं न? कहो प्रभु! शास्त्र है तो भगवान का; यह कहीं (यहाँ का नहीं है) सोनगढ़ का एकान्त है, निश्चयाभास है... कहो प्रभु! आहाहा! बापू! तेरा पन्थ कोई अलग प्रकार का है नाथ!

यहाँ आचार्य कहते हैं **उसी प्रकार खाने के स्वभाव को तू छोड़, छोड़।...** आहाहा! यह राग मेरा है ऐसा अनुभव छोड़। आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का शास्त्र का (राग) आया हो, शास्त्र को वन्दन करने का भाव राग है और राग का अनुभव है, वह पुद्गल का अनुभव है। आहाहा! हे आत्मा! वह तू छोड़। आहाहा! दो बार कहा — **छोड़, छोड़।...** यह राग का अनुभव, हाथी जैसे चूरमा के साथ घास खाता है, वह तू छोड़! वैसे भगवान का राग के साथ अनुभव करता है, उस राग को छोड़, वह राग तेरी चीज नहीं है। आहाहा! राग किसे कहना यह अभी पता नहीं होता। स्त्री, पुत्र के प्रति राग करो, अमुक करो, यह राग... परन्तु दया पालना और पंच महाव्रत का भाव, वह भी राग है। आहाहा!

श्रोता : भगवान के दर्शन करने का भाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान के दर्शन करना, वह राग है।

श्रोता : आपका व्याख्यान सुनना वह?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग है श्रवण का — कहा न ? इस पुस्तक का वाँचन करना, वह विकल्प राग है। आहाहा ! भाई ! वह हो, परन्तु वह तू नहीं है; वह तेरी चीज नहीं है प्रभु ! आहाहा ! अरे ! अनन्त काल से भटक रहा, बिना भान भगवान; सेव्या नहीं गुरु सन्त को, छोड़ा नहीं अभिमान। सन्त किसे कहना ? और किसे कहना ज्ञानी ? बापू ! अरेरे ! वन-जंगल में रण में अकेला हो वैसे अभी अकेले हो गये हैं। आहाहा !

भगवान परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, प्रभु ! तू एक बार मेरी बात सुन ! आहाहा ! जिसे तू धर्म मानता है — दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, वह राग है, पुद्गल है, अचेतन है, जड़ है, अजीव है। उसका अनुभव है, वह आत्मा का अनुभव है — ऐसी दृष्टि छोड़ दे। आहाहा ! कठिन काम इसमें, भाई !

जिसने समस्त सन्देह,.... अब क्या कहते हैं ? भाई ! प्रभु ! भगवान आत्मा तो सर्वज्ञदेव ने उसे कहा है। यह राग कहीं आत्मा नहीं है। आहाहा ! जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधता है, वह भाव, राग है; वह आत्मा नहीं। आहाहा ! लो, 'षोढस कारण भावना भाय, तीर्थंकर पद पाये', नहीं आता ? प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। वह होता है समकिती को, परन्तु वह राग, पुद्गल-जड़ है। आहाहा ! उससे तीर्थंकर प्रकृति का — जड़ परमाणु का बन्ध होता है। आहाहा ! वह अबन्धभाव नहीं है। आहाहा !

तू भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब चन्द्र शीतलस्वरूप वीतरागमूर्ति शीतल शान्तस्वरूप है, उसमें अशान्त ऐसे विकल्प और राग को तू अपने अनुभव करता है, वह छोड़ दे, प्रभु ! सुखी होना हो और धर्म पन्थ में जाना हो तो छोड़ दे ! आहाहा ! क्यों छोड़ दे ? **जिसने समस्त सन्देह, विपर्यय, अनध्यवसाय दूर कर दिये हैं....** भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने समस्त सन्देह, विपरीत और अनध्यवसायभाव दूर कर दिये हैं। **और जो विश्व को (समस्त वस्तुओं को) प्रकाशित करने के लिए....** आहाहा ! विश्व अर्थात् समस्त वस्तु-लोक-अलोक। **प्रकाशित करने के लिए एक अद्वितीय ज्योति है,....** अजोड़ ज्योति चैतन्यभगवान सर्वज्ञ हैं। आहाहा ! सर्वज्ञ अरिहन्त परमेश्वर अद्वैत ज्योति, अजोड़ ज्योति हैं। उनके जैसी दूसरी कोई ज्योति जगत में है नहीं।

ऐसे सर्वज्ञ ज्ञान से स्फुट (प्रगट) किया गया.... त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर... आहाहा ! सम्पूर्ण लोक और अलोक को प्रकाशित करनेवाले ऐसे सर्वज्ञ भगवान द्वारा (प्रगट) किया गया **जो नित्य उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य....** प्रभु ने तो आत्मा को उपयोगस्वरूप कहा है। जानना-देखना उपयोगस्वरूप भगवान आत्मा है। वह रागरूप किस प्रकार हो गया ?

आहाहा! सर्वज्ञ **सव्वण्हुणाणदिट्ठो** सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर अरिहन्तदेव ने सर्वज्ञस्वभाव में जीव को उपयोगस्वरूप देखा है। जानन-देखन उपयोगी आत्मा। इस राग को भगवान ने आत्मा नहीं कहा है। आहाहा! यह तो बात-बात में अन्तर लगता है। क्या हो भाई! आहाहा!

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं, वह यह मुनि कहते हैं। भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर लोकालोक के प्रकाशक हैं, उन्होंने तो... आहाहा! उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य कहा है। जीवद्रव्य अर्थात् भगवान आत्मा को अनन्त गुणवाला नहीं कहा परन्तु उपयोगस्वरूप आत्मा कहा है। क्योंकि अनन्त-अनन्त गुण हैं तो अनन्त-अनन्त गुण के कितने भेद इसे बतलाना? यह एक चीज महाप्रभु उपयोग जिसका लक्षण है, आहाहा! उपयोगस्वरूप भगवान आत्मा, वह जीवद्रव्य है, **उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य**.... आहाहा! अनन्त गुणस्वरूप जीवद्रव्य नहीं लिया। मुख्य लक्षण बताने के लिए ऐसा कहा कि जीव भगवान तो उपयोगस्वरूप उसका स्वभाव है न! आहाहा! जानना-देखना ऐसे उपयोगस्वरूप भगवान है न! आहाहा! जीवद्रव्य को ऐसा कहा।

सव्वण्हुणाणदिट्ठो पाठ है न? यह तो पाठ है, गाथा है, देखो न **सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।** आहाहा! उसे अनन्त गुणवाला है — ऐसा नहीं कहा। आहाहा! परन्तु जानना-देखना उपयोग जो मुख्य चीज है, जो विशिष्ट लक्षण है (वैसे स्वरूप कहा); इसलिए कहा न? **उवओगलक्खणो णिच्चं** — ऐसा कहा है। यह भगवान तो जानन-देखन उपयोग लक्षणस्वरूप है। वह तेरे राग में कैसे आ गया? आहाहा! समझ में आया?

चैतन्य के अनन्त गुणस्वरूप आत्मा — ऐसा नहीं लेकर, महाप्रभु उपयोग लक्षण निश्चय-ऐसा सर्वज्ञ भगवान ने आत्मा को कहा है न! आहाहा! और **लक्खणो** लिया है। **उवओगलक्खणो णिच्चं सव्वण्हुणाणदिट्ठा** आहाहा! भगवान आत्मा को भगवान आत्मा ने उपयोग लक्षण देखा है, उसमें राग लक्षण और रागभाव आया कहाँ से? ऐसा कहते हैं। जानन-देखन उपयोग है न? आहाहा! दूसरे अनन्त गुण में ऐसा जानन-देखन (स्वरूप) नहीं है। आहाहा! ज्ञानप्रकाश, दर्शनप्रकाश, ऐसा जो उपयोग, उस उपयोगस्वरूप भगवान आत्मा है। भगवान ने तो ऐसा कहा है और हे दुरात्मन! तू दया, दान के राग को अपना मानता है और पुद्गल से लाभ मानता है, यह कहाँ से लाया? ऐसी बातें हैं।

जिसके प्रकाश के तेज में स्व-पर ज्ञात हो — ऐसा उपयोगस्वरूप भगवान तो है, वह परस्वरूप नहीं। आहाहा! राग तो अनुपयोग है। राग — दया, दान, व्रतादि का विकल्प है, वह

तेरा है — ऐसा मानता है (परन्तु) वह तो अनुपयोग है। आहाहा! भगवान तो जानन-देखन उपयोगस्वरूप है — ऐसा भगवान ने देखा है। भगवान ने तो ऐसा कहा है। जिन्हें तीन काल-तीन लोक का ज्ञान विश्व प्रकाशक है। विश्व अर्थात् समस्त का प्रकाशक। तीन काल-तीन लोक को एक समय में जाने — ऐसा प्रकाश (प्रगट है)। आहाहा! ऐसी चैतन्यज्योति भगवान ने तो ऐसा कहा है कि जीव तो निश्चय से उपयोग लक्षण है। उसमें तेरा राग कहाँ से आया? आहाहा! वहाँ बैंगलोर में कुछ मिले — ऐसा नहीं। धूल आवे वह धूल — पैसा। आहाहा!

नित्य उपयोगस्वभावरूप.... यह एक शब्द पड़ा है। त्रिकाल ज्ञान उपयोग, दर्शन उपयोगस्वरूप वह है। आहाहा! वह रागरूप कभी नहीं हुआ, रागरूप होता नहीं। आहाहा! उपयोगस्वरूप जीव चैतन्य, वह अजीव — रागरूप कैसे हो? जो अनुपयोग है, उपयोग नहीं। आहाहा! समझ में आया? बात कहना सूक्ष्म और कहना कि समझ में आया? समझ में आता है? बापू! यह (बात) है, भाई! आहाहा!

एक विश्व को-सर्व को प्रकाशित करनेवाले भगवान सर्वज्ञदेव **सर्वज्ञ ज्ञान से स्फुट (प्रगट) किया गया....** सर्वज्ञ ज्ञान से प्रगट किया गया। **नित्य उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य....** देखो! नित्य उपयोगस्वरूप जीवद्रव्य — ऐसा भी नहीं कहा। नित्यस्वभाव — ऐसा नहीं कहा, नित्य उपयोगस्वभावरूप जीवद्रव्य (कहा है)। आहाहा! जानन-देखन उपयोगस्वभावरूप.... आहाहा! जीवद्रव्य **वह पुद्गलद्रव्य कैसे हो गया....** वह रागरूप कैसे हो गया? आहाहा! ऐसी बातें हैं। युगलजी! भगवान का यह मार्ग है, भाई! आहाहा! दुनिया फिर चाहे जो कहो — एकान्त है, निश्चयाभास है — ऐसा कहे, प्रभु! भाई! तुझे राग के प्रेम में वस्तु भिन्न है, उसका भान नहीं है। आहाहा! उसे ऐसा कि ऐसी क्रिया करते हैं, महाव्रत पालते हैं, इन्द्रिय दमन करते हैं, आजीवन ब्रह्मचर्य पालते हैं तो भी कल्याण नहीं होगा? यह सब क्रिया राग की है, सुन तो सही! यह तो राग की वृत्ति का उत्थान है। भगवान आनन्दकन्द में वह उत्थान है ही नहीं। आहाहा!

कैसी गाथा है, देखो न! आहाहा! यह पुद्गलद्रव्य कैसे होगा? जिससे तू यह अनुभव करता है कि **'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है'....** राग मेरा है। क्या हो गया तुझे? आहाहा! घास निकाल देने की चीज है, उसे चूरमा के साथ खाता है? राग पुद्गल है, उसके साथ आत्मा मेरा है — ऐसा अनुभव करता है? आहाहा! गजब है न? वास्तव में तो यह जीव-अजीव अधिकार है, इसलिए जो राग है — चाहे तो दया का, व्रत का, भक्ति-पूजा का, वह सब अजीव है, वह पुद्गल है, वह जड़ है, अचेतन है। अरर! ऐसा सुनना (कठिन पड़ता है।)

आहाहा! सर्वज्ञ भगवान ने तो ऐसा कहा है। आहाहा! तू ऐसा नया कहाँ से निकला कि यह राग की क्रिया करते-करते, अनुपयोग करते-करते उपयोग हो जायेगा! आहाहा!

आहाहा! **क्योंकि यदि किसी भी प्रकार से जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्यरूप हो....** किसी भी प्रकार से भगवान आनन्द और ज्ञान उपयोग, वह रागरूप हो... है? **और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यरूप हो....** और राग-पुद्गलद्रव्य है, वह जीवद्रव्यरूप हो... दृष्टान्त देंगे। **तभी 'नमक का पानी'....** आहाहा! नमक का पानी। नमक होता है न? गर्मी में पानी हो जाता है न? गर्मी के कारण (पानी हो जाता है)। नमक का पानी पहले लेना है। पानी का नमक बाद में लेंगे। पानी का नमक होता है, यह बाद में... यहाँ तो पहले नमक का पानी (लेते हैं)। **इस प्रकार के अनुभव की भाँति....** आहाहा! समझ में आया? दृष्टान्त बाद में विशेष आयेगा... अभी इतना बाकी है।

पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यरूप हो तभी 'नमक का पानी' इस प्रकार के अनुभव की भाँति ऐसी अनुभूति वास्तव में ठीक हो सकती है कि 'यह पुद्गलद्रव्य मेरा है', किन्तु ऐसा तो किसी भी प्रकार से नहीं बनता। आहाहा! जैसे नमक है, वह पानी हो जाता है; वैसे भगवान चैतन्य है, वह राग हो जाता है — ऐसा कभी नहीं बनता।

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

७

श्री समयसार कलश टीका, कलश २१५, प्रवचन २३९
दिनांक २६-०२-१९७८

कलश टीका, २१५ कलश, फिर से थोड़ा लेते हैं। '**जनाः तत्त्वात् किं च्यवन्ते**' अरे! **संसारी जीवो...** आचार्य करुणा करके कहते हैं कि अरे जीवों! आहाहा! **जीव वस्तु सर्व काल शुद्धस्वरूप है,...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा तो शुद्धस्वरूप ही है। वह पर का कर्ता भी नहीं। दया, दान के भाव को करे, ऐसा भी नहीं। पर को तो करे नहीं... आहाहा! परन्तु दया, दान के भाव को करे, ऐसा नहीं। वह तो शुद्ध चीज़-वस्तु है। आहाहा!

समस्त ज्ञेय को जानती है... अर्थात्? कि अन्दर राग आवे, उसे स्पर्श किये बिना ज्ञान जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। क्या कहा? समझ में आया? आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा को कोई दया, दान आदि का राग आवे, परन्तु इससे पर की दया कर सके-यह तो प्रश्न है ही नहीं... आहाहा! ऐसी चीज़ है, परन्तु यह भाव आया, उसे ज्ञानस्वभाव स्पर्श नहीं करता। क्या कहा? ***यह ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा तो चैतन्य ज्योत चेतना है। वह रागादि अचेतन स्वभाव को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! वह तो शुद्ध चैतन्य वस्तु है, ऐसा जिसके ज्ञान में ज्ञात होता है, वह आत्मा, अन्दर राग होवे तो राग को स्पर्श किये बिना राग को जानता है।*** आहाहा! समझ में आया? पर की दया पालना या मारना, वह तो कर नहीं सकता, क्योंकि पर को स्पर्श नहीं कर सकता, परन्तु अन्दर में राग आवे, वह भी शुद्ध जीव के स्वभाव में राग का स्पर्शना और चुम्बन करना अर्थात् स्पर्शना, चुम्बन अर्थात् स्पर्शना (यह भी नहीं है)। आहाहा! इस चैतन्यघन भगवान आत्मा की सत्ता चेतन—जानने-देखने की है। इस जानने-देखने में जो राग आवे, उसे भी स्पर्श किये बिना, वह अपने क्षेत्र में, भाव में रहकर उसे जानता है। आहाहा! है?

भ्रष्ट क्यों करते हैं? अरे! ऐसे अनुभव में क्यों भ्रष्ट होता है? अर्थात् राग को जानने पर इसे ऐसा हो जाता है कि अरे! मैं रागरूप हो गया अथवा राग मेरे ज्ञानस्वरूप से हो गया - ऐसे जीव भ्रष्ट क्यों होता है? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बाते हैं, बापू! लोगों ने माना है, वे सब बाहर की बातें हैं। आहा! यहाँ तो शुद्ध जीवस्वरूप है, वह राग को जानने पर, राग को स्पर्श नहीं करता।

वह परज्ञेय है; और वास्तव में यह राग है, वह चेतन से भिन्न जाति है, इसलिए अचेतन है। इस अचेतन को चेतन स्पर्श नहीं करता। आहाहा!

श्रोता : स्पर्श करे तो क्या बाधा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पर्श करे तो बाधा है। वह मिथ्यादृष्टि मलिन माने। छूता अर्थात् स्पर्श नहीं करता, क्योंकि राग और ज्ञायकभाव के बीच अत्यन्त अभाव है। आहाहा! रागतत्त्व, वह पुण्यतत्त्व है, मलिन तत्त्व है, अचेतन तत्त्व है। भगवान चेतन तत्त्व है, निर्मल तत्त्व है, ज्ञायकस्वभाव से भरपूर तत्त्व है। उस राग को स्पर्श किये बिना ज्ञान, राग को, अपने भाव में रहकर, क्षेत्र में रहकर राग को जानता है। परन्तु ये लोग, राग को जानते हुए 'मैं राग को जानता हूँ, अर्थात् स्पर्श करता हूँ'—ऐसे भ्रष्ट क्यों हो जाते हैं ? – ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्तिम गाथाएँ हैं।

श्रोता : राग को ज्ञान स्पर्श करे तो दोनों एक हो जाएँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों वस्तुएँ अत्यन्त भिन्न हैं और भिन्न को भिन्न स्पर्श नहीं कर सकता, **बहिर्लुटंती** आ गया है न यह ? पहले आ गया नहीं ? आहाहा! उस राग से भगवान आत्मा **बहिर्लुटंती** – बाहर लोटता है और आत्मा के स्वभाव से भी राग **बहिर्लुटंती**। आहाहा!

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को तो स्पर्श नहीं करता... आहाहा! गजब बात है! यह तो दृष्टान्त दिया था न, चलने का ? यह पैर चलता है, वह जमीन का स्पर्श नहीं करता। अरे रे! यह बात कहाँ.. ? क्योंकि जमीन की पर्याय और आत्मा की पर्याय के बीच अत्यन्त अभाव है। अत्यन्त अभाव में भाव स्पर्शरूप कैसे हो सकता है ? आहाहा! ऐसा है। वीतरागमार्ग, सत्य बहुत अलौकिक है। सुनने को मिले नहीं, बेचारे कहाँ जाएँ ? आहाहा! यह भटकन चौरासी में कौए, कुत्ते के अवतार कर-करके मर जाए, अनन्त बार। आहाहा!

यहाँ तो आचार्य महाराज ऐसा कहते हैं कि **वस्तु का स्वरूप तो प्रगट है...** क्या प्रगट है ? कि राग को स्पर्श किये बिना, परद्रव्य को स्पर्श किये बिना ज्ञान उसे जाने, ऐसा वस्तु का स्वरूप तो प्रगट है। आहाहा! आहाहा! समझ में आया ? भाव बहुत गहरे हैं, भाषा तो सादी है। आहाहा! यह बीड़ी पीता है (तो) कहते हैं कि बीड़ी को हाथ छूता नहीं तथा होठ को आत्मा छूता नहीं। आहाहा! वैसे ही राग हुआ, उसे आत्मा स्पर्श नहीं करता। अरे! प्रभु! देख तो सही! ऐ.. सेठ! तुम्हारा लिया, बीड़ी का दृष्टान्त, दृष्टान्त के बिना समझ में किस प्रकार आवे ? आहाहा!

श्रोता : छूता नहीं तो पीने में क्या दिक्कत है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पीना कहाँ रहा वहाँ ? बीड़ी को छूता नहीं और होठ को छूता नहीं, आत्मा होठ को छूता नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है, भाई ! जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा का मार्ग कोई अलौकिक है ! अभी तो सुनने को मिलता नहीं, ऐसी चीज़ हो गयी है। क्या हो ? आहाहा !

देखो ! अब आता है, **जीव वस्तु सर्व काल शुद्धस्वरूप है, समस्त ज्ञेय को जानती है, ऐसे अनुभव से क्यों भ्रष्ट होते हैं ?** देखा ? आहाहा ! मैं राग को, राग में प्रविष्ट हुए बिना, मुझमें रहकर राग को जानता हूँ। ऐसे स्वभाव के अनुभव से जीव भ्रष्ट क्यों होते हैं कि मैं राग को छूता हूँ, राग को स्पर्श करता हूँ, शरीर को स्पर्श करता हूँ। ऐसे राग को जाननेवाला भिन्न, ऐसे अनुभव से भ्रष्ट क्यों होते हैं ? आहाहा ! समझ में आया ?

कैसे हैं जन ? अरे ! कैसे हैं जगत के जीव ? आहाहा ! **'द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियः'** अपने द्रव्य से अन्य **ज्ञेय वस्तु को जानता है इससे... 'चुम्बन'** मानों मैंने स्पर्श किया अर्थात् **अशुद्ध हुआ है जीवद्रव्य ऐसा जानकर...** आहाहा ! शरीर और वाणी को ज्ञान जाने, तथापि ज्ञान, शरीर-वाणी को स्पर्श नहीं करता - ऐसा तो ज्ञान का स्वभाव है। उससे जन (जीव) अनुभव से भ्रष्ट क्यों होते हैं कि मैं इस शरीर को स्पर्श करता हूँ। आहाहा ! इस शरीर की जो इन्द्रियाँ हैं, उन्हें भी आत्मा स्पर्श ही नहीं करता। आहाहा ! तो भी इस ज्ञान के अनुभव में तो शरीर को स्पर्श किये बिना का ज्ञान है, ऐसी वस्तु का अनुभव है। परन्तु उसके बदले मैं शरीर को स्पर्श करता हूँ, यह कोमल शरीर है, उसे मैं स्पर्श करता हूँ, इस प्रकार जीव को परद्रव्य के साथ चुम्बन अर्थात् स्पर्श कैसे मानता है ? आहाहा ! सूक्ष्म बात है, प्रभु ! आहाहा ! जन्म-मरण का अन्त लाने की बातें, बापू ! बहुत कठिन ! उसका फल भी कितना ! अनन्त आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. आहाहा !

जीवतत्त्व ज्ञानस्वरूप से स्थित है। यह परतत्त्व जो है शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार आदि, सबको अपने में रहकर जानने का स्वभाव है, तथापि उसे यह लगता है कि मैं उन्हें स्पर्श करता हूँ, उन्हें स्पर्श करता हूँ - ऐसा (मानकर) ज्ञान के स्वरूप से भ्रष्ट क्यों हो जाता है ? आहाहा ! समझ में आया ? चुम्बन का अर्थ यहाँ अशुद्ध किया, परन्तु चुम्बन का अर्थ स्पर्श करना होता है। आहाहा ! यह चुम्बन नहीं लेते शरीर का और बालक का ? यह होंठ भी वहाँ स्पर्श नहीं करता, कहते हैं। आहाहा ! आत्मा का ज्ञान तो होंठ को कैसे छुए, परन्तु होंठ, उसके लड़के का चुम्बन लेता होंठ उसके शरीर को स्पर्श नहीं करता। अरे ! ऐसी बात ! क्योंकि तत्त्व (से) तत्त्व भिन्न है। शरीर, वाणी, मन, अजीवततत्त्व है। दया, दान के, व्रत के भाव होते

हैं, वे आस्रवतत्त्व अथवा पुण्यतत्त्व है। भगवान है, वह ज्ञायकतत्त्व है। आहाहा! ऐसी बात है। वह ज्ञायकतत्त्व पर को स्पर्श किये बिना जानने का स्वरूप ही उसका ऐसा है। तथापि यह क्या हुआ? जीव, जगत के प्राणी क्या करते हैं? आहाहा! कि हम इस राग को जानते हुए राग को स्पर्श करते हैं। आहाहा! इससे हम अशुद्ध हो जाते हैं। आहा! ऐसी यह भ्रमणा क्यों हुई जगत को? आहाहा! समझ में आया?

एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को स्पर्श करे तो दो तत्त्व एक हो जाते हैं, भिन्न रहते नहीं। आहाहा! यह तो धीर का काम है, भाई! यह कोई बाहर से कोई व्रत किये और उपवास किये और इसे हो गया धर्म, वह तो कहीं तीन काल में नहीं है; परन्तु यह व्रत का विकल्प उठा.. आहाहा! उसे भी ज्ञानस्वरूपी भगवान अपने में रहकर, उसे स्पर्श किये बिना जाने, तथापि उसे मैं स्पर्श करता हूँ, छूता हूँ और इससे मैं पर को जानने से अशुद्ध हो जाता हूँ – ऐसा भ्रम अज्ञानी को क्यों होता है? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। समझ में आया? है?

'द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियः' 'आकुलधियः' क्या? पर को स्पर्श कर **ज्ञेयवस्तु का जानपना कैसे छूटे...** पर को स्पर्श करना, मानों मैं स्पर्श करता हूँ – यह कैसे छूटे? अथवा मुझे पर का जानना होता है, वह तो पर का जानना हुआ, वह तो अशुद्धता हुई; इसलिए पर का जानना कैसे छूटे? – ऐसा अज्ञानी भ्रम करता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! उसे बहुत जगह से विमुख होना पड़ेगा। हें? आहा! यह कहीं बातों से बड़ा हो ऐसा नहीं है। बड़ा बनाने के लिये अनाज, तेल और घी चाहिए। ऐसे यह अन्दर का माल है। आहाहा!

चैतन्यतत्त्व, वह अचेतनतत्त्व को कैसे स्पर्श करे? अचेतन–जड़ तो ठीक, परन्तु राग भी अचेतन है, उसे कैसे स्पर्श करे? आहाहा! अर्थात् कि उसे कैसे स्पर्शे? अर्थात् कि ज्ञान में ऐसे हो जाए कि इस राग को जानता हूँ; इसलिए मैं स्पर्शा हूँ और इससे मुझे ज्ञान होता है। वह अशुद्ध है, इससे उसका ज्ञान छूटे तो मैं शुद्ध होऊँ, यह भ्रम है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो अभी पर की दया पाले तो धर्म हो, (ऐसा लोग मानते हैं)। अरर! कुकर्म करते हैं न! आत्मा का घात कर डालते हैं। मरणतुल्य करते हैं। नहीं आया? कलश टीका में आया है। आहाहा!

श्रोता : समाधिशतक में ऐसा कहा, घात हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जगत घात होता है, परन्तु यहाँ तो स्वयं मरणतुल्य हो जाता है। अपने को मरणतुल्य कर डालता है। आहाहा! अर्थात् मानो कि मैं जागती ज्योति चैतन्य ज्ञान, दर्शन, आनन्द के स्वभाववाला हूँ – ऐसा नहीं मानता। वह तो मानो कि राग को करता

हूँ और राग को स्पर्श करता हूँ। वह जीव के स्वरूप को इसने मरणतुल्य कर डाला है। जानने-देखनेवाले के स्वभाव को इसने घात कर डाला है। आहाहा! पर का घात तो कर नहीं सकता.. आहाहा! परन्तु स्वयं को इस प्रकार से व्यवहाररत्नत्रय का राग आवे, उसे मैं स्पर्श करता हूँ, यह तो ठीक, यह तो और व्यवहाररत्नत्रय से मुझे निश्चय में लाभ होता है, अरे! प्रभु! तू ज्ञान और आनन्द का धनी है, इस राग के विकार से तुझे अविकारी का लाभ हो, (ऐसा कैसे बने)? तू अविकारी है, उसमें से अविकारी लाभ होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म अब।

श्रोता : अपराधभाव से निरपराधभाव कैसे हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु अभी तो यह चला है।

यहाँ तो इससे आगे जाकर उसे जानने से मैं अशुद्ध हो जाता हूँ, तो वह तो उसका जानना और अपना जानना, वह तो अपने स्वभाव में रहकर जान सकने का स्वभाव है। पर का जानना हो गया, इसलिए अशुद्ध हो गया। परवस्तु है न? उसे जाना तो अशुद्ध हो गया, इसलिए स्व को जानूँ तो शुद्ध, वह पर को जानना छोड़ दूँ। तो पर को जानना तो तेरा स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है। उसे छोड़ने जायेगा तो तेरी वस्तु छूट जायेगी। आहाहा! अरे रे! चौरासी के अवतार में भटक मरा है अनन्त काल। ऐसी भ्रमणा कहीं-कहीं इसी (प्रकार से की है)। अटकने के साधन अनन्त, छूटने का साधन एक-स्वरूपसन्मुख जाना वह (एक साधन है)। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : दीपक विष्ठा को प्रकाशित करता है, तथापि दुर्गन्ध प्रविष्ट नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : दीपक उसे छूता ही नहीं। छूए किसे? एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में तो अभाव है। छूए किसे? छून भाव हो गया। आहाहा! कठिन काम। अरे! पैर जमीन को स्पर्श नहीं करता, तथापि नीचे कंकड़ी हो तो लगती है, ऐसा दिखता है। आहाहा! वह लगी भी नहीं, कंकड़ी शरीर को छुई ही नहीं। आहाहा! और इस शरीर में कुछ हुआ, उसे ज्ञान ने स्पर्श नहीं किया। आहाहा! अरे! उसमें उस ओर का जरा अरुचि का विकल्प आया, उसे ज्ञान छुआ नहीं। ज्ञान का स्वभाव ऐसा कहाँ है कि पर को स्पर्श करे! ***आहाहा! वह तो भगवान अपने स्वभाव में रहकर, उसका ज्ञान करे, ऐसा कहना वह व्यवहार है। उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान उसे (स्वयं को) वह जानता है। उसे स्पर्श कर जानता है। राग को स्पर्श कर राग को नहीं जानता। आहाहा!*** कहो, चिमनभाई! ऐसा कहाँ तुम्हारे लोहे में था वहाँ? आहाहा! और न्याय से इसके ख्याल में आ सकता है। आहाहा! अरे रे! मेरा क्या होगा? मैं कहाँ जाऊँगा? और मैं क्या हूँ? वह तो ज्ञानस्वरूपी भगवान है। वह कहाँ जाये? आहाहा!

बहिन का शब्द आया है, वह सबको बहुत मीठा लगा है। 'जागता जीव विद्यमान है न!' बहुत कहते हैं, लिखो। इतना सब कहाँ लिखना? ॐ करते हैं मुश्किल से, बस। लिख दो! (ऐसा कहते हैं) ॐ बस है। जागता जीव विद्यमान है न! वह कहाँ जाये? ***वह जाननस्वभावी भगवान ध्रुव है न! वह परिणमे तो जाननेरूप से परिणमे, परन्तु पर है, इसलिए पर को जाननेरूप परिणमता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! वह तो अपना स्वभाव ही स्व-पर जानने का स्वभाव वह आत्मज्ञपना, वह तो स्वपना है। आहाहा!*** परन्तु अज्ञानी को भ्रम हो जाता है कि मैं पर को जानता हूँ तो बाहर चला गया। पर को जानता हूँ, इसलिए मैं बाहर गया, ऐसा हो जाता है। आहाहा! ऐसी बात है। ***पर को जानने का कहना, वह भी उपचार व्यवहार है। आहाहा!*** ऐसी बात है, भाई!

चैतन्यस्वरूपी भगवान! 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रमभारि ज्ञेयशक्ति द्विविधा प्रकाशी स्वरूपा पररूपा भासी।' यह राग और शरीर, वाणी परज्ञेय है। उन्हें ज्ञान में अपने में रहकर उन्हें जानना, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है परन्तु उन्हें स्पर्श करता है अथवा जानता है; इसलिए ज्ञान अशुद्ध हो गया, वह ज्ञान बाहर चला गया... आहाहा! बाहर को जानता है, इसलिए ज्ञान अपने स्थान से, भाव से छूटकर बाहर में गया, ऐसा अज्ञानी को भ्रम हो जाता है। आहाहा! है?

श्रोता : ज्ञान सर्वगत तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वगत नहीं, वह व्यवहार से कहा है। यह तो प्रवचनसार में (कहा) ज्ञान अथ्था—अर्थ ज्ञान में है अर्थात् उनका ज्ञान है, वहाँ उसका अर्थ (यह है)। अर्थ ज्ञान में है, ऐसा कहा उसका अर्थ (यह है कि) अर्थ सम्बन्धी का ज्ञान, ज्ञान में है ऐसा कहना है। अर्थ तो अर्थ में है। आहाहा! वहाँ तो सर्वगत कहा है। पंचाध्यायी में सर्वगत माने उसे निश्चयाभास कहा है। पंचाध्यायी में सर्वगत को (ऐसा कहा है)। अपेक्षित जानना चाहिए न! आहाहा! सर्वगत तो सैंतालीस नय में एक स्वभाव है। किस अपेक्षा से? अपने को और पर को सर्व को जानने का स्वरूप है, इसलिए सर्वगत है परन्तु पर को जानना, इससे उस पर को जानने पर ज्ञान बाहर चला गया है, अपने अस्तित्व में से एक प्रदेश भी भिन्न / दूर हो गया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अपने घर में रहकर जैसे लश्कर निकले उसे देखे, उस लश्कर में वह आँख गयी नहीं और लश्कर आँख में आया नहीं। घर में खड़ा-खड़ा देखे, वह सब निकले उसे (देखे)। जुलूस निकले, रथ निकले, हाथी निकले, आहाहा! वैसे भगवान ज्ञानस्वरूपी अपने में बैठा है। आहाहा! उसमें यह सब जड़ के और राग के प्रकार लश्कर निकलें, उस समय उन्हें उनका

उस सम्बन्धी का स्वभाव उसका ज्ञान होने का उस काल में अपना स्वभाव अपने से है। वह अशुद्ध नहीं है। आहाहा! और पर को जाना, इसलिए ज्ञान बाहर में चला गया है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! यह कहा था न तब? राणपुर (संवत्) १९८४ के चातुर्मास में। (एक) वेदान्ती भावसार था। खत्री.. खत्री.. रूगनाथ। महाराज! आप कहते हो... व्याख्यान में सब आवे, वेदान्ती, परन्तु अन्दर में प्रविष्ठ हुए बिना, यह उसे जानना अन्दर में प्रविष्ट हुए बिना किस प्रकार जाने? ऐसा प्रश्न किया था। खत्री ने (प्रश्न किया था)। भाई! आहाहा! इस अग्नि को ज्ञान जानता है, वह ज्ञान अग्नि में प्रविष्ट है? ज्ञात होती है या नहीं? यह अग्नि है, ऐसा ज्ञात होता है या नहीं? यह १९८४ की बात है। कितने हुए? ५० वर्ष। राणपुर चातुर्मास था न! लोग बहुत सब आते, नाम प्रसिद्ध था न! आवे, अन्यमती भी आवे, मन्दिरमार्गी सुनने आवे। परन्तु अपना पक्ष अन्दर से छोड़ना कठिन पड़े। आहाहा! इस सम्प्रदाय में अभी पक्ष लेकर बैठे, उसमें से उन्हें हटना कठिन पड़े। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **ज्ञेयवस्तु का जानपना कैसे छूटे,...** ऐसा अज्ञानी मानता है। **जिसके छूटने से जीवद्रव्य शुद्ध होवे, ऐसी हुई है बुद्धि जिनकी, ऐसे हैं। उसका समाधान ऐसा है...** यहाँ तक आया है। यहाँ तक कल आया था। परसों, कल तो सज्झाय थी। '**यत् ज्ञानं ज्ञेयं अवैति तत् अयं शुद्धस्वभावोदयः**' आहाहा! **जो ऐसा है कि ज्ञान ज्ञेय को जानता है...** आहाहा! **ऐसा प्रगट है...** ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा, शरीर, वाणी, कुटुम्ब, कबीला, सब परज्ञेय हैं। देव, गुरु, शास्त्र भी परज्ञेय हैं और अन्दर में दया, दान का राग आता है, वह भी परज्ञेय है। आहाहा! यह उन्हें जाने, यह प्रगट है।

सो यह 'शुद्धस्वभावोदयः' यह तो **शुद्ध जीव वस्तु का स्वरूप है।** उदय-प्रगट है, ऐसा कहते हैं। '**शुद्धस्वभावोदयः**' यह तो शुद्ध जीवस्वभाव का प्रगटपना है। स्व-पर प्रकाशक, यह तो शुद्ध जीव का उदय है - प्रगट है। आहाहा! भारी काम कठिन। यह तो पूरे दिन मानो धन्धे में पड़ा और यह किया और यह किया और यह किया... आहाहा! मार डाला जीव को। मरणतुल्य कर डाला है। यह आता है, पहले आ गया है। मरणतुल्य किया है। आहाहा!

चैतन्य जागती ज्योति स्वपर प्रकाशक स्वरूप में विराजमान है। उसे पर के ज्ञेय को जानना, वह तो उसका स्वरूप ही है, कहते हैं। वह तो शुद्ध जीव का स्वभाव, उदय हुआ स्वभाव ही है। पर को जानना, वह कहीं अशुद्धता है और पर को स्पर्श करता है, इसलिए पर को जानता है, ऐसा नहीं है।

श्रोता : पर के सामने देखकर जानता है... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर के सामने देखकर जानता है, ऐसा नहीं है। जानता है अपने में, अपने से।

श्रोता : उपयोग तक कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोग भले पर की ओर है परन्तु वह जानता है अपने को अपने में रहकर।

श्रोता : उपयोग को पर का आश्रय....

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय-फाश्रय कुछ नहीं होता।

श्रोता : उपयोग पर में है अर्थात्....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर में नहीं, पर को जानने में है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, उपयोग भले विकल्प में आया परन्तु फिर भी उस विकल्प को उपयोग जानता है, ऐसा उसका स्वरूप है।

श्रोता : उपयोग स्व में ही जाये, ऐसा नियम नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं।

श्रोता : ज्ञान का उपयोग बाहर में होवे....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में नहीं। वह अन्दर में अपने में है।

श्रोता : अन्दर में है परन्तु मुख बाहर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, मुख भी बाहर नहीं। मुख भी अन्दर है। आहाहा!

श्रोता : तो स्वसन्मुख और परसन्मुख में अन्तर क्या रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वसन्मुख दृष्टि ध्रुव ज्ञायक पर ही पड़ी है। आहाहा!

श्रोता : तब तो उपयोग अन्दर में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर ही है वह, भले रागादि में हो, विषय-कषाय में (हो), तथापि उसके जाननहार में स्वयं है, राग में नहीं। ऐसा कठिन काम है। आहाहा! अरे! जिन्दगी चली जाती है। मरण के तुल्य हो जायेगा। मरण का एक समय आयेगा, वहाँ छूट जाएगा ऐसे। युवा अवस्था होगी तो भी छूट जायेगा। आहा! क्योंकि वह पृथक् तत्त्व है, उसके साथ में एक कहाँ रहा हुआ है ? आहाहा ! एक क्षेत्र में परन्तु शामिल नहीं। अपने और पर के क्षेत्र, आकाश की अपेक्षा से कहे जाते हैं। आहाहा ! शरीर और कर्म... अरे ! यहाँ तो राग का क्षेत्र भी भिन्न गिना है। संवर अधिकार। दया, दान, भक्ति के परिणाम हों... भाई ! वह

विकल्प है, उसका क्षेत्र इतना भिन्न गिना है। उस भिन्न क्षेत्र को, भिन्न भाव को ज्ञान में रहकर, स्व में रहकर जानना स्व-पर प्रकाशक, वह तो शुद्ध जीव का उदयभाव-स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। आया न? '**शुद्धस्वभावोदयः**'

श्रोता : स्वच्छता का उदय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपना प्रगटपना है। अपना स्वभाव है, वह तो स्वभाव ही है, ऐसा कहते हैं। उदय अर्थात् स्वभाव है। '**शुद्धस्वभावोदयः**' वह तो शुद्धस्वभाव का प्रगटपना है। आहाहा! अब ऐसी बातें पकड़ में नहीं आवे, बेचारे क्या करे? आ जाते हैं फिर बाहर में क्रियाकाण्ड में लग जाते हैं। व्रत करो और अपवास करो और आंनवेल करे.. धर्म हो जायेगा। अरे रे! जीव को कहाँ भटका मारा है! भ्रमणा ही भ्रमणा में।

यहाँ तो यह सिद्ध करते हैं कि शुद्ध जीव का स्वभाव तो स्व-पर को जानना, वह अपेक्षा से पर को कहा है। ज्ञान, ज्ञान को जाने और ज्ञान में पर ज्ञात होता है, वह तो ज्ञान है और ज्ञान के अतिरिक्त अपने दूसरे अनन्त गुण को जाने, वह भी पर प्रकाशक है... आहाहा! तथापि वह ज्ञान अनन्त गुण को जाने, तो भी वे गुण ज्ञान में नहीं आ गये। आहाहा! ऐसा है।

श्रोता : तादात्म्यसम्बन्ध होने पर भी स्वरूप पृथक् का पृथक् रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : तादात्म्यसम्बन्ध ज्ञान को आत्मा के साथ है। राग को संयोगी सम्बन्ध नहीं कहा? संयोगीभाव है। उस संयोगीभाव को स्पर्श भी नहीं करता। है?

श्रोता : राग को क्षणिक तादात्म्य कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपेक्षा से। इसकी पर्याय में है न, इस अपेक्षा से। बाकी परमार्थ से तो वह संयोगीभाव है, तो उसके सम्बन्ध है ही नहीं। तादात्म्यसम्बन्ध नहीं है, इसलिए सम्बन्ध नहीं है, ऐसा। त्रिकाली के साथ सम्बन्ध नहीं है, ऐसा। तथापि वह पर्याय में है, उसे जानने पर, ज्ञान राग में स्पर्श कर जानता है, ऐसा नहीं है। वह तो इसकी पर्याय में है, वह तो अशुद्धता बतानी हो इसलिए। परन्तु यहाँ तो इसकी पर्याय में है, इसकी ही पर्याय उस काल में उसे और पर को जाने, ऐसा अपने में रहकर राग को जाने ऐसा स्वभाव है। रागरूप उस समय भी ज्ञान हुआ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह तो '**शुद्धस्वभावोदयः**' शुद्ध जीवस्वभाव उदय अर्थात् स्वरूप ही है, ऐसा कहना है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार अग्नि का दाहक स्वभाव है... देखा! दृष्टान्त दिया। **समस्त दाह्य वस्तु को जलाती है।** अग्नि का दाहक स्वभाव है, वह समस्त वस्तुओं को जलाती है। तथापि... आहाहा! है? **जलाती हुई अग्नि अपने शुद्धस्वरूप है। अग्नि का**

ऐसा ही स्वभाव है... सबको जलाने पर भी अग्नि, अग्निस्वरूप से रहकर जलाया है। वह अग्नि कहीं परस्वरूप लकड़ीरूप होकर जलाया नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : जलाती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जलाती है, ऐसा कहना, वह व्यवहार कहा न! आहा! (अग्नि का) **दाहक स्वभाव है, समस्त दाह्य वस्तु को जलाती है। जलाती हुई अग्नि अपने शुद्धस्वरूप है।** समझाना हो तो किस प्रकार समझाना ? आहाहा! लकड़ी, गोइंठा, कण्डे ये कण्डे ऐसे बने हुए, वह अग्नि उनरूप होती है, परन्तु वह अग्नि अपने स्वरूप से ही हुई है। वह कण्डे के स्वरूप से नहीं हुई। आहाहा! अपना अस्तित्व कितना और कैसा है और कहाँ है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! अपने अस्तित्व में अग्नि भी अपने अस्तित्व में रहकर जलाती है, ऐसा कहना परन्तु वह तो अग्निरूप होकर है। ऐसे पर को जानता है, वह अपने स्वरूप से उस रूप होकर जानता है, पररूप होकर जानता है, ऐसा है नहीं। आहाहा!

अग्नि अपने शुद्धस्वरूप है। देखा ? शुद्धस्वरूप भाषा ली है। **अग्नि का ऐसा ही स्वभाव है; उसी प्रकार जीव...** यह दृष्टान्त का सिद्धान्त। **ज्ञानस्वरूप है...** है ? जैसे अग्नि का दाहकस्वभाव है, वैसे जीव का ज्ञानस्वरूप है। जैसे अग्नि सबको जलाती है, वैसे (ज्ञान) **समस्त ज्ञेय को जानता है।** उसमें जलाती हुई अग्नि अपने शुद्धस्वरूप है, वैसे जानता हुआ अपने शुद्धस्वरूप है। आहाहा! सर्वज्ञ और सर्वदर्शी शक्ति में भी लिया नहीं ? कि ***सर्वज्ञ है, वह आत्मज्ञपना है। सर्व है, ऐसा जानता है, ऐसा नहीं है; वह आत्मज्ञ है, वह सर्वज्ञपना है। आत्मज्ञ का ही सर्वज्ञस्वभाव है, वह स्वयं अपने को जानता है। सर्वज्ञ कहा, तथापि वह आत्मज्ञ है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी शक्ति। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! क्या हो ?***

अनन्त काल जन्म-मरण कर-करके... उन्हें मिटाने का उपाय अलौकिक है। आहाहा! चैतन्यसत्ता अर्थात् कि जिसका अस्तित्व अकेला चैतन्य से है, जिसका अस्तित्व अकेला चैतन्य से है, उसे पकड़कर अनुभव करना... आहाहा! इसका नाम प्रथम धर्म की शुरुआत है। जिसका अस्तित्व, सत्ता अर्थात् ज्ञानरूप से जिसका अस्तित्व है, वह रागरूप या शरीररूप जिसका अस्तित्व नहीं है। इसलिए वह ज्ञान सबको जानता होने पर भी अपने ज्ञानस्वरूप से ही होकर रहा है। पर को जानते हुए परस्वरूप होकर रहा है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

ऐसा वस्तु का स्वभाव है। ज्ञेय के जानपना से जीव का अशुद्धपना मानता है, सो मत मानो,... आहाहा! परसम्बन्धी का ज्ञान होने पर मैं पर को स्पर्श कर गया हूँ अथवा पर मुझमें आ गया है, ऐसा मत मानो। आहाहा! अब ऐसी व्याख्या सूक्ष्म। है ? बहुत कठिन पड़े।

सम्प्रदाय में तो मानो यह व्रत, तप, भक्ति और यह पूजा, भक्ति, पूजा करे, यात्रा-वात्रा में धर्म (माने), वह और दया, और सामायिक और प्रौषध प्रतिक्रमण (में धर्म माने)। सब राग की क्रियाएँ हैं। आहाहा! कहते हैं कि उस समय भी राग हुआ परन्तु जीव का स्वभाव तो जानना ही है। उस राग के काल में भी जीव, राग को और अपने को जानता है, वह तो अपना स्वभाव है। वह तो शुद्ध जीव का स्वरूप ही है। आहाहा! पर का करना, वह तो नहीं होता परन्तु राग का करना, वह तो नहीं होता परन्तु राग को जानना, वह भी राग में जाकर जानता है, ऐसे भी नहीं होता। आहाहा! देवीलालजी! ऐसा मार्ग है। वीतराग परमेश्वर जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ का गणधरों और इन्द्रों के बीच का पुकार यह है। आहाहा! यह मार्ग है, भाई! तूने सुना न हो, इसलिए कहीं दूसरी चीज़ हो जायेगी? आहाहा!

श्रोता : ज्ञान, राग को स्पर्श कर न जाने, परन्तु ज्ञान, निर्मल पर्याय को स्पर्श करके तो जाने न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस पर्याय को अपने को जाने, उसमें क्या है? वह तो स्वज्ञेय है न! अपने को जानता है न! अपनी पर्याय को जानता है और अनन्त पर्याय को जानता है, परन्तु उस अनन्त पर्याय को स्पर्श कर नहीं जानता। बहुत सूक्ष्म, आहाहा! एक ही ज्ञान की पर्याय इतनी ताकतवाली है कि एक पर्याय में छह द्रव्य के गुण-पर्याय ज्ञात हों और अपने त्रिकाली द्रव्य-गुण-पर्याय ज्ञात हों, ऐसी एक समय की पर्याय की ताकत है। वह पर्याय, पर को तो स्पर्श नहीं करती... आहाहा! यहाँ इससे आगे नहीं कहना है... परन्तु वह पर्याय, द्रव्य को भी स्पर्श नहीं करती। यहाँ तो पर की अपेक्षा की बात है। आहाहा! पर्याय, द्रव्यरूप हो जाये तो पर्याय एक क्षण की है और वस्तु त्रिकाल है। आहाहा! त्रिकाल को स्पर्श कर पर्याय काम नहीं करती। आहाहा! क्योंकि दो के बीच भी अभाव है। अतद्भाव है। है प्रवचनसार (में)? अतद्भाव है। आहाहा! जो पर्याय भाव है, वह द्रव्य में अतद्भाव है। द्रव्यभाव है, वह पर्याय में अतद्भाव है। आहाहा!

पर्याय में स्व-पर जानने का स्वभाव स्वतः स्वतः है। उसमें राग को और शरीर को जानना, इससे मेरा ज्ञान भ्रष्ट हो गया या पर में चला गया, ऐसा नहीं है। यह भ्रमणा अज्ञानी अनादि से (कर रहा है)। आहाहा! जीव का ज्ञानस्वभाव वहाँ दया, दान के विकल्प का करना, वह उसका स्वरूप नहीं है। आहाहा! तथा उसे स्पर्श कर जानना, ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। उससे भिन्न रहकर अपने को जानने पर वह ज्ञात हो जाता है, वह तो जीव के स्व-पर ज्ञानस्वभाव का उदय है। आहाहा! समझ में आया? वह तो स्व-पर प्रकाशित करना, वह ज्ञान का अस्तित्व है। वह ज्ञान का अस्तित्व है, वह राग का अस्तित्व नहीं। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : ज्ञान में पर का प्रतिभास होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिभास होता है, यह भाषा व्यवहार है।

श्रोता : ज्ञान के कारण या स्वच्छता के कारण।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। प्रतिभास होता है, यह भाषा व्यवहार है। परन्तु जैसा स्वरूप वहाँ है, वैसा यहाँ ज्ञान का उस काल में स्वयं से जानना हो जाता है, ऐसा उसका स्वरूप है।

श्रोता : तब स्वच्छत्वशक्ति का किस प्रकार ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वही, स्वयं अपने को पूर्ण जाने। दृष्टान्त तो क्या करे ? स्वच्छ में तो यह कहा है, दर्पण का दृष्टान्त देकर (कहा है)। स्वच्छत्वशक्ति में है न ? परन्तु दर्पण में जो कुछ चीज़ ज्ञात होती है, वह कहीं दर्पण की हुई नहीं है। अग्नि है, यहाँ अग्नि, वह दर्पण में ज्ञात होती है। वह दर्पण में ज्ञात होती है, वह अग्नि है ? वह तो दर्पण की स्वच्छता है। अग्नि को ऐसे हाथ लगाओ तो गर्म लगेगा। यहाँ (दर्पण में) जो अग्नि ऐसे-ऐसे दिखती है, वह अग्नि है वहाँ ? दर्पण की अवस्था है। वहाँ हाथ लगाओगे तो गर्म लगेगा, वहाँ ? आहाहा ! ऐसा सूक्ष्म है, सेठ ! यह जानना पड़ेगा इसमें, हों ! नहीं तो यह सब घोदा, चौरासी के अवतार कर-करके मर गया है।

श्रोता : जानने में तो यह ए, बी, सी, डी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने की ए, बी, सी, डी, कक्का है यह तो। बात सत्य है। आहाहा ! ये क्या कहा देखा ?

जानता हुआ अपने स्वरूप है, ऐसा वस्तु का स्वभाव है। ज्ञेय के जानपना से जीव का अशुद्धपना मानता है, सो मत मानो; जीव शुद्ध है। आहाहा ! **और समाधान करते हैं। कारण कि... 'किमपि द्रव्यान्तरं एकद्रव्यगतं न चकास्ति'** आहाहा ! देखो ! **कोई ज्ञेयरूप पुद्गल द्रव्य अथवा धर्म, अधर्म, आकाश, कालद्रव्य शुद्ध जीव वस्तु में एक द्रव्यरूप से परिणमता है, ऐसा नहीं शोभता है।** आहाहा ! ये दूसरे छह द्रव्य शुद्ध जीव वस्तु में एक द्रव्यरूप से आते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा ! **जीव समस्त ज्ञेय को जानता है; ज्ञान, ज्ञानरूप है,...** आहाहा ! ज्ञान, ज्ञानरूप रहकर ज्ञान जानता है, ऐसा कहना है, वह तो ज्ञानरूप है इसका। आहाहा ! सबको जानता है परन्तु वह तो ज्ञान का रूप है, कहते हैं। वह तो जीव का स्वरूप है। आहाहा ! समझ में आया ? आज तो सब सूक्ष्म बहुत आया, हों ! ऐसा सुनना तो कभी मिले।

बापू! आहाहा! लोग मानें, न मानें परन्तु वस्तुस्थिति यह है। आहा! परमसत्य का पुकार प्रभु का तो यह है। आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक है कि राग के अस्तित्व में तेरा ज्ञान गया, इसलिए राग को जानता है, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! अग्नि को जानता है, इसलिए तेरा अस्तित्व अग्नि में जाकर जानता है, (ऐसा नहीं है)। ***तेरे ज्ञान में रहकर, उस अग्नि का ऐसा स्वरूप है, वैसा ज्ञात हो, वह तेरे ज्ञान में रहकर; अपने अस्तित्व में रहकर ज्ञात होता है। आहाहा! पर का अस्तित्व तो यहाँ कभी आता नहीं। परसम्बन्धी का ज्ञान वह वास्तव में परसम्बन्धी का नहीं; वह ज्ञान अपना ही है। आहाहा! समझ में आया ?*** बाद के श्लोक बहुत सूक्ष्म हैं। ऐसी साधारण भाषा है, परन्तु भाव बहुत गहरे हैं। आहाहा!

अब इसमें चर्चा किसके साथ करना ? आया था न ? चन्द्रशेखर। कहे, चर्चा करते हैं। श्वेताम्बर, जीवाप्रताप के भतीजे ने श्वेताम्बर दीक्षा ली है न ? भाई! हम तो चर्चा करते नहीं, बापू! क्या कहें ? तुम सिंह हो तो हम सिंह के बच्चे हैं, कहे। भाई! मैं तो सिंह हूँ, मैंने तो यह कहा नहीं। अन्त में खड़े होते कहे, देखो! इस चश्मे के बिना ज्ञात होता है ? चर्चा हो गयी, बापू! इस चश्मे का अस्तित्व भिन्न है और जाननेवाला का अस्तित्व भिन्न है। वह चश्मे से जानता है, ऐसा नहीं है। वह तो ज्ञान के अस्तित्व से जानता है। जीवाप्रताप है, अभी गुजर गया। करोड़पति श्वेताम्बर, उसके भतीजे ने दीक्षा ली है। लींबड़ी आया था। तुम थे वहाँ, नहीं ? चर्चा करने आया था।

रामविजय ने वहाँ जामनगर भेजा था, बहुतों को। इन लोगों की भूल होती है। व्रत, तप और भक्ति धर्म नहीं है, तो बड़ी गलती खड़ी होती है। भाई! मार्ग तो यह है, बापू! कहा। तुम्हें मिथ्या लगता हो तो ऐसा मानो, बाकी वस्तु तो यह है। बाकी इससे विरुद्ध मानते हैं, वे सब झूठे हैं, इसलिए हमें चर्चा किसके साथ करना ? आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक ले गये... आहाहा! कि जिस काल में जिस प्रकार का... यह तो व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान आया है न ? यह इसका अर्थ यह स्पष्ट करते हैं। उस काल में दया, दान, व्रतादि का जो राग आया, उतने प्रकार का, उस प्रकार का ही यहाँ ज्ञान अपने स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य के कारण (होता है), वह राग आया, उसके कारण नहीं। उस काल में इसका स्वभाव पर्याय में स्व-पर प्रकाशक, इसका और उसका दोनों का जितना स्वरूप है, वैसा जानने की पर्याय प्रगट होती है। आहाहा!

श्रोता : परसम्बन्धी का अपना ज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : परसम्बन्धी का कहना, वह व्यवहार है, वह भी नहीं। वह अपना है।

श्रोता : ज्ञान में और पर का सम्बन्ध कहाँ डालना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सम्बन्ध कहा किसने ? पर है, उतने सम्बन्ध का स्वरूप अपने में जानपने की शक्ति है, इसलिए अपने में जानता है। लोकालोक को जानता है, वह लोकालोक के कारण नहीं। आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय का उतना स्व-पर प्रकाशक सामर्थ्य है, वह स्व-स्वरूप ही है। स्वज्ञेय का उतना स्वरूप है उसका। आहाहा! समझ में आया ? आज सब सूक्ष्म पढ़ा एक घण्टा। यह अधिकार ऐसा है। गाथा ऐसी है। आहाहा!

श्रोता : ऐसे शुद्धस्वरूप का उदय त्रिकाल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समय-समय की पर्याय इतनी है। त्रिकाल तो ध्रुव है, परन्तु यहाँ अपनी स्व-पर (प्रकाशक) पर्याय प्रगट होती है, उतना जितना ज्ञेय का प्रमाण है, उतने ही प्रमाण में ज्ञान की पर्याय स्वयं से स्वयं में प्रगट होती है। पूरी प्रगट है, अभी यह प्रश्न नहीं है। समझ में आया ? आहाहा! जिस समय में जो ज्ञेय सामने है, उतने प्रमाण में ज्ञान की पर्याय स्वयं से स्वयं में स्व-पर प्रकाशकरूप स्व से प्रकाशती है। ऐसा है। एक अक्षर बदले तो बदल जाये, ऐसा है सब यह तो। आहाहा! यह बात थी ही नहीं, इसलिए लोगों को नया लगता है। यह मानो सब नया धर्म निकाला। नया नहीं, बापू! अनादि का तू है ही। स्व-पर प्रकाशक का सामर्थ्य स्व से-अपने से अपने में अनादि का है। आहाहा! यह चेतन.. चेतन.. चेतन.. चेतन.. यह अचेतन को जाने, ऐसा कहना भी व्यवहार है। अचेतन में राग और शरीर सब अचेतन आ गया। आहाहा! और उसके सम्बन्धी का उतना ही ज्ञान, वह ज्ञेय उतना है; इसलिए उतना यहाँ ज्ञान स्व-पर प्रकाशक उसके कारण प्रगट हुआ, ऐसा भी नहीं है। उस समय का उसका स्व-पर प्रकाशक का जितना सामर्थ्य है, उससे वह प्रगट हुआ है, वह स्व है। आहाहा! पकड़ में आये, उतना पकड़ना, बापू! आहाहा! तेरी लीला तो अपार है। आहाहा! यह कोई पण्डिताई की चीज़ नहीं है। आहाहा! यह तो अन्तर के स्वभाव के नाद की चीज़ है। है ? आहाहा!

श्रोता : अलग प्रकार की पढ़ाई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग प्रकार की है। बात सत्य है। आहाहा! इतनी बात कान में पड़ती है, वह भाग्यशाली है न! ऐसी बात, परमात्मा के श्रीमुख से निकली हुई बात है। आहा! समझ में आया ? देखो! धनपालजी! कहीं मुम्बई में भी नहीं था और कहीं (नहीं था)।

आहाहा! प्रभु! तू कौन है? कहाँ है? कितना है? समय-समय में तू कितना है? कि पर जो ज्ञेय है, उतना ही यहाँ ज्ञान हो और स्व का ज्ञान हो, उतना उस समय में उतनी तेरी पर्याय है, तुझसे है। आहाहा!

श्रोता : आज तत्त्व की बहुत छनावट की गुरुदेव!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्लोक ऐसा है। यहाँ तो अधिक तो चुम्बन में से आया। चुम्बन है न? इन्होंने अर्थ कर दिया है अशुद्धपना। परन्तु चुम्बन का अर्थ स्पर्श करना है। जो तीसरी गाथा में कहा न? कि अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को स्पर्श करता है परन्तु पर को स्पर्श नहीं करता। उसका यह सब विस्तार है। आहाहा!

यह तो ज्ञानस्वरूपी भगवान ज्ञान में स्थित हो, उसकी बातें हैं, बापू! आहाहा! जैसी जिसकी सत्ता अर्थात् अस्तित्वरूप है, उसका में वह स्थिर हो। आहाहा! समझ में आया? वह वस्तु है। आहाहा! **जीव वस्तु में एक द्रव्यरूप से परिणमता है, ऐसा नहीं शोभता है।** रागरूप से आत्मा परिणमता है या आत्मा रागरूप होता है या ज्ञेय आत्मारूप होता है, ऐसा नहीं शोभता। आहाहा! **जीव समस्त ज्ञेय को जानता है, ज्ञान ज्ञानरूप है, ज्ञेय वस्तु ज्ञेयरूप है.. आहाहा! कोई द्रव्य अपने द्रव्यत्व को छोड़कर अन्य द्रव्यरूप तो नहीं हुआ ऐसा अनुभव जिसको है, सो कहते हैं...** आहाहा! **'शुद्धद्रव्यनिरूपणार्पितमतेः' समस्त विकल्प से रहित शुद्ध चेतनामात्र जीववस्तु के... निरूपण...** अर्थात् **प्रत्यक्ष अनुभव...** आहाहा! देखा? कथन है, उसका वाच्य है, उसे यहाँ लिया फिर। **निरूपण..** और वाच्य है उसे **निरूपण** शब्द से कहा। आहाहा! वह तो **प्रत्यक्ष अनुभव में स्थापित किया है बुद्धि का सर्वस्व जिसने ऐसे जीव के।** वह होता है। ऐसा अनुभव उसे होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसने भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी में बुद्धि को स्थापित करके ज्ञान का अनुभव किया, उसे यह बात होती है। आहाहा! अज्ञानी को यह बात नहीं होती। चाहे तो साधु हुआ हो, पंच महाव्रत पालता हो परन्तु अज्ञानी है, उसे यह बात नहीं शोभती, उसे नहीं होती। आहाहा!

सत्तामात्र शुद्ध जीववस्तु को प्रत्यक्ष आस्वादता है... देखा? **'समुत्पश्यतः' 'समुत्पश्यतः'** सम्यक् प्रकार से उग्ररूप से **'पश्यतः'** अर्थात् आस्वादता है। **ऐसे जीव को।** आहाहा! ऐसे जीव को यह होता है। वस्तु का स्वरूप है, वैसा उसे प्रगट है कि जो पर को जानने पर, पर से ज्ञान हुआ नहीं और ज्ञान पर में गया नहीं। आहाहा! **जीव समस्त ज्ञेय को जानता है, समस्त ज्ञेय से भिन्न है, ऐसा स्वभाव सम्यग्दृष्टि जीव जानता है।** लो, (विशेष कहेंगे..)

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

८

श्री समयसार, गाथा-६८, प्रवचन १३८
दिनांक १७-११-१९७८

समयसार, ४० श्लोक का भावार्थ है। आज तो गुजराती चलेगी, हिन्दी गये।

भावार्थ - घी से भरे हुए घड़े को व्यवहार से 'घी का घड़ा' कहा जाता है, तथापि निश्चय से घड़ा घी-स्वरूप नहीं है; घी, घीस्वरूप है, घड़ा मिट्टीस्वरूप है;... आहाहा! यह तो दृष्टान्त (कहा)। **इसी प्रकार वर्ण, पर्याप्ति, इन्द्रियों इत्यादि के साथ एक क्षेत्रावगाहरूप सम्बन्धवाले जीव को सूत्र में व्यवहार से 'पंचेन्द्रिय जीव, पर्याप्त जीव, बादर जीव, देव जीव, मनुष्य जीव' इत्यादि कहा गया है, तथापि निश्चय से जीव उस स्वरूप नहीं है;...** यह तो बाह्य की स्थिति की बात की। यह क्या कहा? वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, शरीर, संहनन तो बाह्य की चीज़ है; पर्याप्त, अपर्याप्त भी बाह्य की चीज़ है, वह अन्तर में है नहीं। व्यवहार से कहे गये हैं, इसलिए वस्तु-आत्मा की नहीं। आत्मा उसमय नहीं। **इत्यादि पुद्गलस्वरूप हैं, जीव ज्ञानस्वरूप है।** उसे कहा कि प्रभु! जीव ज्ञानस्वरूप है। जैसे घड़ा मिट्टीस्वरूप है, वैसे यह जीव ज्ञानस्वरूप है-ऐसा कहा।

अब इतना कहा, इसलिए उसे-समझनेवाले को ज्ञान हो गया - ऐसा नहीं है। उसे कहा कि ज्ञानस्वरूप है-ऐसे उसका लक्ष्य कराया। अब उसे अनुभव कब हो? वह तो अन्तरजीवद्रव्य का-ज्ञानमय वस्तु का आश्रय करे तो उसे ज्ञानमय है, ऐसा अनुभव हो। गुरु ने, भगवान ने या आचार्यों ने कहा कि घी का घड़ा नहीं, घड़ा मिट्टीमय है। यह तो ठीक है। इसी प्रकार पर्याप्त, अपर्याप्त आदि, संहनन, संस्थान आदि अजीव है, वे जीव नहीं; जीव तो ज्ञानमय है। आहा! इतना कहा, इसलिए उसे-शिष्य को ज्ञानमय जीव स्वभाव का अनुभव हुआ, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा इसमें से कहाँ निकलता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें यह निकलता है। वह तो बाह्य की बात है न? अभ्यन्तर की अब आयेगी। गुणस्थान, रागादि अभ्यन्तर भी जीवस्वरूप नहीं है। यह तो बाह्य की बात की। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, रंग, राग - इसके पश्चात् आयेगा। यहाँ तो रंग, गंध, रस, स्पर्श, शरीर,

संहनन, संस्थान, पर्याप्त-अपर्याप्त, ये सब जीव नहीं हैं। जीव ज्ञानस्वरूप है —ऐसा इन सन्तों ने-आचार्यों ने कहा, तथापि उसे ज्ञानस्वरूप का ख्याल आया कि यह ज्ञानस्वरूप है इतना, परन्तु इससे उसे आत्मा का-ज्ञानस्वरूप का अनुभव हुआ - ऐसा नहीं है। यह तो उसे व्यवहार से समझाया कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, भाई!

आचार्यों ने भी व्यवहार विकल्प में आकर इसे समझाया और समझनेवाले के ख्याल में आया इतना कि यह ज्ञानस्वरूप है, ऐसा कहते हैं, बस! यह लक्ष्य में आया कि ज्ञानस्वरूप है परन्तु उसे ज्ञानस्वरूप का अनुभव कब हो? आहाहा! वह अन्तर में ज्ञायकस्वभाव का अवलम्बन करे, (तब अनुभव हो)। यहाँ त्रिकाली द्रव्यस्वभाव का वर्णन है न? द्रव्यवस्तु जो द्रव्य है, वह ये बाह्य रंग, गंध आदि तो नहीं। वह ज्ञानस्वरूप है, ऐसा कहा परन्तु वह ज्ञानस्वरूप इसके ख्याल में आया कि ज्ञानस्वरूप है इतना, परन्तु सुननेवाले को आत्मा-ज्ञानस्वरूप का अनुभव नहीं हुआ। आहाहा! कहा, इसलिए उसे ज्ञान हो गया और सुना, इसलिए उसे ज्ञान हो गया... आहाहा! ऐसा नहीं है। आहाहा!

ज्ञायकस्वभाव जो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप द्रव्य, हों! उस द्रव्यस्वरूप की दृष्टि करने से (अनुभव होता है) यह तो सुना और ख्याल में आया कि वह तो ज्ञानमय है। अब शास्त्र दिशा दिखाकर अलग रहे, ऐसे गुरु भी दिशा दिखाकर अलग रहते हैं। ज्ञानमय है, ऐसा जब यह स्वयं अन्दर में जाये... आहाहा! पर्याय में ज्ञानमय है - ऐसा ख्याल में आया, वह तो व्यवहार हुआ, निश्चय नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

निश्चय तो ज्ञायकस्वरूप का अनुभव करे, तब यह ज्ञायकस्वरूप है, ऐसा इसे ख्याल आवे, तब सच्चा निर्णय (कहलाता है)। आहाहा! यह तो वह चला न, गौतमस्वामी का व्यवहार का... कहा हुआ, उस पर से यह अधिक आया। गौतमस्वामी ने व्यवहार का आश्रय लेकर शिष्यों की प्रवृत्ति व्यवहार से कराते हैं, लाभदायक है इसलिए। ऐसा है नहीं। आहाहा! गौतम गणधरों ने जीव को चौदह भेदस्थान द्वारा शिष्य को समझ में आये, इसलिए अनुग्रह करके कहा है परन्तु इससे उसे ख्याल में आया कि यह तो भेद से कहते हैं, परन्तु इस भेद का ज्ञान उसे कब होता है? कि अभेददृष्टि करे, तब इस भेद का ज्ञान अनेकान्त का (ज्ञान) होता है। ऐसी बात है। बहुत फेरफार, बड़ा फेरफार! ऐसा कर डाला, देखो न! व्यवहार से समझाया, इसलिए व्यवहार की प्रवृत्ति लाभदायक है, ऐसा (अज्ञानियों ने) सिद्ध किया।

मुमुक्षु : उसमें से कुछ लाभ होता हो तो समझाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ कुछ नहीं। उसे मात्र ख्याल में आवे, इतनी बात है। यहाँ जाना

है, इतना ख्याल में आवे, चलना है वह तो इसे फिर स्वयं को (चलना है)। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई!

यहाँ तो लिया बाह्य; अब ६८ में अभ्यन्तर की बात लेते हैं। क्या कहा? २९ बोल में कितने ही बाह्य हैं और कितने ही अभ्यन्तर हैं। जो वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, संहनन, संस्थान हैं, वे सब बाह्य हैं; वे तो आत्मा की पर्याय में भी नहीं, इसलिए उन्हें भिन्न कहा। अब इसे जीवद्रव्य वस्तु जो अखण्ड है, वह अभ्यन्तर के राग-द्वेष, गुणस्थान, मार्गणास्थान के भेद से रहित है, अभ्यन्तर के भेद से भी रहित है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! इसलिए अन्तिम गाथा (कहते हैं)।

अब कहते हैं कि (जैसे वर्णादिभाव जीव नहीं हैं, यह सिद्ध हुआ, उसी प्रकार) यह भी सिद्ध हुआ कि रागादिभाव भी जीव नहीं हैं— रागादि, गुणस्थान, मार्गणास्थान इत्यादि जीव नहीं है। सुन,

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिया जे इमे गुणट्ठाणा।
ते कह हवंति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता।।६८।।

मोहनकरम के उदय से, गुणस्थान जो ये वर्णये।
वे क्यों बने आत्मा, निरंतर जो अचेतन जिन कहे?॥६८॥

जैसे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, संहनन को अचेतन कहा, वैसे गुणस्थान, मार्गणास्थान के भेदों को भी अचेतन कहा। आहाहा! ये सब भेद जीव की पर्याय में होते हैं, तथापि जीवद्रव्य त्रिकाल है (वह) इनरूप नहीं, इसलिए इन्हें अचेतन कहा है। आहाहा!

मुमुक्षु : चेतन की पर्याय अचेतन।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ चैतन्य त्रिकाली है, उसका यह स्वरूप नहीं है। आहाहा! जो दृष्टि का विषय द्रव्यस्वभाव कहना है, वह द्रव्य है, वह तो किसी प्रकार इनरूप नहीं हुआ है। आहाहा! गुणस्थान, मार्गणास्थान के भेदरूप जीवद्रव्य नहीं हुआ है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसकी पर्याय हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय को यहाँ व्यवहार में डाल दिया है। वह पर्याय इसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो अलौकिक बातें हैं, बापू! आहाहा! समयसार अर्थात्... आहाहा!

टीका - ये मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थान... पहले लिया था वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, शरीर,

संहनन, संस्थान आदि, वह तो बाह्य चीज़ थी। अब यह तो अभ्यन्तर में ही इसके भेद हैं। समझ में आया? आहाहा! **मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थान पौद्गलिक मोहकर्म की प्रकृति के...** आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका में है, भाई! '**मोहजोगभवा**' यह गाथा जयसेनाचार्य की टीका में है।

मुमुक्षु : गोम्मटसार में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गोम्मटसार में है परन्तु वह तो यहाँ है यह। गोम्मटसार का शब्द है, वह यहाँ रखा है, जयसेनाचार्य ने। गोम्मटसार में है, बात सच्ची। '**मोहजोगभवा**' गुणस्थान है मोह और योग से भेदस्वरूप से हुए हैं, वस्तु में नहीं है। आहाहा!

मिथ्यात्वपना... ओहोहो! वह जीव द्रव्य में नहीं है। ऐसे तेरहवाँ गुणस्थान और चौदहवाँ गुणस्थान वह '**पौद्गलिक मोहकर्म की प्रकृति के उदयपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से,...**' आहाहा! भगवान चैतन्य द्रव्य है, ज्ञायक ध्रुवद्रव्य है, उसमें यह वस्तु-भेद नहीं है। ये सब भेद पड़े हैं मोहकर्म के उदय के निमित्त से भेद पड़े हैं। स्वभाव के प्रगट होने से भेद पड़े हैं - ऐसा नहीं। आहाहा! यहाँ एक ही लिया, उसमें योग लिया।

मोहकर्म की प्रकृति के उदयपूर्वक होते होने से,... प्रकृति का उदय अर्थात् जड़ है वह; उसके निमित्त से यहाँ भेद पड़ा, कहते हैं। मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरति समकित, विरताविरति श्रावक, विरति प्रमत्त, अप्रमत्त इत्यादि भेद से ठेठ सयोगी और अयोगी (गुणस्थानपर्यन्त)। आहाहा! यह मोहकर्म की प्रकृति, मोहकर्म की प्रकृति के **उदयपूर्वक होते होने से, सदा ही अचेतन होने से,...** आहाहा! **कारण जैसा ही कार्य होता है...** कारण पुद्गल प्रकृति है, इसलिए उसका कार्य भी ये सब वैसे हैं-ऐसा कहते हैं। गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवस्थान, राग-द्वेष, पुण्य-पाप, लब्धिस्थान। आहाहा! यह कारण जैसे कार्य होते हैं। कारण मोहकर्म की प्रकृति है, उसके गुणस्थान उसके भेद हैं, वह उसका कार्य है, कहते हैं। आहाहा! भगवान कारणस्वभाव प्रभु का यह कार्य नहीं है। आहाहा! आहाहा! चैतन्यघन, विज्ञानघन ध्रुव का कार्य तो निर्मल कार्य हो, वह (उसका कार्य है)। ये सब भेद हैं, वह तो मलिन अचेतन कार्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... कैसे होता है पर्याय में?

पूज्य गुरुदेवश्री : ***यह चेतन की पर्याय ही अचेतन है। इसमें ज्ञानस्वभाव आया नहीं। सयोगपने में, अयोगपने में कहीं ज्ञानस्वभाव तो आया नहीं। आहाहा! अविरति***

सम्यग्दर्शन, अविरतिभाव में ज्ञानस्वभाव आया नहीं। भगवान चैतन्य ज्योत है, आहाहा! क्या स्वरूप और क्या गाथा!!

कारण जैसा... मोहप्रकृति जो पुद्गल कारण हैं, उसके ये कार्य हैं; इसलिए पुद्गल हैं। आहाहा! कठिन बात है भाई! यहाँ तो त्रिकाली जीवद्रव्य है, उसमें उदयभाव तो नहीं, उपशम, क्षयोपशम भी उसमें नहीं। यहाँ तो अभी उदयभाव के प्रकार के भेद का वर्णन है। समझ में आया? आहाहा! भगवान अन्दर चैतन्य पिण्ड प्रभु ऐसे भिन्न अखण्ड चैतन्यज्योति, जलहल ज्योति, चन्द्र शीतल ध्रुव (विराजता है)। आहाहा! ऐसे भगवान / द्रव्य में ये नहीं हैं; इसलिए द्रव्य चैतन्यस्वरूप है तो ये अचेतनस्वरूप हैं – ऐसा (कहते) हैं। आहाहा!

अब यहाँ तो मुझे तो दूसरा कहना है कि ऐसा इसे गुरु ने कहा (तो) इसके ख्याल में आया कि ये गुरु और शास्त्र ऐसा कहते हैं कि इस प्रकृति के कारण से कार्य होता है, वह सब अचेतन है; ये चैतन्यद्रव्य के नहीं, ऐसा इसे ख्याल में आया, बस इतना! परन्तु ख्याल में आया, यह व्यवहार से आया है। गुरु ने कहा और इसे परलक्ष्य से (ज्ञान) हुआ, वह ख्याल में व्यवहार से आया है। आहाहा! सूक्ष्म बात बहुत, बापू! सूक्ष्म बात कहकर लोग उपहास करते हैं। सूक्ष्म... सूक्ष्म करके यह सब उड़ा देना है। अरे! भगवान! तू प्रभु है, भगवान! तुझे यह न जँचे तो क्या हो? आहाहा!

यहाँ तो भगवान अन्दर है, वह तो गुणस्थान में आता नहीं, ऐसा कहते हैं। भेद में आता नहीं। तू स्वयं प्रभु है न! प्रभु! आहाहा! तेरा द्रव्य, भेद में आता नहीं न प्रभु! ऐसा तुझे क्या लगता है? आहाहा! ओहो! गजब बात! सन्तों ने तो केवलज्ञान को खड़ा कर दिया है!! आहाहा!

दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, कहते हैं कि प्रकृति के कारण हुए हैं, इसलिए प्रकृति का कार्य है; जीव का नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, शास्त्र के पठन का विकल्प, नवतत्त्व की श्रद्धा का विकल्प... आहाहा! यह प्रकृति के कारण उत्पन्न हुआ कार्य पुद्गल का है, कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय की श्रद्धा का भाव, वह पुद्गल का है, कहते हैं। अरे रे! द्रव्य ज्ञायकस्वरूप प्रभु है, उसमें यह कहाँ है? आहाहा! निमित्त के आधीन हुआ भाव निमित्त का है; प्रकृति के आधीन हुआ भाव, प्रकृति का है; पुद्गल के आधीन हुआ भाव, पुद्गल का है; स्वाधीन आत्मा का भाव नहीं है। आहाहा! वीतरागी सन्तों के अतिरिक्त कौन कहे? भाई! आहाहा! जिसे जगत की दरकार नहीं, समाज संगठित रहेगा या नहीं (इसकी दरकार नहीं)। आहाहा! ये दिगम्बर सन्त! 'नागा बादशाह से

आघा।' जिन्हें समाज की कुछ पड़ी नहीं है। समाज को यह समझ में आयेगा या नहीं ? समाज संगठित रहेगा या नहीं ? उपहास तो नहीं करेगा न ? अरे ! सुन, प्रभु सुन, भाई !

इसकी पर्याय में होनेवाले दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव और इसकी पर्याय में होनेवाले गुणस्थान, मार्गणास्थान के भाव... आहाहा ! परन्तु यहाँ कहते हैं ये पर्याय में होते भाव, वे द्रव्य से हुए भाव नहीं हैं। आहाहा ! भगवान ज्ञायक चैतन्यमूर्ति प्रभु, वह प्रभु आत्मा तो वीतरागस्वभाव का बिम्ब है। वह वीतरागस्वभाव के कार्य ऐसे कहाँ होंगे ? आहाहा ! वे तो अचेतन प्रकृति जो पुद्गल, उसके कारण से हुए कार्य हैं, इसलिए वे पुद्गल हैं। आहाहा ! ऐसा स्वरूप है। अभी तो लक्ष्य में ऐसा आना कठिन (पड़ता है)। शास्त्र ऐसा कहते हैं, प्रभु ऐसा कहते हैं, उसे ख्याल में ले। ख्याल में आने पर भी, वह वस्तु का अनुभव नहीं, वह परलक्ष्यी ज्ञान हुआ। आहाहा ! चैतन्यद्रव्यस्वभाव, उस भेद का भी लक्ष्य छोड़कर जो ख्याल में आया, लक्ष्य में आया कि सन्त, आचार्य, मुनि, केवली ऐसा कहते हैं, तथापि उस लक्ष्य का भी लक्ष्य छोड़कर... आहाहा !

आठ वर्ष के राजकुमार बालक... आहाहा ! वे हीरा-माणिक के स्फटिकमणि के मकान हों, आहाहा ! उसमें यह भान हो। अरे ! हम तो आनन्दस्वरूप हैं, हम तो ज्ञायकस्वरूप प्रभु हैं। आहाहा ! आहाहा ! जिसे अन्तर के आनन्द का स्वाद आया, आहाहा ! वह उसका कार्य है। यह भेद उसका कार्य नहीं। आहाहा ! ये वन में बाघ और सिंह के बीच अकेले चले जाते हैं। कोई मुझे जाने या पहचाने, ऐसा कुछ रहा नहीं। आहाहा ! मेरा प्रभु पूर्णानन्द का नाथ है, उसे पर्याय में पूर्णानन्द प्रगट करने के लिये हम जंगल में, बाहर में नहीं परन्तु अन्दर में, जाते हैं। आहाहा ! भाई ! इसकी चमत्कारी दशा, वस्तु कैसी होगी ? आहाहा !

यह भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु ! गुरु इसके ख्याल में कहा (इसलिए) आया। इसलिए वहाँ अटके नहीं यह ! आहाहा ! उसे साधने को अन्तर में जाता है। आहाहा ! यह है तो अभ्यन्तरभाव, परन्तु वह पर्याय का अभ्यन्तरभाव है। संहनन, संस्थान, शरीर वह बाह्य-अत्यन्त बाह्य का भाव है और यह इसकी पर्याय के अभ्यन्तर भाव हैं। आहाहा ! वह भी तू नहीं। वह जीवद्रव्य नहीं, ऐसा जहाँ इसे लक्ष्य में-ख्याल में आया... आहाहा ! वहाँ यह अन्तर में उतर जाता है। अभ्यन्तर के भाव के भेद से छूटकर... आहाहा ! अभ्यन्तर भगवान पूर्णानन्द का नाथ जीवद्रव्य है, वहाँ चला जाता है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं, प्रभु ! मार्ग तो ऐसा है, भाई ! अरे ! जगत सत्य को अभी आरोप देता है कि यह एकान्त हैं, महावीर के मार्ग से विरुद्ध कर दिया है। अरे ! प्रभु ! सुन न भाई ! महावीर और सन्त सब एक ही बात करते हैं। आहाहा ! इसे दया, दान, व्रत, तप, और भक्ति से धर्म मनाना है, (इसलिए यह बात) इसे खटकती है।

यहाँ तो ये (रागादिक) तो नहीं, परन्तु गुणस्थान के, मार्गणास्थान के भेद भी जीव के नहीं हैं, तो उनसे जीव को लाभ नहीं। इस गुणस्थान के भेद का आश्रय-लक्ष्य करे तो आत्मा को लाभ होता है-यह तीन काल में नहीं। जैसे राग से लाभ नहीं होता; संहनन, संस्थान से लाभ नहीं होता; वैसे यहाँ गुणस्थान के भेद करने से भी आत्मा को लाभ नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है। भगवान तीन लोक के नाथ... आहाहा! जिनेश्वरदेव, इन्द्र और गणधरों की उपस्थिति में, चक्रवर्ती छह खण्ड का धनी सुनने बैठा हो... आहाहा! उसे प्रभु ऐसा कहते हैं-भगवन्त! तेरा स्वरूप तो अखण्डानन्द प्रभु अन्दर है न! आहाहा! यह भेद तेरा स्वरूप नहीं; अचेतन है। अर र! आहाहा! यह राग-फाग और स्त्री-पुत्र तो कहीं रह गये! आहाहा! तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान सभा में फरमाते हैं, वह यह बात है।

मुमुक्षु : मोक्षमार्ग से मोक्ष की प्राप्ति नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षमार्ग से मोक्ष की प्राप्ति, यह भी व्यवहार है। मोक्ष की प्राप्ति द्रव्य के आश्रय से होती है। मोक्षमार्ग है, उसका तो व्यय होता है और भाव का उत्पाद होता है, वह त्रिकाली कोई भाव है, उसके आश्रय से होता है या गया उसके आश्रय से होता है? भाई! ऐसी बात है। आहाहा! कल एक बात की थी। ३४ वर्ष की उम्र का चार दिन पीलिया होकर मर गया। वींछिया अपने, भाई! वींछिया, हरिभाई हैं न? वींछिया है, उनका एक भाई 'जसदण' में है, एक मुम्बई में है, यह छोटा ३४ वर्ष का था। कोई रोग नहीं था, चार दिन में पीलिया हुआ। यह पीलिया, पीलिया। उसका हो गया पीलिया, देह उड़ गयी। आहाहा! वह तो परवस्तु है, उसकी बात हुई। आहाहा! वह तो तुझमें नहीं, तू वहाँ नहीं परन्तु यहाँ तो भेद पड़ा वह तुझमें नहीं और भेद में तू नहीं। आहाहा! देवीलालजी!

प्रभु! तू कहाँ है? आहाहा! इन गुणस्थान के और मार्गणास्थान के भेद में तू नहीं है। आहाहा! तेरी मौजूदगी / अस्तित्व तो उनसे भिन्न है। अरे! यह बात! अभी तो यह स्त्री-पुत्र और पैसे में से हटना कठिन लगता है। अर र! उसमें फिर संहनन, संस्थान की पर्याय मेरी नहीं। उसमें से आगे आने पर गुणस्थान और राग भी मुझमें नहीं, उनमें मैं नहीं, वे मुझमें नहीं। आहाहा! वीतराग जिनेश्वर के पंथ में यह मार्ग है। इस प्रकार अन्यत्र कहीं वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं है, भाई!

इसे पूर्णस्वरूप है वह लक्ष्य में लेने के लिये बताते हैं। आहाहा! ऐसा लक्ष्य तो कर कि यह भेद है, उनमें तू नहीं और भेद है, वह अचेतन है। चेतनस्वरूप द्रव्यस्वभाव उनमें आया

नहीं और द्रव्यस्वभाव में वे हैं नहीं। आहाहा! ऐसा सन्त, गुरु, भगवान लक्ष्य कराते हैं, तथापि वह लक्ष्य गया; इसलिए वहाँ उसे अनुभव हो गया (ऐसा नहीं है)। आहाहा! ऐसा मार्ग है। जगत की बाहर की (चीज़) यह पैसा, लक्ष्मी, शरीर, वाणी, संहनन, संस्थान को तो यहाँ उड़ा दिया। तुझे बाहर की चमक दिखायी दे (परन्तु) प्रभु! वह तो सब अचेतन मिट्टी है। यह शरीर, वाणी, पैसा, मकान, संहनन, मजबूत हड्डियाँ और संस्थान - शरीर के आकार, ये सब चमक, प्रभु! यह तो जड़ की दशायें हैं। उनमें तू नहीं, तुझमें वे नहीं। आहाहा!

इसलिए यहाँ तो आगे लेकर ६८ (गाथा में बात करते हैं)। वह तो बाह्य की चमकृत का निषेध किया। आहाहा! अब अभ्यन्तर में जो त्रिकाली अभ्यन्तर है, उस स्वरूप में नहीं परन्तु पर्याय में अभ्यन्तर, अर्थात् यहाँ की अपेक्षा से अभ्यन्तर। बाकी उस पर्याय की अपेक्षा से अभ्यन्तर तो त्रिकाल है। आहाहा! कहते हैं कि यह बाहर की यह सब चमक-संहनन, संस्थान और वर्ण, गंध, रस और रूपवान, काला, हरा, और... आहाहा! मीठा रस और सुगन्धित श्वास आवे और... गंध मारे कितनों की ही श्वास गन्ध मारती है। हो जवान और श्वास गन्ध मारती हो। वे चीज़ें तो कहीं रह गयीं, कहते हैं। वह चीज तो तेरी नहीं और तुझमें नहीं और तू वहाँ नहीं। आहाहा! परन्तु तेरी पर्याय में जो गुणस्थान, मार्गणास्थान, राग, दया, दान, व्रतादि के विकल्प आते हैं, वह बाह्य की अपेक्षा से अभ्यन्तर है और इसकी अपेक्षा से तो त्रिकाली वस्तु वह अभ्यन्तर है, वे बाह्य हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग, इसलिए लोगों को-बेचारों को लगता है, हों! सोनगढ़वाले एकान्त हैं, ऐसा है। चन्द्रशेखर विरोध करता है, बापू! उसकी दृष्टि मिथ्यात्व है, उसमें यह भाग उसे सूझता ही है। आहाहा!

चैतन्य अद्भुतता अद्भुत चमत्कार के रत्नों से भरपूर भगवान है। आहाहा! उस अभेद में-प्रभु में ये भेद नहीं है। आहाहा! और ऐसे गुणस्थान आदि भेद में तू आता नहीं है। आहाहा! **कारण जैसा ही कार्य होता है...** इसकी इतनी व्याख्या चली। पुद्गलकर्म कारण है। आहाहा! पहले पुद्गल से, कर्म से आया हुआ संयोग, संयोग, संहनन, संस्थान, शरीर (आदि) कर्म के निमित्त से आये हुए संयोग हैं। उन संयोगों से भिन्न कहा। अब प्रकृति के निमित्त से होता पर्याय में भेद... वह तो प्रकृति के निमित्त से चीज़ें मिली थी। यह शरीर, वाणी, मन, संहनन, संस्थान... आहा! रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, कर्म के निमित्त से ये प्राप्त चीजें हैं। ये चीज़े तो तेरी नहीं परन्तु अब कर्म के निमित्त से प्राप्त अन्दर का भेद। आहाहा। ये संयोग मिला, ये मिला भेद। आहाहा! इस कारण पर कार्य की व्याख्या चलती है। समझ में आया? आहाहा! उसमें भगवान कारणपरमात्मा है और यह भेद का कार्य आया है, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या वाणी!

कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि! अमृतचन्द्राचार्य! आहाहा! अमृत बहाया है!! आहा! पंचमकाल के जगत का भाग्य!

कहते हैं कि कर्म प्रकृति निमित्त और बाह्यसंयोग-यह शरीर और ये सब प्राप्त हों, वे तो बाह्य चीज़ है। उनसे तो तू भिन्न है परन्तु अब इस प्रकृति से प्राप्त तो अन्दर भेद (वह भी तू नहीं है) ऐसा का ऐसा, ऐसा आया, ऐसा आया, उससे भिन्न। कर्म के कारण यह शरीर मिला, संहनन मिला, संस्थान मिला और यह पर्याप्तपना मिला, पंचेन्द्रियपना मिला, मनुष्यपना मिला, और देवपना मिला और... आहाहा! यह तो इतना तो पहले निकाल दिया। अब प्रकृति से अन्तर में भेद मिला, पहला बाह्य में था। आहाहा! मोहकर्म की प्रकृति जो अभ्यन्तर में है। उस चीज़ की अपेक्षा से अभ्यन्तर (कही) और उससे अभ्यन्तर में यह भेद पड़े वह। ऐसी बातें हैं। तुम्हारा पंकज और अमुक तो कहीं रह गये! आहाहा! वह तो कहीं पर के फलरूप से तो पर में संयोगरूप में रह गया। वह आत्मा में कहाँ आया? आहाहा! परन्तु वह मेरा है, ऐसा जो राग और मिथ्यात्व, वह भी प्रकृति-जड़ का कार्य है, प्रभु! तेरा नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व आया न? पहले से है न? मिथ्यादृष्टि से लेकर। आहाहा!

यह सन्तों के ज्ञान और उनकी गर्जनायें, तीन लोक के नाथ की गर्जना। जैसे दिव्यध्वनि उठती है। आहाहा! बाघ और बिल्ली दोनों साथ बैठे (हों) शान्त... शान्त... चूहा और सर्प, काला नाग साथ खड़ा हो। दिव्यध्वनि का नाद-प्रभु का (नाद) सुनते हैं। आहाहा! बाहर का वातावरण शान्त हो जाता है। यह तो सुना कहते हैं। आहाहा! सुना जो है, यह जो ज्ञान हुआ है, यह लक्ष्य कराया है, भगवान ने कहा कि यह तू नहीं - ऐसा लक्ष्य कराया, परन्तु इससे तुझे कहीं अनुभव हो गया, ऐसा नहीं। आहाहा! यह तो व्यवहार से समझाया, इसलिए इसे आत्मा का लाभ हो गया और आत्मा के लाभ के लिये इससे कहा (ऐसा नहीं)। मात्र वह तो इसे वस्तु ख्याल में आवे, इतना कराया। सन्तों ने व्यवहार में आकर (कहा) क्योंकि यह पंचम काल की बात है न? इसलिए ऐसा लिया कि आचार्य ने कहा उन आचार्यों ने विकल्प में, व्यवहार में आकर कहा। केवली ने कहा, ऐसा नहीं आया। आहाहा! यह तो पंचम काल के सन्तों ने पंचम काल के जीव के लिये पंचम काल में शास्त्र बनाये। आहाहा! वहाँ केवली ने कहा कि तू आत्मा है और फिर आत्मा दर्शन-ज्ञान को प्राप्त हो वह आत्मा है और फिर कहते हैं कि आत्मा तो अभेद है, ऐसा ध्यान कराया। यहाँ भगवान ने कहा, ऐसा यहाँ नहीं कहा। क्या शैली प्रभु की! आहाहा!

मुमुक्षु : आचार्यों ने कहा, वह भगवान ने ही कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं, नहीं, विकल्प है न यहाँ ? वह बताना है। व्यवहार में आया, वह विकल्प है। वह केवली को नहीं। भाई ! आहाहा ! यहाँ तो निश्चय और व्यवहार दो पक्षों में खड़ा है, यह लेना है। केवली को व्यवहार है नहीं। पंचम काल के सन्त कहते हैं, इसलिए अपनी जाति से कहते हैं। उन्हें स्वयं को विकल्प उठा है। आहाहा ! उस शैली की यहाँ बात है। केवली का कहना है, वह अलग बात, परन्तु अभी कहनेवाला जो है, वह विकल्प के व्यवहार के चक्र आया है, खड़ा है। यह बात करते हैं। आहाहा ! केवली ने कहा हुआ (कहते हैं) परन्तु फिर भी स्वयं ने ऐसा कहा न, कि मैं मेरे निज वैभव से कहूँगा ! आहाहा ! वह भी विकल्प में आये हैं, इसलिए कहूँगा। आहाहा ! निर्विकल्प में हो तो उसे कहना है, यह बात आती नहीं। आहाहा ! क्या कहा यह ?

यहाँ वर्तमान साधु-सन्त हैं, वे कहते हैं, यह यहाँ लेना है। केवली ने कहा हुआ कहा, परन्तु कहनेवाले वर्तमान कौन हैं ? आहाहा ! यह भी स्वयं स्पष्ट कर दिया है। यह कहनेवाला तो मैं वर्तमान विकल्प में-व्यवहार में आया हूँ, इसलिए कहता हूँ परन्तु यह व्यवहार आया है; इसलिए मुझे लाभदायक है और व्यवहार से दूसरे को कहूँगा; इसलिए उसे आत्मा के लाभ के लिये है, ऐसा नहीं है। उसके ख्याल में आने के लिये इतना है। आहाहा ! वह तो परलक्ष्यी है, इसलिए यहाँ तो यह बात है न ! लक्ष्य कराकर वे तो अलग रह जाते हैं। अब तू अन्दर में जा ! ऐसे जो अभ्यन्तर भेद हैं, वे भी अचेतन हैं, प्रभु ! आहाहा !

कारण जैसा ही कार्य... इसके ऊपर से यह सब बात चलती है। ऐसे मुनियों ने कहा। केवली ने कहा, वह अभी यहाँ नहीं। वे विकल्प में आये हैं, उन्होंने कहा। आहाहा ! इसलिए वह विकल्प उन्हें लाभदायक है और उसे—दूसरे को लाभदायक है; इसलिए व्यवहार कहते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा ! मात्र उसे ख्याल में आवे, इसलिए यह बात कहते हैं। आहाहा !

ये मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थान पौद्गलिक मोहकर्म की प्रकृति के उदयपूर्वक होते होने से,... देखा ? यह प्रकृति सत्तारूप है, वहाँ तक का यहाँ कार्यभेद नहीं आता, कहते हैं। आहाहा ! उदयपूर्वक। आहाहा ! समझ में आया इसमें ? उदय हुआ, इसलिए यहाँ भेद पड़ा। उसमें जुड़ा है न ! आहाहा ! **उदयपूर्वक होते होने से,...** ये चौदह गुणस्थान उदयपूर्वक होते होने से। आहाहा ! **सदा ही अचेतन होने से,...** क्योंकि प्रकृति स्वयं उदय अचेतन है। **कारण जैसा ही कार्य होता है...** आहाहा ! क्या अमृतचन्द्राचार्य की टीका ! क्या भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक ! ओहोहो ! उनकी क्षयोपशम की दशा !! आहाहा !

ऐसा समझकर (समझकर, निश्चय कर)... क्या करके ? कारण जैसे ही कार्य हैं।

पुद्गल कारण है, इसलिए गुणस्थान भेद उसके कार्य हैं, इसलिए वे अचेतन हैं। किसकी तरह ? **जौ पूर्वक होनेवाले जो जौ,...** जौ बोअे और जौ होते हैं। गेहूँ बोअे तो जौं होंगे ? आहाहा! जौपूर्वक ही जौ होते हैं। आहाहा! एकाक्षरी शब्द लिया है। गेहूँ है, वह एकाक्षरी नहीं न ? बाजरा, गेहूँ, दाल, चावल, एकाक्षरी नहीं। जऊ एकाक्षरी है जऊ (जौ) आहाहा! जौपूर्वक, यह तो उसका कारण बतावे, परन्तु वस्तु **जौ पूर्वक होनेवाले जो जौ, वे जौ ही होते हैं...** जौ पूर्वक होता है, उसका फल जौ होता है। जौ पूर्वक उसका फल गेहूँ और बाजरा होता है ? आहाहा!

जौ पूर्वक... पूर्वक **होनेवाले जो जौ, वे जौ ही होते हैं, इसी न्याय से, वे पुद्गल ही हैं...** पुद्गलपूर्वक होते होने से पुद्गल है। आहाहा! चौदह गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवस्थान, अरे! राग, दया, दान, व्रत का राग। प्रभु! यह तो क्या कहते हैं ? भाई! आहाहा! अब इस राग से धर्म मनवाना! प्रभु... प्रभु! क्या करता है ? भाई! आहाहा! भगवन्त! तुझे यह शोभा नहीं देता। आहाहा! जो राग पुद्गल प्रकृति के कारण हुआ है, इसलिए दया, दान के राग को भी पुद्गल कहा है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! यह तुम्हारे धूल के पैसे को, जवाहरात को तो पुद्गल कहा। आहाहा! परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि गुणस्थान के भेद पर्याय में पड़ें (वह भी पुद्गल है)। प्रभु तो अभेद चैतन्य द्रव्य है न ? उस द्रव्य में ये कहाँ हैं ? आहाहा! द्रव्य त्रिकाली तो चाहे जिस गुणस्थान में और चाहे जिस गति में हो, द्रव्य तो पूर्णानन्द का नाथ वहाँ पूरा विराजमान है। उसमें घिसावट... आ गयी है न ? नहीं ? दो बोल नहीं आये थे ? हीन, हीन, हीनपना और घिसावट नहीं होती। नहीं आया था ? उसमें आया था, देखो! हानि और घिसावट नहीं होती। यह ६३-६४ में आया, ६३-६४। आहाहा! जो वस्तु है... आहाहा! चाहे जो मिथ्यात्वादि में हो, नरक-निगोद में हो परन्तु वस्तु तो वस्तु है। उसमें हीनता और घिसावट कुछ नहीं है, वह तो अखण्डानन्द प्रभु है। आहाहा!

पुद्गल ही हैं-जीव नहीं... पुद्गल ही है। आहाहा। प्रकृति पुद्गल है तो उसके कार्यरूप से जो भेद है, वह पुद्गल ही है, कहते हैं। आहाहा! अरे! लब्धिस्थान भी, कहते हैं पुद्गल के निमित्त से यहाँ भेद हो गया न ? यहाँ थोड़ा घटता हुआ ऐसा... आहाहा! यह भेद पुद्गल में डाल देते हैं। गुणस्थान का भेद, वह तो ठीक परन्तु संयम की पर्याय में भेद की प्राप्ति। शरीर जड़, गुणस्थान जड़, राग जड़ परन्तु यह लब्धि का भेद पड़ा है न इतना ? वह जड़। ऐसी बातें बहुत कठिन, बापू! आहाहा!

और गुणस्थानों का सदा ही अचेतनत्व तो आगम से सिद्ध होता है,... लो! **मोहजोगभवा**

...आहाहा! आगम से सिद्ध होता है। भगवान ने आगम में ऐसा कहा है। **और गुणस्थानों का सदा ही अचेतनत्व तो आगम से सिद्ध होता है, तथा चैतन्यस्वभाव से व्याप्त जो आत्मा...** क्या कहा अब? भेद है, वे व्याप्त हैं, वे पुद्गल का व्याप्य है। आहाहा! पुद्गल व्यापक है और भेद उनका व्याप्य है। आहाहा! एक ओर ऐसा कहते हैं कि आत्मा व्यापक है और विकारी पर्याय उसका व्याप्य है, अज्ञानदशा में। आहाहा! दूसरी बार कर्ता-कर्म में ऐसा कहते हैं कि कर्म व्यापक है और विकारी पर्याय उसका व्याप्य है। यहाँ यह कहते हैं। आहा! यह पुद्गलकर्म जो व्यापक है, उसका यह भेद, रागादि व्याप्य है।

और गुणस्थानों का सदा ही अचेतनत्व तो आगम से सिद्ध होता है, तथा चैतन्यस्वभाव से व्याप्त जो आत्मा... भगवान तो चैतन्यस्वभाव से व्याप्त है। आहाहा! ऐसे भेद स्वभाव से व्याप्त नहीं। आहाहा! उस भेद का व्याप्यपना, आत्मा व्यापक और भेद व्याप्य-ऐसा नहीं है, कहते हैं। आहाहा! वह तो पुद्गल का व्यापकपना और पुद्गल की पर्याय यह भेद आदि व्याप्य है। रागादि इनका व्याप्य है। आहाहा! भाषा तो सादी है परन्तु भाई! भाव जो है वह है। यह तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर... आहाहा!

एक वार्ता करनेवाला वारोठ हो तो भी गम्भीर वार्ता करे। वारोठ आता है न सबके? पैसा ले। एक बार राणपुर में देखा था। उपाश्रय के साथ है न? वह खत्री आता है न? उसका वारोठ था, परन्तु बड़ा नागर जैसा। सफेद वस्त्र और गृहस्थ व्यक्ति परन्तु खत्री के वारोठरूप से (कहलाता है)। वह उसका क्या कहलाता है वह? लोग साधारण बैठे हों और वह बड़ा राजा जैसा दिखे। उपाश्रय के साथ में। पोपटभाई खत्री नहीं आता? अब तो यहाँ आ गया है न! उसके दो वारोठ है, पटिये पर बैठकर बात करते। आहाहा!

यहाँ भगवान कहते हैं, अभी तो मुनि कहते हैं न? **चैतन्यस्वभाव से व्याप्त जो आत्मा...** आहाहा! इस भेद से व्याप्त आत्मा, आत्मा व्यापक और गुणस्थान के भेद व्याप्य - ऐसा नहीं है। वह पुद्गल व्यापक है और उसका यह व्याप्य है। आहाहा! १०८, १०९, ११० में तो वहाँ लिया है, नहीं? १०८, १०९, ११०, १११, ११२। पुद्गलकर्म व्यापक है और नये कर्म उनका व्याप्य है। आता है? १०८, १०९, ११०, १११। आहाहा! क्या इनकी शैली! आहाहा! अन्दर चैतन्य भगवान चिन्तामणि रत्न पूर्णानन्द के नाथ को प्रसिद्ध करने के लिये (ऐसी शैली की है)। आहाहा! आत्मख्याति है न? आहाहा!

कहते हैं कि जो कर्म है, वह पूर्व का कर्म व्यापक होकर नये कर्म-रजकण नयी जाति है, दूसरी जाति है, तथापि उसकी जाति के हैं, इसलिये उसे कहते हैं कि व्यापक कर्म और

नये कर्म आवें, वे उसका व्याप्य हैं। ठीक! पुराने कर्म हैं, वे व्यापक; नये कर्म उनका व्याप्य। अब पर के साथ व्याप्य-व्यापक तो (कहाँ होगा)? यहाँ तो कहते हैं कि कर्म व्यापक और भेद उसका व्याप्य। भगवान आत्मा व्यापक और चैतन्य उसका व्याप्य परन्तु यह (भेद) व्याप्य इसका नहीं। आहाहा!

चैतन्यस्वभाव से व्याप्त जो आत्मा... देखा? आहाहा! क्रियाकाण्डियों का रस उड़ जाये, इसमें मुश्किल पड़े, बेचारे को दुःख हो। उसे-बेचारे को कठिन पड़े, इसलिये ऐसा कहे। उसकी दृष्टि में विपरीतता है, उसमें ऐसी बात जँचे नहीं। आहाहा!

चैतन्यस्वभाव से व्याप्त... ये भेद व्याप्य, व्यापक कर्म का है, **उससे भिन्नपने से वे गुणस्थान...** आहाहा! **भेदज्ञानियों के द्वारा...** क्योंकि भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद में जाता है। आहाहा! **भेदज्ञानियों के द्वारा स्वयं उपलभ्यमान हैं, इसलिए भी उनका सदा ही अचेतनत्व सिद्ध होता है।** गुणस्थान आदि भेदज्ञान के अनुभव में नहीं आते, इसलिए उनका अचेतनपना सिद्ध होता है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

९

श्री समयसार कलश टीका, श्लोक ६०, प्रवचन ७६
दिनांक २४-०८-१९७७

कलश टीका, 'कर्ता-कर्म अधिकार' ६० वाँ कलश चलता है। पहले दृष्टान्त दिया। पहले तो सिद्धान्त सिद्ध किया था कि रागादि जो विकल्प हैं, उनसे भगवान आत्मा को भिन्न करना। पहला बोल तो यह लिया। दो तो दृष्टान्त हैं। जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, आत्म-अनुभूति प्रगट करनी हो तो किस प्रकार से होती है? राग विकल्प है, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग हो; उस राग से ज्ञायकस्वभाव का भिन्न विचार करना। यह आया था न? **वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारने पर...** आया था न? आहाहा!

वस्तु जो भगवान आत्मा, वह त्रिकाली शुद्ध है। उसका विचार अर्थात् ज्ञान करने से जो अनादि से पर्याय और राग-द्वेष में ज्ञान झुक गया है, वह मिथ्यादृष्टिपना है। आहाहा! उसे छोड़कर शुद्धस्वरूप का विचार करने पर... शुद्धस्वरूप का ज्ञान करने पर... उसमें सिद्धान्त तो पहले लिया था। उसके दो दृष्टान्त हैं। समझ में आया? दृष्टि वहाँ तक बदलना कि चाहे तो स्त्री-कुटुम्ब हो या चाहे तो देव-शास्त्र-गुरु हो, उस ओर से भी लक्ष्य छोड़ना है और शुभराग जो भक्ति आदि देव-शास्त्र-गुरु के प्रति होता है, उस राग का भी लक्ष्य छोड़ना है। आहाहा!

यहाँ तो **शुद्धस्वरूप विचारने पर...** ऐसा आया न? इसका अर्थ सूक्ष्म है। कल थोड़ी साधारण बात की थी। शुद्धस्वरूप जो निज द्रव्य है, शुद्ध अखण्डानन्द है, वह त्रिकाली द्रव्य है, वह चेतन वस्तु है। उसमें भेद करना कि यह आत्मा गुणी है और उसमें यह गुण है, ऐसा भेद करना, वह परद्रव्य है। समझ में आया? परद्रव्य से भी लक्ष्य हटाना है। **शुद्धस्वरूप विचारने पर...** आया न? आहाहा! ***अपना द्रव्य जो वस्तु है, शुद्ध ध्रुव चैतन्य है, उसमें एक द्रव्य में ऐसा विकल्प उठाना कि मैं यह द्रव्य हूँ और गुण से मैं भेदरूप हूँ-यह विकल्प भी परद्रव्य है।*** आहाहा! यह तो चतुर्थ बोल याद आ गया है।

असंख्यप्रदेशी एकरूप क्षेत्र है, असंख्य प्रदेशी एकरूप क्षेत्र है, वह स्वक्षेत्र है और उसमें भेद-विकल्प विचारना कि यह प्रदेश यह है और यह प्रदेश यह है, वह परक्षेत्र है। उस

परक्षेत्र से भी दृष्टि हटाना। त्रिकाली चीज़ है, वह स्वकाल है। त्रिकाली चीज़ शुद्धस्वरूप कहा न? ***अकेला त्रिकाली शुद्धस्वरूप, वह स्वकाल है और उसमें अवस्था / पर्याय होती है, वह परकाल है। चाहे तो निर्मल पर्याय हो तो भी वह परकाल है। आहाहा!*** त्रिकाली एक समय में चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द शुद्ध चैतन्य है; उसका विचार करने में, ज्ञान करने में वर्तमान एक समय की पर्याय भी परकाल में जाती है। परद्रव्य की पर्याय परकाल में जाती है। वह तो परकाल है, परन्तु अपना त्रिकाली शुद्ध चैतन्यस्वरूप विचारने पर एक समय की पर्याय भी परकाल में जाती है। और त्रिकाली ज्ञायकभाव, स्वकाल में आता है। यह २५२ (वें) श्लोक में आता है। कलश टीका २५२ (कलश) है न?

यह तो **शुद्धस्वरूप विचारने पर...** आया, उसके ऊपर से विचार आया। आहाहा! यह आया न? २५२ है? बीच में है। **उनका लक्षण** - उनका लक्षण। है? स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल और स्वभाव। परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल और परभाव। उनका लक्षण क्या? आहाहा! **उनका लक्षण-स्वद्रव्य...** है? भाई! भाई को मिला? वेणीप्रसादजी! यह बहियाँ तो तुम्हारी अपेक्षा दूसरे प्रकार की है। आहाहा! **स्वद्रव्य अर्थात् निर्विकल्प मात्र वस्तु,...** आहाहा! अभेद शुद्धस्वरूप निर्विकल्प वस्तु, वह स्वद्रव्य। आहाहा! समझ में आया? **स्वक्षेत्र अर्थात् आधारमात्र वस्तु का प्रदेश,...** असंख्य प्रदेश में भेद भी नहीं। एकरूप स्वक्षेत्र त्रिकाल। **स्वकाल अर्थात् वस्तुमात्र की मूल अवस्था, स्वभाव-वस्तु की मूल की सहज शक्ति।**

अब कहते हैं **परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद-कल्पना,...** ***आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र तो परद्रव्य है उनकी भक्ति का भाव भी परद्रव्य है परन्तु एक द्रव्य में निर्विकल्प (वस्तु में) भेदकल्पना (करना), वह भी परद्रव्य है)*** **परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेद-कल्पना,...** है? अपने द्रव्यस्वरूप में भेदकल्पना का विचार करना, वह परद्रव्य है। आहाहा! सूक्ष्म है। राजमलजी की टीका बहुत सूक्ष्म लिया है। आहा!

सम्यग्दर्शन-अनुभूति किस प्रकार होती है? कि अपना स्वद्रव्य निर्विकल्प चीज़ शुद्धस्वरूप है। यहाँ कहा न? शुद्धस्वरूप को विचारने पर। तो शुद्धस्वरूप तो त्रिकाली द्रव्यस्वभाव है, वह शुद्धस्वरूप है। उसमें भेद करना कि यह त्रिकाली है और गुण का भेद करके विकल्प करना, वह भी परद्रव्य है। आहाहा! है?

परद्रव्य, सविकल्प भेदकल्पना, वह परद्रव्य है। आहाहा! देव-शास्त्र-गुरु, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार आदि तो परद्रव्य है ही। भक्ति का रागभाव है, वह भी परद्रव्य है ही परन्तु यहाँ अन्दर एकरूप चीज़ में, द्रव्यस्वभाव में भेद विचारना... समझ में आया? कि यह ज्ञायक

एकरूप है, उसमें यह द्रव्य है और यह गुण है, ऐसा भेदविकल्प करना, उसका नाम परद्रव्य है। समझ में आया ? आहाहा ! अन्दर है या नहीं ? भाई ! यहाँ तो अपने शुद्धस्वरूप को विचारने पर, आया न ? उसमें ऐसा सूक्ष्म भरा है। आहाहा !

परक्षेत्र (क्या) ? परद्रव्य का क्षेत्र तो भिन्न है ही परन्तु यहाँ परक्षेत्र किसे कहते हैं ? **वस्तु का आधारभूत प्रदेश निर्विकल्प वस्तुमात्ररूप से कहा था, वही प्रदेश सविकल्प भेद कल्पना...** यह असंख्य प्रदेश हैं, ऐसा विकल्प उठाना, वह भी परक्षेत्र है। आहाहा ! समझ में आया ? अकेले अपने स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अस्ति और परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की नास्ति। यह तो एक स्थूल बात हुई।

अब यहाँ अपना द्रव्य जो अखण्ड अभेद शुद्धस्वरूप है, वह स्वद्रव्य है और उसमें यह आत्मा और यह गुण और यह पर्याय – ऐसा भेद उठाना, वह परद्रव्य है। असंख्य प्रदेशी स्वक्षेत्र एकरूप, निर्विकल्प असंख्य प्रदेशी एकरूप निर्विकल्प, वह स्वक्षेत्र है और उसमें ऐसा विचार करना कि यह असंख्य प्रदेश हैं, उसमें यह प्रदेश है और यह प्रदेश है, उसी-उसी (प्रदेश का विचार), हों ! वैसा भेद उठाना, वह परक्षेत्र है। नन्दकिशोरजी ! वहाँ कभी सुना नहीं। वकील स्वीकार तो करता है। आहाहा !

यहाँ तो अभी परदेव-शास्त्र-गुरु की भक्ति से सम्यक्त्व मिल जायेगा (ऐसा मानते हों)। आहाहा ! यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा एकरूप द्रव्य है, उसमें भेद कल्पना करना, उससे भी समकित प्राप्त नहीं होता।

श्रोता : समकित प्राप्त नहीं होता तो क्या प्राप्त होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प उठता है और लाभ माने तो मिथ्यात्वभाव होता है। आहाहा ! ऐसा प्रभु का मार्ग है। ग्यारहवीं गाथा में भूतार्थ आया न ? भूतार्थ आश्रित सम्यग्दृष्टि। भूतार्थ यह। त्रिकाल एकरूप शुद्धस्वरूप, जिसमें द्रव्य का भेद नहीं, क्षेत्र का भेद नहीं। आया देखो !

बुद्धिगोचररूप से कहा जाता है। अब परकाल (क्या) ? द्रव्य की मूल की निर्विकल्प अवस्था वह स्वकाल है। क्या कहते हैं ? अवस्था शब्द से यहाँ पर्याय नहीं लेना। द्रव्य की मूल की अभेद अवस्थ। त्रिकालरूप जो काल है, उसका नाम स्वकाल कहने में आया है। समझ में आया ? बाह्य में तो एक समय की पर्याय को स्वकाल कहते हैं और पर की पर्याय को परकाल कहते हैं। यहाँ तो अब अन्दर में भेद करते हैं कि त्रिकाली चीज़ है, वह स्वकाल है।

अवस्था शब्द से पर्याय नहीं लेना। अवस्थ, ऐसा लेना। द्रव्य की मूलरूप निर्विकल्प त्रिकाली अवस्थ। **वही अवस्थान्तर भेदरूप...** पर्याय में लक्ष्य करना। अवस्थान्तर (अर्थात्) त्रिकाली द्रव्य से लक्ष्य छोड़कर अवस्था का लक्ष्य करना, वह परकाल है। समझ में आया? समझ में आये ऐसा है। भाषा तो सादी है बापू! भाषा कहीं ऐसी (कठिन) नहीं है। आहाहा!

भगवान! तू अन्दर कैसा है, उसकी बात चलती है और सम्यग्दर्शन का विषय क्या है, वह कहते हैं। समझ में आया? अनुभूति / सम्यग्दर्शन का विषय क्या है? कहते हैं कि एकरूप द्रव्य है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। यह द्रव्य है और यह भेद है, ऐसा विकल्प करना, वह परद्रव्य है। वह व्यवहारनय का विषय अभूतार्थ है। आहाहा! और भगवान असंख्यप्रदेशी क्षेत्र, एकरूप निर्विकल्प क्षेत्र है, उसे स्वक्षेत्र कहते हैं। उस स्वक्षेत्र में भेद से विचार करना कि यह प्रदेश है और यह प्रदेश है, ऐसा भेद करना, वह परक्षेत्र है। परक्षेत्र भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं।

तीसरी बात। त्रिकाली ज्ञायकभाव एक समय में ध्रुव है, वह स्वकाल है और वह अवस्थ वस्तु, उसमें अवस्थान्तर-पर्याय के अवस्थान्तर पर लक्ष्य जाना, वह परकाल है। आहाहा! डालचन्दजी! ऐसी बातें हैं। है? फिर चार में से निकालकर एकरूप लेना है। समझ में आया? **अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना...** इस समय की पर्याय है, ऐसी कल्पना उठाना, वह परकाल है। स्वकाल तो त्रिकाली वस्तु को यहाँ स्वकाल कहने में आता है। आहाहा!

परभाव अर्थात् द्रव्य की सहज शक्ति के... वस्तु की सहज शक्ति,.. दोपहर को चलता है न? उस सहज शक्ति का पिण्ड है, वह स्वभाव है। सहज अनन्त शक्ति का पिण्ड, वह स्वभाव है और **पर्यायरूप अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना,...** आहाहा! उन अनन्त शक्तियों में से एक शक्ति का भेदरूप विचार करना, वह परभाव है।

परभाव के कितने भेद? परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, परभाव! दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, परभाव! यहाँ तो अनन्त शक्ति के पिण्डरूप वस्तु है, उसमें एक शक्ति को भिन्न करके विचार करना, वह परभाव है! आहाहा! ऐसा उत्तराधिकार भगवान छोड़ गये हैं, देखो न! आहाहा! परभाव। द्रव्य की सहज शक्ति जो त्रिकाली एकरूप शक्ति है, उसमें भेदरूप अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना। 'यह ज्ञानशक्ति है और यह दर्शनशक्ति है' ऐसी भेदकल्पना करने का नाम परभाव है।

अब (कहते हैं) जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चार हैं, उनमें द्रव्य जो है वह द्रव्य है, क्षेत्र

भी वह, काल भी वह और भाव भी वह है। समझ में आया? जो अखण्ड द्रव्य है, वही अखण्ड स्वक्षेत्र है, वही अखण्ड त्रिकाल है और वही अखण्ड शक्ति का पिण्ड स्वभाव है। इन चार का भेद पहले समझाया। समझ में आया? परन्तु पीछे चार भी एक ही वस्तु है। स्वद्रव्य कहो, स्वक्षेत्र कहो, स्वकाल कहो, स्वभाव कहो। वह एकरूप चीज़ है। आहाहा! उसकी दृष्टि करना और उसका विचार करने पर, आया था न? शुद्धस्वरूप को विचारने पर। उसका ध्यान करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! कहो, वेणीप्रसादजी! कभी सुना नहीं। मजदूरी (की है)। सब संसार की मजदूरी है न। आहाहा! आया?

पर्यायरूप अनेक अंश... एक-एक शक्ति का भेदरूप विचार करना, वह परभाव है। उसे परभाव कहा जाता है। आहाहा! **'पशुः नश्यति' एकान्तवादी मिथ्यादृष्टि जीव जीवस्वरूप को नहीं साध सकता...** वह भेद को ही अपना मानता है, वह एकान्ती मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? यहाँ तो उसे पशु कहा। पशु क्यों कहा? **'वध्यते इति पशु'** संस्कृत में ऐसा आता है। भाई! पण्डितजी! वह आता है न? संस्कृत में आता है। पशु क्यों कहा? पशु अर्थात् **'वध्यते इति पशु'** वह मिथ्यात्व से बँधता है, इसलिए उसे पशु कहा जाता है क्योंकि पशु का -मिथ्यात्व का फल तो निगोद है। आहाहा! मिथ्यात्व का फल तो निगोद है। निगोद है, वह पशु है, तिर्यंच है। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, वह तिर्यंच का भेद है न?

कहते हैं कि उस भेद का विचार करने पर वहाँ ही मानकर रुक गया तो वह एकान्ती मिथ्यादृष्टि पशु है। चार का भेद भी छोड़कर—परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव का भी लक्ष्य छोड़कर... स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, वह एक ही वस्तु है। उसे द्रव्य से कहो तो स्वद्रव्य है, क्षेत्र से कहो तो असंख्यप्रदेशी स्वक्षेत्र, काल से कहो तो त्रिकाली, भाव से कहो तो अनन्त शक्ति का एकरूप। ज्ञानचन्दजी! आहाहा!

यहाँ अपने यह चलता है। यह दृष्टान्त आया है, उससे पहले सिद्धान्त कहा, उसका यह दृष्टान्त है। सिद्धान्त यह कहा **वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारने पर भिन्नपनेरूप स्वाद आता है।** आहाहा! समझ में आया? थोड़ा कठिन पड़े परन्तु प्रभु! मार्ग ऐसा है। आहाहा! उसके ज्ञान में, परलक्ष्यी ज्ञान में भी ऐसे सत्य का निर्धार न हो तो उसे स्वलक्ष्यी ज्ञान नहीं होता। समझ में आया? यशपालजी! ऐसी बात है।

तीन लोक का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु एकरूप अभेद विराजता है। द्रव्य कहो तो वह; क्षेत्र कहो तो वह; काल कहो तो वह; भाव कहो तो वह है। आहाहा! उसका आश्रय करना,

उसका विचार करने पर–उसका ज्ञान करने पर आत्मा का स्वाद आता है। उसका शब्दार्थ यह है। समझ में आया? तब अनुभूति होती है। आहाहा! यहाँ तो लोग अभी बाहर से कोई गुरु की कृपा हो जाये, गुरु से मिल जाये और शास्त्र से मिल जाये, (इसमें पड़े हैं) ऐई! बलुभाई! इसने वर्षीतप किया था... वर्षीतप किया था। वर्षीतप समझते हो? एक दिन भोजन करना और एक दिन उपवास करे, उसे वर्षीतप कहा जाता है। श्वेताम्बर में चलता है। ऋषभदेव भगवान को बारह महीने आहार नहीं मिलता था न? उसका वे लोग अनुकरण करते हैं। बारह महीने–वर्षीतप अर्थात्? एक दिन भोजन, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन भोजन, ऐसे बारह महीने (करना)। आहा! वह तो कदाचित् राग की मन्दता हो तो पुण्यबन्ध का कारण है और उसे धर्म माने तो मिथ्यात्व साथ में है। आहाहा!

यहाँ तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चार जो परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उन पर दृष्टि रखे तो भी वह मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान परद्रव्य तो कहीं रह गये। देव–शास्त्र–गुरु परद्रव्य तो कहीं रह गये। है या नहीं भाई! शिवलालभाई बोटादवाले नहीं? (संवत्) २०१० के वर्ष में उनके पिताजी ने प्रश्न किया था। २२ वर्ष हुए। प्रश्न किया कि महाराज! यह देव, गुरु और शास्त्र पर? वे तो शुद्ध हैं। वे शुद्ध पर हैं? अगास में बहुत जाते थे। उन्हें ऐसा (लगा कि) देव–गुरु–शास्त्र, सर्वज्ञदेव परमेश्वर, गुरु निर्ग्रन्थ वीतरागी सन्त, सर्वज्ञ भगवान के कथित शास्त्र पर? भाई! वह तो लाख बार पर, अनन्त बार पर है। समझ में आया?

यहाँ तो (कहते हैं) एकरूप वस्तु में भेदकल्पना करना, वह परद्रव्य है। ऐसी बात है। अपूर्व बात है न, भगवान! आहाहा! अनन्त काल में पूर्णानन्द के नाथ को दृष्टि में लिया ही नहीं। समझ में आया? परमात्मस्वरूप पूर्णानन्द अभेद एकरूप निर्विकल्प वस्तु है। आहाहा! दरबार! यह सब वहाँ कहाँ था? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चार भेद किये। पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव तो भिन्न हैं ही। अनन्त द्रव्य तो सिद्ध किये। अनन्त द्रव्य हैं; एक ही द्रव्य है–ऐसा नहीं। परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव है, उनकी इसमें नास्ति है। उनके परद्रव्य, क्षेत्र, काल में उनकी अस्ति है, तो अनन्त द्रव्य सिद्ध हो गये। एक ही द्रव्य है, यह बात अत्यन्त झूठ है। सर्व व्यापक एक ही आत्मा है, वेदान्त ऐसा कहता है न? बिल्कुल पाखण्डदृष्टि है। अलिंगग्रहण में आया है। अलिंगग्रहण है न? उसमें आया है। अमेहनाकार ऐसा पाठ है। अमेहनाकार। पाखण्डियों को प्रसिद्ध साधनरूप एक ही आत्मा, उसे पाखण्डियों का साधन कहा है। अलिंगग्रहण। मेहनाकार, अमेहनाकार। मेहनाकार यह चौदहवाँ बोल है, अमेहनाकार यह पन्द्रहवाँ बोल है। बीस बोल है न? अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं। वहाँ ऐसा कहा है। (प्रवचनसार) है यहाँ?

लिंग का अर्थात् मेहनाकार का (पुरुषादि की इन्द्रिय के आकार का) ग्रहण जिसे नहीं... पुरुष की और स्त्री की जो इन्द्रिय है, उससे तो वह (आत्मा) भिन्न है। वह तो जड़ की पर्याय है, उस लिंग से भगवान भिन्न है। पुरुषाकार जो इन्द्रिय है, उससे भगवान भिन्न है। वह तो जड़ की पर्याय है। आहाहा! मेहनाकार-मैथुन की इन्द्रिय से भगवान भिन्न है। ऐसी बात है, भाई! प्रवचनसार-भगवान की दिव्यध्वनि का सार। १७२ गाथा में १४वाँ बोल है। समझ में आया? आहाहा! **इस प्रकार आत्मा शुक्र और आर्तव...** वीर्य और माता का रज, उससे अनुसरणकर नहीं होता। वह तो जड़ की पर्याय है। आत्मा उससे होगा? आहाहा!

अमेहनाकार द्वारा जिसका ग्रहण अर्थात् लोक में व्यापकपना नहीं, वह अलिंगग्रहण है; इस प्रकार आत्मा पाखण्डियों के प्रसिद्ध साधनरूप आकारवाला-लोकव्याप्तिवाला नहीं है, ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है। समस्त आत्मा एक ही हैं, सर्व व्यापक हैं, यह पाखण्डियों ने साधन खड़ा किया है। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र में तो सब बात (आयी है)। यह १५वाँ बोल है। है न? 'अमेहनाकार' लोक में व्यापकपना-लोकव्यापक आत्मा पाखण्डियों के प्रसिद्ध साधन के आकारवाला लोकव्याप्तिवाला नहीं है। लोक में व्याप्त होनेवाला आत्मा नहीं है। इसका नाम अलिंगग्रहण कहने में आता है। आहाहा! अरे! शास्त्र का अभ्यास नहीं होता। क्या कहते हैं और क्या है, (उसका अभ्यास नहीं)। अनुभव तो बाद में, परन्तु शास्त्र का अभ्यास तो पहले करना चाहिए न? कि क्या कहते हैं? और क्या सत्य है?

मुमुक्षु : अकेले पढ़ें तो समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पढ़े तो सही। विद्यालय में हमारे मास्टर थे। उन्हें स्त्री नहीं थी। अभी याद नहीं। स्त्री नहीं थी, (इसलिए) स्वयं पकाते थे। रांधे, समझे? (रसोई बनावे)। उस समय जो होशियार लड़के हों, उनमें से दो-तीन को बुलावे। हम तो विद्यालय में होशियार में गिने जाते थे। दो-तीन लड़कों को बुलावे। काम करे, रोटी बनावे और लड़कों को समझावे। परन्तु इतना कहे कि भाई! तुम पढ़कर आना। यहाँ मैं जो समझाऊँगा, वह पढ़कर आना। समझ में आया? पढ़कर आना। क्योंकि तुम पढ़कर आओगे तो तुम क्या समझे और हम क्या अर्थ करते हैं, उसका भेद तुम्हें समझ में आयेगा। तुम्हारे ख्याल में आयेगा कि मैंने तो ऐसा अर्थ किया था और मास्टर तो इसका दूसरा अर्थ करते हैं तो तुम्हें उसका भेद ख्याल में आयेगा। समझ में आया? वांचन करे, पश्चात उसकी दृष्टि में भले उल्टा बैठे, फिर उसे समझ में आये कि मैं तो इस शब्द का ऐसा अर्थ समझता था और तुम तो दूसरा अर्थ करते हो। समझ में आया? नरोत्तम मास्टर थे, ब्राह्मण थे। यह तो ७५ वर्ष पहले की बात है। नरोत्तम मास्टर थे,

वे हमें बुलाते थे। कणवीवार है, उसमें कमरे में रहते थे। मेढ़ी समझे? ऊपर की मंजिल में रहते थे। वहाँ पकाते थे। हम दो-तीन लड़के जावें। वे पूछें, तुम पढ़कर आये? हाँ। बोलो! इसमें क्या समझे? फिर हम कहें तो वे कहें, अरे! इसका ऐसा अर्थ नहीं है। यह तो ७५ वर्ष पहले की बात है।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि तुम पहले शास्त्र पढ़ो। तुम्हारी दृष्टि से उसका क्या अर्थ लगता है, बाद में गुरुगम से उसका अर्थ कैसा समझ में आता है। समझ में आया? परन्तु शास्त्र पढ़े ही नहीं तो उसे उल्टी दृष्टि क्या है और सुल्टी दृष्टि क्या है, उसकी कुछ खबर ही नहीं पड़ेगी।

यहाँ कहते हैं, अपने यहाँ आया न? **वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारने पर भिन्नपनेरूप स्वाद आता है।** सिद्धान्त तो यह सिद्ध करना है। फिर पीछे दृष्टान्त दिया कि पानी अग्नि से उष्ण होता है और पानी का स्वभाव ठण्डा है। उसका ज्ञान किसे होता है? कि निजस्वरूपग्राही ज्ञानी को। जिसे निजस्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति अभेद का ज्ञान हुआ हो, उसे यह पानी ठण्डा है और अग्निपने से गर्म है, ऐसा उसे व्यवहार का ज्ञान सच्चा होता है। आहाहा! समझ में आया?

जिसे अभेद चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा का ज्ञान हुआ हो... यह कहा न? निजस्वरूप -ग्राही ज्ञान... उसे ही पानी ठण्डा और उष्णता अग्नि की है, ऐसा भेद (ज्ञात होता है)। जिसे निजस्वरूप का ज्ञान हो, उसे व्यवहार का ज्ञान सच्चा होता है। अब अपने यहाँ सब्जी का दृष्टान्त आया है। तुम्हारे में तरकारी कहते हैं? '**एव लवणस्वादभेदव्युदासः ज्ञानात् उल्लसति**' है? चौथी लाईन है। कल यहाँ तक चला था। क्या कहते हैं? '**एव लवणस्वादभेदव्युदासः ज्ञानात् उल्लसति' जैसे खारा रस...** सब्जी में नमक खारा होता है न? **उसका व्यंजन से भिन्नपने के द्वारा...** व्यंजन अर्थात् सब्जी। व्यंजन समझे? लौकी की, तोरई की, घिसोड़ा की सब्जी, उसे व्यंजन कहा जाता है। उसमें खारापन है, वह नमक का-लवण का है। व्यंजन में **भिन्नपने के द्वारा खारा लवण का स्वभाव ऐसा जानपना...** यह खारापन है, वह लवण का स्वरूप है, सब्जी का स्वरूप खारा नहीं है। लौकी, घिसोड़ा, भिण्डी। यह भिण्डी की सब्जी... भिण्डो कहते हैं न? भिण्डो आता है न? भिण्डी। उस सब्जी का स्वाद भिन्न है और लवण का स्वाद भिन्न है। इन दोनों का स्वाद भिन्न है। सब्जी खारी नहीं, लवण खारा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कल श्रीमद् का कहा था न? श्रीमद् राजचन्द्र। यहाँ राणपुर है। प्रेमचन्दभाई आते थे न?

नाराणभाई और प्रेमचन्दभाई दोनों गुजर गये। राणपुर के पास छोटा गाँव है, नाम भूल गये। छोटा गाँव है। वहाँ सब एकत्रित हुए थे। हडमताला, हडमताला नाम का एक गाँव है। वहाँ सब मुमुक्षु इकट्ठे हुए थे, श्रीमद् भी आये थे। बहुत वर्ष पहले की बात है। ५७ वर्ष हुए तो गुजर गये हैं। संवत् १९५७ के पहले की बात है।

(भोजन करने में) सब्जी जहाँ कटोरी में आयी... बाटका (कटोरी का गुजराती शब्द) समझते हो? कटोरा। कटोरी में सब्जी आयी (तो सब्जी देखकर कहा), भाई! इसमें नमक अधिक है। देखकर कहा, खाकर नहीं। क्यों? कि लौकी की सब्जी के टुकड़े पानी में बफते हैं और फिर नमक अधिक पड़ जाये तो उसके रेशा टूट जाते हैं। रेशा टूटे हुए देखकर कहा कि इसमें नमक अधिक है। समझ में आया? गृद्धि मनुष्य हो, उसे कुछ ख्याल नहीं आवे कि खारापन क्या, उसका ख्याल नहीं आवे। ख्याल आया कि देखो भाई! इसमें नमक अधिक है। जहाँ चखा वहाँ... अरे! तुमने चखे बिना किस प्रकार कहा? परन्तु देखो न! लौकी टुकड़े पानी में बफते हैं, वहाँ रेशा नहीं टूटते। रेशा समझे? अन्दर रग (होती है वह)। नमक अधिक पड़ जाये तो रेशा टूट जाते हैं। ऐसे टुकड़े-टुकड़े जैसा लगे। नमक अधिक पड़ा है। आहाहा!

यह खारापना और सब्जी का स्वाद भिन्न है, ऐसी खबर किसे पड़ती है? आया? **निज स्वरूप का जानपना उसके द्वारा...** आहा! पहले उसमें निजस्वरूपग्राही कहा था। यहाँ यह लिया। बात तो एक ही करनी है। **निज स्वरूप का जानपना उसके द्वारा प्रगट होता है।** आहाहा! यह खारापन है, वह लवण का है। सब्जी खारी नहीं है। समझ में आया? ऐसे चूरमा है न? चूरमे में जो मिठास है, वह तो गुड़ की है और आटा है, वह मीठा नहीं है। आटे की (मिठास) नहीं है। मिठास है, वह तो गुड़ की है। ऐसा भिन्नपने के स्वाद का ज्ञान यथार्थ निजस्वरूपी ज्ञान हो, उसे यथार्थ होता है। आहाहा! बात तो ऊँची है, परन्तु बात तो सत्य है। समझ में आया?

निज स्वरूप के... '**ज्ञानात्**' है न? '**ज्ञानात्**' ज्ञान किसे कहते हैं? कि निजस्वरूप के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं। शास्त्रज्ञान और पर का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं है; वह सब तो अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानस्वरूप भगवान का ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान। जो स्वरूप भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी है, उसका ज्ञान। स्व आश्रय करके स्वसन्मुख होकर अपनी ज्ञान की परिणति ज्ञानगुण में से आयी, उसे यहाँ '**ज्ञानात्**' कहने में आता है। समझ में आया? पर्याय में उसके ज्ञान का भेद हुआ, उसका नाम ज्ञान कहते हैं। वस्तु तो वस्तु है। चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा तो वस्तु है, ज्ञान का पिण्ड है, ध्रुव है। उसका आश्रय करने से पर का लक्ष्य

और पर का आश्रय छोड़कर त्रिकाली भगवान ज्ञानस्वरूप का आश्रय करने से अथवा उसके सन्मुख होने से (उसका यथार्थ ज्ञान होता है)। निमित्त, राग, पर्याय, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के चार भेद, इन सबका लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! अपनी अखण्ड चीज़ पर दृष्टि करने से जो ज्ञान होता है, उसे यहाँ '**ज्ञानात्**' कहते हैं। समझ में आया? प्रभु! मार्ग बहुत अलग है। लोगों को बाहर का मिला, उसमें पूरी जिन्दगी चली जाती है।

अरे! मनुष्यपने का एक-एक समय, श्रीमद् कहते हैं... आहाहा! स्फटिकमणि.. क्या कहा यह? कौस्तुभमणि, कौस्तुभमणि होती है न? बहुत ऊँची चीज़ होती है। श्रीकृष्ण का जब जंगल में देह छूट गया न? क्या नाम कहा? वन का नाम भूल जाते हैं। कौशाम्बी वन। कौशाम्बी वन में श्रीकृष्ण को बहुत प्यास लगी थी, क्योंकि द्वारिका सुलगी। सोने के गढ़ और रत्न के कंगूरों से बनी हुई। देव सहायता करते थे, वे सब चले गये। द्वारिका सुलगी, सोने के गढ़ सुलगे। लकड़ियाँ जले वैसे सोने के गढ़ सुलगे। आहाहा! बलभद्र बड़े भाई और श्रीकृष्ण छोटे भाई। भाई! हम कहाँ जायेंगे? माता-पिता को तो निकाल (सके नहीं)। बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी द्वारिका सुलगती है। माता-पिता अन्दर हैं। दोनों ने माता-पिता को रथ में बैठाया और दोनों भाईयों ने रथ को जोता। बाहर जहाँ निकलते हैं, वहाँ गढ़ के दरवाजे गिरे। देव का हुक्म हुआ, निकल जाओ, छोड़ दो। तुम्हारे माता-पिता नहीं बचेंगे। छोड़ दो। आहाहा! पीछे दोनों भाई बाहर निकले। माता-पिता मर गये।

अरे! कृष्ण, बलदेव को कहते हैं, भाई! हम अब कहाँ जायेंगे? स्थान जल गया, कुटुम्ब जल गया, लाखों लोग, कुँवर, कुँवरों की स्त्रियाँ सब जल गये, मकान जल गये। जाना कहाँ? बलदेव कहते हैं, भाई! हम पाण्डवों के पास जायेंगे। भाई! पाण्डवों को तो हमने देश निष्कासन किया है। श्रीकृष्ण कहते हैं, पाण्डवों को तो हमने देश निष्कासित किया है न! भाई! पाण्डव खानदानी हैं, अपने को मदद करेंगे। भले हमने निकाल दिये हैं, चलो! आहाहा! चलते-चलते कौशाम्बी वन आया। ऐसी प्यास लगी, प्यास लगी... 'तरसे तडफड़े त्रिकमो,' एक सज्झाय आती है। पहले सज्झाय बहुत की थी न! 'तरसे तडफड़े त्रिकमो,' तीनों त। 'तरसे तडफड़े त्रिकमो,' तीन खण्ड का वासुदेव 'तरसे तडफडे।' भाई! मुझे प्यास लगी है। मैं एक कदम नहीं चल सकता। आहाहा! बलदेव कहते हैं, भाई! आहाहा! भाई! तुम यहाँ बैठो, मैं पानी लेकर आता हूँ। पानी या पानी का लोटा कुछ साथ नहीं था, वृक्ष के पत्ते थे, उनका लोटा बनाया। बलदेव बुद्धिवाले होते हैं। लोटा जैसा बनाया और पानी लेने गये।

वहाँ पीछे से जरतकुमार (आया), उसे खबर नहीं कि यह कृष्ण है। कृष्ण तो

महापुण्यवन्त प्राणी थे। वासुदेव थे न! तो उनके पैर में पद्ममणि थी। पद्म.. पद्म.. ऐसे पैर ऊँचा रखकर सो रहे थे। जरतकुमार को लगा कि यह हिरण है। पैर पर पैर रखकर सो रहे थे। पैर में पद्म था, उसमें आँख जैसा लगता था। जरतकुमार को उसे देखकर हिरण जैसा लगा। बाण चलाया। बाण चलाकर जहाँ नजदीक आते हैं, वहाँ कृष्ण ने पुकार किया कि निरपराधी को मारनेवाला कौन है? देह छूटने से पहले इतनी आवाज आयी। आहाहा! वहाँ जरतकुमार आया। अरे रे! प्रभु! तुम यहाँ? मैं बारह-बारह वर्ष से आपके कारण (जंगल में रहा)। भगवान ने कहा था, इसलिए मैं बारह वर्ष से जंगल में रहता हूँ और प्रभु! तुम यहाँ कहाँ आये? आँसू की धारा बहती जाती है। अभी जीवित हैं, मरने की-देह छूटने की तैयारी है।

जरतकुमार को कहते हैं, भाई! तू यहाँ से चला जा। पाण्डवों के पास जा। मुझे तो उस कौस्तुभमणि का कहना है। कृष्ण के पास कौस्तुभमणि था। वह वासुदेव को होती है, दूसरे के पास नहीं होती। अरबों रुपये की कीमत होती है। कौस्तुभमणि होती है। वह जरतकुमार को दिया और कहा, जा भाई! पाण्डवों को बताना कि यह वासुदेव का कौस्तुभमणि है तो तेरी रक्षा करेंगे। उन्हें पहिचान होगी। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ मनुष्य देह का कौस्तुभमणि जैसा एक-एक समय है। आहाहा! आत्मा का धर्म करने के लिये कौस्तुभमणि है। पाण्डवों के पास वह कौस्तुभमणि लेकर जाने का है। इसी प्रकार इस मनुष्यपने में अपने आनन्दकन्द प्रभु के पास जाना हो तो यह कौस्तुभमणि कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **निजस्वरूप का जानपना उसके द्वारा प्रगट होता है।** क्या प्रगट होता है? सब्जी और खारापन - दो की भिन्नता। जिसे आत्मा का ज्ञान हुआ है, उसे इन दो की भिन्नता का भास होता है। जिसे राग की एकताबुद्धि-मिथ्यात्व है, उसे तो लवण खारा है और सब्जी भिन्न है, ऐसा भेद यथार्थ भासित नहीं हो सकता। आहाहा! देखो! परमात्मा का पन्थ तो देखो! ओहोहो! है? राजमलजी ने यह टीका की, '**ज्ञानात्**' का अर्थ किया। गृहस्थ थे। कमाल किया है! आहाहा!

मुमुक्षु : अभी तो (रहस्य) आप खोल रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें है न, भगवान! आहाहा!

निजस्वरूप का जानपना। यह निजस्वरूप शब्द (अर्थात्) अभेद त्रिकाली। यह चार भेद भी निकाल दिये। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भेद नहीं। अभेद निजस्वरूप भगवान आत्मा

का जिसे ज्ञान है, उस निजस्वरूप के जानपनेवाले को... क्या कहा ? साग; सब्जी को क्या कहते हैं ? तरकारी। तरकारी और खारेपन की भिन्नता का उसे भान होता है। गृद्धि है, उसे भान नहीं होता। समझ में आया ? यह सब्जी की खिचड़ी करते हैं न ? खिचड़ी में नमक डालते हैं। दूसरे देश (प्रदेश) में तो चावल में भी नमक डालते हैं। चोखा समझे ? चावल में भी नमक डालते हैं। अपने यहाँ खिचड़ी में डालते हैं, वहाँ चावल में भी नमक डालते हैं। सुना है, अपन ने कहाँ (देखा है) ? मुसलमान भी चावल में नमक डालते हैं। आहाहा!

एक बार ऐसा बना कि थाली में खिचड़ी आयी। ऐसा देखा तो बहुत खारी लगी और सत्ता प्रिय मेहमान आये थे। लड़की के ससुर आये थे। सत्ता प्रिय समझे ? सेठ ने खिचड़ी में जहाँ खारापन देखा वहाँ... अरे रे! अभी इस सेठ को बहुत खराब लगेगा। इसलिए पूछा, किसने इसमें नमक डाला है ? तो दो-चार महिलाएँ कहें, अभी बोलना नहीं। ख्याल आ गया कि मैंने एक बार नमक डाला था, पीछे दूसरी बहिन ने बाद में नमक डाला। दो की खिचड़ी पकाते हों, उसमें एक बार तो डाला हो, दूसरी बहिन आयी, उसे लगा कि नहीं डाला होगा, ऐसा सोचकर डाला। इसलिए महिलाएँ तो बेचारी कहे, बोलना नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, जो खारापन है, वह खिचड़ी का नहीं, वह तो नमक का है। उस नमक के और खिचड़ी के भेद का ज्ञान, निजस्वरूप का ज्ञान होता है, उसे परप्रकाशक ज्ञान यथार्थ होता है, ऐसा कहते हैं। बलुभाई! यह सब तुम्हारी दवा में नहीं आता। सब व्यर्थ। आहाहा! है ?

भावार्थ इस प्रकार है कि जिस प्रकार लवण के संयोग से व्यंजन संभारते हैं... संभार करते हैं न नमक डालकर ? संभार करते हैं। **तो खारा व्यंजन ऐसा कहा जाता है,...** बोलने में ऐसा आता है कि सब्जी खारी, खिचड़ी खारी, रोटी खारी। रोटी में भी नमक डालते हैं। बाजरे की रोटियाँ बनावे न ? उसमें नमक डालते हैं, तो वह नमक खारा है, वह भिन्न चीज़ है और बाजरे का आटा है, वह भिन्न चीज़ है। आहाहा!

कहते हैं कि **लवण के संयोग से व्यंजन...** व्यंजन अर्थात् सब्जी। संभारते हैं न ? सब्जी में तेल डालकर संभार* करते हैं। क्या कहा ? हमारे काठियावाड़ में संभार कहते हैं। वह संभार शब्द लिया है, हिन्दी में लिया है। **तो खारा व्यंजन ऐसा कहा जाता है, जाना भी जाता है,...** आहाहा! **स्वरूप विचारने पर खारा लवण, व्यंजन जैसा है वैसा ही है।** सब्जी खारी हुई ही नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य-पाप के भाव के भेदभावरूप आत्मा हुआ

* बघारना, छोंक देना।

ही नहीं। समझ में आया ? जैसे वह सब्जी खारी हुई नहीं; वैसे भगवान आत्मा दया, दान, व्रतादि के विकल्प अथवा भेद, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भेदरूप अभेद आत्मा हुआ ही नहीं। अज्ञानी को भेद और रागरूप भासित होता है, वह दृष्टि मिथ्यात्व है। आहाहा! धर्मी को तो आत्मा अभेद भासित होता है। आहाहा!

विचारने पर... कहा न ? ज्ञान करने पर, द्रव्य का ज्ञान करने पर, वस्तु का ज्ञान करने पर, अखण्डानन्द नाथ प्रभु का ज्ञान करने पर... आहाहा! आनन्द का स्वाद (आता है)। अनादि से राग का स्वाद था, वह छूटकर आनन्द का स्वाद आता है, उसका नाम अनुभूति और उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया ? यह कोई गुरु की कृपा या भगवान की कृपा से मिल जाये, ऐसी वह चीज़ नहीं है।

श्रोता : गुरु की कृपा से क्या मिले ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनकी कृपा होती नहीं, वह तो अन्दर में प्रगट हुआ हो, तब कृपा कहने में आती है। आहाहा! यह ६० श्लोक हुआ। ६० में बहुत सरस बात की! निजस्वरूपग्राही। ऐसा अर्थ तो... आहाहा! राजमलजी ने किया है। जिसे निजस्वरूप का ज्ञान नहीं, उसे शास्त्र का ज्ञान भी यथार्थ नहीं। समझ में आया ? वह शास्त्र का अर्थ भी विपरीत करेगा। व्यवहार से निश्चय होता है, निमित्त से उपादान में होता है, (ऐसा अर्थ करेगा)। क्या हो ?

श्रोता : बहुत प्रयोजनभूत बात आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रयोजनभूत आयी, हमारा सेठ प्रसन्न हुआ, लो! सत्य बात है, भाई! परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को पर में डाल दिया। आहाहा! निजस्वरूप का अर्थ अभेद। आहाहा! अभेद का ज्ञान होने से पर का यथार्थ ज्ञान उसे होता है, बाकी पर का यथार्थ ज्ञान भी नहीं होता। शास्त्र के अर्थ भी वह तो उल्टे करेगा। अज्ञानी को स्वरूप का ज्ञान नहीं तो शास्त्र का अर्थ भी उल्टा करेगा। व्यवहार से होता है, निमित्त से होता है, क्रमबद्ध नहीं है, (ऐसे अर्थ करेगा)। आहाहा! समझ में आया ? यह निजस्वरूप के ज्ञान के अभाव में विपरीतता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१०

श्री इष्टोपदेश, गाथा २१-२२, प्रवचन २०
दिनांक ०६-०४-१९६६

'इष्टोपदेश' हितकारी उपदेश। मुनि दिगम्बर पूज्यपाद स्वामी हैं, उन्होंने कहा है। पहले ऐसा हुआ, उसका अर्थ कि यह आत्मा पहले शास्त्र से जानना चाहिए कि इस लोकालोक को जाननेवाला यह आत्मा है। लोकालोक अस्ति है न? वस्तु, वस्तु है - ऐसा जाननेवाले के बिना यह वस्तु है - ऐसा किसने कहा? समझ में आया? यह लोक और यह अलोक है। उसे जाननेवाला ज्ञान है। ज्ञानस्वभाव आत्मा है, वह लोकालोक का जाननेवाला है - ऐसा इसे पहले निर्णय करना चाहिए। वह शरीरप्रमाण है, अपने शरीरप्रमाण है। वह ऐसे सर्वत्र व्यापक नहीं है। ऐसे नित्य है, कायम वह की वह चीज़ नित्य रहती है और अनन्त आनन्दमय है, सुखवाला तत्त्व है और स्वसंवेदनस्वरूप है, वह स्वयं अपने से जाना जा सके, ऐसा ही वह आत्मा है। उस आत्मा का स्वभाव ही ऐसा है कि वह स्वसंवेदन आत्मा आनन्दमय और ज्ञानमय स्वयं से स्वयं वेदकर जाना जा सकता है, ऐसा उसका तत्त्व है। कोई निमित्त से या राग की मन्दता के भाव से वह ज्ञात हो, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। समझ में आया? उपदेशक के उपदेश से ज्ञात हो, ऐसा वह आत्मा नहीं है।

श्रोता : सबका खण्डन हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबका खण्डन है, परन्तु यह तो वापस अपने अज्ञान के खण्डन की अन्तिम बात है। ऐसा कि दूसरे बहुतों को हम समझावें तो अपने को कुछ लाभ हो, ऐसा स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? दूसरों को समझाने का विकल्प है, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है; आत्मा को लाभ का कारण नहीं, क्योंकि स्वयं उससे ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं, उसके कारण बिल्कुल है नहीं। क्या कहना है तुम्हारे? अपना ज्ञान और आनन्द स्वयं स्वत: स्वरूप है, अर्थात् स्वत: स्वभावी स्वत: से ही वेदनकर अनुभव किया जा सकता है। बिल्कुल किसी की अपेक्षा है नहीं, ऐसा यह आत्मा है। समझ में आया?

यहाँ पर किसी की यह शंका है कि प्रमाणसिद्ध वस्तु का ही गुणगान करना उचित है। देखो ! शिष्य का प्रश्न है कि जो वस्तु प्रमाण से साबित हो, प्रमाण से सिद्ध हुई हो, प्रमाण से उस वस्तु की सिद्धि ज्ञान में आयी हो, उसका गुणगान करना चाहिए। जो चीज़ प्रमाण से ख्याल में नहीं आयी, उसका गुणगान क्या ? समझ में आया ? **प्रमाणसिद्ध वस्तु का...** प्रमाण से, ज्ञान से ऐसे सिद्ध / साबित सत्ता (हुई हो), यह है – ऐसा यदि सिद्ध हुआ हो, तो **गुणगान करना उचित है।**

परन्तु आत्मा में प्रमाणसिद्धता ही नहीं है... शिष्य का प्रश्न है। आत्मा में प्रमाण की सिद्धता ही नहीं है। प्रमाण से वह आत्मा किस प्रकार सिद्ध होगा ? **वह किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं है।** किसी प्रमाण से आत्मा का भान हो सके, ऐसा वह है नहीं – ऐसा हमें लगता है। वह तो अरूपी ज्ञानघन है। वह किस प्रकार अपने को किसी प्रमाण में आवे ? – ऐसी शिष्य की शंका है।

तब ऊपर कहे हुए विशेषणों से किसका... शिष्य प्रश्न करता है, तुमने ऊपर कहा कि ऐसा लोकालोक का जाननेवाला, अनन्त सुखस्वरूप, शरीरप्रमाण, नित्य और ऐसा-ऐसा (आत्मा है), ऐसे गुणगान (किये) परन्तु किसके ? प्रमाण में आये बिना किसके गुणगान ? **विशेषणों से किसका और कैसा गुणवाद ?** ये विशेषण जो कहे, वे किसके ? और किसके विशेषण ? प्रमाण में आये बिना किसके ? समझ में आया ? और किसके गुणवाद ? **ऐसी शंका होने पर आचार्य कहते हैं कि वह आत्मा 'स्वसंवेदन-सुव्यक्त है,'...** देखो ! पहला शब्द आया। इस श्लोक में जो था न मूल ? **'स्वसंवेदन-सुव्यक्त है,'...** यह आत्मा स्वयं से वेदन किया जा सकता है, जाना जा सकता है, ऐसा ही उसका स्वभाव है। सुव्यक्त ऐसा ही उसका प्रगट स्वभाव है। समझ में आया ?

स्वसंवेदन नामक प्रमाण के द्वारा... प्रमाण यह है, यह प्रमाण है। अपने आत्मा को जानने का स्वसंवेदन स्वयं यह आत्मा है। ऐसे ज्ञान द्वारा ज्ञेय करके ज्ञाता आत्मा और ज्ञेय स्वयं-ऐसे अन्दर जानकर प्रमाण से सिद्ध होने योग्य तो इस प्रकार से है। समझ में आया ? **स्वसंवेदन नामक प्रमाण के द्वारा अच्छी तरह प्रगट है। अच्छी तरह प्रगट है।** बराबर प्रगट है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्यज्योति है। चौदह ब्रह्माण्ड में अपना भिन्न तत्त्व, लोकालोक को जाननेवाले स्वभाववाला तत्त्व अपने ज्ञान से ज्ञात हो, ऐसा वह प्रगट आत्मा है। कहो, समझ में आया इसमें ?

उसका आधार देते हैं। **'वेद्यत्वं वेदकत्वं च।' 'जो योगी को खुद का वेद्यत्व व खुद**

के द्वारा वेदकत्व होता है, बस, वही स्वसंवेदन कहलाता है। क्या कहते हैं ? जो धर्मी जीव को.. योगी अर्थात् आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध, लोकालोक का जाननेवाला, अनन्त सुखस्वरूप, शरीरप्रमाण, नित्य है। ऐसे आत्मा के अन्तर में एकाग्र होनेवाले। योगी अर्थात् उसमें जुड़ान करनेवाले। पुण्य और पाप के राग तथा संयोगों का लक्ष्य का जुड़ान छोड़कर और स्वरूप शुद्ध चैतन्यधाम अनाकुल आनन्दकन्दस्वरूप है, उसमें जिसने जुड़ान—अन्तरयोग जोड़ा है, ऐसे धर्मी को खुद का वेदत्व खुद / स्वयं ही ज्ञेय है और **खुद के द्वारा वेदकत्व...** स्वयं के द्वारा ज्ञाता भी स्वयं और **खुद के द्वारा वेदकत्व...** अर्थात् ज्ञेय और खुद के द्वारा वेदकत्व अर्थात् ज्ञाता। वह जाननेवाला भी स्वयं और ज्ञेय-ज्ञात होने योग्य भी स्वयं। सूक्ष्म बात है यह।

स्वयं, स्वयं से ही ज्ञात होने योग्य है। यह ज्ञेय भी स्वयं और ज्ञाता भी स्वयं। जाननेवाला ज्ञाता और ज्ञेय स्वयं। स्वयं को स्वयं ज्ञेय और स्वयं अपना ज्ञाता। आहाहा! समझ में आया ? राग ज्ञेय और आत्मा ज्ञाता-ऐसा भी नहीं और राग जनवानेवाला और आत्मा जाने, ज्ञेय, वह जनवानेवाला ज्ञाता को वह ज्ञेय हो, ऐसा भी नहीं। क्या कहा ? जरा समझ में आया ? भगवान आत्मा... ऐसे राग भाग है, वह आत्मा को जनाने में सहायता करे, ऐसा नहीं तथा राग उसे जान सके या राग का आत्मा ही ज्ञेय करे तो आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं।

श्रोता : तो राग गया कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ***राग, आत्मा में है ही नहीं। ज्ञेय-ज्ञायक में राग है ही नहीं। समझ में आया ? आहा! जानने में आने योग्य भी आत्मा और जाननेवाला भी आत्मा। यहाँ तो जाननेयोग्य रागादि ज्ञेय, ऐसा भी नहीं, भाई!*** ऐसा इतना सिद्ध करना है। रागादि जाननेयोग्य, ऐसा भी नहीं, शरीर आदि जनाने (योग्य), वह नहीं, वह वस्तु नहीं।

भगवान आत्मा स्वयं का स्वरूप ही इतना है कि स्वयं ही अपना ज्ञाता हो और स्वयं ही अपना ज्ञेय हो। लोकालोक का जो ज्ञेय है, वह तो दूसरी अपेक्षा से बात की है। उस लोकालोक को जानने जितना यहाँ स्वभाव है, ऐसी की बात है। समझ में आया ? लोकालोक ऐसे नहीं। लोक और अलोक जितना अस्तित्व है, उस अस्तित्व की मौजूदगी के ज्ञानवाली मौजूदगी उसे जाने। उसके बिना यह अस्तित्व है-ऐसा जाना किसने ? समझ में आया ? वह अपना ज्ञान इतना है, ऐसा। लोकालोक के कारण से नहीं। ज्ञानस्वभाव, जिसका 'ज्ञ' स्वभाव-जानकस्वभाव, वह स्वभाव ही स्वयं लोकालोक को जानने जितना वह अपना स्वयं का स्वरूप है। समझ में आया ? आहा!

शिष्य कहता है, परन्तु जो वस्तु प्रमाण में आये बिना किसके गुणगान ? किसके

विशेषण ? किसके (विशेषण) दिये तुमने ये सब ऐसे ? इतना बड़ा, इतना बड़ा और ऐसे गुण, इतना बड़ा और ऐसे गुण। ऐई! परन्तु किसके ? कोई प्रमाणसिद्ध वस्तु हुई हो, उसके या उसके बिना ? सुन न! स्वयं से प्रमाणसिद्ध होने के योग्य आत्मा है। धर्मी जीव को.. योगी अर्थात् धर्मी। योगी अर्थात् वे बाबा-बाबा घूमते हैं, वे योगी नहीं।

भगवान आत्मा एक सैकेण्ड के असंख्य भाग में लोकालोक जानने का जितना ज्ञान धराता है, अपने में, हों! अनन्त आनन्द है, शरीरप्रमाण है, नित्य है। वह स्वसंवेदन से अपने ही प्रमाणज्ञान से प्रमेय हो सके; अपने ही प्रमाणज्ञान से अर्थात् ज्ञान कहो या प्रमाण कहो और ज्ञेय कहो या प्रमेय कहो। अपने ही प्रमाण से स्वयं प्रमेय अर्थात् ज्ञेय हो सकता है। आहाहा! समझ में आया ?

वस्तु है या नहीं ? वस्तु। वस्तु है, उसमें तो ज्ञानस्वभाव है। लोकालोक को जाने, इतना ज्ञानस्वभाव है और उसमें आनन्दस्वभाव है। जो स्वभाव है, वह स्वयं ज्ञाता होकर अपना ज्ञेय करके जानने के योग्य स्वभाव है। दूसरे को ज्ञेय करे और ज्ञात हो या दूसरे का ज्ञाता तो दूसरा हो सकता नहीं, परन्तु दूसरे को ज्ञेय करे और इसका ज्ञाता हो, ऐसा नहीं है। स्व का ज्ञेय और ज्ञाता होने का उसका (आत्मा का) वास्तविक यथार्थ स्वभाव है। आहाहा!

बात यह है कि ये सब हड्डियाँ-बड्डिया-चमड़ा यह तो सब जड़ है, मिट्टी, धूल है। उनका जाननेवाला है। उनका जाननेवाला अर्थात् ? उनका जो स्वरूप है, वैसा जानने का स्वरूप अपने ज्ञान में है। उनके कारण नहीं। इसका ज्ञानस्वभाव ऐसा है। जगत में लोकालोक है, उसमें एक जाननेवाला ज्ञान अपने स्वभाव के सामर्थ्यवाला न होवे तो 'यह है'-ऐसा किसने कहा ? इसलिए इसके कारण (हैं, ऐसा) नहीं। यह जो सत्तावाला है-अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु हैं, उनके कारण नहीं, परन्तु वह सत्ता है, ऐसी यह एक सत्ता लोकालोक के जानने के स्वत: स्वभाववाला पूरा ज्ञान और आनन्दस्वरूप स्व सत्ता है। आहाहा! समझ में आया ? ***पर को ज्ञेय करना नहीं और पर का जाननेवाला होना नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं।*** आहाहा! गजब बात, भाई! यहाँ तो कहे परन्तु कितनी क्रियाएँ बाहर की! पोपटभाई! यह कौन करे क्रिया ? वह तो उसके कारण बाहर का (होता है)। यह तो स्वयं अपना ज्ञाता और स्वयं अपना ज्ञेय, यह समा जाए, ऐसा इसका स्वभाव है। आहाहा!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ख्याल भी कहाँ लिया है ? हीरा तो बहुत ऊँचा (कीमती) परन्तु

इसने नजर कहा की है ? कहो, नजर किये बिना आँखें बन्द करके ? बहुत (ऊँचा) हीरा, बहुत ऊँचा, बहुत ऊँचा अरे! उसका तेज और इसका तेज!! परन्तु किसका तेज!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहाँ करता है ? कहता ही नहीं वास्तव में तो। यही कहते हैं कि यहाँ प्रमाण से सिद्ध होनेयोग्य वस्तु इस प्रमाण से सिद्ध होती है, दूसरे किसी प्रकार से साबित हो, वह वस्तु नहीं है। इसने प्रमाण कब किया है ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

बाहर की प्रवृत्ति की क्रियाएँ तो स्वतन्त्र जड़ की (होती है), उन्हें जानना, वे ज्ञेय है- ऐसा भी यहाँ तो नहीं है। आहाहा! यह तो जो जगत का लोक और अलोक महासत्तास्वरूप हो, परन्तु उसे जाननेवाली सत्ता स्वभाव मेरा ज्ञान ही इतना है। लोकालोक को अर्थात् 'ज्ञ' स्वभाव है। 'ज्ञ' स्वभाव है, उसका सत्व ही इतना है कि जितना जगत में सत्व है, उसे स्पर्श किये बिना, उसका लक्ष्य किये बिना, उस सत्ता की उपस्थिति है, इसलिए नहीं। समझ में आया ? उस सत्ता की मौजूदगी इतनी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? भगवान ज्ञान अन्तर ज्ञान वस्तु के प्रमाण से वह स्वयं ही प्रमेय होता है। वह प्रमेय होता है, वह ज्ञेय होता है और वह ज्ञाता (होता है)। वह स्वयं ज्ञेय और ज्ञाता है। पर, ज्ञेय और आत्मा, ज्ञाता-यह सब व्यवहार की बातें हैं। समझ में आया ? आहाहा!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही पक्षी। बराबर सत्य का एक पक्षी चुकादा होवे न ? दो का चुकादा अच्छा होगा ? तू भी सच्चा और तू भी सच्चा - ऐसा होगा वहाँ ? एक सत्य पक्षी चुकादा है। आहाहा!

कहते हैं कि धर्मी जीव को... धर्मी ने स्वयं ज्ञान को ज्ञेय बनाकर अथवा ज्ञान से ज्ञेय बनाकर अपना प्रमाण सिद्ध किया है। प्रमाण सिद्ध किया है कि यह आत्मा। किसी के प्रमाण से नहीं, किसी के आश्रय से नहीं, किसी के सहारे नहीं, किसी के द्वारा नहीं, किसी ने कहा कि ऐसा (आत्मा), इसलिए (प्रमाण किया है)-ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा! ऐसा ही उसका स्वभाव है। अभी कहेंगे, समझ में आता है ?

स्वसंवेदन नामक प्रमाण के द्वारा अच्छी तरह प्रगट है। अनुमान भी नहीं। समझ में आया ? परोक्ष नहीं। ओहोहो! भगवान आत्मा चैतन्य का सूर्य प्रभु, लोकालोक जितना है, उसे स्पर्श किये बिना, लक्ष्य किये बिना, उसका लक्ष्य किये (बिना) इसका स्वभाव ही लोकालोक को जानने का स्वभाव है। उस स्वभाव को जाननेवाले को किसी की अपेक्षा है नहीं। समझ

में आया ? गजब बात लगे ! बाहर की बात समझ में आये, लो ! सामायिक करो, प्रौषध करो। ए.. भगवानभाई ! समझ में आये अज्ञान, अज्ञान, हों ! वहाँ कहाँ भान था कुछ ? ए.. मूलचन्दभाई ! प्रौषध कर डाले। स्थूल शरीर हो और रात्रिभोजन न करे उसमें क्या वहाँ व्यवधान ? जरा इतना सूखे तो और तीन लड्डू चढ़ा जाये वापस। चना पोचा हुआ हो तो वापस पानी में डाला थोड़ा। उसमें कुछ है ? वह भी धर्म कब था। सुन न ! ऐ.. देवशीभाई ! तब इतना अलग नहीं था, ऐसा (ये) कहते हैं। तब इकट्ठा हो गया। अरे ! विद्यमान को अविद्यमान करे। अनुभव प्रकाश में नहीं आया ?

श्रोता : ऐसा सुना हुआ नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं था। बात सत्य, बात सत्य। एक पिता हो, बाजार में बाहर निकला और लड़के घर में रहे। उसे पूछे कि तुम्हारे लड़के हैं ? तो इनकार करेगा ? साथ में नहीं न ? साथ में नहीं न ? साथ में नहीं अर्थात् घर में पड़े हैं या बैठे हैं या नहीं ? विद्यमान को अविद्यमान करे ? अनुभव प्रकाश में ऐसा दृष्टान्त दिया है। समझ में आया ? विद्यमान को अविद्यमान करे ? इसी प्रकार भगवान विद्यमान ज्ञानस्वभाव पूर्ण लोकालोक की अपेक्षा रखे बिना लोकालोक को जानने के स्वभाव का सत्व है। ऐसा भगवान अन्दर है, उस विद्यमान को अविद्यमान कौन करे ? समझ में आया ? वयोवृद्ध अकेला सब्जी लेने बाहर निकला हो। घर में यहाँ काम न हो। बापू ! तुम्हारे कोई लड़का नहीं ? तो वह इनकार करेगा ? लड़का नहीं, ऐसा कहेगा ? बापू ! लड़के तो आठ हैं, बड़े लोहे जैसे, परन्तु काम करते हैं अभी। लड़की का ससुर सब लेकर आया है और वह है जरा सत्ता प्रिय। इसलिए उसको सामने सम्हालने के लिये वहाँ रुके हैं। पोपटभाई ! सत्ता प्रिय हो, जरा कड़क हो और वह सामने ठीक से न सम्हाले तो... हो जाये। यह दुनिया कोई पागल है न परन्तु...

यहाँ कहते हैं कि भगवान विद्यमान को अविद्यमान कहे कौन ? घर में लड़के पड़े हैं, और साथ में नहीं हैं, इसलिए नहीं हैं, ऐसा कहे वह ? इसी प्रकार भगवान आत्मा एक समय में अखण्डानन्द लोकालोक को जाननेवाला तत्त्व और पूर्णानन्दवाला तत्त्व है। वह नहीं है - ऐसा कौन कहे ? कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही प्रमाण हुआ। यह प्रमाण तब ही प्रमाण कहलाया। यह अपना ही प्रमाण है, ऐसा कहते हैं। किसी के प्रमाण की इसे आवश्यकता नहीं है। यह अपने गुण को गाया, ऐसे गुण और ऐसे गुण और ऐसा है, यह ज्ञान द्वारा जाना, यही उसका प्रमाण है, दूसरा

कोई प्रमाण है नहीं। धर्मी को वह अपना ही प्रमाण है, दूसरे का प्रमाण उसे है नहीं। भगवान कहते हैं, इसलिए माना, ऐसा भी नहीं है – यहाँ तो ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ ने कहा, इसलिए यह माना है, ऐसा नहीं है। भाई! अपने से वेदन किया है, जाना है कि यह आत्मा ऐसा है। ओहो! अकेला चैतन्य का पुंज और वह ज्ञेय तथा ज्ञान दोनों मैं ही हूँ। दूसरी चीज़ मेरी अपेक्षा से जगत में नहीं है। ऐसा है।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह होवे (तो) उसके घर में। उसके कारण मैं नहीं, उसके कारण मेरा ज्ञान नहीं। उसके कारण मेरी सत्ता तो नहीं परन्तु उसकी सत्ता है इसलिए मेरा इतना ज्ञान है, ऐसा नहीं – ऐसा यहाँ कहते हैं। १९ गाथा लेने के बाद यहाँ से कैसी गाथा ली, देखो!

भाई! प्रभु ऐसे विद्यमान है न बड़ा! आहाहा! छह-छह लड़के बड़े गोरे (अंग्रेज) जैसे छह-छह हाथ के लम्बे और निरोगी शरीर (हो), रोग आया न हो, रोग आने की तैयारी न हो, ऐसे घर में बैठे हों और इनकार करे कि मेरे लड़के नहीं हैं। मूर्ख है न वह? कहे कोई? इसी प्रकार भगवान पूरी दुनिया के छह द्रव्य लोक में पड़े हैं, उन्हें लक्ष्य किये बिना, उन्हें स्पर्श किये बिना, उनकी अस्ति है, इसलिए इसकी अस्ति है, ऐसा नहीं-ऐसा भगवान अन्तर एक समय में पूर्ण जानने के स्वभाववाला पूरा तत्त्व है। वह स्वयं ही अपने प्रमाण से ज्ञेय करके स्वयंसिद्ध हो सकता है। उसे दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

बस, वही स्वसंवेदन कहलाता है। अर्थात् उसी को आत्मा का अनुभव व दर्शन कहते हैं। लो! उसे आत्मा का अनुभव अथवा दर्शन कहने में आता है। यह स्वसंवेदन कहो, अनुभव कहो, सम्यग्दर्शन कहो या जो कहो वह यह है। समझ में आया? बाद में कहेंगे, हों! ये सब व्यवहार के विकल्प और साधन-फाधन वहाँ बिल्कुल काम नहीं आते। यह बाद में कहेंगे। विकल्प आदि भले हो, वहाँ आत्मा के साधन में वे जरा भी काम नहीं आते। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! स्वयं कैसा ज्ञानचन्द्र है, कहते हैं देखो! आहाहा!

जिसका स्वभाव, जिसका स्वरूप, स्व-रूप, स्व-रूप, अरूप-स्वरूप, जिसका सत्व, जिसका स्वभाव इतना है, उसे दूसरे के प्रमाण से माननेयोग्य कहाँ रहा? वह तो अपने ज्ञान के वेदन से ज्ञान, ज्ञाता से ज्ञेय हो सकने के (योग्य), स्वयं ज्ञेय होने के योग्य और स्वयं ज्ञान, ज्ञाता होने के योग्य, ऐसा उसका स्वभाव है, कहते हैं। आहाहा! व्यवहारवाले को भारी कठिन लगे, हों! यह व्यवहार भगवान का यह करे तो हो, यह करे तो हो, मन्दिर बनावे, पूजा

करे, भक्ति करे, यात्रा करे.. धूल भी नहीं होता, सुन! कहते हैं। ऐई! अभी इन्हें मन्दिर बनाना है न बाकी? पाँच-दस लाख का मन्दिर बनाकर यात्राएँ निकालीं, उससे आत्मा बिल्कुल ज्ञात नहीं होता, ले! ऐसा कहते हैं। आहाहा! गले उतारना भारी। और वापस निकाले... हिम्मतभाई भी वे साथ में थे या नहीं वहाँ? आहाहा!

उस विकल्प के काल में भी विकल्प के कारण ज्ञान नहीं और ज्ञाता नहीं। विकल्प के कारण ज्ञाता और ज्ञेय नहीं। विकल्प के सहारे ज्ञाता और ज्ञेय नहीं। तब ही उसको-अवस्तु को व्यवहार कहा जाता है न? उसमें कहाँ वह वस्तु थी? वह तो ज्ञाता और ज्ञेय स्वयं वह वस्तु। रागादि अवस्तु। वह है, इसलिए इतना ज्ञान है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इसके स्वभाव का माहात्म्य ही इसे नहीं आया। समझ में आया? भले भाषा में कदाचित कहे कि ऐसा आत्मा। परन्तु यह वस्तु.. ओहोहो! साक्षात् परमेश्वर स्वयं! स्वयं ही परमेश्वर स्थाप आत्मा को। स्थापित किये बिना तेरी ज्ञानदशा हाथ नहीं आयेगी। मैं ही परमेश्वर हूँ। ओहोहो! समझ में आया? अनुभवप्रकाश में कहते हैं न? स्वयं को प्रभु स्थाप! यदि कहीं प्रभुता दी तो ऐसे जा नहीं सकेगा, ऐसा कहते हैं। यदि कहीं महत्ता दी राग को और पुण्य को, व्यवहार को और निमित्त को तथा संयोग को (तो) अन्दर नहीं आयेगा। अन्दर आत्मा में नहीं आ सकेगा, आत्मा ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐ.. पोपटभाई! कहते हैं, सम्मेदशिखर की पाँच यात्रा करें तो एकावतारी हो जायेंगे। तूने पर को महिमा दी है। तेरा यह आत्मा हाथ नहीं आयेगा। ऐसा है नहीं वह। आहाहा!

भाई! वस्तु ही स्वयं अलौकिक है। लौकिक पूरे जगत को जाननेवाला लौकिक का आश्रय लिये बिना जाननेवाला ऐसा ही स्वयं तत्त्व है। स्वत:सिद्ध तत्त्व है। वस्तु है, उसे उसके स्वभाव की क्या बात करनी! उसके स्वभाव की हद क्या? उसे मर्यादा क्या? उसे पराश्रयता क्या? समझ में आया? जो स्वभावभाव है, उस स्वभावभाव को पराश्रय का क्या? अपूर्णता क्या? उस स्वभाव की अचिन्त्यता में अपूर्णता क्या? आहाहा! अब (लोग) शोर मचाते हैं। भगवान को, भगवान को... तुमने नहीं पढ़ा होगा, पढ़ा? पण्डित हमारे हैं तो कभी तर्क दे। भगवान को तुमने सिद्ध कर दिया, भगवान महावीर को भगवान सिद्ध कर दिया, मानव को भगवान सिद्ध कर दिया। जैन सन्देश में ऐसे लेख आते हैं। अरे! वह तत्त्व का अनादर करनेवाला है। एक-एक चैतन्यतत्त्व का खून करनेवाला है। समझ में आया?

भगवान आत्मा साक्षात् स्वयं परमेश्वर का रूप ही आत्मा है। शक्ति और भगवान की व्यक्ति में कुछ अन्तर नहीं है। ऐसे प्रभु आत्मा को जब तक दृष्टि में स्थापित न करे, तब तक

उसका स्वसंवेदन प्रमाण नहीं हो सकता। समझ में आया? कहीं भी यदि जरा लार (लान्तरे), कहीं माहात्म्य दे दिया तो इस माहात्म्य में खण्ड होता है। माहात्म्यवाला तत्त्व हाथ नहीं आयेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भाई! ऐसा कहते हैं कि उतर जाये ऐसा है। चक्कर उतर जाये ऐसा है। तुम ऐसे बोले और वह ऐसे बोले। आहाहा!

तू कितना है, कैसा है, यह तुझे खबर नहीं? यह लगायी सबकी धूल की और शरीर की और वाणी की और यह भगवान ऐसे और भगवान ऐसे! परन्तु तू कितना, यह खबर है तुझे? भाई! भगवान की क्या बात करना! सुन न अब! उन भगवान को जिसने ज्ञान में लिया, उस ज्ञान की महिमा तेरे कारण है या उनके कारण है? जिसने केवलज्ञान और केवलदर्शन ऐसा.. ऐसा.. ऐसा.. ऐसा.. आहाहा! जो पर्याय ख्याल में ली, उस पर्याय की महिमा कितनी और उस पर्याय की अपेक्षा पूर्ण द्रव्य की महिमा कितनी? आहाहा! है (महिमा) ऐसे (और) देता है ऐसे; इसलिए दृष्टि में अन्तर है। ज्ञानचन्दजी! शोर मचाते हैं। वे कहें, अरर र! व्यवहार का लोप होगा। व्यवहार का लोप ही है। आत्मा में कब व्यवहार था? सुन न! ऐ.. बसन्तलालजी! ये सब निकले हैं न, देखो! शिक्षणवर्ग के लिये और अमुक के लिये। यहाँ कहते हैं कि कुछ नहीं मिले आत्मा में। पर से समझे, ऐसा आत्मा नहीं और पर को समझावे, ऐसा वह आत्मा नहीं। ऐई!

श्रोता : यह साधन-साध्य कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन, यही साध्य यह का यही। यह का यही साधन और यह का यही साध्य। दूसरा था कब? दूसरा कहे उसे सुनावे न जब.. आहाहा! समझ में आया इसमें?

जिस प्रकार यह वस्तु स्व, स्वस्वभाव से जिस प्रकार स्वत: है और स्वत: स्वभाव के प्रमाण से ही जानी जा सके ऐसी है। ऐसा जब तक इसके ख्याल में, रुचि में, श्रद्धा में न बैठे, वहाँ तक इसका वीर्य स्वसंवेदन अन्तर में झुकेगा नहीं। समझ में आया? इतना यह नहीं, इस प्रकार से मानकर इसे निर्णय करने जाये (तो) वेदन किसी प्रकार नहीं हो सकेगा? समझ में आया इसमें? इसका नाम आत्म अनुभवदर्शन है।

अर्थात् जहाँ आत्मा ही ज्ञेय और आत्मा ही ज्ञायक होता है,... देखो! जहाँ **आत्मा ही ज्ञेय...** स्वयं ही ज्ञेय, स्वयं ही ज्ञेय। परज्ञेय तो व्यवहार हो गया। वह नहीं। निश्चय स्वयं ज्ञेय और **आत्मा ही ज्ञायक होता है,...** देखो! **चैतन्य की उस परिणति को स्वसंवेदन प्रमाण कहते हैं।** यह प्रमाण। चैतन्य की उस परिणति अर्थात् पर्याय को स्वसंवेदन प्रमाण कहते हैं। पर्याय की बात ली न? भगवान आत्मा ज्ञेय, ज्ञात होनेयोग्य और स्वयं जाननेवाला। जाननेवाला और जनानेयोग्य स्वयं का स्वयं है।

बहिर्मुख की वृत्ति में बहिर्बुद्धि में जितना माहात्म्य पर का रह जाता है, उसे बहिर्बुद्धि कहते हैं। समझ में आया ? और अन्तरज्ञेय तथा ज्ञायक परिपूर्ण प्रभु मैं ही इस स्वभाव के वेदन को करनेवाला वेदन, दूसरा किसी को ज्ञात होनेयोग्य भी मैं और जाननेवाला भी मैं, ऐसी परिणति को स्वसंवेदन प्रमाण कहते हैं, इसका नाम प्रमाण है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है कि **'जदि दाएज्ज पमाणं'**। यदि कहूँ तो प्रमाण करना। वह यह प्रमाण। (समयसार) पाँचवीं गाथा में आता है न ? **'तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज'** दिखाऊँगा तो प्रमाण करना। तेरे स्वसंवेदन प्रमाण से प्रमाण करना। यह महाराज भगवान कुन्दकुन्द कहते हैं, (इसलिए प्रमाण है) ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **'जदि दाएज्ज'** यदि मैं दिखाऊँ तो प्रमाण करना, हों! अर्थात् ? तेरे अनुभव से उसका स्वीकार (करना)। चैतन्य ऐसा है, ऐसे स्वसंवेदन से स्वीकार करना। आहाहा! समझ में आया ? चिमनभाई! क्या करना इसमें ? मकान बनाना, मन्त्रीपना करना ? यह सब कितने काम सिर पर ? चूने का व्यापार करना। थैलियाँ (भरना) दूसरे का चूना देखकर इसका चूना देखकर विचारे। यहाँ चूने का ट्रक आता है और इसकी चूने की थैलियाँ देखी। यह गये थे न ? कल-परसों नहीं ? थैलियाँ, थैलियाँ.. परन्तु उसका धन्धा करे तो अच्छी ही थैलियाँ लावे न यह तो। ऐसा कुछ नाम दिया था। वे थैलियाँ पड़ी थीं। यहाँ थैलियाँ नहीं रहतीं। यहाँ कहाँ थैलियाँ थीं ? यहाँ तो... साधारण, साधारण वापस। घर का माल बेचे वह अच्छा-अच्छा ले या नहीं ? इसी प्रकार इस घर का माल आत्मा आनन्दकन्द है, कहते हैं। आहाहा! थैलियाँ पड़ी हैं। मैंने कहा, किसकी थैलियाँ हैं ? यह सब चिमनभाई की हैं। पत्थर और .... मकान के लिये लो न, ऐसा करके।

घर का व्यापार, इसलिए चूना दूसरे प्रकार का लाये। यह घर का व्यापार आत्मा का, यह कहते हैं यहाँ। भगवान तेरे अन्तर के प्रमाण के लिये, किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है। घर का माल पड़ा है और घर में माल पड़ा है और उसे तू प्रयोग नहीं करेगा ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! दुनिया में ऐसा नहीं कहते ? अपने घर में है और अपने किसलिए लेने जाना ? पोपटभाई! ऐसा है या नहीं ? इतना तो अपने घर में माल पड़ा है, वह तो पहले प्रयोग करो और फिर घटे तो अपने लायेंगे। ऐसा कहे ? परन्तु यह तो घटे, ऐसा नहीं है। आहाहा!

भगवान! तेरा माल तो अन्दर ज्ञान आनन्दस्वभाव... स्वभाव.. स्वभाव.. स्वभाव है। नास्तिक को भी, इस क्षेत्र का माप कहाँ है, उसे तर्क से ख्याल नहीं कर सकता। आहाहा! कहाँ अलोक ? इस लोक-अलोक का ज्ञान कहा न यहाँ ? अलोक अर्थात् कहाँ क्या है, यह वह वस्तु ? यह उस ईश्वर की कला या लीला या वह तो कोई जगत के स्वभाव ? इस क्षेत्र के बाद

क्या होगा ? अनन्त योजन। अनन्त के अनन्त वर्ग करके चला जाये ऐसे का ऐसा। लक्ष्य, लक्ष्य लग जाये, हों! बाद में क्या होगा ? फिर ऐसे गोल होगा ?

श्रोता : .....अपनी सत्ता को स्वयं अनुभव करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस क्षेत्र की, इस सत्ता की अमाप की उसे खबर नहीं है, ऐसा मेरा कहना है। उसे खबर है ? परन्तु है कैसा ? कोई अचित्न्य क्षेत्र स्वभाव है! उसका भगवान जाननेवाला, उसके ज्ञान का अचिन्त्य बेहद स्वभाव है। उसकी अस्ति को स्वीकार किसने किया ? परन्तु जाना किसने ? उसकी तो उसे खबर भी नहीं। समझ में आया ? नास्तिक भी क्या है, ऐसा कहे। इसके बाद... बाद.. बाद.. बाद.. कहे क्या है ? इसके बाद कहीं आड़ी आती है ? क्या है ? फिर क्षेत्र आया अमुक पटेल का या अमुक। फिर कुछ नहीं है, लो! ऐसा होगा ? क्या है यह ? ओहोहो!

क्षेत्र। यह क्षेत्रज्ञ। उसका तो यह जाननेवाला है। वह क्षेत्र है, इसलिए नहीं। इतने क्षेत्र को जाननेवाला अचिन्त्यक्षेत्र! क्या पीछे क्या ? पीछे क्या ? 'नहीं' कहीं भी नहीं आवे। अस्ति ही ऐसी की ऐसी आयेगी। अस्ति ही आयेगी 'नहीं' कहीं नहीं आयेगी। ऐसे काल में कहाँ नास्ति आयेगी ? ऐसे भूतकाल, भूतकाल... बाद में.. बाद में.. बाद में.. बाद में.. कहीं 'नहीं है'-ऐसा नहीं आता। है.. है.. है.. है.. है.. है। ऐसे काल में.. है.. है.. है ही चला आयेगा। यह इसके जाननेवाले के ज्ञान में है.. है.. है.. है.. ही चला जाता है। स्वभाव ऐसा भाव है, कहीं अभाव है नहीं। शक्ति का पर के कारण अभाव, वह अलग वस्तु है। समझ में आया ? यह ज्ञान का भाव, यह आनन्द का भाव, यह स्वच्छता का भाव, यह शुद्धता का भाव, यह शान्ति-चारित्र का भाव, यह वीर्य का भाव कितना ? कैसा ? भाव में इतना ऐसा अमाप, तथापि स्वयं ज्ञेय और ज्ञान स्वयं से हो सके ऐसा है। समझ में आया ? आहाहा!

परिणति को स्वसंवेदन प्रमाण कहते हैं। देखो! पर्याय ली, पर्याय। प्रमाण की परिणति से ही यह प्रत्यक्ष है, दूसरे प्रकार से है नहीं। **उसी को आत्मानुभव व आत्मदर्शन भी कहते हैं।** ऊपर आ गया बहुत। **इस प्रकार के स्वरूपवाले स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष (जो कि सब प्रमाणों में मुख्य या अग्रणी प्रमाण है)...** देखो! सब प्रमाण में यही (मुख्य) प्रमाण है। अब छोड़ न! प्रमाण तो अपना प्रमाण अपने को हुआ, वह प्रमाण है। समझ में आया ? भगवान ज्ञान की ज्योति सूर्य प्रभु, आनन्द का बेहद सागर, वह स्वयं ज्ञेय और अपना ज्ञान से प्रमाण हुआ, वही मुख्य प्रमाण है। समझ में आया ? भगवान को पूछकर प्रमाण करना, ऐसा यह नहीं है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? अरे! प्रभु! इतना तू है, यह तुझे भान में नहीं आवे और तुझे धर्म

हो, कहाँ से हो ? धूल में से धर्म (होगा) ? अपने से ही प्रमाण है, ऐसा उसका स्वरूप है। उस स्वरूप से कम, विपरीत, अधिक माने तो वह तत्त्व के स्वरूप से विपरीत इसकी दृष्टि है। समझ में आया ?

राजा हो, वहाँ ऊँचा (मूल्यवान) खाजा तला जाता हो। पाँच सौ-पाँच सौ, दस-दस सेर का खाजा। गरीब बाघर बेचार आवे तो ऐसे देखता रहे, हों! आहाहा! अपने को मिलेगा या नहीं इसमें से ? वह दरबार गुजर गये न ? गुजर गये और पूरा गाँव खाजा का जीमाया था। रणवीर सिंह गुजर गये न! जामनगर। पूरा गाँव जीमाया। कीमती खाजा। उसे पाँच-दस लाख खर्च करना हो, उसे क्या हो ? बेचारे गरीब व्यक्ति को (ऐसा लगे कि) हमको कब मिलेगा ? भाई! पूरे गाँव को जीमना है परन्तु उसका मुँह.. गरीब व्यक्ति बाहर हो और ऐसे ये ऊँचे के थाल को ऐसे तलाते हों न अन्दर! आहाहा! बापू! गाँव का जीमन है। तुम्हें भी आयेगा परन्तु थोड़ी देर लगेगी किन्तु उसे भरोसा नहीं आता।

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा ऐसा गाया जाता है, वह मैं होऊँगा या नहीं ? मैं होऊँगा या नहीं ? बापू! तू होयेगा, यह यहाँ बात चलती है। कोई भी अच्छे घर में जीमन हो और बेचारा गरीब व्यक्ति आवे तो उसे ऐसा लगता है कि यह चीज़ मुझे देंगे या नहीं ? बढ़ी-घटी में से (देंगे या नहीं) ? यह तो पूरा गाँव जीमे। अच्छी-अच्छी चीज़ अमुक जानते हों या यह बड़ा अच्छा हो तो दस दिन से साठा (गुजराती मिष्ठान्न) बनते हों। दूसरे व्यक्ति को कुछ जीमने का न हो परन्तु बढ़े-घटे में थोड़ा माल मिलेगा या नहीं ? बेचारा इच्छा किया करता है। यहाँ ऐसा नहीं कहते हैं। यह तो माल तला जाता है, वह सबके भाग में आवे, ऐसा वह माल है। आहाहा! भाई! तू ऐसा है न, प्रभु! आहाहा! देखो न! यह प्रमाण का मुख्य प्रमाण स्वयं है। इस प्रमाण में प्रमाण स्वयं है।

तथा कहे हुए गुणों से... दो बातें करनी हैं न ? एक प्रमाण से भी अग्रणी प्रमाण स्वसंवेदन से स्वयं है और वह **कहे हुए गुणों से सम्पूर्णतया प्रकट..** शिष्य ने दो बातें ली थी न ? कि इन विशेषण से तुमने बात की परन्तु कैसा गुणवाद ? ऐसा कहा था न ? यह तुमने बात की। कैसा गुणवाद ? ऐसा कहा था न ? **ऊपर कहे हुए विशेषणों से किसका और कैसा गुणवाद ?** प्रमाण सिद्ध हुए बिना (किसका गुणवाद ?) वह ऐसा है कहते हैं, सुन न! अभी ऐसा है। **कहे हुए गुणों से...** ऐसे प्रमाण से और जितने गुण कहे (उनसे)। लोकालोक जाननेवाला गुण तेरा यहाँ है, इतना यहाँ है, हों! अनन्त आनन्द इतना यहाँ। जो कहा है, उस प्रकार से। **कहे हुए गुणों से सम्पूर्णतया प्रकट वह आत्मा योगिजनों को एकदेश विशदरूप**

से अनुभव में आता है।' धर्मी जीव को एकदेश विशद स्पष्टरूप से अनुभव में आता है। केवली को तो पूर्ण है। यहाँ तो निचले साधक की बात है। समझ में आया? आहाहा!

कहे हुए गुणों से सम्पूर्णतया प्रकट वह आत्मा योगिजनों को एकदेश विशद... स्पष्ट। देखा! विशद (अर्थात्) स्पष्ट प्रत्यक्ष **अनुभव में आता है।** इसमें कहीं ऐसी कठिन भाषा नहीं है। यह तो सादी भाषा है। चार पुस्तकें सीखी हों, ऐसी समझे ऐसी भाषा है। समझ में आया?

श्रोता : समझना चाहे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहे तो की बात है न!

इसे इनकार करे कि नहीं, इतना मैं नहीं। यह भी कहेंगे अब। इसे कारणान्तर की आवश्यकता नहीं है, कहते हैं। तू कारणान्तर, कारणान्तर पुकार कर रहा है। कुछ चाहिए... कुछ चाहिए.. कुछ चाहिए.. कुछ नहीं चाहिए, सुन! तू सम्पूर्ण पूरा है। तेरे लिए पर की कोई बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। भगवान का मार्ग तो सापेक्ष है न? निश्चय से तो निरपेक्ष ही है। यहाँ तो निश्चय से बात करते हैं। निश्चय से निरपेक्ष वस्तु है। व्यवहार से हो वह जानने के लिए बात है, उसकी बात यहाँ गौण है। समझ में आया?

दोहा – निज अनुभव से प्रगट है, नित्य शरीर-प्रमान।
लोकालोक निहारता, आतम अति सुखवान।।२१।।

इसका वान ही, इसका रूप ही सुखवाला, आनन्दवाला है। इसका वान ही आनन्द का है। आहा! ऐई! अतीन्द्रिय आनन्द इसका रूप है। आहाहा! अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का रस का कन्द! और **लोकालोक निहारता,...** लोकालोक को जानना, यह तो इसका स्वरूप ही है। इतना इसका स्वभाव है, इतना प्रमाणवाला इसका स्वभाव है। अर र! भगवान के नाम से कितना कर दिया अभी। अरे! प्रभु! क्या करे? ऐसा करते हैं? यह द्वेष का अंश अन्दर आता है। ऐसा भगवान आत्मा, उसे ऐसा कहते हैं। स्वभाव में तो कुछ है नहीं। ऐसा कैसे कहते हैं? ऐसा विकल्प स्वभाव में तो है ही नहीं। समझ में आया?

निज अनुभव से प्रगट है,... देखो! अपने अनुभव से प्रगट है। **नित्य शरीर-प्रमान..** वह इतने प्रमाण में है। लोकालोक को जाननेवाला परन्तु रहनेवाला शरीर प्रमाण, लोकालोक को जाननेवाला परन्तु रहनेवाला शरीर के प्रदेश (आकार) प्रमाण। बहुत खुलासा किया इसमें से, हों! वह वेदान्ती व्यापक कहें और अमुक कहें और अमुक कहें (वह) सब निकाल डाला। यह है, वह इस प्रकार से वस्तु है। यह अनुभव से ही प्रमाण हो सके ऐसी है। स्वानुभूत्या चकासते।

यहाँ पर शिष्य कहता है कि यदि इस तरह का आत्मा है तो उसकी उपासना कैसे की जानी चाहिये ? तो उसकी सेवा किस प्रकार करना ? कोई साधन-वाधन दूसरा होगा या नहीं ? भगवान की सेवा करना, परमात्मा की पूजा, दर्शन (करना), हमेशा दो-चार घण्टे भगवान के पास बैठना, दो-चार घण्टे बैठना, दो-चार-पाँच घण्टे शास्त्र-वास्त्र पढ़ना, ऐसा कुछ साधन-फाधन है या नहीं ? भाई ! वीतराग का मार्ग ऐसा है कि जगत को तो खबर नहीं, सुना नहीं। उसे जरा बाहर का (माहात्म्य) होवे न ! आहाहा ! भक्ति, नाच होवे तो आहा ! वाह ! वाह ! लोगों को ऐसा लगे, लो ! धर्म करे न ! गजब धर्म कराते लगते हैं ! सब भ्रम है। ऐई ! 'पूजा करने का मेरा भाव जागा' वहाँ लोगों को (लगे कि) आहा ! क्या आता है पहला शब्द ? 'महावीर तारो रंग लाग्यो रे... रंग लाग्यो महावीर तारो।' लोगों को ऐसा लगे कि आहाहा ! यह कितना धर्म करता है और कितना कराता है ! भ्रमणा भारी, भाई ! ऐई !

यहाँ तो दूसरा कहना है कि उसमें यदि माहात्म्य आ जाता है तो स्वभाव का माहात्म्य नहीं रहता। ऐसे माहात्म्य से धर्म प्राप्त करते होंगे और ऐसे माहात्म्य से धर्म होता होगा ? और कहनेवाले को ऐसे भाव से उसे धर्म होता होगा ? वह तो विकल्प है, वाणी तो जड़ है। ऐई ! 'महावीर तारो रंग लाग्यो...' तो (ऐसा हो जाये) आहाहा !

श्रोता : हजारों लोग बोल जायें।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोल जाये। बात ही यह है कि इसे मूल माहात्म्य की खबर नहीं और कहाँ लिप्त हो जाता है, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा !

श्रोता : नाम तो महावीर का आवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : महावीर का (आवे)। परन्तु महावीर कौन सा ? महावीर यह या दूसरा ? आहाहा !

श्रोता : अपने को अपना माहात्म्य घटाना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भई ! यहाँ तो जैसा है वैसी बात है। जिसका हिस्सा जितना हो, उतना हो। उसमें कोई ऐसा मान ले कि अपने आहा ! ...भारी धर्म किया और बहुत धर्म कराया ! पाँच लाख खर्च किये और यह अधिक खर्च करनेवाले हैं अभी ? अहमदाबाद का कुछ पंचकल्याणक है या नहीं ? हाथी निकालेंगे... ऐ.. हिम्मतभाई ! आहा ! भाई !

जिसे विकल्प और वाणी और पर का माहात्म्य आया, उसे स्व का माहात्म्य अन्दर नहीं आता। ओहो ! माहात्म्य स्वयं का है, वह पर का माहात्म्य है नहीं। लोगों को कठिन लगता है।

भाई! क्या हो? समझ में आया? कहो, अब क्या कहना होगा? दो बातें की। आहाहा! देखो! यह कहते हैं।

इसमें आत्मध्यान या आत्मभावना करने के उपायों को पूछा गया है। शिष्य पूछता है। समझ में आया? हमें ध्यान कैसे करना और आत्मा की एकाग्रता कैसे करना?

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मवान्ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम्।।२२।।

ओहोहो! **अर्थ – मन की एकाग्रता से इन्द्रियों को वश में कर...** एकाग्रता शब्द से स्वसन्मुख की एकाग्रता। इन्द्रियों को वश अर्थात् इन्द्रियों की ओर का लक्ष्य छोड़कर। **ध्वस्त–नष्ट कर दी है, स्वच्छन्द वृत्ति...** ध्वस्त–नष्ट की है स्वच्छन्द वृत्ति। स्वच्छन्द वृत्ति अर्थात् परसन्मुख के विकल्प की स्वच्छन्द वृत्ति। **ऐसा पुरुष अपने में ही...** भगवान ज्ञान–आनन्दस्वरूप प्रभु अपने में.. पहले नास्ति की बात की। एकाग्रता से इन्द्रियों को, स्वच्छन्द वृत्तियों को वश करे। अब अस्ति से (बात करते हैं)। **ऐसा पुरुष अपने में ही स्थित आत्मा को...** अपने में स्थित ज्ञान, आनन्द परिपूर्ण ऐसे आत्मस्वभाव को **अपने ही द्वारा...** स्वरूप की शुद्धि की निर्विकल्प धारा से ध्यावे।

अपने ही द्वारा... आत्मा द्वारा। आत्मा अर्थात्? शुद्धभाव की पर्याय द्वारा आत्मा को ध्यावे, वह इसका उपाय है। यह तो इष्टोपदेश है। ऐसे उपदेश को इष्ट कहते हैं। कोई ऐसा कहे कि बाहर से मिलेगा, निमित्त से मिलेगा, वह उपदेश इष्ट नहीं है, भाई! भगवान का वह हितकर उपदेश है ही नहीं। ऐसा पूज्यपादस्वामी सिद्ध करते हैं। व्यवहार के विकल्प से, निमित्त से, इससे, इससे आत्मा की श्रद्धा, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और अनुभव होगा, यह उपदेश इष्ट उपदेश है ही नहीं। समझ में आया? फिर बेचारे शोर मचावे न? इन्दौर में और तुम्हारे दिल्ली में। कोई दिक्कत नहीं। यह तो होने दो न। यह तो... आहाहा!

कहते हैं, भाषा क्या है? देखा? **अपने में ही...** अर्थात् स्वरूप में **स्थित आत्मा को अपने ही द्वारा ध्यावे।** निर्विकल्प द्वारा, अपने द्वारा ध्यावे। यह एक साधन, उसका अन्तर में है। बाहर में कोई विकल्प–फिकल्प साधन–फाधन आत्मा के ध्यान के लिये, मोक्ष के मार्ग के लिये है ही नहीं। आहाहा! निश्चय परम निरपेक्ष ही है। व्यवहार से ज्ञान करने के लिये बात अभी नहीं है। समझ में आया? इसकी व्याख्या विशेष आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

११

श्री समयसार, गाथा १, प्रवचन ६
दिनांक १२-०६-१९७८

समयसार, पहली गाथा चलती है। टीका फिर से लेते हैं।

टीका - यहाँ (संस्कृत टीका में) अथ शब्द मंगल के अर्थ को सूचित करता है। पहला **अथ** शब्द पड़ा है। **अथ प्रथमत** - ऐसा संस्कृत शब्द पड़ा है। **शब्द मंगल के अर्थ को...** अर्थात् ? साधक धर्म की शुरुआत होती है। आहाहा! **अथ** अर्थात् अब। अनन्त काल से जो साधक स्वरूप, उसका स्थान नहीं था, ऐसा चैतन्यस्वभाव, उसकी अब साधकरूप से शुरुआत होती है। यही **अथ** अर्थात् नयी शुरुआत है। इसका नाम **अथ,** यही मांगलिक है। आहाहा! यह तो **अथ** संस्कृत टीका के शब्द का अर्थ हुआ।

अब, **ग्रन्थ के आदि में...** पाठ में, गाथा में ऐसा आया न ? **ध्रुव, अचल और अनुपम...** परन्तु यहाँ अर्थ में मुख्य **वंदित्तु सव्व सिद्धे** - ऐसा जो शब्द पड़ा है, उसमें से **वंदित्तु** का अर्थ निकालकर और सर्व सिद्धों को मेरी पर्याय में स्थापित करता हूँ और श्रोता की पर्याय में अनन्त सिद्धों को स्थापित करता हूँ। आहाहा! अनन्त-अनन्त सिद्धों को (स्थापित करता हूँ - ऐसा कहकर) एक तो अस्तित्व सिद्ध किया। भले संसारी प्राणी अनन्तगुणे हों, परन्तु सिद्ध भी अनन्त हैं और वे भी आदिरहित हैं, अनादि के हैं। ऐसा नहीं है कि पहले संसार था और फिर सिद्ध हुए! आहा! ऐसी वस्तुस्थिति! सिद्ध होते हैं, वे तो संसार में से होते हैं, इसलिए पहला संसार और पीछे सिद्ध - ऐसा नहीं है।

एक व्यक्ति की अपेक्षा से पहला, परन्तु सामान्य अपेक्षा से तो सिद्ध अनन्त अनादि से हैं। आहाहा! जैसे आकाश के अन्त का क्या है माप ? आहा! क्या वह कहलाये ? क्षेत्र, क्षेत्र, क्षेत्र की बेहदता क्या है ? यह जैसे स्वभाव के क्षेत्र की बात है; वैसे यह संसारी और सिद्ध दोनों स्वभाव अनादि के हैं। आहा! कितने ही पण्डित कहते हैं, सिद्ध की अपेक्षा संसार आठ वर्ष बड़ा। आठ वर्ष के बाद सिद्ध होते हैं न! वह तो एक व्यक्ति की अपेक्षा से। समुच्चय अनादि-अनन्त सिद्ध भी हैं और संसारी भी हैं। बापू! आहाहा!

जैसे क्षेत्र के अमाप का माप ही मस्तिष्क में न आवे, वहाँ अलोक.. अलोक.. अलोक.. अलोक.. अलोक.. अलोक.. अलोक.. अलोक.. अलोक.. अलोक.. अलोक.. अलोक.. तो चला ही जाता है। अलोक के बाद क्या? बाद.. बाद यह। आहाहा! ऐसे क्षेत्र की जैसे अमाप की अस्ति की सिद्धि है; वैसे सिद्ध भी अनादि के सिद्ध हैं। आहाहा!

वे कैसे हैं सिद्ध? **सर्व सिद्धों को...** एक शब्द नहीं। एक सिद्ध नहीं, अनन्त सिद्ध हैं। अनन्त, यह शब्द प्रयोग नहीं किया; 'सर्व सिद्ध' प्रयोग किया है। आहा! जो अनन्त काल (हुआ), छह महीने आठ समय में छह सौ आठ (जीव) मुक्ति प्राप्त करें, वे इस अनन्त काल में, तो कितना आँकड़ा (अंक) हुआ? आहाहा! यह सर्व.... आहाहा!

यहाँ तो दूसरा कहना है, इतने सब सर्व सिद्धों को मैं **वंदित्तु** शब्द ऐसा कहा है। वंदित्तु में से सर्व सिद्धों को मैंने मेरी पर्याय में स्थापित किया है, ऐसा निकाला। आदर किया है। मेरी ज्ञान की (पर्याय में आदर किया)। राग पर्याय भिन्न रह गयी। मेरी ज्ञान की पर्याय भले अल्पज्ञ है और श्रोता की भी ज्ञान की पर्याय अल्पज्ञ है। दोनों का ख्याल है, तथापि उस अल्पज्ञ पर्याय में अनन्त सिद्धों को जानने की उसकी ताकत है। आहाहा! भले मति-श्रुतज्ञान की पर्याय हो तो भी अनन्त सिद्धों को जानने की ताकत है। अनन्त सिद्ध हैं, उनका ज्ञान की पर्याय आदर करती है अर्थात् वन्दन करती है अर्थात् अपनी पर्याय में उन्हें स्थापित करती है। इसका नाम वन्दन करते हैं, ऐसा कहा। आहाहा!

सर्व सिद्धों को मेरी पर्याय में भावस्तुति से और द्रव्यस्तुति से स्थापित करता हूँ, ऐसा आया न? है न? **भाव-द्रव्यस्तुति से...** अर्थात् मेरी पर्याय में मैं मेरा आत्मा पूर्ण शुद्ध है, वह आराधक और मैं आराध्य। मैं आराध्य वस्तु और आराधक मेरी पर्याय। निर्विकल्प समाधि, निर्विकल्प शान्ति, वह आराधक और त्रिकाली वस्तु आराधने के योग्य। ऐसी निर्विकल्प समाधि का नाम यहाँ भावस्तुति कहने में आता है। आहाहा! पर्याय में अनन्त सर्व सिद्ध (स्थापित किये) भाई! यह संसार भूल जाते हैं। आहाहा! राग भी भूल जाते हैं।

मेरी ज्ञानपर्याय में मैं कुन्दकुन्दाचार्य ने **वंदित्तु** कहा उसमें से अमृतचन्द्राचार्य ने एक हजार वर्ष पश्चात् यह भाव इसमें है, ऐसा निकाला। आहा! **वंदित्तु सव्वसिद्धे** में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहना चाहते हैं, वह मैं अर्थ करता हूँ। हजार वर्ष पहले से कहते हैं। क्योंकि जहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान खिला है, वह कला सबको जान लेती है। आहाहा! यहाँ सिद्ध (कहकर) एक तो सर्व सिद्ध (सिद्ध / साबित) किये अर्थात् कोई एक ही आत्मा

माननेवाला (ऐसा मानता है कि) पवित्र हो, इसलिए सब एक ही हो जाते हैं, उसका निषेध किया है। पवित्र हो गये, परमात्मा होने के बाद भिन्न क्या रहे ? ऐसा कहनेवाले का निषेध किया। बापू! प्रत्येक परमात्मा अनन्त हैं। उनकी सत्ता भिन्न है, सर्व है; एक है, ऐसा नहीं। आहाहा!

सर्व सिद्धों को... संख्यातीत अनन्त उन सब सिद्धों को। आहाहा! मेरी अल्पज्ञ पर्याय में उन्हें रखता हूँ। आहाहा! मेरी पर्याय की पेटी में अनन्त सिद्धों को बैठाता हूँ, पधराता हूँ, आहाहा! मेरी अल्पज्ञ पर्याय में अनन्त सर्व सिद्धों को बैठाता हूँ। आमन्त्रण करके (कहता हूँ कि) प्रभु! यहाँ पधारो। आहाहा! मेरी पर्याय आपको यहाँ रखने जैसी योग्यता (रखती) है। आहाहा! गजब काम किया है।

श्रोता : अमृत ही भर दिया साक्षात्!

पूज्य गुरुदेवश्री : भर दिया है।

वंदित्तु सव्व सिद्धे गजब काम! प्रभु! एक तो अनन्त सिद्धों की सिद्धि की। मेरे पहले अनन्त सिद्ध हो गये हैं। ऐसे सिद्धों को सिद्ध करके, मेरी पर्याय अल्पज्ञ होने पर भी उसमें अनन्त सिद्धों को स्थापित करूँ, इतनी ताकत है। मेरी पर्याय की इतनी ताकत है कि अनन्त सिद्धों को रख सके। अनन्त सिद्ध हैं, ऐसे पर्याय रख सकती है। आहाहा!

सर्व सिद्धों को भावस्तुति से... सिद्ध परद्रव्य हैं, इसलिए उन्हें अकेला द्रव्य नमस्कार होता है, ऐसा नहीं-ऐसा कहते हैं। आहाहा! मेरा भाव नमस्कार शामिल है। मैं एक पूर्णानन्द प्रभु, इस आराधने के योग्य वह मैं और निर्विकल्प पर्याय वह आराधक भी मैं, ऐसी भावस्तुति से मेरी पर्याय में सिद्ध को स्थापित करता हूँ। आहाहा! वन्दन करता हूँ। गजब टीका है! आहाहा! अभी तो ऐसी टीका कहीं (है नहीं)। आत्मख्याति टीका गजब है!

श्रोता : स्पष्टीकरण भी साहेब गजब है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें है। इसमें कितना है न इसमें! आहाहा!

ऐसे अनन्त सिद्धों को मेरी अल्पज्ञ पर्याय में, ऐसा मैं कौन, ऐसे नहीं परन्तु मेरी पर्याय अनन्त सिद्ध को सम्हाल सकती है। अनन्त सिद्ध अर्थात् अनन्त केवलज्ञानी, अनन्त सर्वज्ञ; एक सर्वज्ञ को स्वीकार करे, (ऐसा नहीं), यहाँ तो अनन्त सर्वज्ञ को स्वीकार करे, ऐसी मेरी अल्पज्ञ पर्याय की ताकत है। आहाहा! गजब काम किया है न! मैं भावस्तुति से तो स्थापित करता हूँ परन्तु विकल्प द्वारा भी सिद्ध को स्थापित करता हूँ। व्यवहार। मेरी पर्याय में स्थापित करता हूँ। आहाहा! ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य जो पाठ में कहते हैं, उसे अमृतचन्द्राचार्य इसमें यह

भाव भरा है, ऐसा खोलते हैं। आहाहा! जैसे भैंस के थन में दूध भरा हो और होशियार महिला निकाले, वैसे इस पाठ में भाव भरे हैं, वे अमृतचन्द्राचार्य तर्क से, स्पष्ट तर्क से उस भाव को बाहर खोलते हैं। आहाहा! उनकी बलिहारी है, बापू! आहाहा!

भावस्तुति से आदर करता हूँ अर्थात् भावस्तुति से भी मेरी पर्याय में निर्विकल्पदशा में उन्हें स्थापित करता हूँ। आहाहा! और विकल्प की दशा में भी उन अनन्त सिद्धों को वन्दन (करता हूँ)। पररूप से हैं, इसलिए वन्दन करता हूँ तो विकल्प है, परन्तु उस विकल्प में भी अनन्त सिद्धों को मैं स्थापित करता हूँ। आहाहा! ऐसी बात। एक बात (हुई)।

भाव-द्रव्यस्तुति से **अपने आत्मा में...** मेरे आत्मा में। आहाहा! देखो तो सही! मांगलिक किया। हम अल्प काल में सिद्ध होनेवाले हैं, हों! ऐसा कहते हैं। हमने अनन्त सिद्धों का प्रस्थाना पर्याय में रखा है। आहाहा! हम भी भविष्य में सिद्ध होनेवाले हैं। आहाहा! तो अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. सिद्धों को निर्विकल्पदशा द्वारा और विकल्प द्वारा मेरी अल्पज्ञ पर्याय में और राग में उन्हें स्थापित करता हूँ। आहाहा! ज्ञान में तो जानकर स्थापित करता हूँ और राग में, विकल्प में बहुमान आकर स्थापित करता हूँ क्योंकि राग कुछ जानता नहीं है। आहाहा!

ऐसे अनन्त सिद्ध भगवान को **भाव-द्रव्यस्तुति से अपने आत्मा में...** एक बात। **तथा पर के आत्मा में...** आहाहा! समयसार में तो गजब किया प्रभु! आहाहा! श्रोता की पर्याय में, श्रोता भले अप्रतिबुद्ध हो, अभी अज्ञानी है, तथापि प्रभु! तू श्रोतारूप से आया है। हम सुनाने जाते नहीं, श्रोतारूप से सुनने आया है। आहाहा! इस स्थिति को सुनने आया है तो तेरी पर्याय में भी इतनी योग्यता हमें लगती है कि उस पर्याय में अनन्त सिद्धों को हम स्थापित करते हैं। आहाहा! और तुम्हारे विकल्प द्वारा भी अनन्त सिद्धों को तुम्हारी पर्याय में स्थापित करते हैं। आहाहा! भाव-द्रव्य दोनों से है न? स्व और पर में दोनों में (स्थापित करते हैं)। आहाहा!

ओहो! सिद्ध को नीचे उतारा है। सिद्ध तो वहाँ है। प्रभु! हमसे दूर नहीं रह सकोगे। आहाहा! हमारी पर्याय में हम प्रस्थाना रखते हैं न! उसका काल आयेगा, इसलिए पूर्ण सिद्ध हो जाऊँगा। ऐसा यहाँ तो श्रोता के लिये भी इतना जोर देते हैं। ऐसे ही श्रोताओं को श्रोतारूप से गिनने में आया है, आहाहा! कि जिनकी अल्पज्ञ पर्याय में भी सुनने के लिये आये हैं। सिद्ध का स्वरूप और आत्मा का स्वरूप सुनने के लिये आये हैं तो उनकी पर्याय में भी हम तो अनन्त सिद्धों को स्थापित करते (हैं) और वे स्थापित कर सकते हैं, ऐसी हम योग्यता देखते हैं। आहाहा!

पर के आत्मा में स्थापित करके... प्रभु! परन्तु पर आत्मा है न, तुम्हारे क्या? बापू! विकल्प उठा है न, **वोच्छामि** ऐसा कहते हैं न? कहूँगा, ऐसा हुआ न? **वोच्छामि** शब्द पड़ा

है। कहूँगा, ऐसा है। तब कहूँगा किसे ? श्रोता को। आहाहा! मैं उन्हें कहूँगा। **वोच्छामि** इसका अर्थ भावार्थ में करेंगे। यथास्थान जो शब्द चाहिए, उस स्थान में वे शब्द आये हैं, इसका नाम परिभाषण सूत्र कहने में आता है। भावार्थ में आयेगा। आहाहा!

आत्मा में स्थापित करके, पर के आत्मा की पर्याय में स्थापित करके... ऐसे ही श्रोताओं को लिया है... आहाहा! कि जिनकी पर्याय में अनन्त सिद्ध सम्हाले जा सकेंगे। आहाहा! उनकी पर्याय अनन्त सिद्धों को स्वीकार करेगी और आदर करेगी। उनका आदर करेगी। ऐसे श्रोताओं को श्रोतारूप से गिना है। आहाहा! और वे श्रोता भी... आहाहा! जब अनन्त सिद्धों को स्थापित करते हैं, प्रभु! जैसे हम सिद्धपने को प्राप्त करेंगे परन्तु वह टोली भी सिद्धपने को प्राप्त करेगी। आहाहा! नहीं प्राप्त करे, यह सवाल हमारे पास नहीं है। आहाहा! श्लोक में नहीं आया कि देह को, आत्मा को भिन्न बताया। कौन नहीं मानेगा ? मानेगा ही। आहाहा!

ऐसे अस्तित्व का पूर्ण सर्वज्ञ पर्याय का अस्तित्व जहाँ हम सिद्ध करके स्थापित करते हैं... शक्ति में तो वह पूर्ण है और तू भी शक्ति में पूर्ण है, परन्तु प्रगट हुई पर्याय को, तेरी शक्ति में है परन्तु पर्याय में नहीं, इससे पर्याय में हम स्थापित कर तुझे पर्याय में सिद्ध का लक्ष्य (रखकर) अब हमें सुनना। आहाहा! सिद्ध का लक्ष्य करके यह सुनना। आहाहा! जरूर सिद्ध होगा। आहाहा!

श्रोता : वर्तमान पर्याय तो अल्पज्ञ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अल्पज्ञ है परन्तु इतनी ताकत है कि तू श्रोतारूप से आया है और हमें सुनने के लिये तू (आया है) तो हम ऐसा कहते हैं कि तेरी पर्याय में अनन्त सिद्धों को रखने की ताकत है। आहाहा! मैं पर की पर्याय में स्थापित करता हूँ, इसका अर्थ क्या ? तेरी पर्याय की इतनी ताकत मैं देखता हूँ। मेरे ज्ञान में ऐसा आया (कि) तेरी पर्याय की इतनी ताकत है और तू भी तद्नुसार मानेगा। आहा! गजब काम किया है न!

यह **वंदित्तु सव्व सिद्धे।** आहाहा! विकल्प है, द्रव्य से तो बात की परन्तु निर्विकल्पसहित का विकल्प है। आहाहा! ऐसा तुझे—सुननेवाले की पर्याय में भी अनन्त सिद्धों को हम स्थापित करते हैं। प्रभु! तू नहीं रख सकेगा, यह प्रश्न ही नहीं है। आहाहा! अनन्त सिद्धों को पर्याय में स्थापित करते हैं, इसलिए तेरा लक्ष्य अल्पज्ञरूप से नहीं रह सकेगा। आहाहा! अनन्त सर्वज्ञों को पर्याय में स्थापित किया तो तेरा लक्ष्य सर्वज्ञ पर जायेगा और लक्ष्य रखकर अब हमारा सुनना। आहाहा! कनुभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! भाग्य!

ये अमृतचन्द्राचार्य हजार वर्ष पहले **वंदित्तु सव्व सिद्धे** का अर्थ करते हैं। कहाँ

(अमृतचन्द्राचाय से) हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य वे भी स्वयं छद्मस्थ हैं। बापू! छद्मस्थपना मत देख। आहाहा! हमारा प्रभु सर्वज्ञस्वभावी और हमारी पर्याय में अनन्त सर्वज्ञों को हमने स्थापित कर रखा है। वह अब बाहर नहीं जा सकेगी। आहाहा! हमारा आत्मा अब सिद्ध से बाहर नहीं रह सकेगा। आहाहा! कौन जाने क्या भरा है इसमें!! इतनी भरी है अन्दर शक्ति और उसका संग्रह, ओहोहो!

ऐसे पर के आत्मा को स्थापित कर। आहाहा! यहाँ तक तो अभी आत्मा कहनेवाले और सुननेवाले दो के आत्मा में स्थापित कर, यहाँ तक बात की। अब कहना क्या है? समय नाम का प्राभृत। कहना है समय नाम का प्राभृत। पश्चात् समय का अर्थ पदार्थ भी होता है। मूल अर्थ आत्मा होता है। आत्मा के बाद सब पदार्थ आ (जाते हैं)। आत्मा का ज्ञान होने पर, स्व का ज्ञान होने पर, पर का ज्ञान उसमें आ जाता है। क्योंकि एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का जानना ऐसी पर्याय की ताकत है। जीव की एक समय की पर्याय में, छह द्रव्य, छह द्रव्य में अनन्त सिद्ध। एक समय की पर्याय में अनन्त सिद्ध और अनन्त निगोद, और अनन्त परमाणु, अनन्त स्कन्ध एक समय में पर्याय में जानने की शक्ति है। आहा! ऐसी एक समय की पर्याय की ऐसी ताकत है, ऐसी अनन्त पर्याय का धारक गुण का धारक प्रभु... आहाहा! उसके लक्ष्य में रहकर अब हमारी बात सुन! आहाहा! समझ में आया?

इस समय नामक प्राभृत का भाववचन... मेरे क्षयोपशम में जो ज्ञान की दशा उघड़ी है, उस उघड़ी (दशा) द्वारा मैं कहूँगा। निमित्त है न? वाणी और विकल्प। उस भाववचन द्वारा... भाववचन अर्थात् यहाँ विकल्प नहीं। भाववचन अर्थात् ज्ञान का विकास जो पर्याय में है, जो मैं समयसार को कहना चाहता हूँ, उसका मुझे ज्ञान विकास में है, उस विकास को हम भाववचन कहते हैं। आहाहा! जो समयसार कहा जायेगा, उसका मुझे यहाँ ज्ञान है तो कहूँगा, तो उस उघड़े हुए ज्ञान को भाववचन कहा जाता है। समझ में आया? कल तो वे डॉक्टर थे न, इसलिए विशेष स्पष्टीकरण समझे नहीं, इसलिए नहीं आया। यह तो बाहर में फँस गये हों। यह बातें... बापू! यह तो अत्यन्त निवृत्ति की बात है। आहाहा!

उसके साथ ऐसा कहा कि द्रव्यवचन अर्थात् विकल्प आदि। उसमें से जो पुण्य बँधेगा, उसमें भविष्य के भव में सब संयोग हमको धर्म का ही मिलेगा। द्रव्यस्तुति हुई न? आहा! हम भगवान के पास, गणधरों, सन्तों के पास या वाणी (होगी), उस स्थान में हम भविष्य में जानेवाले हैं। हमारा पूरा करने के लिये। आहाहा! भाव से तो वर्तमान हम निर्विकल्प समाधि से स्तुति करते हैं परन्तु विकल्प से भी करते हैं। क्योंकि हमें खबर है कि अभी इस भव में

सर्वज्ञ नहीं हैं। आहाहा! स्थापित करते हैं परन्तु पर्याय में सर्वज्ञपना इस भव में नहीं होगा, ऐसी हमें खबर है। आहाहा! इसलिए विकल्प में से ऐसा पुण्य बँधेगा कि जहाँ सर्वज्ञ परमात्मा होंगे, समवसरण होगा, गणधर होंगे। उस विकल्प के फल में पुण्य बँधकर ऐसा संयोग मिलेगा। आहाहा! स्वभाव की धारा से स्वभाव पूर्ण होगा और विकल्प की धारा से पूर्ण को समझानेवाले का संयोग प्राप्त होगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, बापू!

अरे! परमात्मा सन्तों का पेट (रहस्य) बहुत बड़ा!! आहाहा! उनकी ज्ञानकला, समकित कला, चारित्रकला की क्या बातें करना!! आहाहा! वे मुनिराज स्वयं ऐसा कहते हैं, हों! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, हजार वर्ष बाद हुए। प्रभु! परन्तु तुम तो प्रभु के पास गये नहीं थे न? कुन्दकुन्दाचार्य तो गये थे और जिससे समकित की दशा भले क्षायिक न हो परन्तु वहाँ गये थे, इसलिए अप्रतिहत दशा तो हो, परन्तु तुम गये नहीं थे न? हम भाव भगवान के पास गये हैं। आहाहा! और उसमें से ज्ञान की धारा आती है, उसके द्वारा कहूँगा। आहाहा! मेरे वैभव से कहूँगा, ऐसा कहते हैं। पीछे कहेंगे कि मुझे केवली ने और श्रुतकेवली ने सुनाया है। निमित्त से कहेंगे, भगवान ने हमें सुनाया है। श्रुतकेवलियों के साथ चर्चा होकर सुना है, प्रभु! आहाहा! हम ऐसे अकेले प्राणी पंचम काल के नहीं कि... परन्तु हमने भगवान के पास सुना है। आहाहा! और सन्तों के पास-श्रुतकेवलियों के पास मैंने चर्चाएँ की हैं, प्रभु! मेरा आत्मा पंचम काल में भले हो, परन्तु ऐसी स्थिति में था, वहाँ से आया हुआ है। आहाहा! गजब टीका है। आहाहा!

भाव और द्रव्य को स्थापित करके। समय नाम (प्राभृत का) **भाववचन और द्रव्यवचन से परिभाषण...** परिभाषण का अर्थ करेंगे। जहाँ-जहाँ चाहिए वहाँ-वहाँ वह स्थापन करना, शास्त्र का रचना, इसका नाम परिभाषण। परि (अर्थात्) समस्त प्रकार से कहना। अर्थात् जिस शैली से, जिस प्रकार से जिस काल में, जिस क्षेत्र से उसके योग्य शब्द हों उन्हें रचना, उसका नाम परिभाषण। पंचम काल के प्राणी के लिये कहते हैं और हम पंचम काल में हैं तो उसके योग्य भी परिभाषण होगा। आहाहा! समझ में आया?

शुरु करते हैं... भाषा 'परिभाषण करते हैं', ऐसा नहीं लिया। शुरु करते हैं। ज्ञान के विकास में से कहने के लिये शुरु करते हैं। आहाहा! हम छद्मस्थ हैं और शुरु करते हैं। आहाहा! परन्तु शुरु किया, ऐसा उनका पूर्ण हो गया। पूर्ण समयसार हो गया। आहाहा! समझ में आया? कहते समय ऐसा कहें, शुरु करते हैं, शुरु करते हैं। आहाहा! पूर्ण होना, उसके लिये काल (चाहिए) परन्तु यहाँ पूर्ण तो हो गया उन्हें, ४१५ श्लोक और टीका पूर्ण हो गयी। पूर्ण हो जायेगा, पूर्ण हो जायेगा। आहाहा!

परिभाषण शुरु करते हैं... ज्ञान की धारा में हमें जो कहना है, वह हमने भगवान के पास सुना है, श्रुतकेवली के पास चर्चा की है और हमें अन्दर में से स्वयं से भी भासित हो गया है। उसमें से शुरु करते हैं। आहा! गजब करते हैं! कहूँगा, ऐसा नहीं कहा। परिभाषण करूँगा, (ऐसा नहीं कहा) भाई! पण्डितजी! शुरु करते हैं। गजब बात करते हैं। क्या कहते हैं, प्रभु!! आहाहा! '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं**' इतना तो कहा परन्तु वापस कहा '**जदि दाएज्ज**' यदि दिखाने में आवे... मैं छद्मस्थ हूँ। आहाहा! मेरा नाथ और तेरा नाथ, ऐसे आत्मा को मैं कहने के लिये शुरु करता हूँ, परन्तु यदि दिखाऊँ न, '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं**' दिखाता हूँ, दिखाता हूँ परन्तु दिखाऊँ तो... आहाहा! प्रभु! तू श्रोतारूप से आया है, सिद्ध को स्थापित किया है। आहाहा! अनुभव से प्रमाण करना। आहाहा!

शुरु करते हैं परन्तु शुरु किया, यह इन्हें तो पूर्ण हो गया। टोडरमलजी ने शुरु किया परन्तु पूर्ण नहीं हुआ। मोक्षमार्गप्रकाशक शुरु किया, परन्तु पूर्ण नहीं हुआ। यह सन्त कहते हैं कि मैं शुरु करता हूँ। अभी भी पूर्ण हो जायेगा। आहा! **शुरु करते हैं - ऐसा श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।** आहा! ऐसा श्री कुन्दकुन्दाचार्य... आहाहा! सन्त आचार्य ऐसे वाणी द्वारा यह कहते हैं। है तो सब वस्तु निर्विकल्प और निर्विकल्पदशा में सिद्ध रहे हैं परन्तु मैं इस प्रकार वाणी द्वारा उस वस्तु की स्थिति का वर्णन शुरु करता हूँ, शुरु करता हूँ। आहाहा!

'**वोच्छामि**' ऐसा कहा न? भाई! उसमें से यह निकाला है। शुरु करते हैं। '**वंदित्तु सर्व सिद्धे**' सर्व सिद्धों को स्थापित कर मेरे और तेरे आत्मा में भाव और द्रव्यस्तुति से, भाव और द्रव्यवचन से... आहाहा! शुरु करते हैं। आहा! मैं कहता हूँ, ऐसा न लेकर, शुरु करते हैं-ऐसे शब्द हैं। पाठ में '**वोच्छामि**' शब्द पड़ा है। 'मैं' कहता हूँ। इसका अर्थ अमृतचन्द्राचार्य ने यह निकाला। आहाहा! यह भाव है, वही निकाला है, हों! यह '**वोच्छामि**' कहा भले, परन्तु उसमें अर्थ यह है। आहाहा! शुरु करता हूँ, कहने का शुरु करता हूँ। आहाहा!

श्रोता : गाथा में तो भाव-द्रव्यवचन नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प उठता है, वह द्रव्यवचन है। विकल्प है, वही द्रव्यवचन है। वाणी, वाणी तो असद्भूतव्यवहार से द्रव्यवचन है। विकल्प उठता है, वह अन्तर्जल्प है। निर्विकल्पता है, वह तो अन्तर शान्ति समाधि है। भावनमस्कार और भावस्तुति है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। ऐसा **श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं...** अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य टीकाकार यह कहते हैं न!

थोड़ा परन्तु सत्य अन्दर हो वह होना चाहिए न ? आहाहा ! हम शुरु करते हैं, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं समयसार कहूँगा, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, ऐसा न लेकर 'शुरु करता हूँ' ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। आहाहा ! शब्द-शब्द की कीमत है यहाँ तो ! यह तो सन्तों की वाणी है, यह केवली के रहस्य जिसने खोले हैं !! आहाहा !

प्रभु ! तू भी बड़ा है। तेरी बात की महिमा है, बापू ! आहाहा ! तेरी पर्याय में अनन्त सिद्धों को स्थापित किया, अब तेरी पर्याय की महिमा (कैसी) ! द्रव्य की तो क्या बात करना ! आहाहा ! परन्तु तेरी पर्याय में... आहाहा ! अनन्त सिद्धों को जहाँ स्थापित किया, अब उसे राग का आदर रहेगा नहीं। अल्पज्ञता में उन सिद्धों को स्थापित किया, वह अल्पज्ञरूप से रह नहीं सकेगा। आहाहा ! वह सर्वज्ञस्वभावी भगवान की बात करेगा प्रभु ! तो सर्वज्ञस्वभाव में ही तू जायेगा और सर्वज्ञ होगा। आहाहा ! निःशंक, निःसन्देह ऐसा तू जान। आहाहा !

यहाँ भव्य होऊँगा या अभव्य होऊँगा ? रहने दे ऐसी बात। किसने कही है तुझे ऐसी ? आहाहा ! भव्य-अभव्य की मार्गणा का निषेध किया है। मार्गणा में भव्य, अभव्य नहीं-आत्मा में भव्य नहीं और अभव्य नहीं। भव्य होवे तो सिद्ध में भी भव्यपना रहना चाहिए। सिद्ध में भव्यपना रहता नहीं। सिद्धपने में भव्य का अभाव है, क्योंकि भव्य की योग्यता थी, वह प्रगट हो गयी। अब भव्यपना सिद्ध में नहीं। अभव्य में तो है ही नहीं परन्तु सिद्ध में तो भव्य और अभव्य दोनों नहीं। आहाहा !

यह कहते हैं, हम बात करते हैं, वहाँ तू भव्य-अभव्य का प्रश्न ही रखना नहीं, परन्तु मुझे सिद्ध होने में अनन्त काल होगा, यह भी रखना नहीं। आहाहा ! जैसे सिद्ध होने को, समकित के बाद असंख्य समय ही चाहिए, अनन्त समय नहीं चाहिए। आहाहा ! वैसे यहाँ हम स्थापित करते हैं तो प्रभु ! विश्वास करके देख, अन्दर विश्वास करना कि यह आत्मा की ऐसी बात सुनने को मिलती और हम जब सुनने के योग्य हैं, उसमें यह अनन्त सिद्धों को प्रभु ने हमारे में स्थापित किया और हमारी योग्यता देखकर उन्हें स्थापित किया है। आहाहा !

श्रोताओं को सामूहिक निमन्त्रण दिया है। सागमटे (सबको सामूहिक) नोतूरू अर्थात् समझे ? सब, सब आना, ऐसा। हमारे काठियावाड़ में सामूहिक निमन्त्रण उसे कहते हैं कि पूरा घर जीमने आना, उसे सामूहिक निमन्त्रण कहा जाता है। कन्दोरबन्ध जीमन कहे तो युवक आवे, कन्या का कहे तो कन्या आवे। ऐसे तीन प्रकार हैं। जीमन की विधि के तीन प्रकार हैं। है न तीन है न ? टोलिया ! यहाँ सामूहिक निमन्त्रण है। आहाहा ! प्रभु ! सब श्रोताओं... आहाहा !

सिद्धपद के होने के योग्य तुम हो, हों! इसलिए तुम्हें हम सिद्ध स्थापित करते हैं, प्रभु! आहाहा! और इस बात को शुरु करते हैं अर्थात् तुझे भी तब तक सुनने की तैयारी रखनी पड़ेगी। शुरु करते हैं, इसलिए फिर होगा, तब तक तुझे ध्यान रखना पड़ेगा। आहाहा! आहाहा!

वे सिद्ध भगवन्त... अब जो सिद्ध स्थापित किये। अपनी पर्याय में और आत्मा की-सामनेवाले की पर्याय, श्रोता की पर्याय में जो सिद्ध को स्थापित किये, **वे सिद्ध भगवन्त, सिद्धत्व के कारण साध्य जो आत्मा...** अपना आत्मा साध्य है, उसके स्थान में सिद्ध हैं। सिद्ध भी साध्य है, जैसे आत्मा साध्य है वैसे। सिद्धपना साधना है। इस प्रकार यहाँ आत्मा साधना है, वह आत्मा, सिद्ध को साधना है। आहाहा! **सिद्धत्व के कारण साध्य जो आत्मा...** उसके प्रतिच्छन्द के स्थान पर है... आहाहा! सिद्धपने के कारण, साध्य आत्मा के प्रतिच्छन्द। प्रभु! तुम पूर्ण हो तो सामने (प्रतिध्वनि आयी) प्रभु! तुम पूर्ण हो। प्रतिच्छन्द (अर्थात्) सामने आवाज, ध्वनि सामने धड़ाका मारती है (प्रतिध्वनि आती है)। आहा! तुम पूर्ण आनन्द के नाथ हो, (ऐसा कहा)। तो आवाज सामने प्रतिच्छन्द आती है-पूर्ण अनन्त आनन्द के नाथ तुम हो। आहाहा! जितने विशेषण सिद्ध के लिये कहे जाते हैं, उनका सामने आवाज ध्वनि-प्रतिध्वनि उठती है कि तू ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

सिद्ध भगवन्त सिद्धत्व के कारण... सिद्धपने के कारण। पूर्ण सिद्ध हो गये हैं न, उसके कारण। **साध्य जो आत्मा, उसके प्रतिच्छन्द के स्थान पर हैं।** आत्मा साध्य है, उसके प्रतिछन्द में सिद्ध हैं। **जिनका स्वरूप संसारी भव्य जीव...** जिनके स्वरूप का संसारी भव्य जीव। अभव्य निकाल दिये। आहाहा! **चिन्तवन करके...** अन्दर का ध्यान करके। आहाहा! **संसारी भव्य जीव जिनके स्वरूप का चिन्तन करके...** सिद्ध जैसे हैं, वैसा ही मैं हूँ। आहाहा! मेरी जाति में और प्रभु की जाति में अन्तर नहीं है। आहाहा! ऐसा चिन्तवन करके सिद्ध के स्वरूप में (और) अपने सिद्ध आत्मा में चिन्तवन करके... **उस समान अपने स्वरूप को ध्याकर...** सिद्धसमान अपने स्वरूप का ध्यान करके। देखा? मूल तो यहाँ ले जाना है। चिन्तवन भले उनके (स्वरूप का करे) परन्तु यहाँ तो ऐसे ले जाना है। आहाहा!

उन समान अपने स्वरूप को ध्याकर... आहाहा! जैसे बालक उसकी माँ को धाता है, वैसे आनन्द का ध्यान करके-ध्याकर... आहाहा! है? **अपने स्वरूप को ध्याकर...** अपने स्वरूप को ध्याकर, आहाहा! स्वरूप को ध्यान में ध्येय बनाकर, ध्यान में ध्याकर, स्वरूप को ध्यान में ध्येय बनाकर-ध्यान में ध्याकर (अर्थात्) उसका रस लेकर... आहाहा! **उनके जैसे हो जाते हैं...** उनके जैसे हो जाते हैं। यहाँ न हो, उसका प्रश्न इसमें है ही नहीं। आहाहा!

सिद्ध का ध्यान। आत्मा साध्य, उसके प्रतिच्छन्द के स्थान पर हैं। जैसे तुम सिद्ध को कहोगे, वैसा ही तुम्हारा आत्मा है। ऐसे आत्मा को सिद्ध के स्वरूप का चिन्तवन करके, पहले चिन्तवन (करके), फिर अन्दर ध्यान करके... अन्तर के पूर्ण स्वभाव को ध्याकर... आहाहा! ध्याकर अर्थात् ध्यान में उसके आनन्द को लेकर। आहाहा! जैसे बालक माता के आँचल में से दूध पीता है, वैसे आत्मा के अन्दर आनन्द में से उसे ध्याकर, आनन्द को पी न...! आहाहा! एक व्यक्ति कहता है कि यह समयसार मैं पन्द्रह दिन में पढ़ गया। तुम बहुत महिमा करते हो। बापू! परन्तु वह पन्द्रह दिन में पढ़ गया। भाई! इसकी एक-एक लाईन... बापू!

श्रोता : पढ़ गया था, समझा नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझे क्या? धूल समझे। ऐसा कहे, तुम समयसार की बहुत महिमा करते हो परन्तु मैं पढ़ गया। बापू! अंग्रेजी के शब्द ए-बी, ए-बी, ए-बी ऐसा करके पढ़ गया परन्तु उसका... आहाहा! बापू! इसकी एक-एक लाईन, एक-एक गाथा... बापू! यह तो सन्तों की अमरवाणी है, अमरवाणी, अमर होने की वाणी है। आहाहा! यह वाणी अफर है। ऐसा तुझे अफरपना, सिद्धपना हो, वह अफर बात है। आहाहा! श्रोताओं को ऐसा कहते हैं। आहाहा!

उन समान अपने स्वरूप को... देखा! सिद्धसमान **अपने स्वरूप को ध्याकर...** आहाहा! **उनके जैसे हो जाते हैं।** सिद्ध जैसे हो जाते हैं। आहाहा! जो सिद्ध का चिन्तवन करे, उन्हें वन्दन हमने क्यों किया? आदर क्यों किया? - कि उनका ध्यान-चिन्तवन करके, इसके आत्मा का ध्यान करके उनके जैसे हो जाते हैं। इसलिए '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' सिद्धों को आत्मा में स्थापित किया, उन्हें वन्दन किया ऐसा कहने में आता है। आहाहा! गजब व्याख्या है!

चारों गतियों से विलक्षण... आहाहा! चारों गति दु:खरूप है, भाई! मनुष्यगति, स्वर्गगति भी दु:खरूप है, पराधीन है। जिन सिद्ध के स्वरूप को तेरी पर्याय में स्थापित किया, हमारी पर्याय में स्थापित किया, उनका-सिद्ध का चिन्तवन करके... मेरा स्वरूप ऐसा है-ऐसा अन्तर आत्मा का ध्यान करके सिद्धगति को पायेगा ही! आहाहा! **चार गतियों से विलक्षण...** चार गति में इसका कोई लक्षण मिले, ऐसा चार गति में नहीं है, उनसे विलक्षण है। सिद्ध की गति, वह तो कोई विलक्षण है। आहाहा! विपरीत लक्षण, ऐसा नहीं, परन्तु कोई अलग प्रकार का उसका वि-लक्षण है। आहाहा! अरे रे!

यह बात केवली परमात्मा जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ... कहेंगे, हम उनके पास से सुनकर यहाँ आये हैं। आहा! प्रभु विराजते हैं। आहा! उनके पास से हमने सुना है। कुछ शंका आदि

हो तो श्रुतकेवलियों से चर्चा करके हमने समाधान किया है। आहाहा! वे हम यह त्रिलोकनाथ का सन्देशा सुनाते हैं। आहाहा! सुननेवालों को कहते हैं, सिद्ध को मैंने क्यों स्थापित किया और क्यों वन्दन किया? भाव-द्रव्यस्तुति क्यों की?—कि उनका चिन्तवन करके और उनके स्वरूप जैसा मेरा स्वरूप है, ऐसा अन्तर में ध्यान करके ध्याकर सिद्ध जैसे हो जाते हैं। आहाहा! और वह सिद्ध चार गति से विलक्षण है। है?

पंचम गति मोक्ष को प्राप्त करते हैं। चारों गतियों से विलक्षण। आहाहा! (सिद्ध) भी एक गति है, पर्याय है; द्रव्य-गुण नहीं; द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। यहाँ तो पंचम गति को पाते हैं न? पर्याय को-पूर्ण मोक्षदशा को पाते हैं। आहाहा! पंचम गति ऐसा जो मोक्ष, उसे प्राप्त करते हैं अर्थात् सिद्धपर्याय को प्राप्त करते हैं। स्वरूप सिद्ध जैसा तेरा है, वह तुझे पर्याय में स्थापित किया, उसका चिन्तवन करके, स्वरूप का ध्यान करके, पंचम गति मोक्ष को (प्राप्त करते हैं)। वह भी एक गति-पर्याय है, (उसे) प्राप्त करते हैं। मोक्षगति की पर्याय को वे (जीव प्राप्त करते हैं)। मोक्ष कोई गुण नहीं। गुण और द्रव्य तो त्रिकाल है, प्राप्त करते हैं, वह पर्याय होती है। आहाहा!

पंचम गति मोक्ष को प्राप्त करते हैं। अब पहले जो अन्दर विशेषण दिये थे... गाथा के अर्थ में, गाथा के अर्थ में विशेषण पहले दिये थे, उन्हें अब देते हैं कि यह मोक्षगति है कैसी? जो मोक्षपर्याय प्राप्त करते हैं, नयी प्राप्त करते हैं, थी नहीं, नहीं थी। शक्तिरूप से सिद्ध था, परन्तु मोक्ष की पर्यायरूप कभी नहीं था। अभूतपूर्व-पूर्व में नहीं प्राप्त हुई, ऐसी मोक्षपर्याय को पायेगा, पायेगा। आहाहा! वह मोक्षगति कैसी है?-आहाहा! इसकी विशेष बात करेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१२

श्री नियमसार, गाथा १४४, प्रवचन १४४
दिनांक ०४-०८-१९६६

आत्मा ज्ञान-दर्शन आदि स्वभाव से सम्पन्न स्वरूप है। उसके आश्रयसे रागरहित स्वभाव की एकाग्रता की आवश्यक अर्थात् जरूरतवाली जो क्रिया—सामायिक, तीर्थंकर आदि की स्तुति इत्यादि, वह आत्मा के शुद्धस्वरूप की एकाग्रता रागरहित की दशा को यहाँ सच्चा आवश्यक, सच्ची धार्मिक जरूरवाली क्रिया कहा जाता है। समझ में आया? इससे विरुद्ध अशुभभाव के वश हुए जीव साधु नाम धराते हों या गृहस्थ नाम धराता हो; अशुभभाव के आधीन पड़ा हुआ, वह परवश पराधीन क्रियावाले हैं, उन्हें धार्मिक क्रिया नहीं होती।

अब, (गाथा) १४४ में (कहते हैं), शुभभाव के आधीन हुए, वे भी परवश हैं, मिथ्यादृष्टि हैं। उन्हें शुद्ध स्वभाव भगवान आत्मा के आश्रय से उत्पन्न हुई शुद्ध धार्मिक क्रिया का उन्हें भान नहीं है, ऐसा इस १४४ में कहेंगे।

जो चरदि संजदो खलु सुहभावे सो हवेइ अण्णवसो।
तम्हा तस्स दु कम्मं आवासयलक्खणं ण हवे॥१४४॥

संयत चरे शुभभाव में वह श्रमण है वश अन्य के।
अतएव आवश्यक-स्वरूप न कर्म होता है उसे॥१४४॥

यह अभी बड़ा झगड़ा चलता है। अनादि का है। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है, भाई! **यहाँ भी (इस गाथा में भी), अन्यवश...** अर्थात् भगवान आत्मा पवित्र सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप के आधीन-वश नहीं हुए और मात्र क्रियाकाण्ड के शुभ परिणाम में वश हुए है, उन्हें अन्यवश और उन्हें अशुद्ध-अन्तरात्मा कहते हैं। अशुद्ध आत्मा अर्थात् मिथ्यादृष्टि। समझ में आया? अशुद्ध-अन्तरात्मा शब्द प्रयोग किया है। अन्दर में शुभभाव है परन्तु आत्मा के आश्रय से जो दृष्टि-श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति चाहिए, वह एक क्रिया, वह आवश्यक क्रिया है। जरूरतवाली वह क्रिया धार्मिक है। उस धार्मिक क्रिया को न जानकर **जो (श्रमण)...** साधु नाम धराकर, ऐसे गृहस्थ नाम धराकर इकट्ठा ले लेना।

वास्तव में जिनेन्द्र के... देखो! भाषा यहाँ है। अन्यमती की बात (नहीं)। यहाँ तो **जिनेन्द्र के मुखारविन्द से निकले हुए...** वदन अर्थात् मुख और अरविन्द अर्थात् कमल। सर्वज्ञ परमेश्वर के मुखकमल में से **निकले हुए परम-आचारशास्त्र के क्रम से...** व्यवहार शास्त्र जो हैं, उनमें कहा हुआ। सर्वज्ञ कथित, जिनेन्द्र कथित शुभक्रिया, व्यवहार से। इस **(रीति से) सदा संयत रहता हुआ...** सदा उसके शुभभाव में संयत रहता हुआ। शुभभाव। शुभभाव है न? सब परम ही है यहाँ तो। आचार्य भी परम, आत्मा भी परम, क्रिया भी परम, अशुद्धता भी परम! यहाँ सब परम ही है।

शुभोपयोग में चरता-प्रवर्तता है;.... जो कोई साधु और धर्मी गृहस्थ नाम धराकर शुभ परिणाम में, राग की मन्दता में, कषाय की मन्दता के पुण्य परिणाम में, शुभराग में वर्तता है। **व्यावहारिक धर्मध्यान में परिणत रहता है...** देखो! भाषा प्रयोग की। राग की शुभवृत्ति, शुभभाव, पुण्यभाव को व्यवहार धर्मध्यान कहते हैं, परन्तु व्यवहार धर्मध्यान में परिणत रहता है। शुभभाव से परिणमित है। मात्र देहादि की क्रिया (करता है)-ऐसा नहीं। समझ में आया? जिसे अन्दर में राग, कषाय की मन्दता का शुभभाव है, ऐसे से परिणत है। व्यवहार धर्मध्यान कहा। है मिथ्यादृष्टि। आगे कहेंगे, निश्चयधर्मध्यान, शुक्लध्यान को वह नहीं जानता। समझ में आया?

व्यावहारिक धर्मध्यान में परिणत रहता है... किस प्रकार—इसका विस्तार करेंगे। इसलिए **चरणकरणप्रधान है।** इसलिए उसे शुभ आचरण के परिणाम जिसे प्रधान अर्थात् मुख्य है। राग की मन्दता के शुभराग, पुण्यभाव जिसे हैं। आचरण के परिणाम, जिसे शुभ आचरण के परिणाम की मुख्यता है। शुभ आचरण-शुभभाव, दया, दान, भक्ति, व्रत, तप, पूजा - ऐसा जो राग, मन्दता का शुभभाव, उसके वश हुआ है, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

चरणकरणप्रधान है। जो साधु हुआ है, द्रव्यलिंग नग्न धारण किया है और शास्त्र में-व्यवहारशास्त्र में कहे गये... देखो! जिनेन्द्र के मुख में से निकले हुए, (ऐसा कहा है)। अज्ञानी के कहे हुए की बात भी यहाँ नहीं है। ऐसे आचारशास्त्र की रीति से **सदा संयत रहता हुआ...** सदा शुभभाव में रहता हुआ, अशुभभाव जो होने नहीं देता। कहो, निहालभाई! भारी आकर्षण, भाई! ३०, ३५ वर्ष से हरितकाय का त्याग करता है, कहते हैं। रस नहीं खाता, ऐसा कहते हैं।

श्रोता : कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधु। रस नहीं खाता, दूध, दही, खांड, शक्कर (नहीं खाता)। कहते हैं, शुभभाव में संयत रहता है, शुभभाव में। **व्यावहारिक धर्मध्यान में परिणत रहता है...**

वापस परिणत, हों! शुभभाव परिणमता है। ऐसा कि यह क्रिया करता है और अन्दर राग की मन्दता नहीं है, ऐसा नहीं है। शरीर क्रिया की बात नहीं है। राग की, लोभ के मन्द परिणाम हैं, शुभराग में वर्तता है, शुभधर्मध्यान में परिणमता है परन्तु उसके वश हुआ, वह मिथ्यादृष्टि है। भारी कठिन बात, भाई! यह व्यवहार कुछ व्यवहार करते हुए कुछ-कुछ करे, उसका कुछ लाभ होगा या नहीं? यह सब दुकान का धन्धा छोड़कर बैठे, ऐई! नटु! दुकान का धन्धा छोड़े, यह करे, और दया पाले, व्रत पाले, अपवास करे, महिलाएँ सब वर्षीतप करे, लो! लाखोंपति की लड़कियाँ और बहू और वह भी उसमें राग की मन्दता हो, उसे शुभभाव हो, तो भी वह विकार है और उसके वश हुआ है। वह चिदानन्दस्वभाव के वश नहीं है; इसलिए उसे मिथ्यादृष्टि कहा गया है। आहाहा! कहो, नेमिदासभाई! गजब कठिन। क्या कलकत्ता में किया होगा? पलटायी, खून की पलटायी कहते हैं न? ऐसी। आहाहा!

भाई! आत्मा वस्तु है महासच्चिदानन्द प्रभु है। जिसमें शाश्वत आनन्द और ज्ञान शुद्धभाव से भरा है। ऐसा भगवान आत्मा का आश्रय करके आधीन न हो और आधीन हो तो उसे शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति प्रगट हुए बिना रहे नहीं। ऐसी दशा स्व के वश से होती है। ऐसी (दशा) नहीं करके मात्र परवश के शुभभाव में आधीन होकर ऐसा मानता है कि हम कुछ धर्म करते हैं, सच्चा धर्म करते हैं। है शुभभाव खोटा धर्म। कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि **चरणकरणप्रधान...** जिसे शुभक्रियाकाण्ड के परिणाम ही मुख्य वर्तते हैं। शुद्ध चिदानन्द आत्मा जिसकी दृष्टि में मुख्य वर्तना चाहिए, (वह वर्तता नहीं)। ज्ञायक आनन्द प्रभु पूर्णानन्द का नाथ चैतन्य है। वह सच्चिदानन्द सत्शाश्वत आनन्द का, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा है। उसके वश होकर शान्ति प्रगट करना और उसे मुख्य रखना चाहिए, ऐसा न रखकर; जिसकी क्रिया के शुभपरिणाम जिसे मुख्य हो गये हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? वह क्या करता है?

स्वाध्याय काल का अवलोकन करता हुआ.... स्वाध्याय का कैसा काल है, शास्त्र-स्वाध्याय बराबर करना, काल में विनय से... समझ में आया? सबेरे शाम जब... सन्ध्या हो तब नहीं, कोई ऐसी प्रतिकूलता हो तो नहीं। ऐसे स्वाध्याय काल को अवलोकता है। ऐसा अच्छा स्वाध्याय काल हो, तब स्वाध्याय करना। यह शुभभाव है। इसके आधीन हुआ है, परन्तु भगवान आत्मा शुद्ध है, उसके वश नहीं हुआ। मास्टर! यह कठिन बात है, शोर मचाये ऐसा है? अब तुम्हारे अब क्या है? पहले (संवत्) १९९९ में चिल्लाये ऐसा था। कहो, समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा ऐसा ज्ञानानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य आत्मतत्त्व है। उसमें तीन प्रकार के भाव होते हैं। एक हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, वासना, काम, यह कमाने का काम, यह सब पापभाव; यह जो दया, दान, शास्त्र को खोजकर वाँचना, स्वाध्याय बराबर करना, वह सब शुभभाव है; और आत्मा आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्य को अन्तर में एकाकार होकर शुद्धता प्रगट करना; शुभ और अशुभरहित शुद्धता, वह धर्म है। समझ में आया? तेरे भतीजे ने कलकत्ता में सुना भी नहीं होगा। उसके बड़े बापू ने सुना नहीं था तो यह कहाँ से लावे? आहाहा! उस सम्प्रदाय में एक ही घोंटा जाता है। न्यालभाई!

भाई! यह शुभभाव हो। वह पुण्यबन्ध का कारण है। जहाँ आगे परलक्ष्यी क्रिया के भाव होते हैं, वे सब शुभ हैं, पुण्य हैं, पराधीन हुई वृत्ति है, वह आत्मा को बन्धन का कारण है। ऐसे भाव के आधीन होना, वह मिथ्यादृष्टि है। सत्यस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञानानन्द की ज्योति शुद्ध चैतन्यमूर्ति के आधीन होना, वह सम्यग्दर्शन है, क्योंकि सत्यस्वभाव के वश होना, वह सत्य भाव है। ऐसे शुभभाव के आधीन होना और मानना कि हम कुछ धर्म करते हैं, वह मिथ्यादृष्टि, दुःखदृष्टि, पापदृष्टि है। यह कठिन लगता है, भाई! लो! यह सोनगढ़ का है? लोग कहते हैं, यह सोनगढ़ का है। परन्तु यह किसका है? समझ में आया? सोनगढ़वाले ऐसा कहते हैं, सोनगढ़वाले ऐसा कहते हैं, सोनगढ़ के नेता ऐसा कहते हैं और ऐसे कितने ही ऐसे डालते हैं। डाल न तुझे डालना हो उतना।

भगवान तीन लोक के नाथ ऐसा कहते हैं कि मेरे मुखारविन्द से निकली हुई व्यवहार क्रियाकाण्ड की जो व्याख्या, उसे जो करे और उसके आधीन होता है, (उससे) हम कहते हैं कि वह मिथ्यादृष्टि है। गजब बात! कठिन लगे ऐसा है, लो! कहते हैं परन्तु तब कुछ आचरण इतना.. इतना.. आचरण करें, पचास-पचास वर्ष तक हरितकाय न खाये, आम न खाये, शरीर से ब्रह्मचर्य पाले, समझे न?.... कहो, ज्ञानचन्दजी! कुछ इसका फल होगा या नहीं? कुछ-कुछ आत्मा को मदद करने में यह साधन नहीं? फिर एकान्त लगे, हों! ऐ.. नेमिदासभाई! एकान्त है, एकान्त। कुछ अनेकान्त दूसरा होना चाहिए। उससे भी कुछ लाभ हो, वह अनेकान्त। यहाँ कहते हैं कि इससे लाभ हो, वह मिथ्या अनेकान्त है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं। **स्वाध्याय काल का अवलोकन करता हुआ...** वापस, हों! बराबर ध्यान रखे। सबेरे ऐसे हो, दोपहर को ऐसे हो, तब स्वाध्याय नहीं करना, कोई व्यक्ति मर गया हो, तो शास्त्र का स्वाध्याय खोजकर, विचारकर करे, वह शुभभाव है, धर्म नहीं। **स्वाध्याय क्रिया करता है, प्रतिदिन भोजन करके चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान करता है,...** साधु की

मुख्य बात है न! गृहस्थ को लेना। शाम को रात्रिभोजन त्याग करे, चार प्रकार का आहार करना नहीं, प्रतिदिन पचास-पचास वर्ष से, दस वर्ष की उम्र से (करते हों), लो! कहे, वे नहीं थे अपने? भाई! मनसुख ताराचन्द डॉक्टर। सर डॉक्टर अपने आये थे न यहाँ? आँख के डॉक्टर। करोड़पति, मनसुख ताराचन्द। आँख का था, तब नहीं आये थे? पन्द्रह, पन्द्रह दिन यहाँ रहे हैं। अफ्रीका में गुजर गये न? करोड़पति। लड़कों के पास आठ-आठ, दस लाख की आमदनी। यहाँ बेचारे साधारण (रीति से) बैठे। पन्द्रह दिन यहाँ रहे। रात्रि में जगे। आपरेशन किया न? उन्होंने नहीं किया, बड़े डॉक्टर को बुलाया, उनके गुरु, वे स्वयं सर है। क्या कहलाते हैं वे? सर्जन। नरम व्यक्ति, हों! (वह कहे) मैं तो छोटी उम्र से रात्रिभोजन नहीं करता हूँ। बहुत छोटी उम्र से (रात्रि में) आहार-पानी बिल्कुल नहीं। एक महीने के चार उपवास हमेशा, हों! इतनी उम्र में, एक महीने के चार उपवास। सबेरे हमेशा यह मानी हुई सामायिक (करे), मनसुख ताराचन्द थे। आँख का था, तब पन्द्रह दिन रहे थे। पलंग डालकर सोते। आहार करते समय मेरे साथ नीचे बैठते। रोटी... बहुत नरम व्यक्ति, हों! यह बात सुनी तो कहे, हाय.. हाय..! यह तो सब खोटा निकला परन्तु नरम व्यक्ति। मैंने बेचारे को बहुत कहा, अब छोड़ो.. छोड़ो.. वहाँ और अभी परोपकार करने निकले।

यहाँ अठारह लाख का डाला है न? सुरेन्द्रनगर। आँख का बड़ा दवाखाना। पचास हजार स्वयं ने निकाले थे और ऐसा कहे अठारह लाख का बनाया, स्वयं इकट्ठा करके। अब कहा, वह छोड़ दो न। एक लप में से निकाला तो दूसरी लप में पड़े वापस। मानों परोपकार किया। धूल में भी नहीं परोपकार। सुन तो सही! परन्तु रस जाता नहीं अन्दर से। फिर काम करने का रहा नहीं, कमाने के लिये कुछ रहा नहीं। दो हजार रुपये महीने लड़के से खर्च करने के लें। बड़ा गृहस्थ। आँख (का मोतिया) उतारने आये थे। बहुत नरम व्यक्ति। बड़ा डॉक्टर वह चिटणिस मुम्बई में, इनका गुरु कहलाता है। बहुत कहा। यह करने जैसा है, ऐसा कहे। मर गया। एक में से निकलकर धन्धा छोड़कर वापस यह धन्धा लगाया। किसी का करें। धूल भी कर सकता नहीं, व्यर्थ का किसका लगाया?

अठारह लाख का बड़ा किया... क्या कहलाता है? अस्पताल। उद्घाटन में किसी बड़े को बुलाया था। उद्घाटन किया। लोग कितनी महिमा करे! क्या परोपकारी मनसुखभाई! और आँख का यज्ञ.. क्या कहलाता है वह? नेत्रयज्ञ... नेत्रयज्ञ करे, तब हजारों के स्वयं उतारे, हों! फट.. फट.. फट.. फट.. फट.. ओहो! कितने अन्धों को सूझता किया, कितने गरीब लोगों को आँखें देकर हलुवा खिलवाया। वे तो आशीर्वाद दें। आहा! परन्तु इसमें तेरा क्या हुआ? यहाँ

मर गया बेचारा, आता था। पत्र लिखे, अब आता हूँ। आहा! जिन्दगी ऐसी चली जाती है, बापू! उसी-उसी में बेचारा, हों! शास्त्र वाँचन और सामायिक करना और यह करना, रात्रिभोजन नहीं (करे), उपवास एक महीने के चार उपवास इतनी उम्र में करे, वह तो शुभराग है, बापू! वह भगवान आत्मा निष्क्रिय रागरहित का चैतन्य प्रभु है, उसके अन्तर में आश्रय और श्रद्धा-ज्ञान किये बिना धर्म-वर्म किंचित नहीं होता। समझ में आया?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म यह कहा न! व्यवहार धर्म कहा, व्यवहार धर्म है? यह शब्द प्रयोग किया है-व्यवहार धर्म अर्थात् सच्चा धर्म नहीं। यह व्यवहार धर्म कहा न? व्यवहार धर्म अर्थात् सच्चा धर्म नहीं। आगे कहेंगे, उसे निश्चय धर्मध्यान का ज्ञान नहीं, ऐसा कहेंगे, देखो! बाद में कहेंगे।

उसे **निश्चय से परमात्मतत्त्व में विश्रान्तिरूप निश्चयधर्मध्यान को तथा शुक्लध्यान को—नहीं जानता;...** सच्चा धर्मध्यान तो उसे कहते हैं-भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्द में विश्रान्ति लेना। अन्तर में एकाकार होना, उसे सच्चा धर्मध्यान कहते हैं। वह शुभभाव भी सच्चा धर्मध्यान नहीं, कल्पित-कल्पित (धर्मध्यान है)। बिलाव को सिंह कहे वैसा। मींदड़ी समझे? बिलाणी... पुरुषार्थसिद्धिउपाय। समझ में आया?

भाई! तेरा आत्मा अखण्डानन्द; एक विकल्प राग है, उससे भिन्न चैतन्य प्रभु पड़ा है न! ऐसे आनन्द की तुझे रुचि नहीं, आनन्द में स्थिर होना, उसका विश्राम नहीं। वहाँ थकान उतरे, ऐसा तो वह स्थान है। पुण्य-पाप के भाव तो वह के वही भटकने के भाव हैं। यह पुण्यभाव भटकने का संसारभाव है। आहाहा! इससे कहीं वह शुभभाव छोड़कर पाप करना, ऐसा यहाँ नहीं कहते परन्तु उस शुभभाव के वश होना, वह मिथ्यादृष्टि है। उसके वश होने से चिदानन्द स्वरूप अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा का अनादर हो जाता है। इसलिए इस दृष्टि को मिथ्या श्रद्धा मिथ्या दृष्टि अज्ञानी कहा जाता है। जिन के-वीतराग के मुख से कथित आचारशास्त्र प्रमाण शुभभाव उसके परलक्ष्य से करे तो भी उसे वीतराग कहते हैं कि निश्चय धर्मध्यान नहीं है, मिथ्या धर्मध्यान है, व्यवहार धर्मध्यान है। ओहोहो! समझ में आया?

प्रतिदिन चार (प्रकार के) आहार का त्याग करे, लो! एक बार खाये फिर... आहार-पानी, औषध, क्या कहलाता है वह? ....वह शुभभाव है, धर्म नहीं। पुराने लोगों को जरा (कठिन पड़ता है)। देखो! **प्रतिदिन भोजन करके चतुर्विध आहार का...** चारों ही आहार,

हों! आहार-पानी, दूध और पानी नहीं। भोजन करके तुरन्त पानी का त्याग। समझ में आया? हमारे 'समढियाला' के नागरभाई करते थे। कितने वर्ष से, हों! एक बार वहीं का वहीं खावे और वहीं का वहीं पानी। चौबीस घण्टे। 'समढियाला' के नागरभाई! यहाँ बहुत बार आते थे। गृहस्थ व्यक्ति हैं। एक ब्रह्मचर्य पालने का भाव बहुत, स्त्री छोटी उम्र में गुजर गयी। एक बार ही, हों! वहीं का वहीं। पानी वहाँ और आहार भी वहाँ। गृहस्थ व्यक्ति थे। मकान, पैसा (सब था)। दो बार पानी नहीं। प्यास लगे (परन्तु ले नहीं) मेद बड़े किसका? हमारे हीराभाई जैसा शरीर। मेद जरा भी नहीं। फिर उसने ऐसा जब सुना तब कहे, यह तो सब (खोटा है)। वह तो स्नान भी करे नहीं, हों! स्नान भी छह महीने, बारह महीने में करते हों तो... वे तो स्थानकवासीरूप से थे न, बापू! यह मार्ग नहीं है। राग की मन्दता होवे (तो पुण्यबन्ध होता है)। वाडीदासभाई! तुमने देखा था या नहीं? तुम्हारे गाँव के। कितने वर्ष, हों! तीस-तीस, पैंतीस-पैंतीस वर्ष तक। ठाम चौविहार समझे? पण्डितजी! ठाम चौविहार अर्थात् एक बार खाना, बस! यह ठाम अर्थात् वहीं का वहीं आहार। एक आधे घण्टे में जो खावे-पीवे (पश्चात्) चौबीस घण्टे (कुछ नहीं)। एक ठाणा, एक ठाणा। हमारे ठाम चौविहार कहते हैं। ऐसा, हों! यहाँ आते थे खूब रहते थे। इस कमरे में रहे, सुने! अरे भाई! कहा, यह तो सब बापू! नहीं नहाना और ऐसा कि मानो मलिन कपड़े और मलिन वस्त्र और खाना नहीं, प्रतिदिन चौविहार, हों! कितने वर्ष से चौविहार करे। रात्रि में आहार नहीं और एक बार के बाद पानी नहीं। भाई! यह तो... शुभभाव है। राग की मन्दता का परलक्ष्यी शुभ (भाव) है और उसके आधीन हो गया है, वह चैतन्य की आधीनता का अनादर करता है। भारी कठिन बात। अभी लोगों को यही धर्म हो गया है। समझ में आया?

प्रतिदिन, हों! प्रतिदिन भोजन करके चार (प्रकार के) आहार का त्याग करे। यह खाया, खाया, वहाँ पानी (ले) बाद में नहीं। यहाँ तो सब दृष्टान्त तैयार हैं न? नागरभाई थे तुमने नहीं देखे। बोटाद से दो... बहुत खानदानी व्यक्ति, व्रत-तप करे। 'समढियाला' दो कोस है। खेत, पादर घर में है, गृहस्थ व्यक्ति, बड़े-बड़े अमलदार-अधिकारी आवें। कोई भी व्यक्ति निकला हो, दस बजे बारात निकली हो न बारात, भाई! जीमने न दे उसे। बारात को जीमने दे। जान समझे? विवाह के लिये निकले हों न? बारात, बारात कहीं जाने को निकली हो, गाड़ी निकली हो, देखा, बाहर खड़े देखे कि यह गाड़ियाँ बारात की है। यहाँ से नहीं निकला जायेगा, जीमकर जाओ। यहाँ से तुम्हारे जाया नहीं जायेगा। हम यहाँ खायेंगे हमारा, तुम्हारा नहीं खाया जायेगा। बाहर का सब भभका। यहाँ कहते हैं कि ऐसी चार त्याग की क्रिया करे (तो)

शुभभाव है, राग की मन्दता है, वह कहीं धर्म नहीं है। आहाहा! उसका कुछ प्रतिशत तो रखो! आत्मा के साथ कुछ लाभ हो ऐसा। छगनभाई!

तीन संध्याओं के समय (-प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल) भगवान अरहन्त परमेश्वर की लाखों स्तुति... भगवान परमेश्वर की स्तुति, हों! अरिहन्त परमेश्वर की। क्या कहलाते हैं वे? क्षेत्रपाल और अमुकपाल, नहीं! देखो न! मन्दिर में बड़ा क्षेत्रपाल (रखे)। अब यह तो कोई बात है! जैन की क्या वस्तु है, (इसकी खबर नहीं होती) क्षेत्रपाल के चरण लगते हैं, जय महाराज! बड़ा लाल.. ऐसा पत्थर हो। पहले चावल उसे चढ़ावे, फिर भगवान के पास जाये। दक्षिण में ऐसा रिवाज है, हों! कहाँ गये? धन्यकुमारजी! उनने देखा है या नहीं वहाँ? तुम्हारे यहाँ ऐसी सब गप्प है।

यहाँ तो अरिहन्त परमेश्वर की लाखों स्तुति (करें)। वापस लाखों स्तुति। भाषा तो देखो! ऐसी भाषा से ऐसी स्तुति करे, परन्तु वे भगवान तो परद्रव्य हैं। उनकी स्तुति का भाव तो शुभभाव है। समझ में आया? आहा! लो! भगवान की भक्ति भी आ गयी, वह क्रिया आ गयी। **मुखकमल से बोलता है,...** स्वयं बोलता है, ऐसा। दूसरा बोले और सुने, ऐसा नहीं। ऐसी स्वाध्याय करे, भगवान की स्तुति करे।

तीनों काल नियमपरायण रहता है... सबेरे, दोपहर और शाम। जितनी क्रिया नियमसार करने की हो न, ऐसे नियमों में तत्पर रहे। लो! सबेरे प्रतिक्रमण, शाम को प्रतिक्रमण, दोपहर में भी स्वाध्याय आदि। सामायिक सबेरे, दोपहर और शाम, तीन समय सामायिक होती है। **तीनों काल नियमपरायण रहता है इस प्रकार अहर्निश (दिन-रात मिलकर) ग्यारह...** क्रियाएँ हुईं। एक स्वाध्याय की क्रिया, चार आहार के त्याग की क्रिया=पाँच, तीन—सबेरे, दोपहर, शाम स्तुति की और तीन काल के नियमपरायण, इसके अतिरिक्त शास्त्र में जो नियम हो, सबेरे, दोपहर के (वे भी करे)। **ग्यारह क्रियाओं में तत्पर रहता है;...** भाषा क्या है? तत्पर रहता है। ज्ञानी को ऐसा भाव आ जाता है (परन्तु) वह उसमें तत्पर नहीं है। ये सब शब्द पंचास्तिकाय के अमृतचन्द्राचार्य के हैं। अमृतचन्द्राचार्य में यह आता है। व्यवहाराभास में सब (आता है) वह ऐसा करता है, वह तप करता है, अमुक (करता है) ऐसा करके पर में ही एकाकार है। अमृतचन्द्राचार्य ने ऐसी सब भाषा प्रयोग की है, हों! समझ में आया? (ऐसे) **ग्यारह क्रियाओं में तत्पर रहता है;...** इससे विशेष...

पाक्षिक,... प्रतिक्रमण करे, पन्द्रह दिन में आता है न? **मासिक,...** प्रतिक्रमण करे, एक महीने में प्रतिक्रमण करे। **चातुर्मासिक...** चार महीने का प्रतिक्रमण **तथा सांवत्सरिक...** बारह

महीने का सांवत्सरिक का प्रतिक्रमण **सुनने से...** वह प्रतिक्रमण सुने। व्यवहार। **उत्पन्न हुए सन्तोष से जिसका धर्मशरीर रोमांच से छा जाता है;...** देखो! यह व्यवहारधर्म का शरीर। प्रसन्न.. प्रसन्न (होता है)। प्रतिक्रमण सुने, फिर मिच्छामि दुक्कडम् दे। न्यालभाई! इसमें सब लिखा हुआ है। धर्म शरीर अर्थात् वे शुभभाव के परिणाम हैं न, उनके साथ में यह शरीर भी ऐसा रोमांच हो गया है। आहाहा! रोमांच से छा जाता है, ऐसे रोमांच खड़े हो जाते हैं परन्तु वह तो परद्रव्य के अनुसार होते भाव की बात है। उसमें आत्मा कहाँ आया? आहाहा! समझ में आया?

तदुपरान्त **अनशन...** करता है। यह अपवास करे। एक अपवास से लेकर छह महीने के अपवास। वह तो शुभभाव है, अपवास है; उपवास नहीं। यह भारी कठिन पड़े, हों! सुनना कठिन पड़ता है, ऐई! शुरुआत में तो ये सब भड़के नेमिदासभाई और सब। आहाहा!

अवमौदर्य,... हमेशा ऊनोदर (भूख से कम) खाये। बत्तीस ग्रास हो, उसमें से पाँच कम ले। यह सब शुभभाव है। **रसपरित्याग,...** दूध, दही, खांड, शक्कर नहीं। रोटी और छाछ, रोटी और मट्ठा, बस! अपने को दूसरा कुछ नहीं चलता। उसमें क्या हुआ परन्तु अब? आत्मा चलता है या नहीं? यह तो ले न पहले! समझ में आया? आहाहा! रसपरित्याग करे, दूध, दही, खांड-शक्कर न खाये। लोगों को ऐसा हो... आहाहा! यह रस का त्याग (किया है)। क्या चलता है? किसी का आया था अभी द्राक्ष, भाई! द्राक्ष ऐसा आया था। एक साधु को... द्राक्ष चले, द्राक्ष का रस (चले) अब उसके लिये द्राक्ष का रस बनाना। उसकी अपेक्षा रोटी, दाल मिलता हो, वह तो ले।

एक व्यक्ति को सिंघाड़े की रोटी चलती है, गेहूँ की नहीं, त्याग है। सिंघाड़े आते हैं न, उनकी रोटी ले। परन्तु वह तो तेरे लिये बनानी पड़ेगी। उसकी अपेक्षा उनके लिये बनाया (हो वे ले)। अब उसका ऐसा चला है न कोई... आहाहा! भगवान का विरह पड़ा और जगत को तत्त्व की रुचि के... तत्त्व की रुचि (रही नहीं)। जिसे ठीक लगा, वैसा मानकर चल निकले, हम धर्म करते हैं। साधु होकर वापस कहे, हमारे यह रोटी गेहूँ की नहीं चलती। यह तो बाहर प्रसिद्ध करे। तब वे समझे कि इन्हें चलती नहीं, दूसरी बनाओ। परन्तु वह तो तेरे लिये बनाते हैं और लेता है, उसमें तेरे व्यवहार का भी ठिकाना कहाँ है? आहाहा!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : तब पूछो उसे जाकर।

वृत्तिपरिसंख्यान,... नियम करे—पाँच घर का ही चलेगा, इतना ही चलेगा, इतना

विशेष नहीं। वह सब शुभभाव है। परद्रव्य के आश्रय से हुआ शुभविकल्प है। **विविक्त शय्यासन...** अकेला जंगल में रहे। स्त्री, पुरुष, नपुंसक का परिचय (नहीं)। नपुंसक ऐसे हल्के मनुष्य का परिचय (नहीं करे)। एकान्त विविक्त है। **कायक्लेश...** बराबर मोर के आसन से ऐसा करके बैठे। गौआसन, यह गाय को दूहे न? इस (प्रकार से) बैठे, हों! छह-छह घण्टे, आठ-आठ घण्टे (बैठे वह) शुभभाव है।

इन **छह बाह्य तप में जो सतत उत्साहपरायण रहता है;...** देखो, भाषा। निरन्तर। क्योंकि दृष्टि तो स्वभाव की मुख्यता तो कुछ है नहीं। सतत् निरन्तर उत्साहपरायण रहता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उत्साह अवश्य, हों! वापस उत्साह। बराबर उत्साह (रहे) ऐसा नहीं कि शिथिलपना हो। उत्साहपरायण है परन्तु वह है शुभभाव। **स्वाध्याय,...** शास्त्र की करे। लो! वह कहे, स्वाध्याय करे तो असंख्यगुनी निर्जरा (होती है)। यहाँ कहते हैं, इस स्वाध्याय के आधीन हो-शुभभाव के आधीन हो, वह धर्म माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहा! धवल में आता अवश्य है न? असंख्यगुनी निर्जरा। भाई! वह दूसरी बात है, बापू! वह तो आत्मा के दर्शन, प्रतीति, अनुभव हुआ है, और स्वभाव के आश्रय से वहाँ घोटन चलता है। उसमें वह स्व-अध्याय में, अपने आत्मा में अध्याय-एकाकार होता है, वह स्वाध्याय है। उस स्वाध्याय से कर्म को खिरावे और निर्जरा, शुद्धता हो। यह स्वाध्याय अर्थात् शास्त्र के परलक्ष्य से स्वाध्याय लाख करता हो, सबेरे-शाम तक किया करे (तो भी) शुभभाव है। समझ में आया? **ध्यान,...** करे। लो! इस प्रकार का ध्यान, हों! ऐसे एकाग्र होने को मन्थन करे, परन्तु वह तो सब विकल्प है।

श्रोता : प्राथमिक तैयारी तो होती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं चलता। ऐसा कहते हैं। आहा! ऐसा तो अनन्त बार हो गया तो प्राथमिकपना तो आया नहीं इसमें कहीं। 'वह साधन बार अनन्त कियो, तदपि कछु हाथ हजू न परयो' श्रीमद् में नहीं कहा? समझ में आया?

शुभ आचरण से च्युत होने पर पुनः उनमें स्थापनस्वरूप प्रायश्चित्त,... ले। शुभभाव में प्रतिज्ञा हो, उसमें से कुछ दोष लगे तो प्रायश्चित्त ले। हमको इस उपवास में... परन्तु वह प्रायश्चित्त शुभभाव है। उसके वश होना, वह भी मिथ्यादृष्टिपना है। भगवान ज्ञायकस्वभाव के मुख्यपने की दृष्टि न देकर इसे मुख्य किया है, वह तो दृष्टि मिथ्यात्व है। वह तो ऐसी क्रिया तो अभव्य ने भी अनन्त बार की है।

विनय,... करे देव-गुरु-शास्त्र का। देव का विनय, गुरु का विनय, शास्त्र का विनय शुभभाव है। **वैयावृत्त्य...** सेवा करे, लो! देव-गुरु-शास्त्र की सेवा करे, टहल करे, मन्दिर को सम्हालने की उसकी, अमुक की, बाग-बगीचा करना, पूजा-बूजा करनी, करानी, ऐसी बराबर वैयावृत्त्य करे। शुभभाव हैं। **व्युत्सर्ग...** करे। आत्मा के अन्तर अनुभव की दृष्टि बिना यह सब व्युत्सर्ग भी तेरा शुभभाव है। भगवान के पास ऐसा ध्यान करके खड़ा रहे। आत्मा ज्ञानानन्द, रागरहित है, उसके अनुभव बिना यह कायोत्सर्ग भी शुभभाव है।

अभ्यन्तर तपों के अनुष्ठान में (आचरण में) जो कुशलबुद्धिवाला है;... देखा? बाह्य तप में सतत उत्साह परायण रहता है, ऐसा कहा। इसमें कहते हैं, कुशलबुद्धिवाला है, ऐसा कहा। कुशलबुद्धि, उसमें कुशल-चतुर है। यह सब भाषा पंचास्तिकाय में व्यवहार प्रधान का (कथन) बहुत आती है, (उसमें से है)।

परन्तु वह निरपेक्ष तपोधन साक्षात् मोक्ष के कारणभूत... निरपेक्ष (कहा), परन्तु निरपेक्ष जो तपोधनपना, जो निरपेक्षपना राग की अपेक्षारहित ऐसा तो है नहीं। **साक्षात् मोक्ष के कारणभूत स्वात्माश्रित आवश्यक-कर्म को...** देखो! साक्षात् मोक्ष का कारण। साक्षात् कहा, इसलिए यह परम्पराकारण है या नहीं? नहीं, नहीं। उसे साक्षात् होवे तो उस राग की मन्दता को परम्पराकारण का आरोप दिया जाता है। इतना अनन्त बार किया, इसमें कुछ भला हुआ नहीं।

स्वात्माश्रित आवश्यक... देखो, भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति, ज्ञान सूर्य, आनन्द की मूर्ति आत्मा है, अतीन्द्रिय आनन्द का दलस्वरूप ही आत्मा है। ऐसे आत्मा के आश्रय से... समझ में आया? आवश्यक कर्म को स्व आत्मा के आश्रय से आवश्यक ऐसे कार्य को... आत्मा के आश्रय से वही आवश्यक कर्म है। **निश्चय से परमात्मतत्त्व में विश्रान्तिरूप...** वास्तव में परमात्मतत्त्व में, परमात्मतत्त्व। शुभराग में आत्मतत्त्व कहाँ आया? वह तो अनात्मा-राग आया। निश्चय से परमात्मतत्त्व स्वयं का। आत्मा अर्थात् परमस्वरूप तत्त्व। ज्ञानानन्दस्वरूप, शुद्ध चैतन्यस्वरूप, ऐसे परमात्मतत्त्व में विश्रान्तिरूप का नाम धर्मध्यान है। उसमें स्थित होना-परमात्मचिदानन्द भगवान में स्थिर होना, वह विश्रान्तिरूप धर्मध्यान है। वह विश्रान्तिरूप धर्मध्यान और शुक्लध्यान को जानता भी नहीं-ऐसा लेंगे। समझ में आया? कहो, इसमें चिल्लावें या नहीं? छगनभाई! इसमें सम्प्रदायवाले तो बेचारे विरोध.. विरोध करे। इसका। ऐसे लेख नग्न लेख हैं, ऐसा कहते हैं। यह तो खुला तत्त्व है। भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप विराजमान

है, उसकी तुझे खबर नहीं, उसकी तुझे श्रद्धा नहीं, उसका तुझे आश्रय नहीं और पर के आश्रय के ऐसे भाव तू धर्म मानकर करता है, (तो तू) मूढ़ है। जानता नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो, हों!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....व्यवहार है न वह ? व्यवहार है न अन्दर ? समझ में आया ?

ऐसा **विश्रान्तिरूप निश्चयधर्मध्यान...** देखो! सच्चा धर्मध्यान। वह व्यवहारधर्मध्यान था पहले ऊपर। ऐसे निश्चय अर्थात् सच्चे धर्मध्यान को ज्ञानसूर्य भगवान पूर्णानन्द से भरपूर की एकाग्रता अन्तर में होना, उसे निश्चयधर्मध्यान, सच्चा धर्मध्यान कहते हैं। समझ में आया इसमें ?

तथा शुक्लध्यान को—नहीं जानता;... इन्होंने वहाँ शब्द प्रयोग किया है–शुक्लध्यान। क्योंकि एक ही है न। धर्मध्यान के दो प्रकार पड़ते हैं। **शुक्लध्यान को—नहीं जानता;...** स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान और शुक्लध्यान, ऐसी भाषा ली है। धर्मध्यान के दो भेद करने को। शुक्लध्यान में दो भेद नहीं हैं। वह जानता नहीं, यहाँ तो लिया। मिथ्यादृष्टि लिया है। समझ में आया ? परन्तु ऐसा कुछ करता होगा तो करते-करते कुछ निवेडा आयेगा परन्तु करेगा नहीं, (तो) क्या आयेगा ? ऐसा कोई कहता था। एक व्यक्ति ऐसा कहता था, लो! महीने-महीने के अपवास करे, लो! भाई! यह श्रद्धा बिना कुछ करते हैं ? परन्तु कौन सी श्रद्धा ? यह महीने-महीने के अपवास करे, यहाँ सुनने आवे, वीतराग के नाम से कितना त्याग करे, पैसे का कितना भोग (दान) दे, शरीर को कमजोर कर दे। समझ में आया ? यह तो कुछ समकित दर्शन की श्रद्धा बिना करते होंगे ? परन्तु कौन सी श्रद्धा ? वह तो शुभराग की श्रद्धा है, आत्मा की श्रद्धा कहाँ आयी वहाँ ? वहाँ सम्यग्दर्शन लगा दे। वह सब ऐसा करे, वे श्रद्धा बिना करते होंगे ? कौन सी श्रद्धा ? व्यवहार श्रद्धा पर के आश्रयवाली या स्व निश्चय की श्रद्धा ? समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत की श्रद्धा, वह सब शुभराग है। कहो, कच्चा पारा है। सच्ची बात कच्चे पारे जैसी पचे नहीं। हाजमा तैयार कर। आत्मा वस्तु तेरे पास पूर्णानन्द भरपूर है। ऐसे महान प्रभु का तू आदर करता नहीं। आदर करना या नहीं करना, वह तेरे अधिकार की बात है। समझ में आया ?

इसलिए परद्रव्य में परिणत होने से... देखो! वह तो परद्रव्य में परिणत होने से। परिणत कहा तो कहाँ परद्रव्य से परिणत होता है ? परन्तु वह परद्रव्य में ही परिणत है, उसका लक्ष्य

ही परद्रव्य पर है अर्थात् शुभभाव, वह परद्रव्य परिणत है। वास्तव में शुभभाव राग की मन्दता, यह क्रिया के काण्ड कहे, वे सब परद्रव्य परिणत हैं, स्वद्रव्य नहीं। भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप उनमें आया ही नहीं, वह तो सब परद्रव्यरूप है। भाषा देखो। **परद्रव्य में परिणत होने से...** देखो! अभी कल सबेरे आयेगा न? '**पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं**' वह पुद्गल जड़ के प्रदेश में स्थित है, इसका अर्थ कि उसका लक्ष्य ही पर के ऊपर है अर्थात् शुभाशुभभाव में लीन है, वह परद्रव्य में ही परिणत है। ओहो!

उसे अन्यवश कहा गया है। लो! यह पाठ में है वह। समझ में आया? '**अण्णवसो**' '**जो चरदि संजदो खलु सुहभावे सो हवेइ अण्णवसो।**' वह पराधीन है, पराधीन है, वह स्वाधीन नहीं। आहाहा! कितनी व्याख्या (की है)! यह तो लोग कहे, पराधीन सपने सुखी नहीं। यह नौकरी करना, पराधीन रहना, यह किया, वह सब पराधीन। यहाँ तो कहते हैं शुभराग के आधीन होना, वह पराधीन है। समझ में आया? भगवान आत्मस्वभाव तो अरागी चिदानन्दस्वरूप है। शुद्ध.. शुद्ध.. शुद्ध.. है। उसमें राग कैसा? ऐसे परमात्म निजस्वरूप का प्रेम नहीं, रुचि नहीं, आश्रय नहीं। ऐसे जो परद्रव्य परिणत राग, विकार, संयोगीभाव (होवें) उन्हें परद्रव्य परिणत कहा गया है। उसे **अन्यवश कहा गया है।**

जिसका चित्त तपश्चरण में लीन है... मुनिपना, यह व्यवहार मुनिपना, हों! तपश्चरण अर्थात् मुनिपना, व्यवहार मुनिपना। पंच महाव्रत आदि में **लीन है, ऐसा यह अन्यवश श्रमण...** पराधीन हुआ साधु। ऐसे गृहस्थ भी उसके प्रमाण में लेना। **देवलोकादि के क्लेश की परम्परा...** वह तो देवलोक के क्लेश की परम्परा में सिंकेगा। वहाँ शान्ति कहाँ है? पुण्य के भाव में स्वर्ग में जायेगा, फिर उस धूल की सेठाई प्राप्त करेगा। वहाँ क्लेश से अंगारों में सिंकेगा, कहो, समझ में आया इसमें? कहाँ गये? मोहनभाई गये तुम्हारे? समझ में आया? ऐसे शुभभाववाले मुनि अथवा गृहस्थ हों, जिनका शुभभावरूपी मुनिपना, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, श्रावक के बारह व्रत आदि में जिनका भाव लीन है, ऐसा वह अन्यवश साधु या श्रावक। देवलोकादि, देवलोक और आदि अर्थात् वहाँ से निकलकर कदाचित् पुण्य के फल में सेठ हो इस धूल के दो-पाँच करोड़, पचास करोड़ (मिले)। अभी तो पचास करोड़ का कहाँ... धूल बहुत बढ़ गयी। वह **देवलोकादि के क्लेश की परम्परा...** यह तो भारी, भाई! नग्न-मुनि, नागा बादशाह से आघा। ये सब अमृतचन्द्राचार्य की यह शैली है, हों! पंचास्तिकाय में लिया है। वह शुभभाव से अंगारों में सिंकेगा।

श्रोता : सम्यग्दर्शन.....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सम्यग्दृष्टि (सिकेगा)। शुभभाव है, उतना वहाँ स्वर्ग में अंगारों में सिकेगा। वहाँ कहाँ सुख था? शुभभाव ऐसा है या नहीं? सम्यग्दृष्टि भी, मुनि भी शुभभाव में जहाँ है, उससे स्वर्ग में जायेंगे और वासना में सिकेंगे। आहाहा! सिकते हैं, वह पुण्य के फल में अन्दर भोगने जाते हैं, (उसमें) वृत्ति सिकती है, जलती है। आहाहा! समझ में आया इसमें? वह **परम्परा प्राप्त होने से शुभोपयोग के फलस्वरूप प्रशस्त रागरूपी अंगारों से सिकता हुआ,...**

श्रोता : यहाँ तो जरा..... तो चिल्लाने लगते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिल्लाता ही नहीं, उसे भान नहीं और उसे दु:ख ही नहीं लगता। राग, वह दु:ख है, अंगारा है, अग्नि है। भगवान आत्मा राग की रहित की शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। शान्त अकषायस्वभाव की पुतली है। अकषाय अर्थात् शान्त.. शान्त.. शान्त.. निर्विकल्प तत्त्व है। ऐसे शान्त का सागर है, शान्ति का सागर है। उसमें एकाग्र होने से जैसे फव्वारे में पानी निकले, वैसे शान्ति में एकाग्र होने से अन्दर शान्ति प्रगट होती है। वह स्व-आश्रय से शान्ति प्रगट नहीं करता। समझ में आया? बाहर में पाँचवें गुणस्थान की व्यवहार क्रिया, छठे गुण (स्थान) की व्यवहार क्रिया में शान्ति माने। धूल में भी शान्ति नहीं है।

शुभोपयोग के फलस्वरूप प्रशस्त रागरूपी अंगारा... देखो! ऐई! भाषा यह प्रयोग की है। शुभोपयोग का फल वहाँ तो... परन्तु यह तो **शुभोपयोग के फलस्वरूप प्रशस्त रागरूपी अंगारों से सिकता हुआ,...** वहाँ जायेगा तो उस प्रकार का भले वहाँ शुभभाव कोई करे देवलोक में, वह सब मन्द कषाय है, तो भी अंगारों में सिकता है, ऐसा कहते हैं। फलस्वरूप में तो बाह्य साधन मिले, उसमें लक्ष्य जाता है, वह अशुभभाव है परन्तु बहुत सामग्री में, अनुकूलता में... देव की भक्ति करे, भगवान आदि की हो, अग्नि में सिके। बस, पाठ की यह बात यहाँ रखी।

अब जरा मुनि इसमें से सुलटी बात निकालते हैं। '**तम्हा तस्स दु कम्मं आवासयलक्खणं ण हवे।**' यहाँ तक तो इस गाथा का अर्थ है। अब इसमें से कोई जीव... * परन्तु वह पराधीन है,... आसन्न भव्यता-बहुत नजदीक जिसकी भव्यता—मोक्ष को प्राप्त करने की योग्यता, ऐसे **गुण का उदय होने पर...** ऐसे अन्तर में आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि उदय होने पर, प्रगट होने पर **परमगुरु के प्रसाद से...** भगवान आत्मा विकल्प अर्थात् रागरहित चीज़ है, उसे समझ। ऐसे **परमगुरु के प्रसाद से...** देखो! **प्राप्त परमतत्त्व के श्रद्धान...** यह परमगुरु का

* आवाज की अस्पष्टता के कारण कुछ अंश छोड़ा गया है। -अनुवादक

प्रसाद और परमगुरु ने यही कहा है। क्या कहा ? – कि परमतत्त्व का श्रद्धान। भाई! यह शुभभाव है, वह आस्रवतत्त्व है। तेरा परमतत्त्व उस आस्रव के राग से भिन्न तत्त्व है। समझ में आया ?

उसका श्रद्धान, परमतत्त्व का श्रद्धान, देखो! चैतन्यस्वरूप अनाकुल आनन्द तत्त्व आत्मा अन्तर उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान। परमतत्त्व का ज्ञान और परमतत्त्व के अनुष्ठान स्वरूप **शुद्ध-निश्चय-रत्नत्रयपरिणति द्वारा...** लो! जब यह जीव इस प्रकार प्रगट करेगा, तब मुनि निर्वाण को पायेंगे। ऐसे भाव से (पायेंगे)। शुभभाव से तो अंगारों में सिकेंगे, ऐसा कहते हैं। उसके सामने निर्वाण लिया है। वह जीव अपने पुरुषार्थ द्वारा गुरु के प्रसाद द्वारा। उन्होंने कहा कि भाई! आत्मा शुद्धचैतन्य है, अनाकुल आनन्द का तत्त्व है। उसके सन्मुख श्रद्धा कर, उसके सन्मुख का उसका ज्ञान कर, उसके सन्मुख में अनुष्ठान उस पर कर। समझ में आया ? ऐसा कहकर यह कहा (कि) परमगुरु तो ऐसा उपदेश देते हैं, भाई! अज्ञानी शुभ से धर्म होता है, ऐसा (उपदेश) देनेवाले, वे गुरु नहीं हैं।

परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त अर्थात् उसे जब मिला है, वह गुरु ने ऐसा कहा है। भाई! तेरा आत्मा है न, प्रभु! पूर्ण अकषाय रस के स्वभाव से भरपूर प्रभु है। अब तेरी पर्याय को, वर्तमान दशा को भगवान का आधार दे। वह पूर्ण प्रभु विराजता है तेरा आत्मा, भाई! उसकी श्रद्धा, स्व की श्रद्धा कर, उसका ज्ञान कर और उसका अनुष्ठान (कर), ऐसा कहा था, वैसा इसने किया-ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

यहाँ तो ऐसा कहते हैं, गुरु तो निश्चय का ही उपदेश देते हैं, ऐसा कहते हैं। बीच में व्यवहार हो, वह तो निश्चय का ज्ञान करने पर व्यवहार का ज्ञान नया करना नहीं पड़ता, उसमें वह ज्ञान समाहित हो जाता है। स्व का भान होने पर बाकी रहे, उसका ज्ञान उसमें आ जाता है। ऐसा सन्तों का, गुरुओं का, वीतरागी मुनियों का यह उपदेश है। समझ में आया ? आया न ? पाठ में ऐसा आया न ? ऐसे कार्य को '**आवासयलक्खणं ण हवे।**' उससे आत्मा के आश्रय से जो काम हो वह '**आवासयलक्खणं हवे।**' उसमें से ऐसा निकाला। उससे विरुद्ध। मुखारबिन्द कहा था... वह तो कहा था व्यवहार से जाननेयोग्य की चीज़, वहाँ उसे आदरनेयोग्य मानकर वहाँ रहा।

जब गुरु ने ऐसा कहा कि भाई! तेरे आत्मा का आश्रय कर, प्रभु! महाप्रभु विराजता है न अन्दर। उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसका आश्रय, उसका अनुष्ठान (कर), ऐसा कहकर, देखो! जैसा कहा था, वैसा करके **शुद्ध-निश्चय-रत्नत्रयपरिणति द्वारा...** देखो! ये तीनों

होकर शुद्धनिश्चयरत्नत्रयपरिणति हुई। देखो! परिणति पर्याय हुई। शुद्ध सच्चा रत्नत्रय जिसे मोल लेना है–मोक्ष! जिसे मोल–मोल अर्थात् पैसा (कीमत) देकर लेना है मोक्ष। वह निश्चयरत्नत्रय कीमत देकर लेता है। **निर्वाण को प्राप्त होता है (अर्थात् कभी शुद्ध-निश्चयरत्नत्रयपरिणति को प्राप्त कर ले तो ही और तभी निर्वाण को प्राप्त करता है)।** स्पष्टीकरण किया। नहीं तो वे ऐसा ले लें, ऐसा होवे और उसमें से ऐसे पा जाये, ऐसा ले लें। समझ में आया? ऐसा स्व का आश्रय करेगा, श्रद्धा–ज्ञान–चारित्र (होंगे), तब वह मुक्ति को पायेगा, पर के आश्रय से कभी मुक्ति होगी नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)